मुद्रक
सम्मेलन मुद्रणालय, प्रयाग

SHOUT
SHARE
IT

समर्पण

वेदके महान् मर्मज्ञ और
लेखनीके परम आलसी
श्री श्री श्री क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपाध्यायके करकमलोंमें
सादर सस्नेह

भूमिका

"नम ऋषिभ्य पूर्वजेभ्य ।" (१०।१०।१५)

दो वर्ष पहले यदि कोई कहता, कि मै इस प्रकारकी एक पुस्तक लिखूगा, तो मुझे इस पर विश्वास नही होता। वस्तुत, ऐसी एक पुस्तकको अपनी या पराई किसी भी भाषामें भी न पाकर मुझे कलम उठानी पडी। ऋग्वेदसे ही हमारे इतिहासकी लिखित सामग्री का आरभ होता है । जिस प्रकार एक ईश्वर झूठके साथ-साथ महान् अनिष्टोका कारण है, पर अनेक देवता सुन्दर कलाका आधार होनेके कारण अनमोल और स्पृहणीय है, उसी तरह वेद, भगवान् या दिव्य पुरुषोकी वाणी न होने पर भी अपने सास्कृतिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक सामग्री के कारण, हमारी सबसे महान् और अनमोल निधि है। जिन्होने इसको रचा, और जिन्होने पीढियो तक कठस्थ करके बडे प्रयत्नसे इसे सुरक्षित रक्खा, वह हमारी हार्दिक कृतज्ञताके पात्र हैं।

जहा तक देश-विदेशके भाषातत्वज्ञो और बुद्धिपूर्वक वेदाध्ययन करने वालोका सम्बन्ध है, ऋग्वेदके कालके बारेमे बहुत विवाद नही है। पर, जो हरेक चीजमे अध्यात्मवाद, रहस्यवादको देखनेके लिये उतारू है, वह अचिकित्स्य है, उनसे कुछ कहने की अवश्यकता नही। अपनी श्रद्धाके अनुसार वह अपने विश्वास पर दृढ रहें, उन्हे विचलित कौन करता है? लेकिन, आजकी भी तथा आनेवाली पीढिया और भी अधिक, हरेक बातको वैज्ञानिक दृष्टिसे देखना चाहेंगी। उनके लिये ही यह मेरा प्रयत्न है।

ऋग्वेद के जिज्ञासुओको अपनी कल्पना की सीमाओको जान लेना आवश्यक है। ऋग्वेद हमारे देशके ताम्र-युगकी देन है । ताम्र-युग अपने अन्तमें था, जबकि सप्तसिन्धु (पजाब) के ऋषियोने ऋचाओ की रचना की, जब कि सुदासने "दाशराज्ञ" युद्ध में विजय प्राप्त करके आर्यो की जन-व्यवस्थाकी जगह पर एकतावद्ध सामन्ती व्यवस्था कायम करनेका प्रयत्न किया।

सप्तसिन्धुके आर्योंकी सस्कृति प्रधानत पशुपालोकी सस्कृति थी। आर्य खेती जानते थे, और जौकी खेती करते भी थे। पर, इसे उनकी जीविका का मूल नहीं, वल्कि गौण साधन ही कहा जा सकता है। वह अपने गौ-अश्वो, अजा-अवियो (भेड-वकरी) को अपना परम धन समझते थे। उनके खान-पान और पोशाकके ये सवसे वडे साधन थे। अपने देवताओको सतुष्ट करनेके लिये भी इनकी उन्हें वडी अवश्यकता थी। पशुधनको परमधन माननेके कारण ही आर्योंको नगरोकी नही, वल्कि प्राय चरिष्णु ग्रामोकी अवश्यकता थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योंकी सस्कृति पशुपालो और ग्रामोकी मस्कृति थी। इन सीमाओ को हमें ध्यानमें रखना होगा।

ऋग्वेदके वारेमें निर्णय करते समय यह भी ध्यान रखने की वात है, कि ऋग्वेदिक आर्य केवल भारतसे ही सम्वन्ध नही रखते थे, वल्कि उनकी भापा और पूज्य भावनाओके सम्वन्धी भारतसे वाहर भी थे। वाहरके सवसे नजदीकके सम्वन्धी ईरानी थे। सौभाग्यसे उनके धार्मिक आचार-विचारोके जाननेके लिये अवेस्ता और पारसी धर्मके माननेवाले अव भी मौजूद है। तुलनात्मक अध्ययनसे मालूम होता है, कि वेद और अवेस्ताके माननेवाले अपनी भापा और धर्ममें एक दूसरेके वहुत नजदीक थे। ईरानियो के वाद दूसरे जो सवसे नजदीकके आर्योंके विदेशी सम्वन्धी हैं, वह स्लाव जातिया है। स्लाव स्क्लाव (शक लाव) का ही अपभ्रश है। रूसी, अक्रइनी, वेलोरूसी, वुल्गारी, युगोस्लावी, चेकोस्लावी पोल—स्लाव जातिया—शकोकी ही सन्तान है। इन्होने अपने पूर्वजोके धर्मको आज से सात-आठ सौ वर्षों पहले छोड दिया। ईसाई धर्म स्वीकार करते समय इनके पूर्वजोको लिपिका ज्ञान नही था, और न उन्होने अपने पवित्र विश्वासो और देवताओके सम्वन्धमें अवेस्ता या वेद जैसे कोई प्राचीन सग्रह वनाये थे। जो भी पुराने साम या गाथायें रही होगी, वह ईसाई धर्म स्वीकार करते ही पुराने विश्वासके साथ नष्ट हो गईं। पेरुन, सूर्य आदि स्लाव देवताओकी मूर्तियोका भी इतना पूरी तरह से ध्वस हुआ, कि सग्रहालयो में भी उनका पता नही मिलता।

ईरानियो और शकोके वाद लेत-लियुवानियो का सम्वन्ध नजदीकका है। यह दोनो भापाए सगी वहनें और एक दूसरेके वहुत नजदीक है। इनसे भी सहायता मिल सकती थी, यदि पुराने पादरियोकी धर्मान्धता ने सर्वसहार करनेका व्रत न ले लिया होता। लियुवानी सोलहवी सदी तक अपने प्राचीन धर्मपर आरूढ थे। उनके देवताओमे वैदिक देवताओकी प्रतिध्वनि मिलती है। वावर-हुमायू या विद्यापति-जायसी-के समय तक लियुवानी अभी अपनी पुरानी सास्कृतिक निधियोको जोगाये हुये थे। पर, एक वार ईसाई धर्म स्वीकार कर लेनेपर वह अपने पुराने धार्मिक सम्पर्कको नष्ट कर देनेके लिये मजवूर थे। वहुत पीछे ईसाइयो ने सस्कृतिके मूल्यको समझा, और उनके भीतर सहिष्णुता ही नही, वल्कि अपनी और पराई सास्कृतिक निधियोकी रक्षाका ख्याल भी पैदा हुआ। भापाकी दृष्टिसे लियुवानी वैदिक भापाके उतना नजदीक नही हैं, जितना कि रूसी, पर, अपने व्याकरणमे वह वहुत अधिक प्राचीनता रखती है।

इसके वाद पश्चिमी युरोपकी प्राचीन—ग्रीक, लातिन—और आधुनिक जर्मन, फ्रेंच, अग्रेजी आदि भापाओका सम्वन्ध वैदिक भापाके साथ है। वेदके अर्थ करने में यह सभी भापायें अधिकार रखती हैं। हमारी कितनी ही सस्कृत धातुओका प्रयोग प्राचीन या नवीन सस्कृत साहित्यमें नही मिलता, पर उनका आज भी उपयोग भारत के वाहर इन भापाओमें देखा जाता है। उदाहरणार्थ दावना, सस्कृतमें नही प्रयुक्त होता, हमारी आजकी भापाओमें यह मौजूद है, और रूसीमें भी दव्ल्यात मिलता है। सप्तसिन्धु केवल वेदमें ही नही मिलता, वल्कि अवेस्ता और ईरानी प्राचीन साहित्यमें भी हफ्त-हिन्दू पाया जाता है, जो केवल सात नदियोंके लिये नही, वल्कि सातो नदियोवाले प्रदेश और वहा वसनेवाले लोगो के लिये भी इस्तेमाल होता रहा। जैमिनि वेदके वारेमें वडे कट्टरपथी है। उन्हें ईश्वर मान्य नही है, पर वह वेदको सर्वोपरि प्रमाण मानते है। वह भी शब्दोंके अर्थ करनेमें कितनी ही जगहोपर आर्योकी प्रसिद्धि छोडकर म्लेच्छोकी प्रसिद्धिको स्वीकार करते है—

"चोदित तु प्रतीयेताविरोधात्प्रमाणेन" (मीमासा १।३।६।१०)

आर्यों (भारतीयो) में कोई शब्दार्थ परम्परा लुप्त हो गई, इसलिये यहा वह नही मिलती, पर म्लेच्छोमें वह परम्परा मौजूद है, इसलिये उसे प्रामाणिक मानना पडेगा। वह इसके लिये पिक, नेम (आधा) आदि शब्दोका उदाहरण देते हैं।

हित्तित जाति मसोपोतामियामें उसी समयके आसपास रहती थी, जिस समय कि सप्तसिन्धुमें आर्य थे। नासत्य (अश्विनीकुमार), इन्द्र, वरुण, मित्र आदि देवताओको हित्तित्त भी पूज्य मानते थे। इसलिये ऋग्वेदिक आर्यों के सम्बन्धमें जो गुत्थिया पैदा होती है, उनके सुलझानेकी इजारेदारी हमारा साहित्य ही नही ले सकता।

आर्यों के आनेके समय भारतमे उनसे कही बढकर उन्नत एक प्राचीन सस्कृति मौजूद थी, जिसके अवशेप मोहनजोडरो और हडप्पा में पहिले मिले, और अब वह जमुना-गगा उपत्यका और सौराष्ट्र तक मिल रहे है। सप्तसिन्धुके आर्योकी ग्राम-सस्कृतिसे यह नागरिक सस्कृति कही आगे बढी हुई थी। यदि आर्य अपनी पशुपाल सस्कृति और जीवनसे चिपटे रहनेका जबर्दस्त आग्रह न करते, तो वह तुरन्त इस नागरिक सस्कृतिके अधिकारी हो सकते थे। पर, अध्ययन करनेसे उनके जीवनका सम्पर्क इस सस्कृतिसे भी मालम होता है। उसकी और भी कितनी ही चीजे उन्होने स्वीकार की होगी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योके अध्ययनके लिये सिन्धु-उपत्यकाकी सस्कृति सहायक है।

आर्योकी सस्कृतिके पुरातात्विक अवशेप मिले, तो उनके द्वारा सप्त-सिन्धुके आर्योके जीवनको हम और अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। चाहे ग्रामीण ही जीवन पसन्द करते हो, लेकिन आर्य सोम और अपने खाने-पीनेके रखने के लिये कितनी ही तरहके काठ, मिट्टी और तावेके वर्तनोको इस्तेमाल करते थे, सोने और रतनके आभूपण पहनते थे, तावेके हथियार इस्तेमाल करते थे। उनके अवशेप जरूर मिलने चाहिये। धूमिल मृत्पात्र आर्यों के साथ जोडे जाते है। यह रोपडमें भी मिले है, और कुरुक्षेत्रमें भी। यदि गगासे पूर्व इस तरहके मृत्पात्र मिलते हैं, तो वह ऋग्वेदके कालके बाद

भी मौजूद रहे, इसलिये उनपर सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्बन्धमें एकान्तत विश्वास नहीं किया जा सकता। चाहे अभी हम उन्हें अच्छी तरह पा या पहचान न सके हों, लेकिन सप्तसिन्धुकी भूमिमें वह मिलेंगे जरूर। सप्त-सिन्धुका यद्यपि आधा ही अब भारतमें है, पर यह वह आधा है, जिसमें सप्तसिन्धुके आर्योंके सबसे प्रभुताशाली जन पुरु, तृत्सु, कुशिक रहते थे।

सिन्धु-सस्कृतिवालोंके अतिरिक्त एक और जाति सप्तसिन्धुके आर्योंके सम्पर्क और सघर्षमें आई, जिसे ऋग्वेद दास और दस्युके नामसे याद करता है। पर, जो किर, किरात अथवा किलात-चिलात के नामसे सम्भवत उस समय भी प्रसिद्ध थी, और जिसके लोगो और भाषाके अवशेष अब भी हिमा-लयमें मिलते हैं। वह भी वैदिक आर्योंके इतिहासके ऊपर अपनी भाषा और अपने पुरातात्विक अवशेषो द्वारा प्रकाश डालनेकी अधिकारी है। हिमालयमें किरात अब थोडे रह गये है, लेकिन वह और उनके साथ रहनेवाले खश अब भी कितनी ही जगहोंमें ऐसे सास्कृतिक तलपर मौजूद है, कि उनके जीवन और धार्मिक विश्वासोकी सहायतासे ऋग्वेदिक आर्योंके समझनेमें आसानी हो सकती है—विशेषकर वैदिक देवताओका आर्योंके साथ जिस तरहका सम्बन्ध था, वह कितने ही अशोमें अब भी हिमालयकी इन जातियो में मौजूद है।

ऋग्वेद स्वत प्रमाण है। उनके अपने क्षेत्रमें ऋचाये जितना अधिकार-पूर्वक कह सकती है, उतना कोई दूसरा नही बतला सकता। यजुर्वेद और सामवेदको लेकर वेदत्रयी माना जाता था। बुद्धके समय ईसा-पूर्व पाचवी-छठी शताब्दीमे तीन वेदोका स्पष्ट उल्लेख आता है। पर, ऋग्वेदकी तुलना करने पर सामवेद ऋग्वेदसे भिन्न नही मालूम होता। इसके २८१४ मन्त्रोमें ७५ को छोड कर बाकी सभी ऋग्वेद के है। सोमपान या सोमयागके समय गानेकी अवश्यकता थी। ऋग्वेदमें भी साम और अनेक प्रकारके उक्थो, स्तोमोका उल्लेख आता है। जैसे सूरसागरके सागरमेंसे बहुतसे पदोको गानेके स्वर आदिके साथ अलग सग्रह किया गया, वैसे ही सामवेदको ऋग्वेदसे अलग करके रक्खा गया।

यजुर्वेदकी वाजसनेयी सहितामें ४० अध्याय और १९८८ कडिका या मन्त्र है। यह गद्य और पद्य मिश्रित वेद है। पद्य भागमें अधिकतर ऋग्वेदकी ऋचायें ले ली गई हैं। जिस तरह साम गेय मन्त्रोकी सहिता (सग्रह) है, उसी तरह यजुर्वेदमें ऋग्वेदकी वहुत सी ऋचायें तथा कितनी ही दूसरी रचनायें सम्मिलित करके यज्ञोंके उपयोगके लिए एक सहिता वना दी गई है। दर्श-पूर्णमास, अग्निष्टोम, वाजपेय, राजसूय, सौत्रामणि, अश्वमेध, सर्वमेध, पितृमेध आदि यज्ञोमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्रोका यह सग्रह है। केवल अन्तिम (४० वा) अध्याय ब्रह्मज्ञानके लिये है, जिसे ईशावास्य उपनिषद् कहा जाता है। वेदके अन्तमें होनेके कारण इसे वेदान्त कहा गया, और आगे ब्रह्मज्ञान-सम्वन्धी इस और दूसरी उपिनपदोके ऊपर विवेचनात्मक ग्रथको भी वेदान्त कहा जाने लगा। ऋग्वेदके सोमपान आदि अनुष्ठानोंमें दिव्य और मानुप अश मिले-जुले है। ऋग्वेद-कालके वाद यह विधि-विधान दिव्यताका रूप ले लेते है। उसी समय यजुर्वेदकी रचना हुई। कृष्ण यजुर्वेद शुक्ल यजुर्वेदसे भी पुराना माना जाता है। प्राय ईसा-पूर्व १००० से ईसा-पूर्व ७०० तक यजुर्वेद, अथर्ववेद और ब्राह्मणोकी रचनाका समय है। ऋग्वेदके पीछेके इन ग्रथोसे भी ऋग्वेद और ऋग्वेदिक आर्योके वारेमें सूचनायें मिलती हैं। लेकिन, साथ ही ऋग्वेदिक कालकी ऐतिहासिक सामग्रीको गडवड करनेकी जो प्रवृत्ति महाभारत, रामायण और पुराणोमें मिलती है, उसका आरम्भ इसी समय हो चुका था। इसलिए उनके इस्तेमालमें वहुत सावधानी वरतनेकी जरूरत है।

यह अध्ययन अधूरा है। इसमें ऋग्वेदकी ऋचाओके करीव छठे भागका उपयोग किया गया है, जिन्हें दो हजार तक किया जा सकता था। इससे अधिक ऋचायें शायद ही, ऐतिहासिक ज्ञान वढानेमें साधक सिद्ध हो। ग्रथमें उपयुक्त ऋचाओको परिशिष्टमें अर्थ सहित दे दिया गया है, जो विद्यार्थियो और अनुसन्धानकर्ताओंके लिए उपयोगी साबित होगा। नाम और देवतासूची में भी कितनी ही उपयुक्त सामग्रीको सन्निविष्ट करनेकी

कोशिश की गई है। "हम और हमारे पूर्वज"में सास्कृतिक परिवर्तनके वारेमें कुछ आवश्यक तथ्य दिये जाते है।

हम और हमारे पूर्वज—आज हम अपने देशमें मानवको देखते है। उसके सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक जीवनसे भी परिचित हैं। उसका खान-पान, वेष-भूषा हमारे रोजमर्रेके उपयोगकी चीज है।, इसलिए हम उसको पूरी तौरसे जानते हैं। यह मान लेनेमें तो किसीको आपत्ति नही, कि हमारी हरेक वातमें परिवर्तन होता है। लेकिन, वह परिवर्तन कितना जवर्दस्त हुआ, इसे समझ पाना हमें मुश्किल मालूम होता है। इसके लिये सौ-सौ वर्षके वाद ऐतिहासिक काल और ज्यादा अन्तरसे प्राग्-ऐतिहासिक कालको यदि हम देखें, तो पता लगेगा, कि परिवर्तन अविश्वसनीय रहा। हम १९५६ को न ले १९५० ई० से पीछेकी यात्रा करते है। यहा १९५७ के सम्बन्धमें भी एक वात कह देनी जरूरी है। कितने ही अकल वेंच खाये हुए लोग यह समझते हैं, कि चूंकि १८५७ में अग्रेजोंके खिलाफ विद्रोह और १७५७ में पलासीकी विजयके वाद अग्रेजी राज्यकी स्थापना हुई, इसलिए हमेशामें' ५७ का सन् हमारे लिये अनिष्टकर रहा है। लेकिन, १६५७, १५५७, १४५७ आदिके वारेमें कोई ऐसी वात हमारे यहा नही देखी जाती।

(१) १९५०-ई०—१ अव हम पाषाण, ताम्र, लौह, वारूद, वाष्पके युगोको पार कर परमाणु-युगमें है। वायुमण्डलपर हमारा अधिकार है। पाच-पाच सौ मील प्रतिघटेकी चालवाले विमान उसमेंसे इधर उधर दौड रहे है रेल्गे-मोटरोकी तो वात ही नही करनी है। (३, ४) हमारी शासन-व्यवस्था गणतत्र है, हमारे गणराज्यके राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद राजधानी दिल्लीमें रहते हैं। (५) हमारे देशकी मुख्य सम्मिलित भाषा हिन्दी है, और भिन्न-भिन्न भागोकी असमिया, वगला, उडिया, तेलगु, तमिल, मलयालम, कन्नड, मराठी, गुजराती, पजावी, आदि साहित्यिक भाषायें है। इनके अतिरिक्त मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, व्रज, मालवी, राजस्थानी, कौरवी, पहाडी आदि भाषायें भी साहित्यिक भाषायें है या होने जा रही है।

५. १५५० ई०—(१) हम लौह-युगके बारूद-उपयुगमें हैं। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें शूरवंशी इस्लामशाह गद्दीपर है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्तवादी शासनमें दासताका अखण्ड राज्य है। (७) तोपें परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू और इस्लाम दो प्रधान धर्म है। (९) लोग अधिकाश मासाहारी है। खान-पानमें छूतछातका बहुत जोर है। रोटी-बेटी अपनी जाति और प्रदेशमें ही हो सकती है। (१०) जायसी हिन्दी साहित्य-गगनसे हाल हीमें लुप्त हुए हैं। (११) सामन्त-वर्गमें मिर्जयी और सुत्थन पुरुषोकी और पायजामा-पेशवाज स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् १५५०।

६. १४५० ई०—(१) बारूद-युगका भारतमें आरम्भ है। (३, ४) राजधानी दिल्लीमें बहलोल लोदीका शासन है। (६) सामन्तवाद और दास-प्रथा हमारी सामाजिक व्यवस्थाके प्रधान रूप हैं। (७) तोप परमास्त्र है, लेकिन उसका प्रचार हमारे यहा अभी बहुत कम हुआ है। (८) हिन्दू अधिक और मुसलमान भी काफी है। (९) अधिकाश लोग मासाहारी हैं। खानपानमें जबर्दस्त छूआछूत है। रोटी-बेटी जात और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (१०) साहित्य-गगनमें कबीर अस्त हो चुके हैं। (११) वेष-भूषा उत्तरी भारतके सामन्तोकी चौबन्दी, लम्बी मिर्जयी, कोगा और पायजामा या धोती है। स्त्रिया अपनी-अपनी प्रादेशिक पोशाक-घाघरा-लुगडी, धोती, सलवार आदि पहनती है। हिन्दू-मुसलमानकी पोशाकमें उच्च वर्गमें भी अन्तर है। यह है सन् १४५०।

७ १३५० ई०— (१) युरोपमें बारूद के प्रचारका आरम्भ है, पर, हमारे यहा उसका प्रवेश नही है। हम शुद्ध लौह-युगमें है। (३, ४) दिल्ली राजधानी है, राजा मुहम्मद तुगलक है। (५) राजभाषा फारसी है। (६) सामन्ती शासन और दास-दासियोका खुला क्रय-विक्रय हो रहा है। (७) तीर-धनुष और तलवार-भाला हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू प्रधान धर्म है, मुसलमान भी विशेषकर पजाब और दिल्लीके आसपास काफी है। (९) अधिकाश मासाहारी है, छुआछूतका राज्य है। मुसलमान या अछूतके

हाथका पानी नही पिया जा सकता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तके भीतर ही हो सकती है। (११) मुसलमानोकी पोशाक चोगा और पायजामा है। उनकी स्त्रिया भी वही पोशाक पहनती हैं। हिन्दुओंके यहा सामन्तोमें चौवन्दी-सुत्थन और चौवन्दी-धोती है, स्त्रियोमें घाघरा-लुगडी या साडी। यह है सन् १३५०।

८ १२५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४) दिल्ली राजधानीमें सुल्तान नासिरुद्दीन खिलजीका शासन है। (५) फारसी राजभाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-दासियोका रवाज है। (७) तीर-धनुष हमारे परमास्त्र हैं। (८) हिन्दू धर्मकी प्रधानता है। बौद्ध भी हैं, और इस्लामका अभी प्रवेश ही हुआ है। (९) अधिकाश लोग मासाहारी हैं अछूत और मुसलमानके हाथका पानी नही चलता। रोटी-बेटी जाति और प्रान्तमें ही होती है। (११) मुसलमान सामन्त और उनकी स्त्रिया चोगा-पायजामा पहनते है। हिन्दू चौवन्दीके साथ सुत्थन या धोती रखते है। उनकी स्त्रिया घाघरा-लुगडी या दूसरी प्रादेशिक पोशाक पहनती हैं। यह है सन् १२५०।

९. ११५० ई०—(१) लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। महाराज गोविन्दचन्द गहडवारका शासन है। (५) सस्कृत राजभाषा है, और मध्यदेशी या अपभ्रश (पाचाली, कनौजी) भारतकी सम्मिलित और सम्भ्रान्त भाषा है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) हिन्दू धर्मके दो रूप ब्राह्मण और बौद्ध देशमें बहु प्रचलित हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्मियोकी सख्या अधिक है। इस्लाम अभी पजाबमें ही थोडा-बहुत देखा जाता है। लेकिन, अफगानिस्तान हिन्दूसे मुसलमान हो गया है। (९) लोग अधिकाश मासाहारी है। छुआछूत और जात-पातका जोर है। पर, बौद्ध धर्म हिन्दू धर्मका अग होनेसे उसमें कुछ बाधक भी है। बाहरके किसी भी देशके बौद्ध अछूत नही माने जाते। रोटी-बेटी भी अपनी जातिके ब्राह्मण धर्मियो और बौद्धोमें हो जाती है। (१०) हर्ष कान्यकुब्जके महान् कवि अभी तरुण है। (११) पोशाक चौवन्दी और धोती है। स्त्रिया घाघरा-लुगडी ज्यादा पहनती है। प्रादेशिक पोशाक भी उनकी अपनी-अपनी है। कान्यकुब्जकी वेष-

भूषा, खान-पान और चाल-व्यवहारको आदर्श माना जाता है। यह है सन् ११५०।

१० १०५० ई०—(१) हम लौह-युगमें हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानी है। प्रतिहार वशका नाश हुआ है, देशकी स्थिति अस्त-व्यस्त है। (५) सस्कृत राज-सम्मानित भाषा है। पर, पाचाली (मध्य-देशीया) अपभ्रश सारे देशकी सम्मिलित साहित्य और व्यवहारकी भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था और दास-प्रथाका प्रचार है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है। (९) अधिकाश मासाहारी है। छुआछूतका खान-पानमे प्रचार है। अछूतको न छूते न उसके हाथसे पानी पीते हैं। बौद्ध-ब्राह्मण धर्मोमें रोटी-बेटीका कोई भेद नही है, पर, अपनी जाति और वर्गमें व्याह किया जाता है। (१०) साहित्य-गगनमें कविराज राजशेखर अस्त हो चुके है। (११) पोशाक पुरुषोकी चौवन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी घाघरा-लुगडी या साडी-अगिया सम्भ्रान्त मानी जाती है। यह है सन् १०५०।

११ ९५० ई०—(१) हम लौह-युगमे हैं। (३, ४) कान्यकुब्ज राजधानीमें महाराज देवपाल प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य भाषा है, पर पचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश साहित्य और व्यवहारकी सारे देशमें मान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण और बौद्ध प्रधान धर्म है, जिनमे शैव और तान्त्रिक बौद्ध धर्म मुख्यता रखते है। पूर्वमें बौद्ध और पश्चिममे पाशुपतोकी सख्या अधिक है। (९) अधिकाश मासाहारी हैं, छुआछूत अछूतो और परधर्मी म्लेच्छो के साथ बरती जाती है। रोटी-बेटी अपने जाति-वर्गमें होती है। (११) चौवन्दी-धोती, सुत्थन पुरुषोकी और घाघरा, साडी, चुनरी, अगिया स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् ९५०।

१२ ८५० ई०—(१) हम लौह-युग में है। (३ ४) कन्नौजमें राजा मिहिरभोज प्रतिहारका शासन है। (५) सस्कृत राज्यमान्य तथा मध्य-देशीया (कन्नौजी) अपभ्रश सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था

तथा दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र है। (८) शैव और वौद्ध प्रधान धर्म है—पूर्वमें वौद्ध अधिक और पश्चिममें शैव अधिक है। (११) पोशाक पुरुपोकी चौवन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी साडी-घाघरा चुनरी-चौवन्दी-अगिया है। यह है सन् ८५०।

१३ ७५० ई०—(१) लौह-युगमें है। (३) (४) कान्यकुब्जमें प्रतापी यशोवर्माका शासन है। (५) सस्कृत राजमान्य और मध्यदेशीया (पाचाली) अपभ्रश भारतकी साहित्य और व्यवहारकी सर्वमान्य भापा है। (६) सामन्तवादी समाज है, जिसमें दासता निरावाध चल रही है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र है। (८) शैव और वौद्ध प्रधान धर्म है—वौद्ध पूर्वमे और शैव पश्चिममें अधिक है। वौद्धोमें महायानका जोर है, तन्त्रयान भी ऊपर आ रहा है। (९) खाने-पीनेके सम्वन्धमें छूतछात हरिजनोके साथ मानी जाती है, वाकीमें उसका कम प्रभाव है। लोग मासभक्षी ज्यादा है, यद्यपि गरीवोको वह कभी ही कभी मिलता है। (१०) भवभूति और सरहपा साहित्य-गगनके सूर्य है। (११) चौवन्दी-धोती-सुत्थन पुरुपोकी और साडी-चौवन्दी-अंगिया स्त्रियोकी पोशाक है। यह है सन् ७५०।

१४ ६५० ई०—(१) लौह-युग है। (३) (४) कान्यकुब्ज राज धानी है। हर्पवर्धनके मरे तीन ही वर्ष हुए है, सिंहासनके लिये झगडा चल रहा है। (५) सस्कृत राजमान्य और पाचाली (मध्यदेशीया) अपभ्रश सर्वमान्य साहित्य और व्यवहारकी भापा है। (६) सामन्तवादी व्यवस्था तथा दासप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुप परमास्त्र है। (८) वौद्ध और शैव-ब्राह्मण धर्मोकी प्रधानता है। पूर्वमें वौद्ध और पश्चिममें अवौद्ध अधिक है। (९) अधिकाश लोग मासभक्षी है। छुआछूत हरिजनोंमे वरती जाती है। विदेशियो के साथ भी छुआछूतका वर्ताव नही है। रोटी-वेटी अपनी जाति और प्रान्तमें अधिक होती है, पर अभी वाहरके लिये दरवाजा वन्द नही है। वाणको साहित्य-गगनमे अस्त हुए थोडा ही समय वीता है। (११) पोशाक पुरुपोकी (१०) चौवन्दी-धोती-सुत्थन और स्त्रियोकी साडी-अगिया-कचुकी है। यह है सन् ६५०।

पोगा-सुत्थन पुरुषोकी, और स्त्रियोकी साडी-कचुकी है। यह है सन् १५० ।'

२०. ५० ई०—(१) लौह-युग है। (३, ४)मथुरा राजधानी है। शक राजा वीम कदफिसका शासन है। (५)सौरसेनी प्राकृत भाषा सर्वमान्य भाषा है, जो पालिसे अभी-अभी अलग हुई है।(६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है।(७) तीर-धनुष परमास्त्र है।(८) ब्राह्मण, बौद्ध प्रधान धर्म हैं, जिनमें बौद्धो का पलडा भारी है।(९)लोग अधिक मासाहारी है। छूतछातका बर्ताव केवल हरिजनोके साथ है। रोटी-बेटीमें वर्ण या देश-विदेशका विचार उठ सा गया है।(१०) साहित्य-गगनमें महाकवि अश्वघोष चमक रहे है।(११)पोशाक पुरुषोकी धोती-चादर या शकीय चोगा-सुत्थन है, स्त्रियोकी साडी-कचुकी। यह है सन् ५० ।

२१. ५० ई० पू०—(१)लौह-युग है। (३,४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शुग भूमिमित्रका शासन है।(५)मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है।(६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है।(७)तीर-धनुष परमास्त्र है। (८)बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है।(९) मासाहारी प्राय सभी है। छूतछात सिर्फ अछूतोके साथ बरती जाती है। ब्याहमें वर्णका ख्याल किया जाता है, जात या देशका नही।(११)धोती-चादर पुरुषोकी और साडी-कचुकी स्त्रियोकी पोशाक है। स्त्रिया कभी-कभी साडीको दो टुकडोमें उत्तरीय और अन्तर्वासकके तौरपर पहनती हैं। यह है सन् ५० ई० पू०।

२२. १५० ई० पू०—(१) लौह-युग है।(३, ४) पाटलिपुत्रमें शुगवशी महाराजा पुष्यमित्रका शासन है।(५) सस्कृतको मान्यता देनेकी कोशिश की जा रही है, पर मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था तथा दास-प्रथाका चलन है।(७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं।(८) बौद्ध और ब्राह्मण धर्मोंकी प्रधानता है।(९) मासाहारी प्राय. सभी है। छूआछूत सिर्फ हरिजनोके साथ बरती जाती है। ब्याहमें वर्णका ख्याल ज्यादा है, देशी और विदेशीका विचार नही किया जाता। १० महावैया-करण पतजलिकी सृष्टि है।(११)पुरुष अन्तर्वासक और उत्तरीय पहनते हैं,

स्त्रियोकी भी यही पोशाक है। दोनो केशोंके जूडेपर पगडी (उष्णीष) वाधते है। यह है सन् १५० ई० पू०।

२३ २५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्रमे देवानाप्रिय प्रियदर्शी राजा अशोकका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती शासन व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) वौद्ध, ब्राह्मण, जैन धर्म हैं, जिनमें ब्राह्मण धर्म प्रधान है। (९) लोग मासाहारी है। छूआछूत वहुत कम है। व्याहमें भी देश-कुलका ख्याल न करके "स्त्रीरत्न दुष्कुलादपि" को माना जाता है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी अन्तर्वासिक और उत्तरीय है। दोनो लम्वे वालोको सिरपर जूडा वनाकर पगडी (उष्णीष) वाधते है। यह है सन् २५० ई० पू०।

२४ ३५० ई० पू०—१ लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। महानदका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासप्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन और वौद्ध धर्म अपने प्रभावको वढा रहे है। (९) लोग मासाहारी है, खान-पानमें छूआछूतका विचार नही सा है। व्याहमें देश-कुलकी कडाई नही है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय-अन्तर्वासिक और लम्वे केशोको जूडा वनाकर पगडी है। यह है सन् ३५० ई० पू०।

२५ ४५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) पाटलिपुत्र राजधानी है। शिशुनाग वशीय राजा उदायीका शासन है। (५) मागधी-पालि सर्वमान्य भाषा है। (६) सामती व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। (७) धनुप-वाण परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। जैन, वौद्ध, आजीवक आदि भी कुछ-कुछ फैलने लगे है। (९) मास भक्ष्य है। छूआछूतका विचार वहुत कम, सो भी चाण्डालोके साथ है। व्याहमें भी वन्धन वर्गका ही अधिक है। (११) पोशाक उत्तरीय, अन्तर्वासिक, जूडायुक्त उष्णीप (पगडी) स्त्री-पुरुप दोनोकी है। यह है सन् ४५० ई० पू०

२६ ५५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) सारा देश एक राज्य नही है। राजगृह और वैशाली प्रधान राजधानिया हैं। राजगृहमें बिन्दुसारका शासन है, और वैशालीमें गणराज्य। (५) कोसली-पालि भाषाकी प्रधानता है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथा चल रही है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। आजीवक, निर्ग्रंथ, बौद्ध धर्मोंके प्रचारका आरम्भ है। (९) सभी मासाहारी है। छूआछूतका विचार नही सा है। व्याहमें देश-जातिका नही वर्गका ख्याल ज्यादा है। (१०) भारतीय दो महान् विचारक बुद्ध और तीर्थंकर महावीर काम कर रहे है। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय, अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है मन् ५५० ई० पू०।

२७ ६५० ई० पू०—(१) लौह-युग है। (३, ४) अलग-अलग राज्य और राजधानिया हैं, जिनमें कोसलकी राजधानी श्रावस्ती प्रधानता रखती है। (५) कोसली-पालि अधिक व्यापक भाषा है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दासता प्रचलित है। गणराज्य और राजतन्त्र दोनो प्रकारके शासन है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र हैं। (८) ब्राह्मण धर्मकी प्रधानता है। (९) छूआछूत-का विचार नही सा है। व्याहमें वर्गका विचार किया जाता है। लोग मास-भोजी हैं। (११) पोशाक स्त्री-पुरुष दोनोकी उत्तरीय-अन्तर्वासक और उष्णीष है। यह है मन् ६५० ई० पू०।

२८ ७५० ई० पू०—(१) लौह-युग के आरम्भिक दिन है। (३, ४) कुरु-पाचाल देशकी सास्कृतिक और राजनीतिक प्रधानताका समय है। (५) छन्द (वैदिक) भाषा का ऊपरी (आर्य) वर्गमें अधिक प्रचार है, लेकिन द्रविड भाषा भी काफी बोली जाती है। (६) सामन्ती व्यवस्था और दास-प्रथाका चलन है। गणो और राजाओ दोनोंके शासन चल रहे है। (७) तीर-धनुष परमास्त्र है। (८) ब्राह्मण धर्म और वैदिक कर्मकाण्ड आर्योंमें चलते हैं। दूसरे द्राविड, किरात देवताओको मानते है। (९) सभी मासाहारी है। वर्णका विचार बहुत कडा है। आर्य अपनेमें भिन्न जातिके लोगोके साथ व्याह करनेके विरुद्ध है। (१०) उपनिषद्के महान् ऋषि याज्ञवल्क्यका यह समय है। (११)

पोशाक अन्तर्वासक, उत्तरीय और उष्णीप स्त्री-पुरुप दोनोकी है। आर्य ऊनी वस्त्रोको ज्यादा पसन्द करते है। यह है सन् ७५० ई० पू०।

२९ ८५० ई० पू०—(१) लौह-युगका अभी-अभी अरम्भ हुआ है। (३, ४) कुरु जनपदकी प्रधानता है। (५) छन्द (वैदिक) भापा आर्योकी और प्राचीन द्रविड और किरात भापा दूसरोकी है।(६) गण और राज दोनो तत्र चल रहे है। दास-प्रधान सामन्ती समाज है। (७) परमास्त्र तीर-धनुप है। तीरके फल अव तावेकी जगह लोहेके वनने लगे है। (८) वैदिक धर्म आर्योमें और दूसरोमें अपने-अपने धर्म प्रचलित है। (९)वर्ण-भेद उसी तरह घोर है, जिस तरह दक्षिणी अफ्रीका और दक्षिणी युक्तराष्ट्र अमेरिकामें आज देखा जाता है। (११) पोशाक ऊपर द्रापि (एक तरहका चोगा) और नीचे अन्तर्वासक है। आर्य ऊनी वस्त्र ज्यादा पहनते हैं। स्त्री-पुरुपोकी पोशाकमें कोई अन्तर नही है। दोनो अपने लम्वे वालोको समेटकर उष्णीप वाधते है। यह है सन् ८५० ई० पू०।

३० ११५० ई० पू०—(१)हम अव तीन सौ वर्ष पीछे जाते है। ताम्र-युग है।(३, ४) सप्तसिन्धु (पजाव) में भरत जनके राजा सुदासकी तपी है। (५) वैदिक(छन्द)भापा आर्योकी भापा है, दूसरोकी किरात और द्रविड भापायें। (६) जन-व्यवस्थासे अभी-अभी आर्य सामन्ती व्यवस्थामें आये है। अनार्य वहुत भारी सख्यामें उनके यहा दासके तौरपर काम करते है।(७)तावेके फलवाला तीर और धनुप परमास्त्र है। (८)आर्योमे वैदिक देवताओकी पूजा होती है। किरातो और द्रविडो(मोहनजोदडो वासियो) मे अपने शिश्न या दूसरे देवता मान्य है। (९) सभी मासाहारी है। आर्य-अनार्य और काले-गोरेका भारी भेद है। दोनोका सशस्त्र सघर्प अभी खतम नही हुआ है। (१०) ऋपि वसिष्ठ और विश्वामित्र महान् कवि और राजनीतिज्ञके तौरपर विराजमान है।(११)द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीप स्त्री-पुरुपोकी पोशाक है, जो ऊन या चमडेके होती है।

३१ १४५० ई० पू०—तीन सौ वर्ष और पीछे जाते है। (१)ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकापर पाच आर्य जनोका शासन स्थापित हो

गया है। (५) आर्य प्राचीन वैदिक भाषा बोलते है। हिमालयके पहाडोमें किरात और नीचे प्राचीन द्रविड या आर्य भाषा चलती हैं। हिमालयके किरातो में जन-व्यवस्था और दूसरोमें सामन्ती या जन-व्यवस्था है। दासताका अखण्ड राज्य है। (७) ताम्रफवलवाले तीर और धनुप परमास्त्र है। (८) वैदिक और प्राग्-द्रविड या किरात देवता अपनी-अपनी जातियोमें पूजे जाते है। (९) सभी मासाहारी है। भयकर वर्णभेदका प्रचार है—जहा तक आर्यों और अनार्योंका सम्बन्ध है। द्रविडोमें वर्गभेद है। (११) पोशाक आर्योकी द्रापि, अन्तर्वासक और उष्णीप स्त्री-पुरुप दोनोकी है, जो ऊन और चमडेकी होती है। किरात शायद चमडे और ऊनकी लम्बी चादरें पहनते है। प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वासक , उत्तरीय और शायद उष्णीप भी व्यवहार करते हैं। यह है सन् १४५० ई० पू०।

३२ १५५० ई०पू०—(१) ताम्र-युग है। (३, ४) सिन्धु-उपत्यकामें द्रविड सामन्तोका शासन है, जिनकी राजधानिया मोहनजोदडो, हडप्पा आदि है। (५) भापा मैदानमें प्राग्-द्रविड है और हिमालयके पहाडियोमें प्राग्-किरात। (६) प्राग्-द्रविडोमें दासतायुक्त सामन्ती व्यवस्था है, किरातोमें जन-व्यवस्था है। प्राग्-द्रविडोमें आर्थिक स्वार्थोने वर्ग स्थापित किये है। प्राग्-किरातोमें पितृसत्ताक या जन-व्यवस्था है। (७) धनुप और तावेके फल लगे तीर परमास्त्र है। (८) प्राग्-किरात और प्राग्-द्रविड देवता पूजे जाते है। (९) सभी मासाहारी हैं। (१०) प्राग्-द्रविड कपासके अन्तर्वासक, उत्तरीय पहनते है, और किरात चमडे या ऊनकी लम्बी चादरें जाडोमे पहनते है, नही तो नगे रहते है।

३३ २५५० ई० पू०—(१) अभी-अभी ताम्र-युगका आरम्भ हुआ है। (३, ४) उत्तरी भारतमें प्राग्-द्रविड जाति कही कही वसती है। हिमालयके पहाडोमें कश्मीरसे आसाम और आगे तक किरात जाति जहा-तहा है। (५) दोनो अपनी-अपनी भापा बोलते है। (६) प्राग्-द्रविड पितृसत्ताक जन-व्यवस्थामें है, और प्राग्-किरात उनसे भी पीछे हैं। (७) पत्थरके हथौडो और तीरपर चकमक-पत्थरका अभी भी प्रयोग है,

कभी-कभी तावेके टुकडे भी जोडे जाते है। तीर-धनुप ही परमास्त्र हैं। (११) पोशाक सिर्फ जाडेके लिए चमडे या ऊनकी पहनी जाती है, नही तो अधिकतर स्त्री-पुरुप नगे रहते है। जीविकाका साधन खेती और शिकार दोनो है।

३४ ३०५० ई० पू०—(१) और भी पाच सौ वर्ष पीछे जानेपर हम नव-पापाण-युगमें है। (३, ४) भारतके भिन्न-भिन्न भागोमें भिन्न-भिन्न जन रहते हैं। किरात पहाडो और तराईके जगलोमें तथा मुण्डा और निपाद मैदानी घोर जगलोमें निवास करते हैं। (५) किरात, मुण्डा, निपाद भाषाओ के प्राचीन रूप लोग वोलते है। (६) पितृसत्ताक जन-व्यवस्था है। (७) शिलामुख वाण और धनुप परमास्त्र है। (८) मृतात्माओ और वृक्षो-पशुओ को लोग पूजते है। (९) भक्षाभक्ष्यका कोई परहेज नही है। मासाहार प्रधान खाद्य है। अन्न खेतीसे उत्पन्न होने लगा है, पर उसका उपयोग कम है। (११) सिर्फ जाडेके लिये चमडेका व्यवहार करते है, नही तो स्त्री-पुरुप नगे रहते है।

३५ १००५० ई० पू०—(१) हम और सात हजार वर्ष पीछे जाते है। अव ऊपरी पुरापापाण-युगमें है। (३, ४) किरात और निपाद जातिके थोडे मे लोग भारतके जगलोमें जहा-तहा मिलते है। (५) वह अपनी-अपनी भाषा वोलते है, जिसका शब्दकोश कुछ सौ शब्दोंसे अधिक नही है। (६) मातृमत्ताक व्यवस्था है, सम्पत्ति और श्रम सामूहिक है। (७) छिले हुए पत्थरके हथियार—कुल्हाडे, छुरे आदि—ही परमास्त्र है। (८) मृतको और भयप्रद वस्तुको सतुष्ट करनेकी मनुष्य कोशिश करता है। (९) केवल शिकार का मास और जगलके फल जीविकाके साधन है। (११) जाडेसे वचनेके लिये आदमी चमडे और आगका इस्तेमाल करता है। हिंसक जन्तुओको भगानेमें भी अग्नि सहायक है।

पिछले १२००० वर्षोंमें भारतमें मानव समाजका विकास इस प्रकार हुआ है, उसे हम यहा तालिकामें दे रहे हैं—

युग	काल	राजधानी	राजा	भाषा	व्यवस्था
१	२	३	४	५	६
लौह	४५० ई०	पटना	कुमारगुप्त	माग०	सा० दा०
,,	५५० ,,	कन्नौज	ईशानवर्मा	मध्यदेशीय अपभ्रंश	,,
,,	६५० ,,	,,	अर्जुन	,,	,,
,,	७५० ,,	,,	यशोवर्मा	,,	,,
,,	८५० ,,	,,	मिहिरभोज	,,	,,
,,	९५० ,,	,,	देवपाल	,,	,,
,,	१०५० ,,	,,	प्रतिहार	,,	
,,	११५० ,,	,,	गोविंदचंद	,,	,,
,,	१२५० ,,	दिल्ली	नासिरुद्दीन	पारसी	,,
,,	१३५० ,,	,,	मुहम्मद तुगलक	,,	,,
बारूद	१४५० ,,	,,	बहलोल लोदी	,,	,,
,,	१५५० ,,	,,	इसलामशाह	,,	,,
,,	१६५० ,,	,,	शाहजहा	,,	,,
,,	१७५० ,,	,,	अहमदशाह	,,	,,
वाष्प	१८५० ,,	कलकत्ता	अंगेज	अंगेजी	पूजीवाद
परमाणु	१९५० ,,	दिल्ली	राजेन्द्रप्रसाद	हिन्दी	,,

परमास्त्र	धर्म	छुआछूत	कवि (काल)	वेष
७	८	९	१०	११
लौहतीर	ब्रा० बौ० जै०	छुआछूत	कालिदास	चोगा-चौवदी
,,	,,	,,	(अजन्ता)	धोती-सुत्थन
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	भवभूति	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	राजशेखर	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	हर्ष	चौवदी-धोती
		जातपात		
,,	हिंदू-इस्लाम	,,	०	चोगा-सुत्थन
,,	,,	,,	०	,,
तोप	,,	,,	कबीर	,,
,,	,,	,,	जायसी	,,
,,	,,	,,	०	,,
,,	,,	,,	०	,,
रेल (१८५३) तार	,, ईसाई		गालिब	,,
परमाणुबम, विमान	शिथिल	शिथिल	निराला	कोट-पैन्ट

मसूरी
१२-५-१९५६

राहुल सांकृत्यायन

विषय सूची

अध्याय पृष्ठ

भाग १

(भौगोलिक) १

१ सप्त सिन्धु

§१ आर्यों का आगमन ३, २५२
§२ उसके पीछे ऋग्वेद ३
§३ ऋग्वेद परम प्रमाण ६
§४ सप्तसिन्ध की भूमि १०

२ आर्य-जन १३, २५८

§१ सिन्धु-सभ्यता १३
§२ आर्य-जन १८, २५८
१ पाच जन १८
२ अन्य जन २०

भाग २

(सामाजिक, आर्थिक) २७

३ वर्ण और वग २९, २६४

§१ वर्ण (रग) २९
१ आर्य वर्ण ३०
२ अनार्य वर्ण ३२
§२ वर्ग ३३
१ दास-दासिया (आजीविका) ३४
२ चार वर्ण ३५
३ पराजित ३७
४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद ३८

४ खान-पान ४१

§१ खाद्य ,,
१ मास ,,
२ अन्न ४४
§२ पान ४६
१ सोम ४७
२ सुरा ४९

भाग ३

(राजनीतिक) ५१

५ ऋग्वेद के ऋषि ५३, २९०

§१ प्रधान ऋषि ५३
१ भरद्वाज ५९, २९०
२ वसिष्ठ ६१, २९२
३ विश्वामित्र ६६, २९६
४ वामदेव ६९, ३०२
§२ अन्य ऋषि ७०
५ गृत्समद ७०, ३०६
६ कक्षीवान् ७१, ३१०
७ अगस्त्य ,, ३१४
८ दीर्घतमा ७२, ३१६
९ गोतम ,, ३१८
१० मेधातिथि ७३, ३२०

अध्याय पृष्ठ

११ श्यावाश्व ,, ३२४
१२ कुत्स ७३
१३ मधुच्छन्दा ७३, ३२६
१४ प्रस्कण्व ७४

६ दस्यु ७६, ३२८
§१ सिन्धु-जाति (पणि) ७६
§२ शबरीय पहाडी ८१
§३ मोन्ख्मेर (किरात) ,,

७ आदिम आर्य राजा ८६, ३३६ ८७
१ मनु ८८, ३३८
२ पुरूरवा (उर्वशी) ९१, ३४२
३ नहुष ,, ३४४
४ ययाति ९१
५ मन्वाता ९२, ३४४

८ शंवर ९२
§१ दस्यु ९२
§२ शबर के सेनापति ९६, ३५२
१ शुष्ण ९६
२ पिप्रु ९९, ३५८
३ वगृद ९९
४ करञ ,,
५ पर्णय ९९
६ वर्ची १००, ३६०
§३ शबर १०१
§४ किरात १०५

९ दिवोदास १०८, ३६६
§१ पूर्वकालके आर्य-नेता १०८
१ दध्यङ ,,
२ रुम ,,
३ रुशम ,,
४ श्यावाक ,,
५ कृप ,,
६ वध्र्यश्व ,,
७ अभ्यावर्ती चायमान ११०, ३६८ ११०
८ सुमीळ्ह ,,
९ पुरुणीथ ,,
१० प्रस्तोक ,,
११ कुत्स आर्जुनेय १११
§२ श्रुतर्य १११, ३७२
१३ तुर्वीति १११
१४ दभीति ,,
१५ ध्वमति ,,
१६ पुरुपति ,,
१७ देवक मन्यमान ,,
१८ सुश्रवा ११२
१९ तुर्वयाण ११२, ३७२
२० ऋणचय ,,
२१ पाकस्थामा कौरयाण ,, ३७४ ११३
२२ देवश्रवा ,,
२३ देववात ,,
२४ सृजय दैववात ११४, ३७६
२५ महिराव साञ्जय ११४
२६ पुरुकुत्स ,,
२७ त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य ११५
२८ कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र ११६ ३७८

§२ दिवोदासके कार्य ११६, ३८०
१ दिवोदास अतिथिग्व ११६

अध्याय	पृष्ठ
२ शवर-हत्या	११६, ३८४
§३ हथियार	१२०
१ इषु	,,
२ निषग	,,
३ धनुष	,,
४ ज्या	,,
५ वर्म	१२०, ३८६
६ कुलिश	१२१
७ परशु	१२१, ३८८
८ वशी	,,
९ ऋष्टि	,,
१० वज्र	,,
११ अत्क	,,
१२ नाव	१२२, ३९०
१० सुदास	१२३
§१ सुदास वीतहव्य	,,
१ वसिष्ठ पुरोहित	१२४
२ सुदास	१२६, ३९२
§२ दाशराज्ञ युद्ध	१२७, ३९४
१ शत्रु	१२७
२ युद्ध	१२९, ३९८
३ सुदेवी रानी	१३०, ४०२
§३ अश्वमेध	१३०
१ विश्वामित्र पुरोहित	,,
२ अश्वमेध	१३१, ४०२
११ राजव्यवस्था	१३३, ४०६
§१ शासक, शासित	१३३
१ ग्रामणी	१३४, ४०६
२ राष्ट्र	१३४
३ विश्	१३५
४ राजा	१३५, ४०८

अध्याय	पृष्ठ
§२ राजा ६,	१३ ४१०
१ राजाभिषेक	१३६
२ सम्राट्	१३७
३ शास	१३७, ४१२
४ ईशान	१३७
५ स्वराट्	१३८
६ नृपति	,,
७ पति, राजा	,,
८ राजपुत्र, राजदुहिता	१३९, ४१४
§३ शासन-यन्त्र	१३९
१ सभा	,,
२ समिति	१४०
३ व्राजपति, कुलप	१४१, ४१६
४ पुरोहित (प्रधानमन्त्री)	१४२
भाग ४	
(सांस्कृतिक)	१४३
१२ शिक्षा, स्वास्थ्य	१४५, ४१८
§१ शिक्षा	१४५
§२ स्वास्थ्य	१४८
§३ रोग	१५०
§४ चिकित्सा	१५२, ४२२
१३ वेश-भूषा	१५४, ४२४
§१ वस्त्र	१५४, ४२६
१ द्रापि	४२६
२ अत्क	,,
३ शिप्र	४२८
§२ भूषा	१५८
१ कर्ण आभूषण	,,
२ सोने का कण्ठा	१५८, ४३०

अध्याय	पृष्ठ
३ रुक्मवक्ष	१५९
४ खादि	,,
५ ऋष्टि	,,
६ शिप्र	,,
§३ सज्जा	१६०, ४३२
१ कपर्द	१६०
२ क्षौर	,,
१४ क्रीडा, विनोद	१६३, ४३४
§१ नृत्य	१६३
§२ सगीत	,,
§३ पान	१६४
१ सोम	१६४
२ सुरा	१७३, ४४६
✓ §४ जूआ	१७३, ४४८
§५. समन (मेला)	४४८
१५ देवता (धर्म)	१७५, ४५०
§१ देवता	१७५
(देवसख्या)	१७६
✓१ अग्नि	१७७, ४६०
✓२ अरण्य	१७८, ४६४
३ आप	१७८
✓४ इळा	१७९, ४६६
✓५ इन्द्र	१७९
६. ऋभु	१८६, ४७६
७ क (प्रजापति)	१८६, ४७८
८ पर्जन्य	१८७, ४८०
९ पितरौ	१८७
१० पुरुष	१८८
११. पूषन्	१८८, ४८२
१२ प्रजापति	१९०, ४८४

अध्याय	पृष्ठ
१३ मन्यु	१९२, ४८६
१४ मित्र	१९२, ४८८
१५ यम	४९०
१६ रुद्र	१९३
१७ वरुण	१९४, ४९२
१८ वायु	१९६, ४९४
१९ वास्तोष्पति	१९६
२० विश्वकर्मा	,,
२१ विष्णु	१९७, ४९६
✓२२ सरस्वती	१९८
२३ सविता	१९९, ५००
२४ सोम	२००
§२ (पितर आदि अन्य)	२०२, ५०२
§३ सकाम कर्म	२०४, ५०४
§४ अर्चना सामग्री	२०७, ५०८
१ हवि (पुरोडाश)	,, ५०८
२ पशुबलि	२०९, ५१२
§६ मन्त्र-तन्त्र	२१०, ५१४
✓§७ परलोक	२११, ,,
१ यमलोक	२१२, ,,
२ स्वर्ग	,, ,,
१६ ज्ञान-विज्ञान	२१३, ५१६
§१ कृषि	,, ,,
१ हल, फाल	,, ,,
२ कुआ	२१४, ५१८
३ कुल्या	,, ,,
§२ वास्तु	२१५, ५२०
§३ काल	२१६, ,,
१ मास	,, ,,
२ ऋतु	,, ,,

अध्याय	पृष्ठ
३ नक्षत्र	२१७, ५२२
§४. तोल, माप	,, ,,
१ तोल	,, ,,
२ माप	२१८, ५२४
§५ संख्या	,, ,,
१७. आर्य-नारी	२२२, ५३२
✓१ अदिति	२२३, ,,
२ इन्द्रमाताएँ	,, ५३४
३ इन्द्राणी	२२४, ,,
४ उर्वशी	२२५, ५३६
५ घोषा	२२६, ५३८
६ जुहू	२२७, ५४०
७ दक्षिणा	२२८, ५४२
८ निवावरी, सिकता	२२९, ५४४
९ यमी वैवस्वती	२३०, ५४६
१० रात्रि	२३२, ५४८
११ लोपामुद्रा	२३३, ,,
१२ वसुक्रपत्नी	,, ५५०
१३ वाक्	,, ,,
१४ विवृहा	२३४, ५५२
१५ विश्पला	,, ,,
१६ विश्ववारा	,, ,,
१७ शची	,, ,,
१८ शश्वती	२३५, ,,
१९ शिखंडिनी काश्यपी	२३५, ५५४
२० श्रद्धा कामायनी	,, ,,
२१ सरमा	,, ,,
२२ सार्पराज्ञी	,, ,,
२३ सिकता	२३६, ,,
२४. सुदेवी	,, ,,

अध्याय	पृष्ठ
२५ सूर्या	२३६, ५५६
१८ भाषा और काव्य	२३९, ५५८
§१ भाषा	२३९, ५६०
§२ छन्द	२४२
§३ रचना	२४३, ५६०
१ वाणी	२४३, ,,
२ सूक्त	२४४, ,,
३ श्लोक	,, ५६२
४ साम	,, ,,
५ स्तोम	,, ,,
§४ काव्य	२४५, ५६२
§५ कवि	२४६, ५६६
१ वसिष्ठ	,, ,,
२ विश्वामित्र	२४७, ५६८
३ वामदेव	,, ,,
४ भौम	२४९, ५७२

परिशिष्ट १

१. सप्तसिन्धु	२५२
२ अर्यजन	२५८
३. वर्ण, वर्ग	२६४
४ खानपान	२७२
५ प्रधान ऋषि	२९०
६ दस्यु (अन्-आर्य)	३२८
७ आदिम आर्य राजा	३३६
८ शम्बर	३४४
९ दिवोदास	३६६
१० सुदास	३९१
११. राजव्यवस्था	४०६
१२ शिक्षा आदि	४१८
१३ वेष-भषा	४२४

अध्याय		पृष्ठ
१४	क्रीडा, विनोद	४३४
१५	देवता (धर्म)	४५०
१६	ज्ञान विज्ञान	५१६
१७	आर्य नारी	५३२
१८	भाषा और काव्य	५५८

अध्याय		पृष्ठ
	परिशिष्ट २	
	नामसूची	५७४
	परिशिष्ट ३	
	शब्दसूची	५९२
	परिशिष्ट ४	
	देवता सूची	६०४

भाग १

भौगोलिक

अध्याय १

सप्तसिन्धु

§१ आर्यों का आगमन

आर्यो के रक्तसम्बन्धी पडोमी ईरानी 'स' का उच्चारण 'ह' किया करते थे, इसलिए सप्त-सिन्धुकी भूमिमें आ बसे अपने भाइयोंके देशको वह 'हप्त हिन्दु' कहा करते थे, जिसका ही सक्षेप 'हिन्द' हुआ। पश्चिमके देशोंके उस समयके सरताज ग्रीसके निवासी 'ह' का उच्चारण करनेमें असमर्थ हो उसकी जगह 'अ' बोलते थे, इस प्रकार हिन्दु इन्दु या इन्द बन गया, जो ही हमारे देश का नाम आज सर्वत्र प्रचलित है। ऋग्वेदमें 'सप्तसिन्धु' नाम अनेक बार आया है, कही वह सात नदियोंके अर्थमे और कही सातो नदियोकी भूमि के लिए। देश या जनपद के नाम उस समय जन (कबीले) के नाम पर पडते थे, इसलिए उसे बहुवचन में बोलते थे। यह क्रम बुद्ध के समय और कितना ही पीछे तक रहा। पालि मे 'कोसल में,' 'काशी में' की जगह 'कोसलेसु' (कोसलोमें), 'कासीसु' (काशियोमें) कहा गया है। अपेक्षाकृत नवीन ऋषि हिरण्यस्तूपने अपनी ऋचामें सविता (सूर्य) की महिमा गाते हुए कहा है—"सविता ने दाता को श्रेष्ठ रत्न (धन) देते सप्त-सिन्धुओ को प्रकाशित किया"[१] (१।३५।८)।

सप्त सिन्धु, सातो नदियो या आर्य जनोंके बारेमें कुछ कहने से पहले उस स्थिति के बारे में कुछ कहना है, जिसमें आर्य ऋग्वेद-काल में थे।

आर्य भारत मे बाहर से आए, यदि यह न माना जाए, तो आर्य की भाषा पश्चिमकी जिन भाषावालो से अपना एक पारिवारिक सम्बन्ध बत-

लाती है, उन्हें भी भारत से गया मानना होगा। इसके कारण और अनेक समस्याएँ उठ खडी होगी, जिनका समाधान अतिकठिन है। अधिकतर यह ख्याल आर्य और हिन्दी-युरोपीय भाषाओ एव तत्सम्बन्धी दूसरी सामग्रियो की ओर पर्याप्त ध्यान न देने के कारण ही होता है। उसीके कारण हमारे इतिहासवेत्ता कलियुग और महाभारत कालकी धारणा बनाकर इतिहासको हज़ारो वर्ष पीछे ले जानेकी कोशिश करते है। वस्तुत क्षुद्र - एसियामे हित्तितो, ग्रीस में यूनानियो और ईरान मे ईरानी-आर्योके प्रवेशके समय पर ध्यान देनेसे आर्योका भारत मे प्रवेश ई० पू० १५०० से पहले नही मालूम होता। और ऋग्वेद के पुरातनतम प्रसिद्ध ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र[२] तो उससे बहुत पीछे, कम-से-कम ३०० वर्ष पीछे, हुए।

§२ उसके पीछे ऋग्वेद

काफी काल बीते बिना उनके उच्चारण मे वह भारी परिवर्तन नहीं हो सकता, जो कि ऋग्वेद मे देखा जाता है। भारती आर्य हिन्दी-युरोपीय वशकी पूर्वी या शतम् - शाखाके अन्तर्गत आते है, जिसमें ही रूसी आदि स्लाव और ईरानी भी सम्मिलित है। ईरानी और स्लाव मूर्धन्य वर्णो (टवर्ग आदि) का उच्चारण कर नही सकते, जबकि ऋग्वेद की प्रथम ऋचा में ही[१] (१।१।१) 'अग्निमीळे' में ळ आ गया है। आर्यो के मुँह मे इन मूर्धन्य वर्णो का उच्चारण सप्त-सिन्धुके पुराने निवासियो—मोहन-जोदडो, हडप्पा के लोगो—के घनिष्ठ सम्पर्कके कारण ही हुआ। ईरानी आर्य अपने मूल स्थान 'आर्याना वेइजा' का स्मरण रखते थे, पर भारतीय आर्य उसे भूल गए थे, यह ऋग्वेद के मौन - धारण से मालूम होता है। इसमें यह भी कारण हो सकता है, कि उनका प्रसार बीच के स्थानो को छोड कर नही हुआ, इसलिए उन्हें मूल-स्थान से निर्वासित होनेका ख्याल नही हो सकता था। आखिर ऋग्वेदिक आर्यो के सब से पश्चिम में रहने वाले पख्त, भलान आदि जन भारत के पश्चिमी द्वार खैबर और

बोलान के काफी पीछे तक बसे हुए थे। उनके भी पश्चिम आर्य जन रहे होंगे, पर प्रकरण में न आ सकने के कारण ऋग्वेद के ऋषि उनका नाम-स्मरण नहीं कर सके।

ऋग्वेदके ऋषियों का उद्देश्य इतिहास लिखना नहीं था। वह अपने देवताओं और दाताओं को प्रसन्न करना चाहते थे। इसी के सम्बन्ध में कितनी ही ऐतिहासिक और भौगोलिक बातें वहाँ आ गई हैं। इसमें शक नहीं, उन्हीं के कारण ऋग्वेद का मूल्य अनर्घ हो जाता है। उसके इस मूल्य की तुलना बाकी तीनों वेदों से भी नहीं की जा सकती, महाभारत और पुराण आदि तो इस काल के सम्बन्ध के ज्ञान में अत्यन्त दरिद्र तथा अविश्वसनीय हैं। ऋग्वेद के काल पर ऋग्वेद स्वयं सर्वोपरि प्रमाण है। और कहीं जो भी उस काल के सम्बन्ध की बात ऋग्वेद के विरुद्ध आये, उसे जरा भी देर किए बिना त्याज्य समझना चाहिए। कितने ही आजकल के ऐतिहासिक दोनों का समन्वय करनेकी कोशिश करते हैं, जिसका परिणाम एक गलतीके लिए सात गलती करना होता है। दिवोदास और सुदास पिता-पुत्र ऋग्वेदके सर्वोपरि नायक हैं। वह तृत्सु-भरत जनके प्रतापी राजा थे, जिनकी सीमा पर परुष्णी—आज की रावी—बहती थी। सिन्धु पार के रहने वाले आर्य-जन पक्थ, भलानस, अलिन, विषाणि और उनके सिन्धु इस पारके पडोसी शिव एक बार तृत्सुओं पर आक्रमण करने के लिए परुष्णी[१] (४।२२।२) के तट तक पहुँच गए थे, और बड़ी कठिनाई से भगाए जा सके। परुष्णी तट पर रहने वाले इन राजाओं को महाभारत ने गंगा तट के पञ्चाल (काम्पिल्य-कन्नौज और रुहेलखण्ड) का राजा बना दिया है। ऐसी ऐतिहासिक गडबडी के ठीक करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। जब ऋग्वेदिक इतिहास के बारेमें महाभारत की यह हालत है, तो पुराण दस कदम और आगे जाएँ, तो क्या आश्चर्य? इसका यह अर्थ नहीं, कि उनका कोई ऐतिहासिक मूल्य नहीं। पीछे के काल के बारे में वह प्रामाणिक सामग्री प्रदान करते हैं, मानवतत्वआदि सम्बन्धी अनुसन्धान में भी उनसे सहायता मिल सकती है।

§३ ऋग्वेद परमप्रमाण

ऋग्वेदके रूप मे उस समय के सम्बन्ध की अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे पास है। प्राय तीन हज़ार वर्षों से इस निधि को हमारे पूर्वजो ने भरसक ज़रा-सा भी परिवर्तन किए विना रक्षित रखा। पर यह सामग्री दिवोदास और सुदास के काल के पीछे ले जाने मे असमर्थ-सी है। प्राग्-आर्य कालीन इतिहास लिखित सामग्री के विना भले ही हो, और वह ऐसा नही है, क्योकि मोहनजोडरो और हडप्पा में हज़ारो ऐसी मुहरें मिली है, जिन पर अक्षर उत्कीर्ण है, पर हम उन्हें अभी पढने में असमर्थ है। लिखित सामग्रीके न पढे जाने पर भी हमारे इन दोनो प्राचीनतम नगरो से इतने प्रचुर परिमाण में मानव-जीवन की सामग्री प्राप्त हुई है, कि हम उसे खूब जान सकते है। ताम्र-पीतल युगमे होते हुए भी सिन्धुवासी लोग धन-धान्य-सम्पन्न भव्य अट्टालिकाओ में स्वच्छतापूर्वक रहते थे। नागरिक स्वास्थ्य और सफाई के नियमो के पालन मे वह अपने आजके उत्तराधिकारियो से कही आगे थे। वह सुन्दर कपास के कपडे पहनते थे, जबकि उनकी जगह लेने वाले आर्य गरम देश में भी सदा ऊनी और चमडे की पोशाक ही पहनते रहे। मोहनजोडरो-हडप्पा (सिन्धु) की सभ्यता का अन्तिम उत्कर्ष काल ई० पू० २५०० माना जाता है। उसके हज़ार वर्ष बाद आर्यो का प्रवेश उनकी भूमि में हुआ और उससे कम-से-कम तीन सौ वर्ष बाद (१२०० ई० पू०) भरद्वाज-वसिष्ठ-विश्वामित्र आदि ने अपनी ऋचाएँ (पद) रची। आर्यों और सिन्धु के पुराने निवासियो के सघर्ष का परिचय ऋग्वेद मे देवो और असुरो के युद्ध की प्रतिध्वनि के रूप में ही मिलता है। तब से दिवोदास-सुदास के काल (ई० पू० १२००) तक का इतिहास अन्धकारावृत है। उसके लिए हमे पुरातात्विक उत्खनन पर ही भरोसा करना पडेगा।

इस काल की पुरातात्विक सामग्री भी विरल ही मिल सकती है, क्योकि भारत मे प्रवेश करने वाले आर्य चाहे जौ जैसे कुछ अनाजो का नाम जानते हो, पर थे वह पशुपाल और घुमन्तू। ऐसे लोगो पर नागरिक जीवन का प्रभाव

देर से पडता है, यह हमें चगेजखान के मगोलो के उदाहरण से मालूम होता है। मध्य-एसियामे भी एक सप्त-सिन्धु, इलि-चु आदि सात नदियोकी उपत्यकाओ में था। यही रूसी भाषामें आज का सेमि-रेच्ये (सात नदी) प्रदेश है, जो जान पडता है, प्राचीन कालसे चले आते नामका अनुवाद मात्र है। तेरहवी सदी के प्रथम पाद मे मगोलो के आक्रमण के पहले इस प्रदेश में बहुत से समृद्ध ग्राम-नगर थे। पशुपाल मगोलोंके लिए उनका उपयोग नही था, इसलिए उन्होने लोगो के खेतो को चरागाहो मे बदल दिया। उस समय के यात्रियो ने कितनी ही वस्तियाँ देखी, जिनकी दीवारें अभी भी खडी थीं, उनके बाहर मगोलो के तम्बू लगे हुए थे और उनके पशु पहले के खेतो के स्थान पर बनी चरागाहो मे चर रहे थे। घुमन्तू आर्यों ने भी अपने विरोधियो के साथ इससे बेहतर सलूक नही किया होगा। मगोलो के तम्बुओ के समूह को ओर्दे (उर्दू) कहा जाता था। आर्य अपने निवासो के समूह को ग्राम कहते थे, जिसका अर्थ भी समूह ही है। शायद ताम्रयुग के अन्तिम काल के लोगोंके लिए, जिसमें कि ऋग्वेदिक आर्य रहते थे, ऊनी या सूती कपडो के तम्बू क्षमता के बाहर की चीज थे। उस समय प्राकृतिक जगलो से भरे देश मे घास-लकडी की बनी झोपडियाँ अधिक सस्ती थीं। इनका एक यह भी लाभ था, कि यहाँ की वर्षा में वह तम्बुओ से अधिक उपयुक्त थीं। आखिर, सप्त-सिन्धु की वर्षा मध्य-एसिया की तरह नाम मात्र की नहीं थी। ऐसी झोपडियो वाले प्राचीन आर्य ग्रामो के अवशेष हडप्पा या मोहनजोदरो की तरह के नही हो सकते। तीन, साढे तीन हजार वर्षों को पार कर हमारे पास तक पहुँचने वाली उनकी सामग्री बहुत कम ही हो सकती है। ऐसी सामग्री पञ्जाव मे ही मिल सकती है। दिवोदास-सुदास के काल मे भी आर्य अभी नागरिक नही हो सके थे। उनके धन उनके अश्व और गाएँ ही थीं, जिनके लिए वह अपने देवताओ से प्रार्थना किया करते थे।

आर्यों के बहुत-से जनों के नाम ऋग्वेद मे मिलते हैं, पर जिस तरह बुद्ध-काल के सोलह जनपदो की भूमिको हम आज भी जान सकते हैं,

वही बात सप्त-सिन्धुके जनपदो के बारे मे नही है। वैदिक काल के बाद, जनो के नामो को सप्त-सिन्धुकी भूमि पर से जान बूझ कर मिटा दिया गया। जो पाँच प्राचीन जन[1] (१।१०८।८)—पुरु, यदु, तुर्वश, अणु, द्रुह्य—सप्त-सिन्धु के प्रधान स्वामी थे, उनका वहाँ फिर पता नही लगता। उस समय के छोटे-छोटे जनो में एक पख्त जन अब भी मौजूद है, जिसके वशज आज पख्तूनिस्तान की माँग कर रहे हैं, और जिसके कारण आज कल अफगानिस्तान और पाकिस्तान मे तनातनी चल रही है। दूसरे जन भलान का नाम बोलन दर्रेके साथ लगा हुआ है। उस समय पख्त इतने विशाल क्षेत्र मे नही रहे होगे। जनोकी वृद्धि स्वाभाविक सन्तान के द्वारा ही नही होती, बल्कि कभी-कभी छोटे या निर्बल जन किसी बडे और शक्तिशाली जन मे विलीन हो जाने को अपने लिए श्रेयस्कर समझ वैसा कर लेते हैं, यह हमें मध्य-एसियाके अवारो, तुर्कों और मगोलोके इतिहास से मालूम होता है। सप्तसिन्धु के आर्यजनोमे भी ऐसा ही हुआ होगा। सप्त-सिन्धुकी नदियोके नामो में भी ऐसा देखा गया। जिस परुष्णी पर इन्द्र[1] (४।२२।२) की विशेष कृपा थी, वह आज रावी (इरावती) कही जाती है। असिक्नी बदल कर चनाब (चन्द्रभागा) हो गई। विपाट् (विपाश्) जिसने कभी विश्वामित्र की सुन्दर स्तुति[2] (३।३३।१८) को सुनकर सुदास की सेना के लिए रास्ता दे दिया था, उसका नाम व्यास ऋषि के साथ जोड दिया गया। वितस्ता अब जेहलम है। हाँ, सिन्धु अब भी सिन्धु है। शुतुद्रि का पुराना नाम सतलुज में अब भी मौजूद है। सातवी नदी सरस्वती अल्पपरिचित-सी घग्घरकी शाखा मात्र रह गई है, जो कुरुक्षेत्र से होकर बहती है। सातो नदियो को भरद्वाज ने[2] (ऋ ६ ६१ १०) 'सप्तस्वसा सरस्वती' (सात बहने सरस्वती) कहा है। सरस्वती घग्घर मे मिलकर उसी नामसे कुछ दूर जा राजस्थान के रेगिस्तान मे लुप्त हो जाती है। उसकी सूखी धाराका पता बहुत दूर वहाँ तक मिलता है, जहाँ मे चनाब - सतलुजका सगम कुछ ही मील रह जाता है, और सिन्धु भी बहत दूर नही रह जाती।

हो सकता है, सरस्वती ऋग्वेदके काल मे जाके सीधे सिन्धु मे मिलती हो, पर वह हिमालय की हिमानियो से निकलने वाली नदी नही है, जैसी कि उसकी दूसरी छ बहने। घग्घरकी तरह उसकी दोनो शाखाएँ मरकण्डा और सरस्वती भी सिवालिक की तराई से निकलने-वाली छोटी नदियाँ है, जो वर्षाके जलको पाकर ही दो महीने इतरा के चल सकती है। ऋग्वेदमें तराई से निकल कर रेगिस्तान तक जानेवाली नदी का नाम सरस्वती था। जिस क्रम से तीनो नदियो के नाम सतलुज से पहले आये है, उससे जान पडता है," (३।२३।४) मारकण्डा का नाम आपया था, और घग्घर का दृषद्वती।

सप्त-सिन्धुकी भूमि सात बहनो सरस्वतीसे सीची जानेवाली धरती है।[1] इस प्रकार आर्य जनो की भूमि सरस्वती (अम्बाला ज़िले) मे सिन्धु उपत्यका तक फैली हुई थी। ऋषिवरयमे वृद्धतम भरद्वाजने यमुना का भी नाम लिया है, पर वह सीमान्त की नदी थी। अन्तिम ऋषियोमें से एक प्रियमेधकी सन्तान सिन्धुक्षित्[10] (ऋ १०।७५।६) गगाका नाम भी दिया है, पर न वह सप्त-सिन्धुकी नदी थी, न उसे उन समय कोई प्रतिष्ठा प्राप्त थी। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि आज की यह सर्वपुनीत नदी अपने अनार्य (सम्भवत किरात) नामसे प्रसिद्ध है। ऋग्वेदमे गगा का नाम सिर्फ एक बार यही नदी-सूची में आया है। यह सूची बहुत महत्त्वपूर्ण है, इसमे शक नही। इसमे गगासे लेकर अफगानिस्तान के पहाडो तककी नदियोके नाम क्रमश पूरब से पच्छिमकी ओर गिनाये गये है—गगा, यमुना, सरस्वती, शुतुद्री, परुष्णी (रावी), असिक्नी (चनाव), मरुद्वृधा, वितस्ता (जेहलम), आर्जिकीया, सुषोमा, तृष्टामा, रसा श्वेत्या, सिन्धु, कुभा, गोमती, क्रमु, मेहत्नु। सुषोमा शायद रावलपिण्डी की तराई मे निकल कर अटक से काफी नीचे सिन्धु में जाकर गिरने वाली छोटी नदी सोहान है। सोहान हमारे इतिहास की एक पुनीत नदी है, क्योकि इसकी ऊपरी उपत्यका हमारे देश के उन चन्द स्थानो में से है, जहाँ खुशालगढ और मकखड मे पुरापाषाण युगके

नदीके ऊपरवाले प्रदेशका नाम मालूम होता है, जो आर्जिकीयाके क्षेत्रमें पडता था।

सप्तसिन्धुकी दक्षिणी सीमा राजस्थानकी महामरुभूमि थी। मरुको वेदमें धन्व कहा गया है, पर इस महाधन्वका वहाँ स्पष्ट वर्णन नही मिलता। मध्य-एसिया के घुमन्तुओकी तरह आर्य व्यापार (पण्य) और व्यापारियो (पणियो) को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे (२।२४।६)[१]। पर, उन्हें पता था, कि व्यापारके लिए समुद्रमें नावें चलती है।[२] (६।५८।३)। सिन्धु उस समय नदियोका साधारण और सिन्धुनदका विशेष नाम था। अर्ण (अर्णव) भी नदियोको कहते थे। पीछे इन शब्दोका प्रयोग समुद्रके लिए किया जाने लगा। पर, महासागरको तब भी समुद्र कहते थे। सप्तसिन्धुसे वडी-वडी नावें सिन्धुनद होकर ही समुद्रमें पहुँचती होंगी। निम्न-सिन्धु उपत्यकामें आर्य जरूर गये। वही उनके प्रतिद्वन्द्वियो का महान् नगर था, जिसके भव्य ध्वसावशेष आज मोहन-जो-डरोके नामसे प्रसिद्ध है। निम्न-सिन्धु सप्तसिन्धुके भीतर था, यह कहना मुश्किल है। वहाँ किसी परिचित जनका वसना निश्चित नही मालूम होता। चाहे सप्तसिन्धुके भीतर यह भाग न गिना जाता हो, पर वह ऋग्वेदिक आर्योके अधीन था और उस के रास्ते पणनके लिए जानेवाले पणि आर्योकी नजरमे हीन होते हुए भी उनके लिए पशु और अन्नसे भी महार्घ धनको प्रस्तुत करते थे। उनकी सहायता विना आर्य न "निष्कग्रीव" हो सकते थे, न "रुक्मवक्ष" (छातीपर सोना झुलानेवाले)।

पणि आर्योके पुराने तथा दक्षिण दिशाके शत्रुओमेंसे थे, जिनके साथके सघर्ष ऋग्वेदके समयसे वहुत पूर्व ही समाप्त हो चुके थे। अब उनके सघर्ष जिन शत्रुओंसे हो रहे थे, वह पहाडके निवासी अर्थात् हिमवन्तवासी किरात थे।

अध्याय २

आर्य-जन

§१. सिंधु-सभ्यता

ऋग्वेद उस समय नही अस्तित्व मे आया, जबकि आर्य पहले-पहल सप्तसिन्धुमें आकर बसे। आर्योका सप्तसिन्धु में छा जाना शान्तिपूर्वक नही हुआ। अपने से अधिक सभ्य तथा नागरिक होनेसे अपेक्षाकृत मृदुल-प्रकृति वाले प्रतिद्वन्द्वियोंसे उनका खूनी सघर्ष १५०० ई० पू० के आस-पास हुआ था। हडप्पा की खुदाईमें ऐसे निर्मम हत्याकाण्डका प्रमाण मिला है, जिसका उल्लेख मोर्टिमोर ह्वीलर ने अपनी पुस्तक[1] 'इण्डस् सिविलिजेशन' में किया है। ऋग्वेदमे इन्द्र-वृत्र के युद्ध के रूपमें इसकी बहुत क्षीण-सी प्रतिध्वनि आती है, जिसे फिर इन्द्र-शम्बर के युद्ध से मिलाया गया है। सभी जनयुगीन जातियोकी तरह आर्य-पुरोहित अपनी सभी बडी-बडी सफलताओ का श्रेय अपने देवता को देना चाहते थे, इसीलिए, अपने भरतो और दूसरे आर्य-जनो के साथ मिल कर पहाड (जलन्धर खण्ड) के किरात राजा शम्बर से अनेक ज़बर्दस्त लडाइयाँ लडते ४० वर्ष बाद दिवोदास विजयी होने में सफल हुआ, उसका सारा श्रेय उस काल का पुरोहित-वर्ग (ऋषि) अपने आराध्य इन्द्र को देना चाहता है। ऋग्वेद के इन स्थलोको पढने से मालूम होता है, कि पराक्रमी दिवोदास महान् इन्द्र के एक हथियार से बढ कर कुछ नही था।

---

१ Indus Civilization—M Wheeler, Cambridge History of India, appendix

यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदके ऋषि भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र तथा उनके यजमान दिवोदास, सुदास आर्यों के सप्तसिन्धु में प्रवेश करने से बहुत पीछे पैदा हुए थे, इतना पीछे जबकि उनकी भाषा में मूर्धन्य उच्चारण वाले टवर्ग, और ळ जैसे रूपान्तर का सन्निवेश हो चुका था, और प्रथम सघर्ष की बहुत ही क्षीण-सी स्मृति रह गई थी। उच्चारण तक में परिवर्तन आना बतलाता है, कि विजेताओका अपने विजितोंके साथ कहाँ तक घनिष्ठ सम्बन्ध हो चुका था। ऐसी घनिष्ठता के पक्षपाती न उनके ऋषि थे, न जन-साधारण, पर आर्योंके लिए मजबूरियाँ भी थी। उन्हें काम करने के लिए दास चाहिये थे। उनको अपने भूतपूर्व शत्रुओ के कितने ही विलास-साधनो को अपनाने में एतराज़ नही था। आर्यों ने वस्तुत सिन्धु की पुरानी सभ्यता को ध्वस्त करने, समाज के चक्र को उल्टे घुमाने की कोशिश की थी। वह अपने साथ लाए घुमन्तू जीवन को ही बरकरार नही रखना चाहते थे, बल्कि नगरो और नागरिक जीवन से ससार-विजेता चगेज़ के मगोलो की तरह ही घृणा करते थे। उनके विजेता दिवोदास और सुदास के किसी नगर या राजधानी का उल्लेख नही मिलता। अश्वो और गायो को ही अपना परम धन मानने वाले वह नगरो में रह कैसे सकते थे? अश्व-गो-पालक आर्योंने कैसी सस्कृतिका स्थान लिया था? सिन्धु-सभ्यता के धनियो के पास मोहन-जो-डरो जैसे भव्य नगर थे, जिसके बारे में एक अग्रेज़ लेखक ने लिखा है— "मालूम होता है, हम आज कल के लकाशायर जैसे किसी नगरके ध्वसो से घिरे खडे है।" वहाँ, उत्तरसे दक्खिनकी ओर जानेवाली सडक इतनी चौडी थी, जिसपर पहियेवाली सवारियाँ और पादचारी मज़े में चल सकते थे। नगरको एक सुव्यवस्थित योजना के अनुसार बनाया गया था। सडकें ९ से ३४ फट तक चौडी थी, जिनमें से कोई-कोई आधी मील तक ऋजु चली गई थी। वह एक दूसरे को समकोण पर काटती चौरस्ता बनाती थी। प्रत्येक वीथी और सडक पर सार्वजनिक उपयोग के कुँए थे। अधिकाश घरोमें अपने निजी कुँए और

नहान - कोठुक थे। पानीके निकलने के लिए नालियाँ और मोरियाँ इस तरह लगाई गई थी, जिससे कितने ही आजकलके नगरोको भी ईर्ष्या हो सकती है। अमीरो, व्यापारियो, शिल्पियो और मज़दूरो के मुहल्लो को उनके घ्वसो को देखकर बतलाया जा सकता है। नगर देखने मे 'एक लोकतान्त्रिक पूंजीवादी नगर' सा दीख पडता है। मकान अधिकतर पक्की ईंटोंके बने थे, जो आकार-प्रकार में आजकल की ईंटो-सी और रगमे मटमैली लाल सूर्ख थी। उनका जोड इतना बारीक है, कि उसमे बारीक चाकू के फल को घुसाना मुश्किल है।

हरेक घर बहुत सुखद और स्वच्छ था। सबसे छोटे घरोमे दो कमरे थे, और बडे-बडे घर तो महल जैसे थे। बीच में ईंटो से बिछा आँगन था, जिसके किनारे कमरे, उनके द्वार और खिडकियाँ थी। मुख्य दरवाज़ा सडक की ओर खुलता था। हरेक घरका नहान-कोठुक सडक के पास होता था। नीचे की ही मज़िल में नही कोठो पर भी नहान-कोठुक थे। पाखाना शायद छत पर होता था, जैसा कि पञ्जाब के पुराने घरो मे देखा जा सकता है। यह भी पता लगता है, कि शहर मे सडको पर रात को दीपक जला करते थे।

लोग गेहूँ और जौ की खेती करते थे। धान, तिल और मटर भी पैदा की जाती थी। कम-से-कम पिण्ड-खजूर के फल उनके खानेमें था। झीलो, नदियोकी ताज़ी मछलियो के अतिरिक्त वे गाय, बकरी, भेड, सूअर, मुर्गी ही नही कछुए और घडियाल के मांस को भी खाते थे। भैंस, हाथी और ऊँटकी हड्डियाँ भी वहाँ मिली है, अर्थात् वे बैल, भैंस, हाथी और ऊँट का इस्तेमाल जानते थे।

वे सूती-ऊनी कपडे पहनते थे। आम तौर से एक कपडा धोती की तरह पहना जाता और दूसरा उपरने या चादर के तौर पर जनेऊ की तरह दाहिना कन्धा खुला रखकर। स्त्रियोकी पोशाक भी पुरुषो की तरह ही थी। वे कुषाणोंके आने से पहले तक की हमारे यहाँ की स्त्रियो की तरह सिर को पगडी या कपडेमे ढाँक कर रखती थी। पुरुषोंके बाल लम्बे

होते थे, जिनको माँग फाड कर रखा जाता था। मूँछ छँटी और दाढी छोटी या छँटी रखते थे। स्त्रियोको सोने, चाँदी, ताँवे, पीतल और मिट्टी-पत्थरके जेवरो से बहुत प्रेम था। पुरुष कडा, कण्ठमाला और अँगूठी पहनते थे, केशो का चूडाभूषण भी उन्हें प्रिय था। स्त्रियाँ मुखचूर्ण और काजल ही नही शायद अधरराग का भी इस्तेमाल करती थी।

घर के सामान मे ताँबे या पीतल की सूइयाँ, कुल्हाडा, आरा, हँसिया, चाकू, मछली की बन्सी आदि का इस्तेमाल होता था। नाप-तोल के साधनोंसे पता लगता है, कि वे उनका विभाजन आजकल के रुपयों की तरह सोलह मे करते थे।

लडने के लिए उनके पास ताँबे या पीतल के फरसे, भाले, कटार, तलवार थे। धनुप-बाण भी थे, जिनमे फल ताँबे-पीतलके होते थे। ताँबेकी पतली चादरोसे कवच बनाना भी वे जानते थे। गदाएँ उनकी पत्थर की थी।

सोने-चाँदी, दूसरी धातुओ और रत्नो के लिए उनका सम्बन्ध मैसूर, काश्मीर, पूर्वी भारत ही नही, मध्य-एसिया और पश्चिमके देशो से भी था। उनकी नावे समुद्र मे चलती थी, और मसोपोतामिया ही नही शायद मिस्र से भी वह व्यापारिक सम्बन्ध रखते थे। उनके ऊँचे वर्ग में पुरोहित, योद्धा और व्यापारी थे। व्यापारियो का ऐश्वर्य और प्रभाव कम नही था। पुरोहितो और योद्धाओ का प्रभाव आर्यो की विजय के बाद कम हो गया होगा, पर व्यापारी तब भी अपना महत्त्व रखते थे। पणि कहकर आर्य उनकी लोलुपता को घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। पणि शब्द मालूम नही किस भाषा का है, आर्य-भाषाका शायद नही है। यद्यपि सस्कृत मे पण् धातु क्रय-विक्रयके लिए आता है, पर इसका अभाव भारत के बाहर की स्ववशीय भाषाओमें बतलाता है, कि यह उधार लिया हुआ है।

फाब्री सिन्धु-सभ्यता का समय २८००–२५०० ई० पू० मानते है, ह्वीलरके अनुसार यह समय २३००–१५०० ई० पू० है, अर्थात् उसका अन्त और आर्योका आगमन एक ही समय होता है।

हम देख चुके, आर्यों ने कैसी सभ्यता और भौतिक जीवन के नष्ट करने का प्रयत्न किया था। वस्तुत, अश्वको छोड वह कोई नई चीज़ देने मे असमर्थ थे। मोहन-जो-डरो, हडप्पा तथा ऐसे ही कितने और नगरो के सहार के बाद सप्त-सिन्धुकी विजित भूमि को पशुपाल आर्य-जनोने आपस मे बाँटकर उसे गोचर-भूमि मे परिणत कर दिया। बहुत से नगर वीरान हो गए। गाँवोके भी बहुत-से लोग पूर्व और दक्षिण की ओर भाग गए। जो रह गए, उन्हें विजेताओने दास या कमकर बना लिया। मोहन-जो-डरोकी भूमि किसी अल्पपरिचित आर्य-जन ने सँभाली, इसीलिए उसका नाम ऋग्वेद मे नही मिलता। प्रधान जनो ने सिन्धु से पूर्व की भूमि पर अधिकार किया। जहाँ जो जन बसा, उस भूमि या जनपद का नाम उस जन के नाम पर पडा। जनो का नाम भी पहले किसी पूर्वज या प्रधान व्यक्ति के नाम पर ही पडा होगा। पर, प्राचीन आर्य-जनो के ऐसे नामकरण का पता लगाना सम्भव नही है। कुरु (कोरोश्), मद्र (मेद) जैसे ईरान मे भी प्रचलित नाम बतलाते है, कि कुछ आर्य-जन अपने इस नाम से भारत से बाहर भी प्रसिद्ध रहे। सिन्धु - विजय के समय के उनके नामोका पता नही है। ऋग्वेदके समय आर्यो के पाँच जन मुख्य थे। सारी आर्य-प्रजा को बल्कि पञ्चजन, पञ्चचर्षणि, पञ्चक्षिति कहना बतलाता है, कि शायद वह पहले पाँच ही जनो में विभक्त थे। लेकिन ऋग्वेद के जनो की सख्या एक दर्जन से भी अधिक है, जिससे यह निश्चय करना मुश्किल है, कि इनमे सबसे पुराने जन कौन से रहे होगे।

यदि मूल आर्य-जन-जिन्होने सिन्धु-विजय किया था-पाँच थे, और अब उनकी सख्या एक दर्जन, तो यह इसी बातको बतलाता है, कि तब तक आर्योको आए काफी समय बीत चुका था। यह भी उल्लेखनीय बात है, कि ऋग्वेदके प्रमुख आर्य-जन निम्न सिन्धु या उसके पासके इलाके मे—जहाँ मोहन-जो-डरो और हडप्पा है—नही रहते थे, वह सिन्धु से ही नही वितस्ता (जेहलम्) और असिक्नी (चनाव) से

भी पूर्व रहते थे। पाँच जनो में सबसे प्रतापी पुरु लोग सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बसे हुए थे, जो यही बतलाता है, कि ऋग्वेद के समय में ही आर्यों का प्रतापकेन्द्र पूर्वकी ओर काफी दूर हट गया था। ब्राह्मण-उपनिषत्-काल (ई० पू० सातवी सदी) मे यह और भी पूर्व की ओर हटकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश (कुरु-पञ्चाल) में पहुँच गया, जहाँ से अगली शताब्दी मे (बुद्ध से थोडा पहले) काशी-कोसल और उससे अगली शताब्दी मे मगध पहुँचकर हमारे ऐतिहासिक काल से मिल गया।

§२ आर्य-जन

१. पाच जन

(१) पुरु—यह जन ऋग्वेद-काल से कुछ पहले एक जन के रूप में, जान पडता है, परुष्णी (रावी) के पूर्व में रहता था। ऋग्वेद के समय इसकी कई शाखाएँ हो चुकी थी, जिनमे भरत, तृत्सु और कुशिक का नाम हमें मालूम है। कुशिक के नेता विश्वामित्र सुदास के परम - समर्थक थे। भरतो की एक शाखा तृत्सु थी। भरतो के मुखिया वध्र्यश्व, दिवोदास और सुदास—तीनो पितामह, पिता और पुत्र थे। दिवोदास-सुदास को पुरु-भरत भी कहा जाता था, और वह तृत्सु के भी मुखिया थे। इससे जान पडता है, अभी इन जनो में उतना विगाड नही हुआ था। पीछे मूल जन पुरु अपनी शाखा भरतजन से इतना हट चुका था, कि दाश-राज्ञ युद्ध में उसने भरतो का नही बल्कि उनके शत्रुओ का साथ दिया।

भरत कभी परुष्णी (रावी) के तीर पर रहते थे, पर आज उनके नाम पर हमारा सारा देश प्रसिद्ध है। सिन्धुने यदि भारत से बाहर हमारे देश को अपने नाम पर प्रसिद्ध किया, तो देश में परुष्णीके तीर - वाले भरतोने अपना नाम हमारे देशको दिया। पुरुओ की भरतो द्वारा पराजय मे वसिष्ठ का भी हाथ था। उन्होने कहा है[1] (७।८।४) अग्नियो ने भरत की (प्रार्थना) सुनी, युद्ध मे पुरुओ के विरुद्ध खडे हुए। दाशराज्ञ युद्ध

का वर्णन करते समय[2] (७।१८।१३)-वह फिर दुष्ट वचन बोलनेवाले पुरुओं को युद्धमें पराजित करनेके लिए इन्द्र की प्रशसा करते हैं। पुरुओंके साथ तृत्सुओंका ऐसा बुरा सम्बन्ध दिवोदासके समय नहीं था। दिवोदास के पुत्र परुच्छेप ऋषि ने[3] (१।१३०।७) बल्कि[4] दिवोदास को मूल-जन के सम्पर्क के कारण पुरु कहा है। पर किसी समय दिवोदास का पुरुओं से झगडा भी हो गया[1] (७।८।४)। पुरुओं के तीन राजाओं के नाम ऋग्वेद में मिलते हैं—पुरुकुत्स, तत्पुत्र त्रसदस्यु, तत्पुत्र कुरुश्रवण। कुरुश्रवण नाम से यह भी पता लगता है, कि भावी कुरु-वश का विकास पुरुओं मे हुआ।

✓ (२) यदु—ऋग्वेद का यह एक ऐसा जन है, जिसका पीछे भी पता लगता है। मथुरा का यदुवश कृष्ण के कारण प्रसिद्ध है। करौली के राजा व्रज में ही है, जो सम्माननीय यदुवशी माने जाते है। जैसलमेर के भाटी भी यादव हैं, और उनसे अपना सम्बन्ध जोडनेवाले नाहन (सिरमौर) के पर्वतीय राजा भी यादव कहे जाते हैं। मुसलमानो द्वारा ध्वस्त देवगिरि (दौलताबाद) महाराष्ट्र का एक शक्तिशाली राज्य भी यादव था। इस प्रकार मथुरा, राजस्थान, हिमालय ही नही सुदूर दक्षिण तक यदुओं का विस्तार रहा, पर ऋग्वेद-कालमें वह सप्त-सिन्धुमें ही और सोमी काफी पश्चिममें रहते थे। पुरु तो घरके ही शत्रु थे, पर पिता-पुत्र दिवोदास और सुदास को सबसे अधिक सघर्ष यदु और तुर्वश जनो से करना पडा था। तुर्वश और यदु की जोडी थी, जिससे इनके कुल या स्थान की घनिष्ठता मालूम होती है। बहुत-से स्थानो में मगलकामना या नाशकामना में इन दोनो जनो का नाम साथ आता है। अगस्त्य (शायद घनिष्ठके भाई) ने एक स्थान पर[4] (१।१७४।९) इन दोनो के लिए इन्द्र से मगलकामना करते हुए कहा है—"इन्द्र, तुम तुर्वश और यदु का पालन और मगल करो।" सख्य आगिरस ने भी[4] (१।५४।६) इन्द्र से प्रार्थना की है—"शतक्रतो, तुमने नर्य, तुर्वश, यदु की रक्षा की, तुमने तुर्वीति की (रक्षा की)।" कण्व के पुत्र वत्स भी तुर्वश-यदु की मगलकामना करते

हैं[९] (८।७।१८)—"(मरुतो), क्योकि तुमने तुर्वश - यदुकी, धनेच्छुक (मेरे पिता) कण्वकी रक्षा की, धनके लिए मैं (भी) तुम्हारा ध्यान धरता हूँ।" यदुओ और तुर्वशो के पुरोहित कण्व और उनके पुत्र वत्स आदि थे, इसलिए वह अपने यजमान की अमगल कामना कैसे कर सकते थे? लेकिन इससे उल्टा वसिष्ठ चाहते हैं[१०] (७।१९।६८)—"मघवन्, अतिथिसेवक (सुदास) की भलाई करनेवाले हो, तुम तुर्वश और यादव को पराजित करो।"

(३) तुर्वश—ऋग्वेद में तुर्वश का नाम वरावर यदु के साथ आता है। दोनो के पुरोहित कण्व, तत्पुत्र वत्स और उनके वशज थे। भरतो और पुरुओ ही ने नही अनार्य शत्रुओका मुकावला किया था, वल्कि इन्होने भी उन्हें पराजित कर पञ्च जनो मे नाम कमाया था। अत्रि (ऋग्० पाँचवें मण्डल के रचयिता) और उनके वशज वैसे पुरुओ के पुरोहित थे, जो सतलुज से पूरव में रहते थे, पर अवस्यु आत्रेय यदु-तुर्वश के भी प्रशसक थे[११] (५।३१।८)—"इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वश को इच्छापूरक (सुदुघा) जल (या नदियाँ) प्रदान किए।" भरतो के पुरोहित होने से भरद्वाज तुर्वशो की सफलताओ का गान नही कर सकते थे। उन्होने सृजयो के हाथ तुर्वशो की पराजय का उल्लेख किया है[१२] (६।२७।७)—"उस (इन्द्र) ने सृजय के हाथ मे तुर्वश दे दिये।" भरद्वाज वृहस्पतिके पुत्र थे। वृहस्पतिके दूसरे वशज शयु इन्द्रकी स्तुति करते तुर्वश-यदुका गुणगान करते हैं[१३] (६।४५।१)—"वह तरुण इन्द्र हमारा सखा है, जो तुर्वश और यदु को दूर (पच्छिम) से अच्छी तरह लाया।"

तुर्वश और यदु भरतोके प्रतिद्वन्द्वी थे, जिनके मुखिया दिवोदास और सुदास थे। उधर सृ जयोंसे तुर्वशोकी पराजय घतलाती है, कि वह इनकी भूमिके नज़दीक रहते थे। जान पडता है, ये दोनो जन शतद्रु (सतलुज) और परुष्णी (रावी) के निचले भागोमें नदीके दोनो तरफ ऐसी जगह वसते थे, जहाँ से सतलुज-व्यास (विपाश्) के वीच वसनेवाले सृ जयोकी भूमि पास पडती थी। शयुके कहनेसे मालूम होता है, कि पहले ये दोनो जन

कहीं दूर (शायद सिन्धु के पास) रहते थे, जहाँ से आकर वह इस भूमिमें बस गए। यद्यपि वह उसी इन्द्रके "लाए हुए थे", जिसके भक्त भरत और तृंजय जन भी थे, पर उनका स्वार्थ एक दूसरेका अविरोधी नहीं था। भरतोंने जब अपनी प्रभुता सारे सप्तसिन्धु पर फैलाकर उसे एकतावद्ध करना चाहा, तो उनका सबसे अधिक मुकाबला तुर्वशों और यदुओंने किया।

(४) द्रुह्यु—पंच जनोंमें एक इस प्रतापी जनके पुरोहित भृगु थे। कुत्स आंगिरस अपनी एक ऋचा[1] (१।१०८।८) में आर्योंके दोनों प्रधान देवताओं—इन्द्र-अग्निकी महिमा गाते उनके वास-स्थान अथवा उपासकके तौर पर पाँचों जनोंका नाम लेते कहते हैं—"हे इच्छापूरक, इन्द्र-अग्नि जो तुम (दोनों) यदुओंमें, तुर्वशोंमें, द्रुह्युओंमें, अनुओंमें, पुरुओंमें रहते हो, वहाँसे आकर तैयार किए हुए (हमारे) सोमको पियो"। यदु-तुर्वशके बाद और पास-पासमें द्रुह्यु-अनुके जनपद थे। सभी पाँचों जन इन्द्र और अग्निके भक्त थे। द्रुह्यु, पुरुओं और तृत्सुओंके जैसे बलशाली थे, यह शयु बार्हस्पत्यकी निम्न उक्ति[2] (६।४६।८) से मालूम होता है—"हे मघवन्, तृत्सु, या द्रुह्य अथवा पुरु जनमें जो कुछ बल है, उसे अमित्रोंको युद्धमें हरानेके लिए हमें दो"। लेकिन वसिष्ठ अपने यजमान सुदासके इन प्रतापी शत्रुओंको फूटी आँखों भी नहीं देख सकते थे। दाशराज्ञ युद्धमें सुदासके इन प्रतिद्वन्द्वियोंको भारी हानि उठानी पड़ी, यह वसिष्ठकी निम्न ऋचाओं" (७।१८।६७१२, १४) से मालूम होता है—"धनके लिए तुर्वशोंने, भृगुओं और द्रुह्युओंने (इन्द्रके) सखा (सुदासका) मुकाबला किया—(६)। "श्रुत कवष, वृद्ध और द्रुह्यको वज्रवाहु (इन्द्र)ने पानी (नदी) में डुबो मारा" (१२)। "गाय (छीनने) की इच्छावाले अनुओं और द्रुह्यओंके छियासठ हजार छियासठ वीर (मरकर) सो गए,—" (१४)। इससे मालूम होता है, अनुओं, द्रुह्यओं और पुरोहित कुलवाले भृगुओंने मिलकर सुदासपर आक्रमण किया था। शायद वह सीमान्तकी नदी (परुष्णी, रावी) को पारकर भरतोंकी भूमिमें आगए थे। नदीके पास लड़ाई हुई, जिसमें हारकर भागते हुए उनके श्रुत कवष जैसे मुखिया नदीमें डूब गए और रणक्षेत्रमें उनके छियासठ हजारसे

अधिक आदमी मारे गए। द्रुह्य और अनुकी भूमि परुष्णी (रावी) के पश्चिम वितस्ता (जेहलम्) तक फैली थी। द्रुह्युओंके उत्तरमे अनु और दक्षिणमें तुर्वश लोग रहते मालूम होते है। स्थानका निर्देश ऋचाओमें नही मिलता। किस पानीमे इतने सरदार डूब गए, इसका भी उल्लेख नही मिलता, पर दाशराज्ञ युद्धके पश्चिमी जनोने परुष्णीको पकडकर एक वार सुदासकी स्थिति भयानक बना दी थी, यह हम पक्थोंके प्रकरणमे बतलाएँगे, जिससे परुष्णीके पश्चिम ही द्रुह्युओका निवास माना जा सकता है।

(५) अनु—यह आर्योके पाँच प्रधान जनोमें एक तथा द्रुह्यओका जोडीदार था। छियासठ हज़ार मारे जानेवालोमें इनके वीर भी रावीके किनारे सदाके लिए सो गए थे। अनु कितने महत्त्वशाली थे, यह अवस्यु आत्रेयकी एक ऋचा[४] (५।३१।४) से मालूम होता है, जिसमें उन्हें इन्द्रके रथका निर्माता बतलाया गया है। तुर्वशोंके पुरोहित कण्वके वशज देवातिथिका तो अपने यजमानोकी तरह अनुओंके प्रति विशेष पक्षपात मालूम होता है। वह कहते है[५] (८।४।१)—"इन्द्र यद्यपि (तुम्हें) पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (चारो ओर) से आदमी आह्वान करते है, लेकिन तुम तुर्वशो और अनुओंके लिए अधिक बुलाए जाते हो।" पर सौ जादू जाननेवाले (शतयातु) वसिष्ठ[६] (६।६२।९) झूठे (द्रोघवाक्) अनुओंके ऊपर अश्वि देवता-युगलका हथियार गिरवाना चाहते है।[७]

२. अन्य जन

इन पाँच मूल जनोके अतिरिक्त और भी कुछ जनोका उल्लेख ऋग्वेदमे मिलता है। उनमें कितने ही सिन्धु और असिक्नी (चनाव) के बीचके भी थे, जिन्होने सुदासके विरुद्ध हथियार उठाए थे। पर उनसे अधिक उन जनोंके निवासका पता मिलता है, जो सिन्धुके पश्चिममे रहते थे। इनमें पक्थोका नाम पहले आता है।

(६) पक्थ—सुदासकी महत्त्वाकाक्षाको असफल करनेके लिए जिन दस राजाओ (जनो) और दूसरे कितने ही आर्यजनोने तलवार उठाई थी,

उनमें पक्थ भी थे। पक्थ जन अब भी पख्तून (पठान) के नामसे सिन्धुके पश्चिममें काबुल तक बसा हुआ है, यद्यपि उनके बारेमें यह नहीं कहा जा सकता, कि वह केवल पक्थोंके वंशज हैं। शायद अलिन, गन्धारि, विषाणि और भलानस भी आजके पख्तूनोंके रूपमें हमारे सामने मौजूद हैं। पक्थ अश्विद्वयके उपासक आर्य थे। कण्वपुत्र सोभरिने[१७] (८।२२।१०) इन जमुर्य देवताओंकी प्रार्थना करते हुए कहा है—"जिन (प्रेरणाओं) से तुमने पक्थकी, अध्रिगुकी और वध्रुकी रक्षा की, उनके साथ हमारे पास जल्दी आओ, (और) व्याधिग्रस्त की चिकित्सा करो।" सुदासके इन विरोधियों का उल्लेख करते हुए वसिष्ठ कहते हैं[१८] (७।१८।७-९)—"पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव (जन) आए, तो तृत्सुओंके नेता आर्य की गाये युद्ध करके (बचा) ले आए। दुष्टों, भूखोंने परुष्णी (रावी) को आ पकडा।"

(७-९) **भलान, अलिन, विषाणी**—उपरोक्त ऋचामें दाशराज्ञ युद्धके एक प्रमुख नेता वसिष्ठ पक्थोंके साथ इनका भी नाम लेते हैं, अतः ये पक्थोंके पडोसी जन होंगे। भलान नाम अब भी बोलान दर्रेके नाममें सुरक्षित है, इससे जान पडता है, कि बाकी दो जन भी सिन्धु पारके लोग थे।

✓ (१०) **शिव**—यह शायद पीछेका शिवि देश वाला जन था, जो सिन्धुके इस पार जेहलम् (वितस्ता) से पश्चिम रहता था, और जिनके नाम वाला एक अभिलेख शोरकोटमें मिला है। सुदासके प्रतिद्वन्द्वी ये दस राजा मिलकर लडे थे, जिसके कारण वह युद्ध दस राजाओंके युद्ध (दाशराज्ञ-युद्ध) के नाममें ऋग्वेद और पीछेके ग्रंथोंमें प्रसिद्ध हुआ।

इनके अतिरिक्त सुदासके शत्रुओंमें निम्न जन या व्यक्ति भी गिनाए गए हैं, जिनमेंसे दो-तीन को छोड बाकीके लिए यह कहना मुश्किल है, कि वह नेता थे, या जन—

(११) **शिग्रु (जन)**, (१२) **शिवि (जन)**, (१३) **मत्स्य (जन)**, पीछे यह जन आधुनिक जयपुरवाले प्रदेशमें रहता था।

(१४) वैकर्ण (व्यक्ति ?), (१५) कवष, (१६) देवक मन्यमान, (१७) चायमान कवि, (१८) सुतुक, (१९) उचथ, (२०) श्रुत, (२१) वृद्ध, (२२) मन्यु, (२३) पृथु, (ये सब व्यक्ति)। सबसे बलवान् जन था (२४) भरत, जो कि पुराने पुरुओकी एक शाखा थी, यह हम बतला आए ह। भरतोकी शाखा तृत्सु थे। दिवोदास और सुदास भरत भी कहे गए हैं, और तृत्सुओंके उन्नायक भी। यद्यपि एक समय तृत्सुओंसे सुदासकी खटपट भी देखी जाती है, पर उससे उनका और तृत्सुओका घनिष्ठ सम्बन्ध असिद्ध नही होता।

इन एक दर्जन आर्य जनोमें पाँच बहुत पुराने थे। यह पाँचो भी एक ही जगहके स्थायी निवासी नही थे, यह शयु बार्हस्पत्यके इस कथन[१५] (७।४५।१) से मालूम होता है—इन्द्र उन्हें सुदूर पश्चिमसे (परावत) लाया था।

अथर्व ऋग्वेदसे पीछे (प्राय ई० पू० सातवी-आठवी सदी) की कृति है, उसमे पूरबमें अग-मगधसे पश्चिममे बाह्लीक (बलख) तक के देशोके नाम मिलते हैं, जैसे—अग, अन्तदेश, गन्धार, धन्व (मरुभूमि), पटूर, बह्लिक, मगध, मघ, मुजवत्, रुम (मरु), रुशत्, विक्षर, सौन्त देश। ऋग्वेदमें निम्न देशोके नाम भी आते हैं—

(१) उदन्नज (पानी और गोचर भूमिवाला देश, शायद कागडा मे नूरपुर के पास)।

(२) कीकट (यह मगध नही, सप्तसिन्धु के पास ही कोई देश था।

(३) कृत्वन्।

(४) गाग्य (गगावाला प्रदेश, जो पीछे कुरुदेश कहलाया)।

(५) गुगु (शायद कोई आर्य-भिन्न देश)।

(६) दुर्ग (?)

(७) यक्षु (गगा-यमुनाके बीच गाग्य देशमें ही किसी आर्य-भिन्न जनका देश)।

(८) रुशम (?)
(९) वेतसु (?)
(१०) सरस्वतीवत्, सारस्वत (कुरुक्षेत्रकी सरस्वतीके पासका देश)।
(११) सिन्धु (सिन्धवाला देश)।

अथर्ववेदके समयमें आर्योंकी पहुँच अग और मगध तक अर्थात् बंगालकी सीमातक हो गई, पर ऋग्वेदमें वह सप्तसिन्धु तक ही रहते थे, यही उनके जन अपना स्वतन्त्र पशुपाल जीवन बिताते थे।

भाग २

सामाजिक, आर्थिक

अध्याय ३

वर्ण और वर्ग

§१ वर्ण (रंग)

ऋग्वेदिक आर्योके काल (ई० पू० १२००-१०००) मे भारतमे चार जातिया मुख्यत वसती थी, जिनमें कोल या कोलारी (निषाद, आस्ट्रिक) सप्तसिन्धुसे वहुत दूर रहते थे, इसलिए उनसे उस समय आर्योका कोई सवध नही था। आर्योके घनिष्ट सम्पर्क और सघर्ष मे आनेवाले (१) मोहनजोडरो और हडप्पाकी सभ्य जाति—द्रविड और (२) कश्मीरसे आसाम और आगे के पहाडो तथा तराईमे वसनेवाली जाति किरया किरात (मोन्-खमेर) मुख्य थी। आते ही आर्योको नागरिक द्रविडोंसे पहले भुगतना पडा। फिर सप्तसिन्धुमें छा जानेके वाद जव वह हिमालयकी तराई और उसके भीतर घुसने लगे, तो उनका सघर्ष किरोंसे हुआ। ऋग्वेदिक आर्योका वास्ता किरातो और उनके नायको शम्वर, चुमुरि आदिसे पडा था, यह भी हम वतलानेवाले हैं। द्रविड और किरात दोनोंमें ऋग्वेदने कोई भेद नही किया और दोनो हीको कृष्णचर्म, कृष्णयोनि या कृष्णवर्ण कहा है। यद्यपि किरात कृष्ण नही, वल्कि पाण्डुवर्ण मगोलायित थे। उनके चेहरेमे द्रविडोंसे काफी अन्तर था। आज भी तिव्वती और मुण्डा मनुष्य के चेहरेको देखकर यह भेद स्पष्ट जाना जा सकता है। आर्योंने दोनोको कृष्ण, दस्यु या दास कहा। किसी भी विजेता जातिको, यदि वह विजितको अपना साझीदार नही वनाती तो, वर्णभेद कायम रखना पडता है। आज दक्षिणी अफरीकामें विशेष तौरसे और अफ्रीकाके दूसरे भागोमे सामान्य तौरसे यह वर्णभेद देखा जा

रहा है। आजके वैज्ञानिक और जन-जागृतिके युगमें यदि यह अन्धेरखाता, चल सकता है, तो आजसे सवा तीन हजार वर्ष पहलेके बारेमें कहना ही क्या है?

१. आर्य-वर्ण

ऋग्वेदमें आर्योंके वर्णका सविवरण निर्देश नही है, पर अपने देवताओंका जो रग-रूप उन्होने वर्णन किया है, वह उनका अपना ही रग हो सकता है। मनुष्य अपने देवताको भी अपने रूपमें देखता है। "यदन्न पुरुषो ह्यत्ति, तदन्न तस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी खाता है), इतना ही नही, बल्कि साथ ही यह भी कहना चाहिए "यद् रूप पुरुषो भवति, तद् रूपा तस्य देवता" (जिस रूपवाला आदमी होता है, उसी रूपवाला उसका देवता होता है)। इस तरह अग्नि, इन्द्र आदिका जैसा रग-रूप ऋग्वेदमें वर्णित है, वही उनके भक्तोका भी था। यह भी ख्याल रखना चाहिये, कि ऋग्वेदिक आर्योंसे छ शताब्दियो बाद हुये बुद्ध और हजार वर्ष बाद हुए महाभाष्यकार पतजलिके समय आर्योंका जो वर्ण उल्लिखित है, वह भी इसी बातको बतलाता है। आर्य अपना विशेष रग रखते थे। पतजलिने (महाभाष्य २।२।६ में) लिखा है—"गौर शुच्याचार कपिल पिंगलकेश इत्येनान् अभ्यन्तरान् ब्राह्मण्ये गुणान्कुर्वन्ति" (गोरा शुद्ध आचारवाला, कपिल, पीले केशवाला इन्हें ब्राह्मण होनेके गुण बतलाते है)। यह स्पष्ट है, कि ब्राह्मणका जो जो रूप-रग पतजलिने बतलाया है, वह अपवादरूपेण नही था, क्योकि उसके बाद वर्णके सम्बन्धमें बौद्धो और ब्राह्मणोका जो विवाद हुआ, उसमें ब्राह्मणके इस रग-रूपको प्राकृतिक कहकर वर्णव्यवस्थाको स्वाभाविक साबित करनेकी कोशिश की जाती थी। बुद्धके रगको सुवर्ण-वर्ण और आँखोंके रगको अलसीके फूलके रगका अभिनील बतलाया गया है। अपेक्षाकृत नवागन्तुक और दूसरोंके साथ रक्त-सम्मिश्रण न करनेके लिये उतारू ऋग्वेदिक आर्योंका रग जरूर कपिल, केश पीले (पिंगल) और आँखोका रग बुद्धकी तरह प्राय अभिनील रहा होगा।

(१) केशोंका रग—ऋषि इपने ऋग्वेद (५।७।७)[१] में अग्निकी मूंछ-दाढी (श्मश्रु) के वारेमे कहा है—"वह पीले दाढीवाले शुचिदात-युक्त वडे और अप्रतिहत वलवान् है।" अगिरस-गोत्री वरुने इन्द्रके श्मश्रु और केशके वारेमें[२] (१०।९६।८) कहा है—"जो पीले श्मश्रु, पीले केशवाला पत्थर सा दृढ है।" विश्वामित्रने[३] (३।२।१३) अग्निके केशोको भी पीला कहा है—"हम उन विचित्र गतिवाले हरित पिंगल केशवाले सुप्रकाशमान अग्निमे नवीन धनके लिये प्रार्थना करते है।" गोतम राहूगण[४] (१।७९।१) के अग्नि भी "हिरण्यकेश (सुनहले केश), मेघ विखेरनेवाले कम्पक, वायुकी तरह शीघ्रगामी, शुभ्र प्रकाश-युक्त है।" हरिकेश और हिरण्यकेशका एक ही अर्थ है, यहा यह स्पष्ट हो जाता है, क्योकि अग्निको पहले हरिकेश कहा गया, और इस मन्त्रमें उसीको हिरण्यकेश कहा गया। यहा पीलेके लिये हरि (हरित) शब्दका प्रयोग किया गया है। सस्कृतका हरित और फारसी जर्द, रूसी ज़ोल्त, अग्रेजी गोल्ड एक ही मूल शब्दके भिन्न-भिन्न रूप है। अभारतीय हिन्दू-युरोपीय भाषाओमे इसका अर्थ अव भी पीला लिया जाता है। यद्यपि पीछे सस्कृतमे इसका वह अर्थ नही लिया गया परन्तु ऋग्वेदके कालमें अभी उस मूल अर्थका त्याग नही हुआ था। इन्द्र और अग्नि दोनो ऋग्वेदिक आर्योके परमपूज्य देवता है। दोनोकी दाढी-मूंछका पीला होना उनके भक्तोकी दाढी-मूंछके पीले होनेको वतलाता है। यदि अग्निकी शिखाओंके स्वाभाविक रग पीले होनेमे उसे अनिवार्य समझा जाय, तो इन्द्रके लिये वह वात नही कही जा सकती। इन्द्रका रूप तो सवल आर्य पुरुषका रूप था।

भरद्वाजने[५] (६।२९।६) इन्द्रकी नासिका या मुखको हरि (पिगल) कहा है—"इस प्रकार हरित शिप्रवाले इन्द्र सु-आह्वान योग्य है, जो उपस्थित या अनुपस्थित होनेपर स्तोताओको धन देते है; और इस प्रकार वह उत्तम वल-युक्त प्रकट हो दस्युओका हनन करते है।"

वसिष्ठके कथनानुसार[६] (७।३३।१) आर्योका रग श्वेत था। वह अपने कुलवालोंके वारेमें कहते है "कर्मपूरक दक्षिणकी ओर झुडा रखनेवाले श्वेत

वसिष्ठ-सन्तानने मुझे प्रसन्न करती हैं। मैं यज्ञसे उठते कहता हूँ, कि वह मुझसे दूर न जायें।" वसिष्ठने ही मरुत् देवताओंके बारेमे कहा है[9] (७।५९।-११) "स्वय वलि कवि सूर्यसी त्वचावाले मरुतो, मैं यज्ञको पसन्द करता हू।" सूर्य-त्वक् अर्थात् सूर्यके समान चमडेके रगवाला का अर्थ अत्यन्त गौर वर्ण ही है। अत्रिकी सन्तान अपालाने इन्द्रकी स्तुति करते हुए[10] (८।८०।७) कृतज्ञता प्रकट की है—"सौ यज्ञ करनेवाले रथके छिद्र और शकटके छिद्रको मूँदनेवाले इन्द्र, तुमने अपालाको सूर्यत्वक् बनाया।" अपाला किसी चर्मरोग से पीडित थी, जिससे मुक्त होनेका इसमें सकेत है।

पिशग हिरण्य या हरित वर्णको ही (पिंगल) भी कहते है। गृत्समदने[11] (२३।१०) पुत्रकी कामना करते हुए कहा है—"त्वष्टा हमें पिशगरूप सुभर आयुष्मान् क्षिप्रकारी देव-भक्त वीर सन्तान दे। देवोका अन्न हमारे पास और आये।"

(२) शरीर—इन्द्रका शरीर आर्योंके सबसे शक्तिशाली वीरके शरीर जैसा था। उसके वर्णनसे हमें सप्तसिन्धुके किसी पहलवानका सकेत मिलता है। ऋषि इरिन्विठ[12] (८।१७।८) ने इन्द्रके शरीरके बारेमें कहा है—"वडी ग्रीवा, पुष्ट उदर, सुन्दर बाहुवाले इन्द्र भोजनसे प्रसन्न हो शत्रुओ को मारते है।" प्रगाथ कण्व-पुत्रने भी[13] (८।५३।७)—"वृषभ, युवा, तुविग्रीव (वडी ग्रीवा) न झुकनेवाला इन्द्र है। कौन उसकी सपर्या (पूजा) करता है?"

ऋग्वेदके इन उद्धरणोंसे आर्योंके शरीर और वर्ण (रग) का पता लगता है। उनके प्रतिद्वद्वियोके शरीर-लक्षणका पता भी ऋग्वेदकी कितनी ही ऋचाओंसे मिलता है।

२. अनार्य-वर्ण

विश्वामित्रने आर्योंके प्रतिद्वद्वियोंके बारेमें कहा है[14] (३।३१।२१) 'शत्रुनाशक गोपति गायें हमें दे। दीप्तिमान् तेजसे कालो (कृष्णो) को

नष्ट करे। सत्यसे अगिरा सन्तानको गायें दें। उसने सारे दरवाजोंको बन्द कर दिया।"

आगिरस शुनहोत्र-पुत्र गृत्समदने[११] (२।२०।७) आर्योंके शत्रुओंके बारेमें कहा है—"शत्रुनाशक दुर्गध्वंसक इन्द्रने कृष्णयोनि (काले दास) सेनाओंको नष्ट किया। मनुष्यके लिये पृथिवी और जलका जन्म दिया। वह यजमानकी इच्छा पूरी करे।"

§२ वर्ग

१ दास-दासियां

पराजित शत्रु स्त्री-पुरुषोंमें बहुतोंको विजेता दास-दासी बना कर काम लेते थे, यह दास-प्रथा के समय सर्वत्र देखा जाता था। हमारे देशमें दास-प्रथाका अन्त १९ वीं शताब्दीके दूसरे पादमें हुआ। ऋग्वेदिक कालमें, जब कि विजेता और विजितके रंग-रूप और स्वार्थोंमें भारी भेद था, दास-प्रथा और भी क्रूर रही होगी, यह निश्चित है। वालखिल्य सूक्तों[१२] (१४।(८।८।३) में पृषध्र ऋषिने इन्द्रसे प्रार्थना की है—"मुझे सौ गदहे, सौ भेड और सौ दास दो।" आर्य अपने शत्रुओंको भी दास और दस्यु कहा करते थे। उनको ही लेकर क्रय-विक्रय होनेवाले पुरुषोंका नाम पीछे दास पड गया। यहां ऋषिने सौ दासोंकी जो कामना की है, वह जातिसे भी और कार्य से भी दास होते, यह निश्चित है। ऋषि गृत्समदने इन्द्रकी प्रार्थना करते[१३] (२।२।४) कहा है—"हे इन्द्र, हम तुम्हारे शुभ्र बलको बढाते हैं। हाथोंमें शुभ्र वज्रको धारण करने शुभ्र हो बढते तुम सूर्यसे अपने तेज द्वारा दास लोगों (दास विशः) को पराजित करो।" इसी ऋषिने फिर[१४] (२।१२।४) कहा है—"जिसने इस विश्व (सारे) को बनाया, जिसने दास-वर्णको निकृष्ट (नीच) और गुहावासी बनाया, जो व्याधिकी तरह आर्य पुष्ट धनको देता है, लोगो, वही वह इन्द्र है।" वामदेव गौतमने भी उन्हींके बारेमें कहा है[१५] (४।२८।४) "हे सोम, तुम्हारी मित्रतासे युक्त हो इन्द्रने तुम्हारी सहायतासे मनुष्यके लिये सुख (जल) प्रवाहित किया, शत्रु (अहि)

को मारा, सप्तसिन्धुको प्रेरणा दी। ढँके हुए छिद्रोको खोला।" कण्व गोत्री या कण्व-पुत्र ऋषि सोभरिको पुरुकुत्स-पुत्र राजा त्रसदस्युने पचास वधुये दी थी। वधूका मूल अर्थ वादी है, यद्यपि वह वहूके अर्थमे भी ऋग्वेदमें प्रयुक्त हुआ है, किन्तु इस स्थल[14] (८।१९।३६, ३७) पर दासीके लिए ही इस्तेमाल हुआ है—"पुरुकुत्स-पुत्र अतिमहान् स्वामी (अर्य) सच्चे मालिक त्रसदस्युने मुझे पचास वधुये दी।" सुवास्तु (स्वात) नदी के तटपर तीन-सत्तर (२१०) काली गायोके लानेवाले पतिने धन दिया।"

(आजीविका)

आर्योका मुख्य धन गाय-घोडे और भेड-बकरिया थी। वह कुछ खेती भी करते थे, क्योकि जौका सत्तू और रोटी उनके आहारमे शामिल थे। अधिक धनी और प्रभुताशाली आर्य अपने पशुपालन और कृषिमे दासो और दासियोंसे सहायता लेते थे। आखिर पचास-पचास दासियो और दासोको लेनेका प्रयोजन क्या हो सकता था? पर, साधारण स्थितिके आर्य अपने ही कृषि और पशुपालन कर लिया करते थे। आर्योको पहननेके लिये कपडो की भी अवश्यकता थी, जो ऊन या चमडेके होते थे। सप्तसिन्धुकी गर्मी उस समय भी कम असह्य नही रही होगी, पर वह ऊनकी पोशाक पसन्द करते थे। इसे आदत कहना चाहिये, नही तो सिन्धु-उपत्यका के निवासी उनसे पहले ही सूती कपडोको पहनते थे। आज भी गडेरिये लोग कडी धूपमे कम्बलको ओढे अपनी भेडोको चराते है। कहते है कम्बल तरावट देता है। यही बात सप्तसिन्धुके आर्य भी कहते होगे। उनके घरोमे कपडे बुने जाते थे। कपडे बुनने और दूसरे कामोके बारेमे आगिरस-गोत्री ऋषि शिशु" (९।११३।१-४) ने कहा है—"हमारे और दूसरोके भी अनेक प्रकारके कार्य है। तरखान (बढ़ई) अपना काम चाहता है, वैद्य रोगकी चिकित्सा करता है, ब्राह्मण सोम छाननेवाले यजमान को चाहता है। इन्द्रके लिये सोम परिस्रुत हो (छाना) जाये।

"पुरानी औषधियो, पक्षियोंके पखो द्वारा अश्म (धातु) के हथियारो व तोडनेवाले कमार सोनेवाले आदमीको चाहते है ।।२।।

"मै कवि हूँ। मेरा पुत्र वैद्य है। मेरी कन्या पत्थरकी चक्की चलानेवाली है। धनकी कामना करनेवाले नाना कर्मोवाले हम गौओकी तरह एक गोष्ठमे रहते है ।।३।।

"वाहक घोडे अच्छे रथको, पासवाले मन्त्री (उप-मन्त्री) हमनेको, पुरुषेन्द्रिय रोम-युक्त भग्न स्थानको, मेढक जल-युक्त सरको चाहता है ।।४।।

यहा वैद्य, ब्रह्मा (पुरोहित) कमार, कारु (कवि), पिसनहारी और उपमत्रीके कामोका उल्लेख है।

२. चार वर्ण

डा० वटेकृष्ण घोष ऋग्वेदकी भाषाके बारेमे कहते है*—"सब मिलाकर पहले नौ मण्डलोकी भाषा एक समान है, यद्यपि पहलेकी बोलीके भेदोका असर, विशेषकर र और ल के बारेमें मिलता है।" दसवें मण्डलको सभी विद्वान् भाषा और दूसरे विचारोसे भी पीछेका मानते है। पहले नौ मण्डलोमें चारो वर्णोका नाम नही मिलता है, पर दसवें मण्डलमे इसका स्पष्ट उल्लेख आया है[१०] (१०।९०।१२)—"इस (पुरुष) का ब्राह्मण मुख है राजन्य (क्षत्रिय) दोनो बाहु। जो वैश्य है, वह उसकी जाघ है, और पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ।" ब्राह्मण या पुरोहित ऋग्वेदिक आर्योके आरम्भिक कालमें भी रहे, लेकिन वह लडाईमे दूसरोकी तरह ही भाग लेते थे। भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्रके पुत्रो और कुलवालोने दिवोदास और सुदासके अनेक युद्धोमें शस्त्र चलाये। ब्राह्मणो और राजन्यमें वैसा भेद उस समय नही था, जो उपनिषद्-काल और पीछे देखा जाता है, अथवा जो इस पुरुष-सूक्तमे मिलता है। विश् प्रजा या लोकका पर्याय था। इसमे सारी आर्य जाति शामिल थी। राजाको विशापति (विशोका स्वामी) कहते थे। विश्से उत्पन्न वैश्य शब्दको नये अर्थोमें

*The Vedic Age, P 336

बहुत पीछे इस्तेमाल किया जाने लगा, जिसे ही हम यहा पाते हैं। शूद्रसे दास वर्णका मतलब है, जो कि पहले आर्योंके प्रतिद्वन्द्वी और पीछे उनके शासित या दास बन गये। चारो वर्णोंकी कल्पना पीछे हुई, यह साफ मालूम होता है। पहलेकी आर्य प्रजामें, चाहे ब्रह्म (ब्राह्मण) हो या राजन्य (क्षत्रिय), उनके रोटीबेटीका कोई भेद नही था। पर, जब चारो वर्णोंकी कल्पना हो गई, तो उसके साथ ऊच-नीचका भाव भी आने लगा। उसके साथ ही धन और भोगमें उनके भागको कम-बेशी माना जाने लगा। इस विषमतासे वैमनस्य बढना आवश्यक था। वैमनस्यको हटानेकी इच्छा न आर्य ऋषियोको हो सकती थी, और न वह हटाया जा सकता था। तो भी आर्योंके भीतर समानता और भेदभावको हटानेका प्रयत्न वह जरूर करते रहे। ऋग्वेदके अन्तिम सूक्त[1] (१०।१९१) में सवनन ऋषि इसीकी ओर ध्यान दिलाते हैं

"तुम साथ चलो, साथ बोलो। तुम्हारे मन साथ सोचे। जैसे कि पूर्वकालके देव एकमत हो उपासना (भोग) करते थे ॥२॥

"इन (आर्यजनो) का मन्त्र एक सा हो। समिति एक सी हो, चित्त-सहित मन एक सा हो। एक से मन्त्रको तुम्हारे लिये मैं आमन्त्रण करता हू। एक समान हविसे तुम्हारे लिए हवन करता हू ॥३॥

"तुम्हारा अध्यवसाय समान हो, तुम्हारे हृदय समान हो। तुम्हारा मन समान हो, जिसमें कि तुम्हारा सुन्दर सगठन हो ॥४॥"

यह अनेक बार बतला चुके है, कि ऋग्वेदिक ऋषियो का काम आर्योंका सामाजिक या राजनैतिक इतिहास लिखना नही था। उनका उद्देश्य था देवताओको प्रसन्न करनेके लिये स्तुतिया और विधि-विधान बनाना। दूसरी बातें वहा आनुषगिक रूपसे ही आई है। पर, जिस सामाजिक और आर्थिक स्थितिमें आर्य थे, उससे उनके जीवनके अनेक अगोपर प्रकाश पडता है। आर्यों और आर्य-भिन्नो—द्रविडो और किरातो—में भारी आर्थिक-सामाजिक भेद था। विजेता और स्वामी होनेके कारण सबसे अधिक सम्पत्ति और भोगको आर्य अपने लिये चाहते थे, और बचे-खुचेको

ही दूसरे पा सकते थे। पणि व्यापारी थे--पणि शब्दसे ही वणिक या वनिया शब्दकी उत्पत्ति हुई है। ये सम्पत्तिशाली थे। व्यापार भी उनके हाथमें था, और उनके पास गायें भी बहुत होती थी। पणियोकी गायोको लूटना आर्य अपना धर्म समझते थे। इसके लिये बहानेकी भी जरूरत नहीं थी। यह सरमा और पणियोके सवादमे हम देखेंगे। यदि सर्वस्व-हरण कर लिया जाता, तो व्यापार हो ही नही सकता था। इसीलिये आर्य पणियोकी पूंजी और उनके व्यवसायके साधनोका हरण करना नही चाहते थे। उन्हे सोनेकी जरूरत थी। मणि और रत्न की भी कदर उनमें बढी थी। ये चीजें पणियो द्वारा ही मिल सकती थी। इसलिये पणियोकी रक्षा करना भी वह अपना कर्तव्य समझते थे। पणि भी उदारतापूर्वक आर्य ऋषियोको दान देते थे, यह भी हम देखेंगे।

३. पराजित

पणि जिस जाति--द्रविड--के थे, उसके सभी लोग ऐसे सौभाग्य-शाली नही थे। उनमे कितने ही आर्योकी कृपापर कृषक या शिल्पी-रहकर जीवन-निर्वाह करते थे, कितने ही आर्योके दास-दासी बने थे। पर्वत गुहावासी शम्बरकी लोग--किरात--नरनारी सभी लडने मरनेको तैयार थे। उन्हे आर्योकी पकडसे बाहर जानेका सुभीता भी था। कागडेकी उपत्यका और पासके पहाडोपर आर्योके साथ जो खूनी सघर्ष चला था, और दिवोदास चालीस साल की लडाईके बाद ही शम्बरका सहार कर सका, इसीके कारण किरात पराजित हुये। उस वक्त जो भी युद्धबन्दी हाथ आये होगे, वह दास-दासी बन गये होगे, इसमें भी सन्देह नही। पर, द्रविडोकी तरह किरात एक जगह रहनेके लिये मजबूर नही थे। उनके उत्तर और भी दुर्गम पर्वत, वहाकी चरागाहें और हरी-भरी उपत्यकायें मौजूद थी। शबर-बगी उधर हट सकते थे, और बैसा ही हुआ भी। किर (किरात) लोग कागडेके निचले पहाडोमें किरग्राम (बैजनाथ) जैसे नाम छोड गये है। आज उनका पता कागडामे

शताधिक मील दूर लाहुल, मलाणा (कुल्लू) और कनौरमें मिलता है। इसलिये आर्योंके पास जो दास-दासी थे, वह अधिकतर द्रविड जातिके ही रहे होंगे, किरात बहुत कम, इसमें सन्देह नही।

४ उत्पीडन और वर्ण-विभेद

आर्थिक तौरसे पराजितोका भीषण शोषण तो होता ही था, सामाजिक तौरसे भी उन्हें बहुत हीन समझा जाता था। गृत्समदने मान लिया था, कि देवताओने ही नही उन्हें अधर (नीच) वर्णका बना दिया है। आर्योको रक्त-सम्मिश्रणका डर कितना था, इसका अन्दाज हमे अमेरिकाके नीग्रो और श्वेतागोंसे लग सकता है। अमेरिका सारी दुनियामे स्वतत्रता और समानताकी ढोल पीटता है, पर वहा चिरागके नीचे अन्धेरा है। विश्व-विद्यालयोमें काले छात्र गोरोके साथ पढ नही सकते। किसी गोरी तरुणीका सम्बन्ध यदि नीग्रोसे हुआ समझा जाता, तो गोरे स्वय कानूनको हाथमें लेकर उसे जला देते है। ऐसे खूनी काण्ड वहा हर साल हुआ करते है। दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे तो इस बातमे और भी निर्लज्ज तथा क्रूर है। अपनेसे चौगुनी-पचगुनी सख्यावाले अफ्रीकियोको वह मनुष्यरूपी पशु मानते है। उनको अपने घरो और बस्तियोंके पास नही रहने देना चाहते। रेलो और सवारियोमें कालोको अलग रखते है, जीविकाके साधनोको कमसे कम देकर उन्हे अछूत बनाये हुए है। वर्ण-भेदके यह दो रूप हमारे सामने युक्त-राष्ट्र अमेरिका और दक्षिणी अफ्रीकामें मौजूद है। आर्योंने वर्ण-भेदकी खाईको सुदृढ रखनेकी कोशिश की। यद्यपि वर्ण—रग—का इस तरहका भेदभाव हमारी जातियो में आज बिल्कुल नही मिलता। ब्राह्मण भी कोयलेसे काले मिलते है, और शूद्र या अछूत अच्छे खासे गोरे। एक सा साफ-सुथरा कपडा पहनाकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रके लडकोको खडा कर दिया जाये, तो कोई उन्हें नही बतला सकता। इतना होनेपर भी पुराने शास्त्रोकी दुहाई देकर पुराने नीच-ऊँचके भेदको कायम रखनेकी कोशिश की जा रही है। इसका बुरा परिणाम हमारी तीन-चौथाई जनताको भोगना पड रहा है। बडे वर्ण या जातिका

मतलब है सम्पत्तिका स्वामी होना, और छोटे वर्ण या जातिका अर्थ है सम्पत्तिसे वंचित होना। सम्पत्तिसे वंचित होनेका मतलब है, मनुष्यताके दूसरे अधिकारोंसे भी वंचित होना। सम्पत्तिके न होनेपर शिक्षा और संस्कृतिकी सुविधा नहीं रह जाती। हरेक देशमें विजेता और विजित के सम्बन्ध कटु होते हैं, पर यदि उनमें वर्ण-भेद, जाति-भेद न हो, तो कुछ समय बाद दोनोंमें एकता स्थापित हो जाती है, सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं। हमारे देशमें ऐतिहासिक कालमें यवन (ग्रीक), शक, श्वेत-हूण आये। उनके प्रति आरम्भमें कुछ भेदभाव जरूर रक्खा गया, लेकिन रंगका सवाल नहीं उठ सकता था, क्योंकि नवागन्तुक वर्ण-सम्पत्तिमें आदिम आर्यों जैसे थे, जिनके रूप-रंग, नख-शिखको हमारे यहाँ बराबर सौन्दर्यकी कसौटी माना जाता रहा। इसीलिए यवन-शक उच्च वर्णके लोगोंमें मिल गये और उन्हें अछूत या सम्पत्तिहीन नहीं बनाना पड़ा।

तीव्र वर्ण-भेदके ख्यालसे आर्य अपने दास-दासियोंके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करनेके विरोधी थे। पर, दास-दासियोंके श्रमका वह कैसे त्याज्य कर सकते थे? दक्षिणी अफ्रीकाके गोरे भी कालोंके श्रमसे लाभ उठानेसे बाज नहीं आते। सिन्धु-उपत्यकावासी भौतिक संस्कृतिमें आर्योंसे बहुत आगे बढ़े हुए थे। मोहनजोडरो जैसे ताम्र-युगके भव्य नगरके निर्माण करनेवाले उनके शिल्पी, अपने कला-कौशल तथा शिल्पसे आर्योंके लिये लाभदायक थे। इस लाभसे वह अपनेको वंचित नहीं करना चाहते थे। कपड़ा बुनना, चिकित्सा करना, हथियार बनाना आदि कुछ शिल्प आर्योंको भारतमें आनेसे पहले ही मालूम थे। उन्होंने सिन्धु-उपत्यकावासियोंके अधिक विकसित शिल्प भी कुछ सीखे। उससे भी अधिक उन्हीं द्वारा काम करवा कर लाभ उठाया। पर, खान-पानकी जो छूत-छात पीछे पैदा हुई, उसका अस्तित्व उस कालमें था, यह कहना मुश्किल है। जहाँ तक उत्तर भारतका सम्बन्ध है "शूद्रा संस्कर्तार" (शूद्र पाचक है) बराबर माना जाता रहा। रोटी-पानीमें शूद्रोंसे नहीं, बल्कि अतिशूद्रोंसे भेद बरता जाता रहा, जिसका कारण वर्ण नहीं, बल्कि अधिक गन्दे समझे जानेवाले काम थे। यह बिल्कुल

सम्भव है, कि ऋग्वेदिक आर्योंके धनी परिवारोमें दसियाँ भोजन बनाती थी। उनके हाथके खाने-पीनेमें किसी को एतराज नही था। छूत-छातका रवाज आर्योमें क्रमश: बढा। सूत्र-ग्रन्थोमें शौचके लिए जल लेनेका विधान नही है। गुरु-कुलसे सुशिक्षित होकर निकले स्नातकको वहाँ सूखे काठ इस्तेमाल करनेकी बात कहनेका मतलब यही है, कि अभी जलकी प्रथा नही चली थी। कच्चे-पक्के खाने और उसके छू जानेका भाव उस युगमें नही हो सकता था। ऊनके वस्त्रको पवित्र माननेकी भावना भी ऋग्वेदिक आर्योकी ही देन है। आर्योका कपासके वस्त्र न व्यवहार कर ऊनी वस्त्रको अपनाना दोनो वस्त्रोके प्रति दो प्रकारके भावोके पैदा करनेका कारण हुआ। कालान्तरमें ऊनको शुद्ध मान लिया गया, और कपासको अशुद्ध। सूती कपडेको बदल कर खाना खाने या रसोईमें जाना चाहिए। पर ऊनी कपडा स्वत पवित्र है। कश्मीरमें सर्दीके कारण गीला चौका लगाना सुखद नही है, वहा ऊनी लोई चौकेका काम देती है और ऊनी कपडेसे ढँके घडेका पानी या भात मुसलमानके हाथमें पडकर भी अशुद्ध नही होता। किसी समय बैलके चमडेको भी ऊनके समान शुद्ध माना जाता था। कल्प-सूत्रोमें (पारस्कर) वर-वधूको बैलके चमडेपर बैठा कर मधुपर्क देनेका विधान है। गायके चर्मकी शुद्धता पीछे जाती रही, पर मृगछाला अब भी शुद्ध-पवित्र माना जाता है। यह आर्योके चमडेकी पोशाक होने के कारण ही।

अध्याय ४

खान-पान

§१ खाद्य

१ मास

ऋग्वेदिक आर्य कृषि भी करते थे, लेकिन उनका सबसे बडा धन गौ-अश्व, अज-अवि था, इसीलिए उनमें शायद ही कोई ऐसा हो, जो मास न खाता था। बडे-बडे ऋषियोके लिए भी आतिथ्य करनेके वास्ते मास अत्यावश्यक चीज थी। पीछेके धर्म-सूत्रकारोने तो कहा—"नामासो मधुपर्को भवति"* (विना मासका मधुपर्क नही हो सकता)। अतिथिके सत्कारके लिए जो खाद्य तैयार किया जाता, उसे मधुपर्क कहते थे। ऋग्वेदके बाद ब्राह्मण-काल (८०० ई० पू०) मे भी मास आर्योका प्रधान भोजन था, और इसके टोटके-टोने भी प्रचलित थे। बृहदारण्यक (६।४।१८) में बतलाया गया है, कि यदि कोई इच्छा करे, कि मेरा पुत्र पण्डित, प्रसिद्ध, सभा-समाजवाला हो, और ऐसी वाणी बोले, जिसे लोग सुनना चाहें, तथा वह सारे वेदोको पढे, पूरी आयुको प्राप्त होवे, तो माताको चाहिए, कि घी-सहित साड या बैलके मासवाला ओदन पकाकर खाये।

"य इच्छेत् पुत्रोमे पण्डितो विगीत समितिगम शुश्रूषिता वाच भाषिता जायेत, सर्वान् वेदा अनुब्रवीत, सर्वमायुरियादिति, मासोदन पाचयित्वा सर्पिष्मन्त अश्ननीयताम् ईश्वरौ जनयितवा औक्षेण वाऽऽर्षभेण वा।"

---

* आश्वलायनगृह्यसूत्र १।२४

कोई सन्देहकी गुजाइश न रहे, इसके लिए शकराचार्य अपनी टीकामें कहते हैं—"मास-मिश्रमोदनम्। तन्मासनियमार्थमाह—औक्षेण वा मासेन। उक्षा सेचनसमर्थं पुगवस्तदीय मासम्। ऋषभस्ततोऽप्यधिकवया तदीय-मार्षभ मासम्।" अर्थात् मास वयस्क बैल या उससे अधिक आयुके बैलका होना चाहिए। गोमासके प्रति आज चाहे जितनी जुगुप्सा हो, पर प्राचीन-कालमें इसके प्रति यह भावना नही थी। वुद्ध-कालमें भी यह वहुप्रचलित भक्ष्य था। मज्झिमनिकाय (३।५।४) में आता है—

"जैसे चतुर गोघातक या गोघातकका शागिर्द गायको मार कर गाय काटनेके तेज छुरेसे गायके भीतरी मास और वाहरी चमडेको नुकसान पहुँचाये विना गायको काटे—जो जो वहाँ भीतर विलिम, स्नायु, वन्धन है, उसे तेज छुरेसे छेदन करे, काटे .। छेदन कर काट कर , वाहरी चमडेको झाड फटकार कर, उसी चमडेमें उस गायको ढाँक कर यह कहे—'यह गाय पहिलेकी तरह ही इस चर्मसे युक्त है'।"

गोमास काट कर गोघातकके चौरस्तेमे वेचनेके लिए राशि करके रखने का भी उल्लेख मिलता है। गौ काटनेके लिए जो स्थान होता था, उसे गोघातक सूना कहते थे। वहाँपर हड्डियोंकी लालचसे कुत्ते प्रतीक्षा करते रहते थे। मज्झिमनिकायमें (२।१।४) है—

"गृहपति, जैसे भूखसे अति-दुर्वल कुक्कुर गोघातकके सूना के पास खडा हो। चतुर गो-घातक या गोघातकका अन्तेवासी उसको मास-रहित लोहूमे सनी हड्डी फेंक दे। तो क्या मानते हो, गृहपति! क्या वह कुक्कुर उस हड्डी को खाकर भूखकी दुर्वलताको हटा सकता है?"

गाय काटनेके छुरेको गोभिकर्तन कहते थे (मज्झिमनिकाय २।४।५)। ऋग्वेद (१०।७९।६) में ऋषिने कहा है "विपर्वशश्चकर्त गामिवासि" (जैसे तलवार पोर-पोर गायको काटे)। यह भी उसी वातकी तरफ इशारा है। वहुत पीछे यदि सातवी-आठवी सदीके भवभूति अतिथिके लिए वछिया मारनेकी वात कहते हैं, तो वह अवश्य अपने समयके प्रतिकूल हैं, परन्तु जहाँ तक प्राचीनकालका सम्वन्ध है, यह विल्कुल साधारणसी वात थी। जैन

आगमके "उपासगदसा" से भी इस बातकी पुष्टि मिलती है। वहाँ एक सेठानी ने अपने पीहरसे दो गायके बच्चो (गोपोतक)का मास मँगवाया था। वस्तुत आर्योंके आनेसे ईसवी-सन्‌के आरम्भ तक यह भक्ष्य इतना प्रचलित था, कि उसके बारेमें अधिक कहनेकी अवश्यकता नही। लेकिन, सबसे अधिक प्रिय मास आर्योंका मोटा भेडा और बकरा था। भेडेके लिए ऋग्वेद[1] (१०।२७।१७) में कहा गया है "पीवान मेषमपचन्त वीरा" (मोटे मेषको वीरोने पकाया)।

उस कालमें घोडेका मास भी भक्ष्य था, और उसके पके सोधे मासको आर्यजन बहुत चावसे खाते थे। दीर्घतमा ऋषि कहते है[2] (१।१६२।१२) जो घोडेको अच्छी तरह पका देखते हैं और उसकी सुगन्धको बखानते हैं, और जो घोडेके मास भोजन का सेवन करते है। (ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभि निर्हरेति। ये चार्वतो मासभिक्षामुपासते)।

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि ऋग्वेदका काम इतिहास या सामाजिक जीवनका चित्रण करना नही है। वहाँ देवताओकी प्रशसाके प्रसगमें ही कही-कही दूसरी बातें आती हैं। उससे यह मालूम ही होता है, कि प्रधान तौरसे मासभोजी आर्य गौ, अश्व, अजा, अविका न मास खाते थे। मछली खाते तो जरूर होगे, पर ऋचाओमे उसका उल्लेख नही है।

कई तरहका गोरस भी उनका प्रधान भोजन था। घृत तो मुख्य था ही, पुरोडाश[3] (४।२४।५) भी उनका और उनके देवताओका प्रिय खाद्य था, जो शायद दूध और किसी अन्नको मिलाकर बनाया जाता था। पीछे तो खीरका यह पर्याय हो गया, लेकिन, ऋग्वेदमे चावलका कही उल्लेख नही है, अधिकतर जौका नाम आया है। हो सकता है, जौकी दलियाको दूधमें पकाया जाता हो, जिसे वह पुरोडाश कहते थे। विश्वामित्र[4] (३। २८।२) भी पुरोडाशके पकानेकी बात कहते है। दूध या दही मे एक तरहका भोजन अक्षिर तैयार किया जाता था, जिसका उल्लेख बहुत जगहो पर हुआ है—[5] (१।१३४।६, ३।५३।१४, ८।२।१०,११, ९।७५।५, ८६ २१ १०।४६।१०, ६७,६) अक्षिर कई तरह के होते थे, जैसे गवाक्षिर,

दध्याशिर। गवाशिर[६] (३।४२।१,७) और दध्याशिर[७] (५।५१।७) दोनो भोजन सोम और दूध-दहीके योगसे अथवा दूध-दही और दूसरी चीजोंके मिश्रणसे बनते थे। एक जगह[८] (८।७७।१०) क्षीरपाकका उल्लेख है। आजकल खीरपाक दूधमें पके चावलका ही दूसरा नाम है। उस समय क्षीरके साथ पका हुआ दूसरा अन्न जौ हो सकता था। पशुपालनकी प्रधानता रखनेवाले आर्योंके भोजनमें मास और गोरसकी प्रधानता थी। मासमें मसालेका उपयोग बहुत पीछे हुआ। लहसुन-प्याजका इस्तेमाल होता था, इसका भी कोई पता नही। घीमें तलने या बघाडनेको छोडकर और तरहका कोई मसाला उस समय उपयोगमें नही आता था। नमकका पहाड सप्तसिन्धुकी भूमि में था, इसलिए वह सुलभ था। हो सकता है, उसका इस्तेमाल किया जाता हो। आगमें भूनकर मासको खाना यह कृषि-युगसे पहले भी प्रचलित था। इस समय तो अब पकानेके लिए उखा (हडिया) का उपयोग होने लगा था[९] (१।१६२।१३), इसलिए उबले मासको भी खाया जाता था। "सुरभि पक्व मास" से भी इसी बातकी पुष्टि होती है।

२ अन्न

अन्नका अर्थ पुराने कालमें भोजन होता था, लेकिन धान्यकी प्रचुरताके कारण अब अन्न अनाजके अर्थमें भी प्रयुक्त होता है। तभी तो एक जगह[१०] (१०।१४६।६) कहा गया है—"बहवन्नामकृषीवला" (किसान-रहित बहुत अनाजवाली)। इससे किसान और अनाजका सम्बन्ध निश्चित है। "धाना, करभ, अपूप"[११] (८।८०।२) धाना, करभ[१२] (३।५२।१,७), करभ[११] (६।५६।१, ५।७।२) के उल्लेख भरद्वाज, विश्वामित्र और वामदेव जैसे प्राचीन ऋषियोंने अनेक बार किये है। धाना भुने हुए अनाजको कहते है, आज भी उसे दाना कहा जाता है। करभ सत्तूका नाम था, और अपूप रोटीको कहते थे। आजकल पूआ या मालपूआ यद्यपि एक खास तरहके बहुत स्वादिष्ट घृतपक्व भोजनको कहते है, लेकिन ऋग्वे-

दिक आर्योंका अपूप कण्डेपर या मिट्टीके तवेपर पकाई रोटी होगी। कृपिके आरम्भिक युगमें तन्दूरकी रोटी मध्य-एसियामें अनौके लोगोको मालूम थी, और तन्दूर आज भी सप्तसिन्धुकी रोटियोंके लिए प्रसिद्ध है। हो सकता है, आर्य लोग तन्दूरी रोटियाँ पकाते हो। इनके अतिरिक्त सक्तु [१८] (१०।७१।२)का भी उल्लेख हुआ है, जो करभका ही दूसरा नाम था। सत्तूको छानकर इस्तेमाल करते थे, जैसा कि "सक्तुमिव तितउना' से मालूम होता है। भोजन बनानेके लिए इस्तेमाल होनेवाली चीजोमें उलूखल (ओखल)[१९] (१।२८।१), तितउ (छलनी), एक प्रकारकी हाँडी चपाल[२०] (१।१६२।६) और उखाका उल्लेख हुआ है। हो सकता है, इससे अधिक भी पात्र रहे हो। कमसे कम मोहनजोडरोमे इस्तेमाल होनेवाले पात्रोको तो आर्य अपने सामने देख रहे थे।

आर्य कृपि भी करते थे, यह कृपीवल (किसान) (१०।१४६।६) मे ही मालूम होता है। भूमि क्षेत्र और अरण्यमें विभक्त थी [२१] (६।६१।१४), जिनमे क्षेत्रोमे वह जौकी खेती करते थे, और अरण्य पशुओंके चरानेके काम आते थे। जाडे मे वनोके पत्ते झड जाते थे—"हिमेव पर्णा मुषिता वनानि" [२२] (१०।६८।१०)। आजकल इसे ऊचे पहाडोमें ही देखा जा सकता है। सप्तसिन्धुके कमसे कम मध्य और पूर्वी भागमें इतना जाडा नही होता था, कि हिमकालमें वृक्षोपर पत्ते न रहे। उनके गिरनेका समय जाडोंके अन्तमे आता है। पत्तो और घासोकी पशुपालोको वडी अवश्यकता थी, इसलिए ऋतु-अनुसार जो परिवर्तन आते थे, उसकी ओर उनका ध्यान जाता था।

उनकी खेतीमे जौकी प्रधानता थी। खेतोको वह बैलोंसे जोतते थे—"गोभिर्यव न चर्कृषत्"[२३] (१।२३।१५ जैसे बैलोंसे जौके खेतको जोता जाये)। खेतोके लिए नहरोका भी इस्तेमाल करते थे। ये नहरें छोटी नालियाँ होगी, जिनको कुल्या [२४] (५।८३।८) कहते थे। आजकल भी पहाडोमें इन्हे कूल या गुल कहते है। हल (लागल) का भी जिक्र [२५] (४।५७।४) वाम देव ऋषिने किया है, और उन्होने ही जोती हुई हराई सीता[२६] (४।

५७।४) और फाल[३] (४।५७।८) का जिक्र किया है। लागलमें आजकल लोहेका फाल इस्तेमाल करते हैं। उस समय लोहा अज्ञात था तांवेका फाल भी लग सकता था, लेकिन तांवा अभी महार्घ धातु थी। इसलिए फाल भी लकडीका रहा होगा, हां, अपेक्षाकृत कडी लकडीका,

फल भी आर्य लोगोका भक्ष्य था। वह तो कृषि और गोपालनसे अपरिचित जातियोके लिए भी जगलमे सुलभ था। आर्य "स्वादो फलस्य जग्ध्वाय"[४] (१०।१४६।५, स्वादिष्ट स्वादु फलके खाने) की वात कहते हैं। फलको अधिक स्वादु वनानेका काम आदमीने कृत्रिम रूपसे किया। जगली फल सयोगसे भले स्वादु निकल आये, नही तो अधिकतर वह स्वादिष्ट नही होते, यह हम जगली सेव, नास्पाती, अगूर या जगली जामुन, शरीफे, आम आदिको देख कर जानते हैं। फलोको स्वादिष्ट वनानेके लिए वगीचोंके लगानेकी जरूरत थी, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें ही नही, वल्कि काफी पीछे तक नही मिलता। आर्य लोग जगलोमे स्वत उगे वृक्षोंके ही स्वादु फलोपर सन्तोष करते होगे। पक्व फल वृक्ष[५] (३।५४।४) का भी उल्लेख देखा जाता है। आर्योके भोजनमें फल भी शामिल थे। जिन्हे वह सुखा कर रख सकते थे, और दूसरे समयमे भी इस्तेमाल करते रहे होगे। पञ्जावकी भूमिमें कौन से फली वृक्ष प्राकृतिक रूपमे मौजूद थे, इनकी गिनती करना मुश्किल है। आम रहा होगा, जामुन भी होगी, करौंदे, कुँदरू जैसे फल भी रहे होगे, केलाके होनेमें सन्देह है, क्योकि उसे अधिक वर्षाकी जरूरत है। कटहल-वडहल अव भी पञ्जावमें दुर्लभ फल है। जगली वेर जरूर रही होगी।

§२ पान

गोरस-सम्वन्धी पान अर्थात् दूध, दही, छाछ उनके सवसे प्रिय और सुलभ थे, जैसाकि अव भी पञ्जावमें देखा जाता है। सत्तू खानेमें दहीका इस्तेमाल जो पीछे देखा जाता है, वह उस समय भी रहा होगा। वहुत अधिक गायोके रखनेसे छाछ या दही वहुत अधिक पैदा होता होगा। पनीर की शकलमें

सुखाकर रखनेका रवाज था, या नही, इसके वारेमें नही कहा जा सकता। पिछले कालमें पनीरकी तरहकी ही एक गीली-सी चीज आमिक्षाका उल्लेख मिलता है। आर्य मधु [९] (१०।१०६।१०) से सुपरिचित थे वल्कि वह इस खाद्यसे वहुत पहलेसे परिचित थे, क्योकि आर्योके दूरके सम्वन्धी रूसियोंके पूर्वज भी इसे जानते थे, यह दोनों भाषाओमें मधु और मेदुके एक-से नामसे मालूम होता है।

१ सोम

आर्योका सवसे प्रिय पेय सोम था। सोमका उल्लेख ऋग्वेदके सारे नवे मण्डल और सैकडो दूसरी ऋचाओमें हुआ है। सोम कोई ऐसी पेय चीज नही थी, जो कि दुर्लभ होनेके कारण वहुत कम लोग ही उसे पी सकते हो। उसके घडेके घडे (चमू) भरे रहते थे [१०] (९।२०।६)। सोम छननेमें छना जाता था। छना हुआ (सुत) सोम उस समयके आर्यों का वहुत प्रिय पान था। सोम उनके लिए दिव्य वस्तु था। ऋषि मधुच्छन्दा कहते है [८] (९।१।१)—"स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत।" (इन्द्रके पीनेके लिए छाने हुए हे सोम, स्वादिष्ट और मदिष्ठ धारासे क्षरित होओ)। सोमपान स्वादिष्ट भी होता था। स्वादु ही नही, वल्कि अत्यन्त स्वादु और मदिष्ट भी। कहते है [७] (८। ४८।३)—"अपाम सोम अमृता अभूवम' (हमने सोम पिया और अमर हो गये)। सोम दुर्लभ अमृत सजीवनीका नाम नही था। सोम घडोंके घडे तैयार किये जाते थे,—"सोम चमूषु" [१०] (९।२०।६)। मदिर सोम [११] (८।२१।५) आर्योका नित्य-प्रतिका पान था। सोम-यागमे विशेष तौरसे पीनेका विधि-विधान पीछे हुआ। हम देख चुके है, कि पके घोडेके मासकी तारीफ नोधा-नोधा कह कर आर्य लोग करते थे, यह मास केवल अश्वमेध यज्ञ तक ही सीमित नही था। उसी तरह मदिरसोमका पान केवल सोम-याग तक ही सीमित नही था। शामके वक्त नृत्य और पानगोष्ठी आर्योके स्वच्छन्द और सुखी जीवनका एक अविच्छिन्न अग थी। उस समय घडो सोम की जरूरत होती थी।

सोमको भाँग बतलानेपर पुराणपन्थी चौंक उठते हैं। प्राचीनोंने उसके बारेमें बहुत सी गप्पें उड़ाई हैं। चन्द्रमाका भी नाम सोम है, इसलिए सोमको उनके साथ जोड़ कर कहते हैं—सोमलता चन्द्रमाकी तरह एक-एक अंश बढ़ती पूर्णिमाको अपनी पूरी ऊँचाई पर पहुँचती है, उसके बाद घटते-घटते अमावस्याको अत्यन्त खर्व हो जाती है। कोई वनस्पति ऐसी देखने में नहीं आती। सूर्यके प्रकाश या हाथके स्पर्शसे छूई-मूई हो जानेवाली लाजवन्तीका हमें पता है। ऐसे भी वनस्पति मालूम है, जो कीड़ों-मकोड़ोंको अपने विशेष स्थानपर पकड़ कर भख जाते हैं। लेकिन, कला-कला बढ़ने-घटनेवाली वनस्पतिका हमें पता नहीं है। यह भी नहीं कहा जा सकता, कि साढ़े तीन हजार वर्ष पहले जो वनस्पति इतने परिमाणमें मौजूद थी, कि उसका बड़ा रस तैयार किया जा सके और अब वह बिल्कुल उच्छिन्न हो जाये। वस्तुतः सोमके साथ धीरे-धीरे जिन सैकड़ों दिव्य गुणोंको जोड़ दिया गया, वह भाँगमें नहीं है। भाँग कितनी ही जगहोंमें अधिक उपजनेवाली बेहया वनस्पति है, जिसको लोग भाड़ झोंकनेके काममें लाते हैं, इसलिए दिव्य सोम यही भाँग है, इसे वह कैसे माननेके लिए तैयार हो सकते थे? पर, सोम है वस्तुतः भाँग। तिब्बतमें आज भी उसे "सोमराजा" कहते हैं। पठान लोग भाँगको "ओम" कहते हैं, जो सोमसे होम होकर बना है। सोममें दूध और मधु मिला कर सोमरस तैयार किया जाता था। दूधिया भाँग अपने स्वादके लिए हमारे यहाँ प्रसिद्ध है ही। अगर पता न हो, तो सामने रख देनेपर आदमी लोटा भर भाँग पी सकता है। भाँगकी माजून उस समय नहीं बनती थी, जिसकी खोयेवाली बर्फी अपने स्वादके लिए प्रसिद्ध है। एक बार खतरेको न जानकर इन पंक्तियों के लेखकने कई बर्फियाँ खा डालीं, जिसका दण्ड हफ्तों भुगतना पड़ा था। सोमको बहुत स्वादिष्ट बनाते थे, उसकी स्वादिष्ट धाराकी बड़ी ख्याति थी। और मदिर होनेसे वह गम-गलत करनेके लिए किसी भी नशीली चीजसे कम नहीं था।

आर्य स्वास्थ्यप्रेमी थे। पशुपालनका जीवन परिश्रमका जीवन होता है। फिर आर्योंको सैनिकका जीवन भी बिताना पड़ता था, इसलिए दुर्बल

आदमियोंकी उनके यहाँ कदर नही हो सकती थी। इन्द्र उनके इष्टदेवता पौरुषके आगर थे। उनके लिए कहा गया है " (८।१७।८)—"तुवि-ग्रीव वपोदर सुवाहु "(पुष्ट गर्दन चर्बीदार पेट और सुन्दर भुजाओंवाला)। चर्बीवाला पेट अर्थात् तोदको शायद इन्द्रके प्रौढ होनेके ख्यालसे कहा गया है, नही तो आर्य-तरुणोका आदर्श तुदिल शरीर नही हो सकता। हाँ, मोटी गर्दन और वलिष्ट भुजाके साथ विशाल छातीको वह पसन्द करते थे, जैसाकि गुप्तकालकी मूर्तियो और अजन्ताके चित्रोमे देखा जाता है। भरद्वाज के वुढापेका चित्र ऐत्रेय ब्राह्मण (३।५।४९) में मिलता है, जहा वह दुवले लम्वे और श्वेतकेश (कृश, दीर्घ, पलित) वतलाये गये है। तरुणाईमे वह पलितकेश नही सुवर्णकेश रहे होगे, लम्वे होगे और मासल, पर छरहरा वदन रहा होगा।

आर्योका खानपान वहुत पुष्टिकर और स्वास्थ्यकर था। सप्तसिन्धुकी गर्मियाँ उस समय भी असह्य रही होगी, लेकिन अव १५ पीढ़ियोंसे रहते वह उनके लिए सह्य हो गई होगी। पञ्जाव (सप्तसिन्धु) आजकी तरह ही तव भी अधिक स्वास्थ्यकर रहा होगा। सत्तू-रोटी और मास-गोरसका उस समय कोई अभाव नही था। कृषि और गोरक्ष्य ही उनकी जीविकाके साधन थे, गौओ की लूटसे भी कभी-कभी आमदनी हो जाती थी। पर, अव सारी सप्तसिन्धु भूमि उनको अपनी थी, आर्य-भिन्न लोग भी उनके अधीन थे, इसलिए वह तीन शताब्दियो पहलेकी तरह अपने लिए भी लूटकी छूट नही कर सकते थे। उनके कर्मठ जीवनको कायम रखनेके लिए उत्तरके पहाडोके शम्वर और उसकी जातिवाले शत्रु मौजूद थे।

२. सुरा

सुरा भी आर्य पीते थे, यद्यपि उसे सुपान नही मानते थे। इसके वारेमें अध्याय १४ में हम लिखेंगे।

भाग ३

राजनीतिक

अध्याय ५

ऋग्वेद के ऋषि

§१ प्रधान ऋषि

यदि इन्द्र, अग्नि आदि अमानुप तथा कल्पित नामोको छोड भी दिया जाय, तो भी ऋग्वेदके ऋषियोकी सख्या साढे तीन सौ से कुछ ऊपर है। इनमें सबसे पुराने अगिरा, रहूगण, कुशिक है, परन्तु उनके एकाध ही मन्त्र मिलते हैं। उनके बाद सबसे पुराने तथा प्रधान ऋषि एक सूक्तमे साथ आये है, जो क्रमश भरद्वाज, कश्यप, गोतम, अत्रि, विश्वामित्र, जमदग्नि और वसिष्ठ है। यदि ऋग्वेदके दसो मण्डलोके क्रमके अनुसार देखा जाय, तो द्वितीय मण्डलके गृत्समद, तृतीय मण्डलके विश्वामित्र, चतुर्थ मण्डलके वामदेव, पञ्चम मण्डलके अत्रि, षष्ठ मण्डलके भरद्वाज, सप्तम मण्डलके वसिष्ठ और आठवें मण्डलके कण्व प्रधान मालूम होते है। प्रथम, नवम और दशम मण्डलोमें किसी एक ऋषि या उसके कुल-गोत्रकी प्रधानता नही है। बौद्ध त्रिपिटकके दीघनिकाय के तेविज्जसुत्त (१।१३) मे और दूसरे स्थानोमे भी मन्त्रोके कर्ता मन्त्रोंके प्रवक्ता दस ऋषि गिनाए गए है—अष्टक, वामक, वामदेव, विश्वामित्र, जमदग्नि, अगिरा, भरद्वाज, वसिष्ठ, कश्यप और भृगु। इनमें वामक नाम का कोई ऋषि नही मिलता, बाकी सबके मन्त्र ऋग्वेदमें मिलते है, और वामदेव, विश्वामित्र, भरद्वाज तथा वसिष्ठ तो सबसे अधिक मन्त्रोके कर्ता है। यदि मन्त्रोकी अधिक सख्याके कर्ताके अनुसार देखा जाय, तो सबसे अधिक—१०३ सूक्तो—के कर्ता वसिष्ठ है। उनके बाद दूसरे है—भरद्वाज ६०, वामदेव ५५, विश्वामित्र ४८, गृत्समद

४०, कक्षीवान् २७, अगस्त्य २६, दीर्घतमा २५, गोतम २०, मेधातिथि २०, श्यावाश्व १५, कुत्स १४, मधुच्छन्दा १०, प्रस्कण्व ९, पराशर ५, जमदग्नि ५। कम सूक्तोके कर्ता किन्तु कुछ महत्त्व रखनेवाले ऋषि है—कवष ४, वृहस्पति २, हर्यत १, अपाला १, अप्टक १, कुशिक १ और सुदास १। ऋग्वेदकालीन आर्यजनोंके पुरोहित निम्न ऋषि थे—

	पुरोहित	जन	प्रदेश
१	भृगु	द्रुह्यु	(परुष्णी-असिक्नीके बीच)
२	अत्रि, गृत्समद (पञ्चम मण्डल)	पुरु	(विपाश्-शुतुद्रिके ")
३	भरद्वाज (षष्ठ मण्डल)	दिवोदास, सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
४	वसिष्ठ (सप्तम मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
५	विश्वामित्र (तृतीय मण्डल)	सुदास (भरत)	(परुष्णी-विपाश्के ")
६	दीर्घतमा मामतेय	भरत-तृत्सु	(परुष्णी-विपाश्के ")
७	कण्व (अष्टम मण्डल)	तुर्वश, यदु	(परुष्णी-असिक्नीके ")

अधिक मन्त्रोके रचयिता और ऐतिहासिक महत्त्व रखनेके कारण आर्यजनोके इन पुरोहित-ऋषियोको प्रधानता देनी पडेगी, जो उमरमे छोटे-वडे हो सकते है, पर समकालीन है। इनमें भी भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्रका सवसे अधिक महत्त्व है। यह शम्वर-युद्ध फिर राजा सुदास के दाशराज्ञयुद्धके समय मौजूद थे। वसिष्ठ और विश्वामित्रने धरू सघर्षमे मुख्य तौरमे हाथ वटाया था। "दाशराज्ञयुद्ध" का काल ईसा-पूर्व १२००के करीव है और आर्य सप्त-सिन्धुमें ई० पू० १५००१ में आए, अर्थात् तवसे विश्वामित्रके काल तक आर्योकी चौदह-पन्द्रह पीढियाँ वीत चुकी थी

जव हम ऋषियोके पूर्वजोको देखते है, तो किसीकी पीढी अपने परदादासे आगे नही जाती। भरद्वाज के पिता वृहस्पति, पितामह लोकनामा और

प्रपितामह अगिरा थे। कण्वके पिता घोर और पितामह अंगिरा थे। कश्यपके पिता मरीचितक का ही नाम हमें मालूम है। गोतमकी भी एक ही पीढी अर्थात् पिता रहूगणका पता मालूम है। अत्रिके पिताका भी नाम निश्चित मालूम नही है। विश्वामित्रकी चार पीढी—अर्थात् पिता गाथी, पितामह कुशिक और प्रपितामह इषीरथ—मालूम हैं। वसिष्ठ और उनके भाई अगस्तके पिता मित्रावरुण बतलाए गए हैं, यदि वह मनुष्य नही देवता हैं, तो इसका मतलब है, कि उनके पूर्वजोमें किसीका नाम मालूम नही है। भृगुके पिता वरुण थे। इस प्रकार चार पीढी अर्थात् एक शताब्दी अथवा ई० पू० १३००से पहलेके किसी ऋषिपूर्वजका पता नही है। पीछेकी ओर देखते हैं, कि इन ऋषियोकी परम्पराओंको काफी सुरक्षित रखनेकी कोशिश की गई है। यह आश्चर्य की बात है, पूर्वजोकी स्मृति क्यो नही कायम रखी गई। लेकिन आश्चर्य करनेकी कोई जरूरत नही। आर्य जब सप्त-सिन्धुमे आए, तो घुमन्तू जीवन बिताते थे, अभी वह जनयुग—कबीलाशाही—से बाहर नही आए थे। गाय-घोडो और भेडोको पालना उनकी जीविकाका मुख्य साधन था। यदि कृषि करते थे, तो नामात्र ही। उनके उपयोगके लिए अन्न जुटानेवाले पराजित सिन्धुवासी मौजूद थे। लेकिन जीवन तथा विलासकी बहुत-सी सामग्रियोको स्वीकार कर वह सामन्तयुगीन सस्कृति और आर्थिक जीवनसे अछूते कैसे रह सकते थे? सामन्तवादकी ओर बढनेके लिए जनयुगकी दीवारोको तोडना आवश्यक था, अर्थात् भिन्न-भिन्न जनो (कबीलो)को एकताबद्ध करना था। एकताबद्ध करनेके प्रयासका अन्तिम परिणाम "दाशराज्ञयुद्ध" हुआ था।

इस पृष्ठभूमिमे देखनेपर मालूम हो जाएगा, कि ऋषियोकी जो पहले की तीन-चार ही पीढियां हमे मालूम होती हैं, उसका कारण यही है, कि तभीसे वह जनयुगसे सामन्त-युगकी ओर दृढ कदम रखने लगे। जिस तरह ऋग्वेदके प्रधान तीन ऋषियोंसे पहलेके ३०० वर्षोंका आर्योका इतिहास हमें अन्धकाराच्छन्न मालूम होता है, वैसे ही उसके बाद—जहां तक ऐतिहासिक साहित्यिक-सामग्रीका सम्बन्ध है—फिर तीन सौ वर्षों तक अन्धकार छा

ऋषियों के वंशवृक्ष—

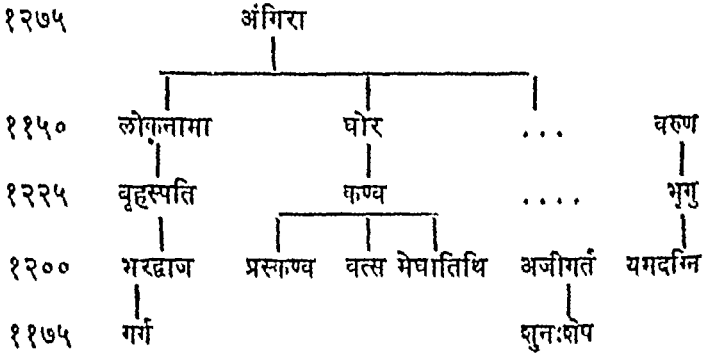
ई० पू०
१२७५
अंगिरा
११५०
लोकनामा
घोर
...
वरुण
१२२५
बृहस्पति
कण्व
....
भृगु
१२००
भरद्वाज
प्रस्कण्व
वत्स
मेधातिथि
अजीगर्त
यमदग्नि
११७५
गर्ग
शुनःशेप

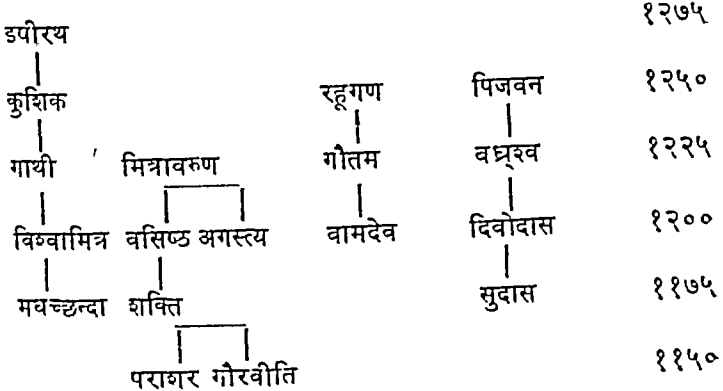
१२७५
डपीरय
१२५०
कुशिक
रहूगण
पिजवन
१२२५
गाथी
मित्रावरुण
गौतम
वध्र्श्व
१२००
विश्वामित्र
वसिष्ठ अगस्त्य
वामदेव
दिवोदास
११७५
मधच्छन्दा
शक्ति
सुदास
११५०
पराशर गौरवीति

जाता है। ऋग्वेदके ऋषि सप्तसिन्धुके ऋषि थे। उस वक्त आर्योका निवास और प्रभुता क्षेत्र सप्तसिन्धु अर्थात् सरस्वतीसे लेकर सिन्धुकी उपत्यका तकका देश (हरियाणा, पञ्जाब और पख्तूनिस्तान) था। तीन सौ वर्ष बाद यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय, शतपथ ब्राह्मण जैसे प्राचीन ग्रन्थ मिलते है। इन ब्राह्मणोके कर्ता ऐतरेय महीदास और याज्ञवल्क्य उस समय पैदा हुए, जबकि सप्तसिन्धु नही कुरु-पञ्चाल (पश्चिमी उत्तर-प्रदेश) आर्योका गढ बन चुका था और उनका प्रभाव पूर्वमें विदेह (उत्तरी बिहार) और दक्षिणमें भोज (मध्य नर्मदा उपत्यका) तक पहुँच गया था। यदि इन तीन सौ वर्षों की बाते अविच्छिन्न रूपसे प्राप्त होती, तो मालूम होता, कि आर्य सप्तसिन्धुसे पूर्वकी ओर किस तरह बढे ?

सप्तसिन्धुमे प्रवेश करनेकी बातका भी हमारे साहित्यमे कोई उल्लेख नही मिलता। हमें उसके बारेमें तुलनात्मक भाषा-विज्ञान और नृतत्व से मदद लेनी पडती है। फिर एकाएक कूदकर तीन सौ वर्षो बाद हमे दिवोदास और सुदास तथा उनके पुरोहित भरद्वाज, वसिष्ठ आदि एव उनके सघर्षोका पता लगता है। इसके बाद फिर इतिहासकी सरस्वती लुप्त होकर तीन सौ वर्ष बाद ब्राह्मणोके रूप मे हमारे सामने आती है। तब हमे कुरु और पञ्चालके समृद्ध जनपद और राज्य दिखाई पडते है, तथा इसी समय उपनिषद्के रूपमे आर्य-विचारक जनयुगीन देवमालासे अपनेको ऊपर उठाते दिखाई पडते है।

प्रधान ऋषियोके राजनीतिक जीवनके सम्बन्धमें हम उनके यजमानोके सघर्षके वर्णनमे बतलाएँगे। वह वस्तुत केवल धार्मिक नेता (पुरोहित) और कवि (कारु) मात्र ही नही थे, बल्कि अपने लोगो के प्रधानमन्त्री तथा सेनानायक भी थे। यदि बुढापेके कारण युद्धमे सीधे भाग नही ले सकते थे, तो अपनी तरुण सन्तानो और वशजोको उसमे शामिल होनेके लिए आह्वान करते थे। उनकी स्तुतियो और देवताओकी कृपासे उनके यजमानोको सफलता नही मिली, बल्कि उनके शक्तिशाली कुल-तरुणोकी तलवारो और धनुष-बाणोने सफलता में सहायता की।

१. भारद्वाज

रचनाके ख्यालसे ६० सूक्तोंके रचयिता वृहस्पतिके पुत्र भरद्वाजका ऋग्वेदके ऋषियोमे दूसरा नम्वर आता है। वह सुदास के पिता दिवोदासके पुरोहित थे। यदि आर्यजनोंके आपसी सघर्षमें वसिष्ठने सुदासकी वडी सहायता की थी, तो भरद्वाजका हाथ सुदासके पिता दिवोदासकी सफलताओं में कम नही था। ऋग्वेदका छठा मण्डल उनका और उनके वशजोका मण्डल है, जिसमें ऋषिने दिवोदासकी सफलताओका वर्णन किया है। इनका अपना मोटो था "तरे हम तरे तेरी रक्षामे हम तरें"[१] (५।१।१२) [२] (६।१५।१५ आदि)। दूसरा वाक्य जो इनकी ऋचाओमें दोहराया जाता है, वह है—"हम अच्छे वीरोंके साथ सौ सर्दियोतक आनन्दपूर्वक रहें" [३](७।४।८, ७।२४।१०)। इन्होने आधे दर्जन से अधिक स्थानोमें "अद्रोघ-वाच" (अमिथ्यावादी) शब्दका प्रयोग किया है[४] (६।५।१, ६।६।१२ आदि)।

दिवोदासका उल्लेख इनकी वहुत-सी ऋचाओमे मिलता है, किन्तु सुदासका कही नही है। तव मर गये होगे या सुदासके लिए अमगल कामनाएँ की हो इसलिये उन ऋचाओका सग्रह नही किया गया। लोभ, द्वेषसे यह पुराने ऋषि-पुरोहित अपने आजके वश-धरोंसे वहुत ऊपर नही थे इस-लिए जिस सुदास ने उनको राजपुरोहित पदसे दूवकी मक्खीकी तरह निकाल वाहर किया, उसके लिए वह अमगल-कामना नही करेंगे, यह नही हो सकता। ऋग्वेदमें सगृहीत ऋचाएँ मुख्यत ऋषि-पुरोहितोंके इष्टदेवताओंकी महिमा-वर्णन करनेके लिए है। भरद्वाजके देवता असफल साबित हुए, फिर असफलताके प्रदर्शन के लिए उनकी की गई स्तुतिको क्यो सुरक्षित किया जाता?

भरद्वाज अध्यात्म-शक्तिके कायल नही थे। उन्होने प्रार्थनाकी थी "अश्मा भवतु नस्तनू" (हमारे शरीर पत्थरके हो ६।७५।१२)[५]। उनके यजमान दिवोदास और सारे आर्यजनोका प्रवल शत्रु शम्वर नामक दस्यु-राजा था। वह विपाश् (व्यास) और परुष्णी (रावी) के वीचके

वर्तमान कागडावाले पहाडका राजा था और जैसा कि हमने अन्यत्र बतलाया है, वह द्रविड (सिन्धु) जातिका नही बल्कि किरात (मगोलायित) जातिका था। उसके सौ पहाडी दुर्ग थे, जिनमे १९वी सदी तक शत्रुओके दात खट्टे करनेवाला कागडा जैसा कोई किला (पुर) शायद इसी स्थान पर था। आयसी (तावे जैसी दृढ) के स्थान पर दूसरी जगह अश्मन्मयी (पत्थर जैसी दृढ) पुरियों (किलो) का भी जिक्र आया है। ये पहाडी किले पत्थरके रहे होगे। शम्बरके अलावा चुमुरि, धुनि, शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नाम वाले दूसरे आर्य-विरोधी असुर राजाओका उल्लेख भरद्वाजने किया है। यह भी पहाडी राजा तथा शम्बरके सहयोगी थे। इसमे शक नही कि सबसे प्रबल शत्रु शम्बर था। भयकर युद्धोंके नेता-पुरोहित भरद्वाज यदि वर्म (कवच), धनु, ज्या, इषुधि (तर्कश), रथ, घोडे, परशु (फर्से) जैसे युद्धके साधनोंका वर्णन करें, तो यह स्वाभाविक ही है।

क्षेत्र और अरण्यका भी उल्लेख भरद्वाज करते है "(६१।१४), जिससे पता चलता है, कि आर्योको खेतो और जगलो दोनोंसे काम था। खेतोमे वे जौ और दूसरे अनाजोकी थोडी-सी खेती करते थे, जिससे करम्भ (सत्तू) बना कर दही से खाते थे। पर, उनका प्रधान भोजन दूध और मास था, जिसके लिए एक-एक परिवारके पास हजारो गाये होती थी। इस प्रकार खेतोंसे भी अधिक चरागाहोकी उनको अवश्यकता थी। घोडे इस वक्त युद्ध और साधारण सवारीके अत्यन्त उपयोगी जानवर थे और उनके मांसका उपयोग भी होता था। दिवोदासके पुत्र सुदासमे वसिष्ठने अश्वमेध यज्ञ कराया था (ऐतरेय ८।४।२१)। अश्वमेध यज्ञका यही सबसे पुराना उल्लेख है। चायमान अभ्यावर्ती राजाने दो हजार गायें दान दी थी। गोदान उस समय अधिक हुआ करता था, आर्य ऋषि प्रभूत गौओं और अश्वोकी कामना करते थे। भरद्वाजने दिवोदासकी सोम-गोष्ठियोंमे सह-भागी होनेका वर्णन किया है "(६।१६।५)। उस समय सोमपान इतना साधारण था, कि उसे सोमयाग कह कर दिव्य पूजाका रूप देनेकी अवश्यकता नही थी।

दिवोदासके पिता वध्र्यश्वने आर्योंमें कबीलाशाहीका अन्त करके उन्हें एकतावद्ध करनेका श्रीगणेश किया था, जिसको उसके सुपुत्र दिवोदासने आगे बढाया। इसमें सबसे बडे विरोधी यदु और दुर्वश दो आर्यजन थे। दिवोदासने उनको दबानेमें सफलता पाई। उसने ६० हजार दासों (असुरों) का सहार किया था। बार्हस्पत्य भरद्वाजने सात बहने सरस्वती (६।६१।१०), तटोंको तोडनेवाली सरस्वती' (६।६१।२) का भी उल्लेख किया है। दासोंकी सात पुरियोंको पुरुकुत्स (पुरुओंके राजा कुत्स) ने ध्वस्त किया था[10] (६।२०।१०)। इससे मालूम होता है, कि भरतोंके राजा दिवोदासके ही कृपापात्र नही थे, बल्कि दूसरे जनोंमें भी भरद्वाज का मान था। बृहस्पति देवताका भी नाम है। भरद्वाजके पिता यदि बृहस्पति देवता थे, तो इसका अर्थ यही हुआ, कि उनके पिताके नामका पता नही है। पर ऋग्वेदके ऋषियोंकी अनुक्रमणीको देखनेसे मालूम होता है, कि इनके पिता बृहस्पति लोकनामा ऋषिके पुत्र और अगिराके पौत्र थे। अगिराके एक और पुत्र घोर थे। अगिराकी सन्तानोंमें तिरश्ची, हिरण्यस्तूप, वसुश्रुत श्रुतकक्ष भी थे। तिरश्चीके ऋजिश्वा और सुमित्र दो वेदोंके ऋषि होनेका पता लगता है। लेकिन अगिराके घोर और लोकनामा दोनो पुत्रोंकी सन्तानें ही अधिक ख्याति-प्राप्त हुई। घोरके पुत्र कण्व थे, जिनके वत्स, मेधातिथि, प्रस्कण्व, प्रगाथ जैसे प्रसिद्ध ऋषि पुत्र थे। प्रगाथके कई पुत्र ऋषि थे। अगिराके प्रपौत्र भरद्वाज भी योग्य पुत्रो और सन्तानोंके लिए सौभाग्यशाली थे। उनके पुत्र गर्ग, ऋजिश्वा, शिरिन्विठ ऋषि हुए।

२ वसिष्ठ

इन्होने दूसरे सभी ऋषियोंसे अधिक सख्यामें (१०३) सूक्त रचे है। इनके बाद इनके प्रतिद्वन्द्वी भरद्वाजका नम्बर आता है, जिनके ६० सूक्त मिलते है। यह माना जा सकता है, कि इन ऋषियोंने जिन्दगीमे जितनी ऋचायें रची, सभी को उनके वशज इकट्ठा नही कर सके। आखिर रचनाकालसे कम से कम दो सौ वर्ष बाद (ई० पू० १,०००) ऋचाओंका सग्रह किया गया, और सो भी लिपिबद्ध करके नही, बल्कि केवल श्रुतिके

रूपमें कठस्थ करके; लिपिवद्ध करनेमें और कई शताब्दियाँ वीती। लिपिवद्ध होनेके वाद भी वेदपाठी अभी तक अपने-अपने वेदोको स्वर-सहित कठस्थ करके रखते है। आधुनिक युगमें यह डर है, कि वेदपाठियोकी सख्या का जिस प्रकार ह्रास होता जा रहा है, उससे सौ-दो सौ वर्ष वाद शायद उनका मिलना मुश्किल हो जाय।

वसिष्ठके पिताका नाम मित्रावरुण देवता वतलाया जाता है। इनके सहोदर अगस्त्य मुनि थे। वसिष्ठके चित्रमह, मूलीक दो और पुत्रोका भी नाम और उनकी रची ऋचाये मिलती है, पर उनके पुत्रोमें प्रधान और शायद ज्येष्ठ भी शक्ति थे। इनके दो पुत्र पराशर, गौरवीति भी ऋग्वेदके ऋषि है। पराशरको व्यास या कृष्णद्वैपायनसे मिलानेकी कोशिश नही करनी चाहिए। ब्राह्मणोके पिछले साहित्य—महाभारत, रामायण और सवसे अधिक पुराणोमें इन ऋषियो और उनके समकालीन राजाओकी वशावलियो—मे वहुत गडवडी की गई है।

ऋग्वेदके सातवें मडलके ऋषि वसिष्ठ है। एक-एक मडलके प्रधान ऋषि और भी है। लेकिन उनमें और वसिष्ठमें यह भेद है कि जहा दूसरे मडलोकी रचनामें उन ऋषियोके पुत्र-पौत्रोका भी काफी हाथ है, वहा वसिष्ठ सातवें मडलके सभी १०४ सूक्तोके कर्ता है। उनके पुत्र शक्तिकी रचना ३२ वाँ और कुमार ऋषिके १०१-१०२ वें सूक्त सदिग्ध रूपसे वतलाये जाते है। वसिष्ठके मत्रोकी सवसे महत्ता यह है, कि इनकी रचना द्वारा तत्कालीन इतिहास और भूगोल पर जितना प्रकाश पडता है, उतना दूसरे किसी भी ऋषिकी रचनासे नही पडता। इनका तकियाकलाम "यूय पात स्वस्तिभि सदा न" (तुम स्वस्तिके साथ सदा हमारी रक्षा करो) है, जिसको उन्होने एक दर्जनसे अधिक वार अपने मत्रोमें दोहराया है। आर्यो और उनके ऋषियोकी तरह वसिष्ठके भी सबसे वडे आराध्य देवता इन्द्र थे। उसके वाद मित्र, सूर्य, अग्नि, विश्वेदेव, वरुण, अश्विद्वय, उषा, सरस्वती थे। जिस तरह आज शैव लोग मरने पर कैलाशवासी वननेकी इच्छा रखते है वैष्णव लोग वैकुण्ठके, कुछ कृष्णभक्त गोलोकवासी वननेकी इच्छा से भी

रे जाते है, उसी तरह उस समय आर्य मरनेपर इन्द्रलोकमें जानेकी इच्छा खते थे।

ऋग्वेदके वाद यद्यपि कालक्रमसे साम, यजु और अथर्व-वेदोका नम्वर ाता है, पर जहा तक इतिहासका सम्वन्ध है, उनसे हमें अधिक सहायता नही मिलती। उसके वाद प्राचीन ब्राह्मणोका नम्वर आता है। ऐतरेय ब्राह्मण ऋग्वेदका अपना ब्राह्मण है। ब्राह्मणोका काम मत्रोकी व्याख्या करना नही ।। ब्राह्मण (ब्रह्म-सम्वन्धी) ग्रथ है, ब्रह्मसे अभिप्राय यज्ञ या मत्रका है। ह यज्ञोकी भिन्न-भिन्न क्रियाओ और उनमें वेद-मत्रोके विनियोगकी वात तलाते है। ऐतरेय ब्राह्मणमे आधे दर्जन जगहो पर वसिष्ठका नाम आया ; एक (७।३।१६) से मालूम होता है, कि एक यज्ञमें विश्वामित्र होता, मदग्नि अध्वर्यु, वसिष्ठ ब्रह्मा, अयास्य उद्गाता थे। इसी यज्ञमें सुयवसका त्र अजीगर्त एक पुरोहित था। लालची अजीगर्तने तीन सौ गौवोंके ोभमे अपने पुत्र शुन शेपको खुद तलवारसे काट कर वलि देना स्वीकार किया। पुत्रने ऐसे वापसे पिड छुडानेके लिए विश्वामित्र को अपना पिता नाना चाहा और उनकी गोदमे जाकर वैठ गया। अजीगर्तने विश्वामित्रसे कहा—"ऋषि, मेरे पुत्रको मुझे दे दो।"

—"नही, देवोने इसे मुझे दिया है।" उन्होने शुन शेपका नाम वदलकर देवरात वैश्वामित्र रख दिया। अजीगर्तने पुत्रसे प्रार्थना की—

"हम दोनो (माता-पिता) तुझे वुलाते है। तू आगिरस-गोत्री अजीगर्तका पुत्र ऋषि है। हे ऋषि, तू अपने वाप-दादोके घरको मत छोड। हमारे पास आ जा।"

शुन शेपने कहा—"मैंने तेरे हाथमें वह चीज (तलवार) देखी है, जो शूद्र भी नही लेता। हे आगिरस, तूने तीन सौ गायोको मुझसे वढकर समझा।"

अजीगर्तने कहा—"तात, मै अपने किये पर दुखी हूँ। मै उसका निवारण करता हूँ। मै सौ गायें तुझे देता हूँ।"

शुन शेपने कहा—"जो एक वार पाप कर सकता है, वह दूसरी वार भी

कर सकता है। तू शूद्रतासे मुक्त नही है। जो पाप तूने किया है, वह किसी प्रकार निवारित नही हो सकता।"

विश्वामित्रने बीचमें कहा—"हाँ, निवारित नही हो सकता। यह सुयवसका पुत्र जब हाथमें तलवार लिये मारनेको तैयार था, उस समय बडा भयानक लगता था। इसलिए तू अपनेको उसका पुत्र मत समझ, मेरा पुत्र होजा।"

ऐतरेयके इस उद्धरणसे पता लगता है कि वसिष्ठ, विश्वामित्र, जमदग्नि, अयास्य, अजीगर्त तथा शुन शेप एक कालमें मौजूद थे। दूसरे वाक्य (७।५।३४) से मालूम होता है, कि एक यज्ञविधिको वसिष्ठने सुदास पैजवनको बतलाया था। आठवी पजिका (८।४।२१) में एक बडी महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है—"इन्द्रके इसी महाभिपेकसे वसिष्ठने पैजवन सुदासका महाभिपेक किया और उसने पृथ्वी भरमें विजय पाई और अश्वमेधयज्ञ किया।" उसके पिता दिवोदासके सम्माननीय पुरोहित भारद्वाजने क्यों नही सुदासका अभिपेक किया? वसिष्ठने क्यो किया? दिवोदासका एक पुत्र प्रतर्दन भी था, जिसे पीछे हुए काशिराज प्रतर्दनसे एक नही करना चाहिए। खानदानी पुरोहितको छोडकर दूसरे पुरोहितको स्वीकार करना यही बतलाता है, कि दोनो भाइयोमें पिताके सिंहासनके लिए झगडा था। प्रतर्दन शायद बडा लडका था। दिवोदासकी गद्दी पर भरद्वाजने उसे अभिपिक्त किया। चन्द्रगुप्त (गुप्त-वशी) की तरह सुदास अपने पिताका योग्यतर अधिकारी था। दोनो भाइयोमें झगडा हुआ। भरद्वाजने प्रतर्दनका पक्ष लिया, पर सुदासकी पीठपर वसिष्ठ जैसा चतुर और बहुवशवाला पुरुप था। ऐतरेय ब्राह्मणमें साफ बतलाया गया है, इस ऋषिने "इन्द्रके महाभिपेकसे पैजवन सुदासका महाभिपेक किया।" यद्यपि स्वय ऋग्वेदमें प्रतर्दन और वसिष्ठके झगडेका वर्णन नही है, और न यही बतलाया गया है, कि सुदासको गद्दी पानेमें अपने भाईसे मुकाबला करना पडा। पर ऐतरेय ब्राह्मणके कथनका वहाँ कोई विरोध नहीं मिलता, बल्कि वसिष्ठ का सुदासका पुरोहित बनकर दाशराज्ञयुद्धमें सफलता प्राप्त करनेके लिए सब कुछ करना, इसकी पुष्टि करता है।

सुदासके पिता दिवोदासने वसिष्ठके अनुसार "(७।४।७) सौ आयसी पुरियोका नाश किया था। वसिष्ठको इसका अभिमान था, कि भरतोके प्रताप को बढानेमे मेरा सबसे बडा हाथ है—"दण्डसे (पिटती) गौओकी तरह पहले भरत लोग (अनाथ) शिशु जैसे तथा परिच्छिन्न थे। वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए, तो तृत्सु बने लढेगे।" "(७।३३।६) भरतोकी सफलताओका वसिष्ठने अपने मातबे मण्डलमे कई जगह वर्णन किया है। भरतोने पुरु लोगोको अभिभूत किया "(७।८।४) सुदासके साथ सघर्ष मे द्रुह्यवो और अणुओंके ६६ हजार आदमी मारे गये "(७।१८।१४)। तृत्सुओने जमुनाके परे भेद, अज, शिग्रु और यक्षु लोगोको परास्त किया "(७।१८।१९)। ये अनार्य जन मालूम होते है। वसिष्ठने अनार्य लोगोको "शिश्नदेव" (लिगको देवता माननेवाले) बतलाया है "(७।२१।५)। वसिष्ठके एक कथनमे मालूम होता है, कि दाशराज्ञयुद्ध सिन्धुके तीर पर हुआ था, जहा पर इन्द्रने सुदासकी रक्षाकी, अर्थात् सुदास विजयी हुआ "(७।३३।३)।

पौराणिक युगमे वसिष्ठको वेश्या-पुत्र कहा गया है। देव-(जन युगीन) कन्यायें सदा कुमारिया रहती है उनका प्रणय स्थायी नही होता है, इसलिए उन्हे देवगणिका भी कहा जाता है। वसिष्ठको मैत्रावरुण (मित्र और वरुणकी सन्तान) और उर्वशीसे उत्पन्न बतलाया गया है "(७।३३।११)। अप्सरासे वसिष्ठका उत्पन्न होना भी उल्लिखित है "(७।३३।१२)। देवता या देवकन्यासे उत्पन्न होनेका मतलब यही है, कि पीछेके लोगोको वसिष्ठके माता-पिताका नाम नही मालूम था। यातुधान, यातुभावान (जादूगर) "(७।१०४।१५, ७।१।१५) का वर्णन वसिष्ठने किया है। झूठके लिए दरोग शब्द फारसीमे आज भी प्रयुक्त होता है, वसिष्ठने "द्रोघवाच" "(७।१०४।१४) का प्रयोग किया है। वसिष्ठ और अगस्त्य पीछेके साहित्यमे भाई बतलाये जाते है, जिसकी पुष्टि ऋग्वेदके एक मत्र "(७।३३।१०) से होती मालूम होती है। वसिष्ठके जीवनकी सबसे बडी घटना और सफलता दाशराज्ञयुद्धमे सुदासकी विजय अर्थात् सप्तसिन्धुके बिखरे हुए आर्यजनोको एकतासूत्र करना है। "दस राजाओने मिलकर

सुदाससे लडाई की" [३](७।८३।७)। तृत्सुओके देशमे दाशराज्ञ (युद्ध) में सुदासके लडनेका भी उल्लेख है (७।८३।७-८)।

३ विश्वामित्र—

यद्यपि गाथीके पुत्र कुशिकके पौत्र और इषीरथके प्रपौत्र, विश्वामित्रकी ऋचाओंसे अधिक सख्या रचनावाले गोतमपुत्र वामदेव है, किन्तु विश्वामित्रका महत्त्व वसिष्ठ और भरद्वाजके समान है, इसलिए हम उनको यहा ले रहे है। यह ऋग्वेदके तीसरे मण्डलके ऋषि है। विश्वामित्र और वसिष्ठका जो वर्णन हम रामायणमें पाते है, उसका ऋग्वेदसे कोई सम्बन्ध नही है, और वह ऐतिहासिक तथ्य नही, बल्कि पौराणिक कल्पना मात्र है। इन्द्र, वरुण, बृहस्पति, पूषा, सविता, सोम, मित्र आदि देवताओकी इन्होने स्तुति की है, और ३३३९ देवो (३।९।९)०३३ करोड नही ३३ देवताओका उल्लेख सबसे पहले इन्होने ही किया—"त्रिंशत त्रीश्च देवान्" [४](३।६।९, ३।२४।३०)। अपने साथी यमदग्नि [५](१०।१६७।११३)और अपने वश कुशिक (लोगो) [६](३।२६।१२) का इन्होने उल्लेख किया है। पुरविये कुशिक सख्या और प्रभुत्वमे बढे-चढे थे, इसीलिए शायद सुदासको अपने अभिषेक करनेवाले तथा दाशराज्ञयुद्धमे परमसहायक वसिष्ठकी ओरसे मुँह मोडकर विश्वामित्रकी ओर मुँह फेरना पडा। उस मनस्वी कार्यार्थी राजाके लिए एक उपकारक पुरोहितको छोडकर दूसरे पुरोहितको अपनाना स्वाभाविक था। इस तोताचश्मीको देखकर वसिष्ठके पुत्र शक्तिने विरोध किया, लेकिन प्राण गँवानेके सिवा उन्हें कोई लाभ नही हुआ। नदियोको थाहमें लानेका दावा वसिष्ठने भी किया है [७](७।१८।५ "सुदासे अर्णासि गाधानि अकरोत्"), और विश्वामित्रने भी। विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको गाधा (थाहवाली) होनेके लिए सवाल-जवाबमे जो प्रार्थना की है, वह ऋग्वेदकी बहुत सुन्दर ऋचाओंमेंसे तथा अच्छा काव्य है। नदियोके भी दिलको हिला देने वाली कविता वसिष्ठने नही विश्वामित्रने ही की थी। इसके कुछ अश निम्न प्रकार है— [८](३।३३)

विश्वामित्र—"विपाश् और शुतुद्री जल-सहित पर्वतोंके पाससे बन्धन-मुक्त घोडियोंकी तरह अट्टहास करती बछडोंके चाटनेकी इच्छावाली गुभ्र गौ-माताओंकी तरह समुद्रकी ओर दौड रही हैं।" ॥१॥

"हे दोनों नदियो, इन्द्र द्वारा प्रेरित, स्तुतियोंकी सुननेवाली तुम रथियों-की तरह स्वच्छ समुद्रकी ओर जा रही हो। साथ-साथ चलती ऊर्मियोंसे बढी हुई हे शुभ्रो, दोनों पास-पासमें चल रही हो ॥२॥

मेरे सौम्य वचनको (सुननेके) लिए मुहूर्त्त भर अपनी दौड में रुक जाओ। कुशिकका सुत विशाल नदियोंका आह्वान मैं मनकी बात के लिए कर रहा हूँ" ॥५॥

नदियां—"वज्रहस्त इन्द्रने पर्वतका हनन कर हमारे लिए नदियोंकी परिधि खोदी। सुपाणि सवितादेव हमें ले जा रहा है। हम उसकी आज्ञामें विस्तृत होकर जा रही हैं"॥६॥

विश्वा०—"ठहरो बहनो, (उस) कवि की बात सुनो, जो कि दूरसे बैलके रथ पर आया है। थोडा नीची होकर सुपारा हो और (रथके) अक्षसे नीचेके जलवाली नदी बन जाओ" ॥९॥

नदियां—"कवि, दूरसे अनस्रय द्वारा आये तेरे वचनको हम सुनती हैं। दूध पिलानेकी इच्छा वाली स्त्री, या पुरुषके लिए युवतीकी तरह हम तेरे लिए निम्न हो जाती हैं" ॥१०॥

विश्वा०—"प्यारियो, यदि संगाममें गायोंके इच्छुक तथा इन्द्र-प्रेरित भरत तुम्हें तर जायें, तो इनके लिए मैं तुम्हें यज्ञ-योग्य मानकर स्तुति करूंगा" ॥११॥ गो-इच्छुक भरत लोग (नदी) पार हो गये। विप्रने नदियों-की सुन्दर स्तुति की ॥१२॥

विश्वामित्रने सुदासको बडा किया, सिन्धु (नदी) को स्तम्भित किया "(३।५३।९) और सुदासके पीछेकी विजयोंमें बडी सहायता की। अपने समकालीन दोनों ऋषियोंकी तरह इनका भी एक मोटो था, जिसे इनकी अनेक रचनाओंमें" (३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२१।५, ३।२३।५) दोहराया गया है—"स्यात्र सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते

सुमतिर्भूत्वस्मे", जिसके अनुसार वह पुत्र-पौत्रोको सतान और सुमति (सुस्तुति) वाले होनेकी प्रार्थना करते थे।[११] (३।३०।२२)। उनको विश्वास था कि "विश्वामित्रका यह वचन भारत जनकी रक्षा करेगा।"[१२] (३।५३।१२)।

तीन सौ गायोके वदले वेंचकर मारनेके लिए तलवार उठाए अपने पिता अजीगर्तको छोडकर शुन शेपने किस तरह विश्वामित्रका पुत्र वनना स्वीकार किया, इसका उल्लेख हम पहले कर आए है। वामदेव यद्यपि गोतमके पुत्र थे, लेकिन ऐतरेय ब्राह्मणसे मालूम होता है, कि विश्वामित्रके सूक्तोका उन्होने प्रसार किया (ऐ० ६।४।१८)। ऐतरेयके अनुसार विश्वामित्र सवका मित्र था (६।४।२०), लेकिन वडे-वडे युद्धोका समर्थक कैसे सवका मित्र हो सकता था? हाँ, शुन शेपकी प्राणरक्षा जिस तरह विश्वामित्रके कारण हुई थी, उससे मालूम होता है, कि नर-वलिको वह मान्य नही समझते थे। विश्वामित्रके सौ पुत्रोकी वात सदेहास्पद है। हो सकता है, इसमे उनके पुत्रो, पौत्रो और प्रपौत्रोको भी गिन लिया गया हो। पर मधुच्छन्दा, ऋषभ, रेणु और ऋत ऋषि उनके पुत्र मालूम होते है। पौत्रोमें मधुच्छन्दाके पुत्र अघमर्षण और जेता तथा ऋतके पुत्र उत्कील भी ऋषि है। 'ऐतरेय ब्राह्मणमें लिखा है—"विश्वामित्रके सौ पुत्र थे। ५० मधुच्छन्दा से वडे और ५० छोटे। (शुन शेपका गोद लिया जाना) वडोको अच्छा नही लगा। तव विश्वामित्रने उनको शाप दिया—'तुम्हारी सन्तान अभक्ष्यभक्षी हो जाए।' इस प्रकार आन्ध्र, पुड्र, शवर, पुलिंद आदि दस्यु लोग विश्वामित्रकी सन्तान है। लेकिन मधुच्छन्दा और उसके पचास भाइयोने कहा—"हमारे पिता जो कुछ कहेंगे, हम उसीको मानेंगे। हम तुझ (शुन शेप) को ज्येष्ठ मानते है। हम तेरा अनुसरण करेंगे। विश्वामित्र इस उत्तरसे प्रसन्न हो गये। उन्होने निम्न मन्त्रोंसे पुत्रोके लिए स्तुति की—

मेरे पुत्रो तुम पशु और सन्तानसे फूलो-फलो।
तुमने मेरा कहा मानकर मुझे पुत्रवान् वनाया।
हे गाधिकी सन्तानो, देवरातके सरक्षण मे तुम पुत्रवान् होगे

वह तुमको सत्यके मार्गपर ले चलेगा।
हे कुशिक-सन्तानो, वीर देवरातके अनुचर बनो।
यह तुम्हारा पथ-प्रदर्शक और हमारी विद्याका दायभागी होगा।
विश्वामित्रके सब सच्चे पुत्र और गाथी के पौत्र जो देवरातके साथ हुए, उनको धन, यश और कीर्तिकी प्राप्ति होगी।" (७।३।१८)

यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मणने शुन शेपको देवरात वैश्वामित्र प्रख्यापित करनेकी कोशिश की है, पर ऋग्वेदके ऋषि शुन शेप आजीगर्तके नामसे ही प्रसिद्ध है।

४ वामदेव

गोतमके पुत्र वामदेव शायद वसिष्ठ, विश्वामित्रकी अगली पीढीके ऋषि थे, पर उनकी प्रतिष्ठा इन तीन महान् ऋषियोंसे कम नही है। विश्वामित्रके सूक्तोका वामदेवने प्रसार किया, इसे हम अभी बतला आए है। अपनी ऋचामे वामदेवने "गोतमात्पितु" [१] (गोतम पिता से ४।४।११) और "मामतेय" [२] (ममताका पुत्र ४।४।१३) का उल्लेख किया है, जिससे वामदेवके पिताका नाम गोतम मामतेय जान पडता है। वामदेवने कही नाम और कही बिना नाम दिए दिवोदास और उनके पुत्र सुदासकी सफलताओका वर्णन किया है। अतिथिग्व दिवोदासने सौ पुर जीते [३] (४।२६।३)। ये सौ पुर (किले) आयसी थे [४] (४।२७।१)। दिवोदासके लिए सौ अश्मन्मयी पुर इन्द्रने जीते [५] (४।३०।२०)। युद्धमे ३० हजार दास मूर्छित हुए। पख्णी (भरतोकी नदी रावी) पर इन्द्रने कृपा की [६] (४।२२।२)। इन स्थलो पर वामदेवने भरतो और उनके राजाओकी महिमा गाई है। सहदेव-पुत्र कुमार सोमक, [७] (४।१५।७-९), सृजयोका राजा देववात, वैदथी ऋजिश्वा, आर्जनेय कुत्स इन राजाओकी भी वामदेवने प्रशसा की है। हो सकता है, इनमेंसे कुछ उनके समकालीन और दाता हो। ५० हजार कृष्णो (काले असुरो) के मारे जानेका भी उल्लेख वामदेवने किया है [८] (४।१६।१३)। अग्निकी (चनाव)का भी

उल्लेख उनकी ऋचा [४१](४।१७।१५) में हुआ है। इनके समय आर्योंमें यह मशहूर था, कि, प्रात कालकी देवी उपा जब आकाश में गमन कर रही थी, तो विपाश् (व्यास) नदीके तीर उसका शकट गिर गया [४२](४।३०।११)। दासो मे कौलितर शम्बरका उल्लेख इन्होने किया है [४३](४।३०।१४-१५)। तुर्वश और यदु दोनो प्रभावशाली आर्यजनोका भी उल्लेख हैं। "कृपतु लागल" (४।५७।४), "मीता सुफला "(४।५७।६-७), "फाल" [४४](४।५७।८), हलके जोतने, हलकी हराइयोके सुफल होने और हलके फालोका जिक्र करके वामदेवने आर्योमे कृपिके प्रचारका उल्लेख किया है। मुस्कुराती हुई सुन्दर स्त्रियाँ [४५](योपा कल्याण्य स्मयमाना ४।५८।८) में उन्होने सुन्दरियोका उल्लेख कया है। वामदेव और नोवाके पिता गोतम और पितामह रहूगण थे। वामदेवके पुत्रोमे मूर्धन्वा, वृहद्दिव और वृहदुक्थ ऋषियोका नाम मिलता है।

६२ अन्य ऋषि

५. गृत्समद

यह शौनकके पुत्र थे। शौनकके तौरपर उल्लेख इनका [४७](९।८६। ४६-४८) हुआ है। शायद यह अत्रिके वशज थे। [४८](२-८-५) दिवोदास और शम्बरके सघर्षका इन्होने भी उल्लेख किया है। दिवोदासने ९९ पुरो (किलो) को जीता [४९](२।१९।६), शम्बरकी सौ पुरियाँ ध्वस्त हुईं [५०](२।१४।६-७), शत्रु कृष्णयोनि (काली जातियाँ, दास) थे [५१](२। २०।७)। शम्बरके अतिरिक्त स्वस्न, शुष्ण, अशुप, व्यस, पिप्रु, नमुचि [५२](२।१४।५), चुमुरि, धुनि [५३](२।१५।९), कुयव [५४](५४।२।१९।६)जैसे दास-राजाओका भी इन्होने उल्लेख किया है। "पहाडके वासी शम्बरको चालीसवें वर्षमें पकडा, [५५](२।१२।११) यह उल्लेख वामदेवने किया है, अर्थात् चालीस वर्ष तक पराक्रमी शम्बर आर्योंके हाथ नही आया था। भेडके ऊनीवस्त्रमें छाने हुए सोम कलशोमे रखे हैं [५६]("सोमो मेष्य पुनान कलशेषु

सीदति" ९।८६।४७) के कथनसे मालूम होता है, कि सोमको पीस और घोलकर ऊनी कपडेके छन्नेमें छानकर कलशोमे रक्खा जाता था।

६ कक्षीवान्

यह दीर्घतमा औचथ्यके पुत्र थे। पीछेकी परम्परा बतलाती है, कि दीर्घतमा और गोतम एक ही व्यक्तिका नाम है। कक्षीवान्ने गोतमका उल्लेख [५७](१।११६।९) किया है, पर उससे यह नही मालूम होता, कि गोतमका इनसे पैतृक सम्बन्ध था। भरद्वाजका इन्होने दो बार और अत्रिका दो बार उल्लेख किया, पर उससे इन्हें भरद्वाज या अत्रिके वशका नही कहा जा सकता। दिवोदासका इन्होने भी उल्लेख [५८](१।११६।१५, १६, १८, में) किया है। सौ पतवारोवाली नौका ("नौ शतारित्रा") [५९](१।११६।५) का इनका उल्लेख बतलाता है, कि समुद्रगामी पोत उस वक्त सप्तसिन्धुमें भी देखे जा सकते थे। विश्पला (१।११७।७, ११) घोषा [६०](१।११७।७, ११) जैसी मेधाविनी आर्य महिलाओका भी उल्लेख इन्होने किया है। सिन्धुतटवासी राजा,भाव्यने पुरोहितको बहुत-सा दान दिया था[६१] (१।१२६।१-४, ७)। इससे शायद कक्षीवान्को भी कुछ प्राप्त हुआ। गन्धारकी भेडो ("गान्धारी अविका" (१।१२६।७) के उल्लेखसे मालूम होता है, कि वर्तमान पख्तूनिस्तान की भेडें अपने कोमल ऊनके लिए उस समय भी प्रसिद्ध हो चुकी थी। गोतम और दीर्घतमा यदि एक ही होते, तो गोतमके पुत्र वामदेव और नोधाके साथ इनका भी नाम आना चहिए था।

७. अगस्त्य

मित्र-वरुणके पुत्र तथा वसिष्ठके भाई अगस्त्य ऋग्वेदके २६ सूक्तोंके रचयिता है। इनकी रचनाये प्रथम मण्डलके १६५-१९१ सूक्तोमे आती है। अपनी ऋचाओमें वसिष्ठका इन्होने उल्लेख नही किया है, यद्यपि अपनी पत्नी लोपामुद्रा [६२](१।१७९।४) का नाम दिया है। प्रसिद्ध आर्यमहिला विश्पला [६३](१।१८२।१) का इन्होने जिक्र किया

है और तुर्वश-यदु आर्यजनों का भी ६४ (१।१७ ।९), पर उनके संघर्षों के बारे में कुछ नहीं कहा है। तुर्वश-यदु आदिके साथ सुदासका जो दाशराज्ञयुद्ध हुआ था, उसके सारथी यदि इनके सगे भाई वसिष्ठ थे, तो उसकी कुछ प्रतिध्वनि अगस्त्यकी रचनाओंमें आनी चाहिए थी, पर उसका पता नहीं लगता। करम्भ (सत्तू) तथा लाभकारी तृण, शर, कुशर, दर्भ और मूजका इन्होंने जिक्र किया है "(१।१८७।१०, १।१९-१।३)। अगस्त्यके नाम पर जो कथायें पुराणोंमें मिलती हैं, उनका ऋचाओंमें कहीं भी आभास नहीं मिलता। वह पर्वतोंके गुरु थे, अन्तिम जीवनमें दक्षिणापथको चले गए, इसका भी कहीं पता नहीं है। उलटे यह "पञ्चक्षिति' (आर्योंके पाँच जनों) में चिपके रहनेवाले मालूम होते हैं "(१।१७६।३)।

८. दीर्घतमा

उच्थ्य के पुत्र दीर्घतमा २५ सूक्तों के कर्ता हैं। औचथ्य[७३] (१।१५८।२,४) और मामतेय दीर्घतमा[७४] (१।१५८।१) के उल्लेख से मालूम होता है, कि इनके माता-पिता का नाम उचथ्य और ममता था। दासों का उल्लेख इन्होंने भी किया है[७५] (१।१५८।५)। वीरों का उल्लेख करना[७६] (१।१४०।१२) बतलाता है, कि इन्हें भी युद्ध में दिलचस्पी थी। घोड़े के पक्व सुगन्धित मांस[७७] ("वाजिन पक्व सुरभि मांसम्" १।१६२।१२) से पता लगता है, कि घोड़े का मांस खाया जाता था। यज्ञ में मारे गए घोड़े के बारे में ये कहते हैं "न म्रियते वाजी"[७८] (घोड़ा नहीं मरता १।१६२।१)

९ गोतम

रहूगण के पुत्र गोतम बीसेक सूक्तों (प्रथम मण्डल ७४९३)[७९] (१७८।५।७४)[८०] (१।१८०।१६)[८१] (१।८३।४।५)[८२] (१।८४।१,१८)[८३] (१।९१।१२),[८४] (१।९३।४) के कर्ता हैं।

१० मेधातिथि

कण्व के पुत्र मेधातिथि २० सूक्तों के कर्ता हैं। अपने खानदान वालों को "कण्व लोग" (कण्वास) के तौर पर इन्होंने याद किया है" (१।१४।२,५)। आर्जुनेय कुत्स का आभार इनके ऊपर था" (८।३।१६)। इनको मेध्यातिथि भी कहा जाता है" (८।१।८,११)। मेधातिथि के पिता कण्व, पितामह घोर और प्रपितामह अगिरा थे।

११ श्यावाश्व

१५ सूक्तों के कर्ता अत्रि के पुत्र (या सन्तान) श्यावाश्व भी प्रसिद्ध ऋषि हैं। इन्होंने सुन्दर दान देने वाले अर्हत्" (५।५२।५) शब्द का प्रयोग किया है। उस समय अर्हत् शब्द का मुक्त-पुरुष अर्थ नहीं लिया जाता था, जैसा कि पीछे बौद्धों और जैनों में हुआ। सप्तसिन्धु के भूगोल के जानने में इनकी ऋचाएँ बड़ी काम की हैं। इन्होंने सप्तसिन्धु के पूर्वी छोर पर बहती यमुना" ((५।५२।१७) का उल्लेख किया है। उनके सबसे पश्चिम में बहने वाली कुभा (काबुल), क्रमु (कुर्रम), सिन्धु (सिन्ध) और सरयू (सिन्ध के पश्चिम की कोई नदी) का भी जिक्र किया है। एक जगह सुदास का भी नाम लिया है" (५।५३।२)। अत्रि के वंशजों में ये सबसे बड़े ऋषि थे।

१२ कुत्स

१५ सूक्तों के कर्ता यह अगिरा के पुत्र (या सन्तान) थे। इन्होंने अपनी ऋचाओं में कुत्सका उल्लेख कई जगहों पर किया है" (१।१०४।२, १।१०६।६)। अर्हत् (१।१९५।१) का, दास-राजाओं में शुष्ण, पिप्रु, वृत्र और शम्बर का भी उल्लेख किया है" (१।१०३।८)। कहा है, ध्रुवन अनुर की दो स्त्रियाँ थीं" (१।१०४।३)।

१३ मधुच्छन्दा

विश्वामित्र के पुत्र तथा अपने पिता के भक्त मधुच्छन्दा दस सूक्तों के कर्ता हैं। मुष्टिहत्या" (१।८।२) का उल्लेख इन्होंने किया है और

स्वादिष्ट और मदिष्ट सोमका भी[११] (९।१।१)। इनके पुत्रो में जेता और अघमर्षण दो ऋषि हुए हैं, जो एक-एक सूक्तो के रचयिता हैं।

१४ प्रस्कण्व

कण्व के पुत्र इस ऋषि ने दस सूक्त रचे हैं। अपनी ऋचाओ में इन्होने कण्व का उल्लेख आधे दर्जन से अधिक स्थलो मे किया है। अग्नि, अगिरा जैसे ऋषियो तथा तुर्वश पक्थ जनो का भी उल्लेख किया है। इनके उल्लिखित दशव्रज और गोशर्य सम्भवत सप्तसिन्धु के पश्चिमोत्तरी भाग में कोई स्थान थे। "सिन्धूना तीर्थे"[१०] (सिन्धुओ के घाट पर १।४६।८) के कहने से हम सिन्धु नद का नाम नही ले सकते, क्योकि उस समय सिन्धु शब्द नदी का भी पर्याय था। प्रस्कण्व घोडे, भेड, आदमी, नारी और गाय की मगल कामना करते हैं—"श न करत्यर्वते मेषामेष्ये नृभ्यो नारिभ्यो गवे"[११] (१।४७।६)। सुदास और तुर्वश्-जन का जिक्र इन्होने किया है। तुर्वशो और यदुओ के कण्व और प्रस्कण्व पुरोहित थे, जिनका खूनी सघर्ष सुदास के साथ हुआ था। मुमकिन है पिता-पुत्रो ने अपने यजमानो की विजय के लिए इन्द्र मे कामना की हो, पर विजय उनके शत्रु सुदास की हुई, इसलिए उन ऋचाओ के सग्रह करने की अवश्यकता नही समझी गई।

दस और उसके ऊपर सूक्तो के कर्ता ऋषियो के बारे मे हमने यहाँ कहा। ऋषियो की सख्या साढे-तीन सौ से ऊपर है, यह हम बतला आये हैं। अन्य ऋषियों में शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, पराशर शक्ति-पुत्र और अग्नि नौ-नौ सूक्तों के रचयिता हैं। वसिष्ठ के पोते पराशर सप्तसिन्धु के ऋषि थे, उन्हे कुरु-पचाल काल में नही लाया जा सकता। मेधातिथि के पिता तथा घोर के पुत्र काण्व, एव मरीचि के पुत्र कश्यप आठ-आठ सूक्तो के रचयिता है,। सोभरि कण्व, प्रगाथ काण्व और जमदग्नि ने पाँच-पाँच सूक्त रचे हैं। ऋषियो में एक अपाला आर्यनारी भी है, जिसका एक सूक्त ऋग्वेद (८।८०) मे मिलता है। प्रार्थना करने पर देवताओ ने

इसके चर्मरोग को हटाकर इसे सूरज जैसी चमडे वाली बना दिया। आर्यनारियो मे पतियो से द्वेष करने वाली भी थी, इसका उल्लेख अपाला ने किया है[१२](८।८०।४)। बुद्ध के उल्लेख किए दस ऋषियो में विश्वामित्र-पुत्र अष्टक का सिर्फ एक सूक्त (१०।१०४) मिलता है, जिसमें सप्तसिन्धु की सात नदियो, नौ शाखा नदियो और नव्वे नालो का उल्लेख किया गया है—"सप्तापो नवति स्रोत्या नव च स्रवन्ती"[१३] (१०।१०४।८)। कई ऋषियो के पूर्वज वरुण-पुत्र भृगु, इषीरथ-पुत्र कुशिक के एक-एक सूक्त मिलते है और कण्व-वजश वत्स का भी एक सूक्त है। सप्तसिन्धु से १८-१९ शताब्दियो बाद वत्स की वास्तविक स्थिति का कितना अज्ञान हो गया था, इसका पता हमे "हर्षचरित" मे वर्णित वत्स के जन्म आदि के बारे मे बाण के कथन से मालूम होता है।

अध्याय ६

दस्यु

§१ सिंधु-जाति (पणि)

सिन्धु-उपत्यकामें प्रवेश करनेके समय जिस जातिसे घुमन्तू आर्य घोड़-सवारोंका मुकाबला हुआ था, वह वस्तुत सिन्धु-उपत्यकाकी बहुत सस्कृत जाति थी, जिसके नगरोंके अवशेष मोहनजोडरो, हडप्पामें तथा जिसकी सस्कृतिके चिह्न दक्षिणमें गुजरात और पूर्वमें यमुना-उपत्यका तक मिले हैं। यदि वह पूर्वमें और दूर तक मिले तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं। पर, ऋग्वेदिक ऋषि अपने जिन भयकर प्रतिद्वन्द्वियोंका उल्लेख करते हैं, वे मैदानके सिन्धु-सस्कृतिवाले—द्रविड—नहीं थे, बल्कि वे पहाडोंमें रहते थे। उनके किले (पुर्) पत्थरोंके बने (अश्मन्मय) होते थे। इन किलोंके तोडनेमें आर्योंको लोहेके चने चबाने पडे। सिन्धु-जाति के साथ आर्योंके सघर्षका समय ई० पू० १,५०० और पत्थरोंके किलोंको तोडनेका समय अर्थात् ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषियोंका काल, उससे तीन सौ वर्ष बाद है, जबकि मण्डूक-प्लुति (गेंढककुदान) करके नहीं, बल्कि सर्प-गतिसे क्रमश बढते हुए आर्य सारे सप्तसिन्धु (जमुनासे सिन्धु पारकी भूमि) तक फैल गये। मोहनजोडरो और हडप्पा जैसे ताम्र-युगीन भव्य नगरोंके विजेता होनेपर भी आर्य घुमन्तू उनमे बसनेके लिए तैयार नहीं हुए। ये गौ, अश्व चराने वाले लोग घरोंके झुण्डों या ग्रामोंमे रहते थे। उनके ग्राम स्थायी नहीं थे। जिन लोगोंकी जीविका गायों-घोडों, अज-अवि (भेड-बकरियों) के पालन पर निर्भर हो, तथा जिनको धाना और करम्भ (सत्तू) के लिए थोडे-से जौकी जरूरत हो, वह एक जगह सालभर ठहरनेके लिए कैसे तैयार हो सकते थे?

ये भी मध्य-एसियामे शक, हूण, अवार और तुर्क घुमन्तुओकी तरह घोडेके वालोके तम्बुओमे ही अपना गुजर-बसर करते। लेकिन उसमें सबसे बडी बाधा भारतकी वर्षा थी, जिसके लिए घास-फूनकी झोपडियाँ अधिक अनुकूल और सस्ती थी।

सिन्धु-जातिके लोगोकी मुठभेड आर्योके साथ पहले हुई। यह निश्चय है, कि उन लोगोने आसानीसे हथियार नही रखा होगा। पर, ऋग्वेदके कालमें वे मुख्य प्रतिद्वन्द्वी नही थे। आर्य सिन्धु-जाति और अपने पहाडी दोनो प्रतिद्वन्द्वियोको कृष्ण (काला) या कृष्णयोनि और अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियोको दास या दस्यु कहते थे। एक थोडा-सा भेद जरूर मिलता है। प्रतिद्वन्द्वियोमे पणि प्रतिद्वन्द्वी नही, बल्कि दुधार गायें थे जो अपने धनके लिए बहुत प्रसिद्ध थे। उनके पास भी बहुत गाये थी। कभी-कभी उनसे झडप भी होती थी, लेकिन वह ऐसी नही होती, जिसके लिए आर्य अधिक चिन्तित होते। सिन्धु-जातिके प्रतिनिधि यही पणि थे।

पणि–पणिसे ही पणन (वेचना), पण्य (विक्रेय वस्तु), आपण (बाजार) और वणिक (बनिया) शब्दोका सम्बन्ध है। यह नाम शासनसे वचित पर श्रेष्ठतर सस्कृतिके धनी सिन्धु जातिके लिए अधिक उपयुक्त था। राज्यसे वचित होनेके बाद दासतामे बचे लोग कृषि और वाणिज्यसे ही अपनी जीविका कमा सकते थे, जिनमें वाणिज्य अधिक लाभदायक था। ऋग्वेदमे पणियोका उल्लेख बहुत स्थानोमें है। इनका जिक्र करने वालोमे भरद्वाज, वसिष्ठ, दीर्घतमा औचथ्य, गोतम राहूगण गृत्समद, हिरण्यस्तूप, अगिरसवश जैसे प्रसिद्ध ऋषि है। सबसे वृद्ध भरद्वाजका कहना है, कि अग्नि पणियोके धनको हरण करता है[1] (६।१३।३)। कुत्सका पणियोसे झगडा हुआ था, जिसके बारेमे भरद्वाज कहते है (६।२०।४) इन्द्र, तुम्हारे कृपापात्र कवि (कुत्स)से सैकडो पणि भाग गये। अन्य ऋषि केवल सीमाओंसे ही पणियोका धन हरण नही करते थे, बल्कि उनको प्रभावित करके भी काम निकालना चाहते थे। भरद्वाजने ही कहा है[2] (६।५३।३) हे पूषा, न देनेकी इच्छा करने वालेको दान करनेके लिए प्रेरित करो, पणिके मनको मृदु

करो। फिर कहते हैं[४] (६।५३।५) पणियोके हृदयको फाड दो, हमारे वसमें कर दो, आरासे पणिके हृदयको छेद दो। भरद्वाजके समकालीन ऋषि वसिष्ठ भी पणियोके साथ शाम-दाम दोनो नीतिके पक्षपाती थे। वह कहते हैं[५] (७।९।२) सुयज्ञ अग्निने पणियोका दरवाजा खोला। पणि श्रद्धाहीन अयज्ञ वकवासी हिंसावादी है। उन दस्युओको अग्नि दूर करता है[६] (७।६।३)। इसी कालके ऋषि उचथ्य-पुत्र दीर्घतमाका कहना था[७] (१।१५१।९) हे मित्रावरुण, सिन्धुओने तुम्हारे देवत्वको नही पाया और न पणियोने। पीछेकी परम्पराके अनुसार दीर्घतमा ही अन्धे-से आँख-वाले होनेके वाद गोतमके नाममे प्रसिद्ध हुए, परन्तु यह ऋग्वेदके प्रतिकूल है। दीर्घतमा उचथ्यके पुत्र थे और गोतम राहूगण के। इन दोनोके सूक्त भी अलग-अलग हैं। गोतम की भी दृष्टि पणियोके गायो के ऊपर थी[८] (१।९३।४) हे अग्नि-सोम, तुम दोनोने पराक्रमसे पणिसे गायें छीनीं। अपने शत्रुओकी गायो या धनका अपहरण करना, मुपना (चुराना) आर्यों और उनके देवताओके लिए कोई बुरी बात नही थी।

यही नही, ऋषि गृत्समद[९] (२।२४।६)के कहनेके अनुसार अत्यन्त गुह्य (गुहा)-स्थानोमे निहित पणियोकी निधिको भी आर्य ज्ञानियोने प्राप्त किया था। पणि धनी होनेके साथ अदित्सु (देनेके अनिच्छुक) हो, यह कोई नई बात नही थी। वनियोके स्वभावके अनुसार वह कुछ अधिक कञ्जूस होते थे, जो अतिथि-सेवी अर्च-घुमन्तू आर्योकी प्रकृतिके विरुद्ध बात थी। हिरण्यस्तूप[१०] (१।३३।३) इन्द्रको पणियोकी मनोवृत्ति न धारण करनेकी प्रार्थना करते हैं—हे इन्द्र, बहुत-सा धन देते पणि मत होना, हमसे अधिक लाभ नही चाहना। पणियोके लिए भी "वनिया अपने बापका नही होता' वाली कहावत थी। कक्षीवान्[११] (१।१२४।१०) चाहते हैं, कि पणि बिना जागे ही सोये रहें। पणियोके धन और गायकी अभिलाषा-हरेक आर्य करता था, इसलिए उनका सोये रहना अपहारकोके लिए अनुकूल था। सवरण[१२] (५।३४।७) के अनुसार इन्द्र पणियोसे अन्न मुपने (चुराने)के लिए जाते हैं और यजमानोमे बाँटते हैं।

ऋजिश्वा[11] (६।५१।१४)के कहनेके मुताबिक भोजन-सम्पन्न पणिको ाम नष्ट करे, क्योंकि वह वृक(भेडिया)है। असित देवल[12] (९।२२।७) ोमसे प्रार्थना करते हैं, कि तुम पणियोंसे वसु (धन) और गायोंको ले लो। दिवोदास-पुत्र परुच्छेपके सुपुत्र अनानत सोमसे प्रार्थना करते हैं[13] (९।१११।२) तुमने पणियोके धनको हथियाया।

बन्धु किसी राजासे कहते हैं[14] (१०।६०।६) राजन् दो लाल घोडोंको रथमें जोडो और दान न देने वाले सारे पणियोंपर आक्रमण करो। शयु [15](६।४५।३१) के समय पणियोंका सर्दार वृबु गंगाके विस्तृत कछारकी तरह ऊँचे स्थानपर रहता था। वृबु जानता था, कि पणियोंपर गजब ढोनेकी प्रेरणा यही ऋषि देते हैं, इसलिए उनने बृहस्पति-पुत्र शयुके साथ ऐसी उदारता दिखलाई कि वह मगन हो वृबुकी प्रशंसा करने लगे[16] (७।४५।३१–३३)। वृबु जिस भूमिमें रहता था, वही गंगाकी कछारकी तरह ही विस्तृत नहीं थी, बल्कि उसका हृदय भी उतना ही विशाल था। उसने वायुके वेग से धावित होते हजार गायोंका भारी दान तुरन्त किया। शायद शयु ही उसकी उदारतासे लाभान्वित नहीं थे, बल्कि अनेक कारु (कवि, ऋषि) हजारों गायें देने वाले, हजारों प्रशंसाके पात्र वृबुका यशोगान करते थे।

पणियोंके साथ आर्योंके सम्बन्धके बारेमें ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें एक पूरा सूक्त[17] (१०।१०८) है, जिसमें पणि और सरमाका संवाद दिया हुआ है। सरमा देवताओंकी कुतिया थी, किन्तु यहां वह आर्योंकी हिंसापूर्ण लुटेरक मनोवृत्तिका प्रतिनिधित्व करती है। इन ऋचाओंके रचयिता (ऋषि) पणिगण और सरमाको बतलाया गया है, जिसका मतलब यही है, कि असली रचयिताका नाम अज्ञात है। यह मनोरञ्जक वार्तालाप इस प्रकार है—

पणिगण—सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई? रास्ता बहुत दूरका है, जिसपर से नजर पीछे नहीं फेंकी जा सकती। हमारे पास क्या है? कैसे तुमने रास्तेकी नदियोंके जलको पार किया॥१॥

सरमा—हे पणियो, मैं इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारे निधियोंकी चाह में डोलती हूँ। तुमने बहुत सग्रह किया, इसके लिए आई। जलने मुझे बचाया, मैं नदियों के जलको पार करती हुई आई ॥२॥

पणि—सरमा, कैसा इन्द्र है, जिसकी दूती होकर तुम दूरसे आयी? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह गायोंको लेकर हमारा गोपति बने ॥३॥

सरमा—मैं नही जानती (कौन है) जो उसे हरा सकते है, जिसकी कि दूती बनकर मैं दूरसे आयी हूँ। गहरी नदियाँ भी उसको नही रोक सकती। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत होकर तुम सो जाओगे ॥४॥

पणि—हे सुभगे सरमा, आकाशके अन्तिम भागसे जिनकी इच्छा करती आई हो, उन गायोंको बिना युद्धके कौन छीन सकता है? हमारे आयुध तीक्ष्ण है ॥५॥

सरमा—पणियो, तुम्हारे वचन सैनिकोंके से नही है, तुम्हारे शरीर पापी है। आनेका मार्ग अप्रचलित है। कही बृहस्पति तुम्हे सकटापन्न न कर दे ॥६॥

पणि—सरमा, हमारी निधि पर्वतोंसे सुरक्षित, घोडो, अश्वो, गायो और वसुओ (धनो)से पूर्ण है। सुरक्षक पणि उसकी रक्षा करते है। हमारे स्थानमे तुम व्यर्थ ही आई ॥७॥

सरमा—यहाँ सोममे मतवाले अयास, आगिरस, नवगु जैसे ऋषि आयेगे। वह इन गायोंको छीन ले जायेगे। फिर पणियो, तुम्हारा यह वचन बकना भर है ॥८॥

पणिगण—हे सरमे, देवताओने डरकर तुम्हें यहाँ भेजा। हम तुम्हें अपनी बहिन (स्वसा) बनाते है, तुम मत जाओ। हे सुन्दरि, हम तुम्हें गाये देंगे ॥९॥

सरमा—मैं न भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व (भगिनीपन)। इन्द्र और घोर-अगिरावशी जानते है, जिन्होने गायकी इच्छासे मुझे सुरक्षित भेजा, मैं आई। पणियो, यहाँसे दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो यहाँसे, बहुत दूर भाग जाओ। गायें बाबासे कष्ट पा रही हैं, जिन निगूढ गायोंको बृहस्पति, सोम, सोम पीसनेवाले पत्थर और विप्र ऋषि प्राप्त करें।

पणि बेचारोंकी उस समय क्या स्थिति थी, यह इस सवादसे स्पष्ट मालूम होता है। यह ठीक उसी दृश्य को हमारे सामने उपस्थित करता है, जो १९वी शताब्दीके पूर्वार्ध तक मध्य-एशियाके ग्राम-नगर निवासियों की उत्तरी घुमन्तुओंके सामने थी,जो कि लूटके धनको धर्मार्जित धन समझते थे।

§२ शम्बरीय पहाड़ी

ऋग्वेदिक आर्योंके असली शत्रु शम्बर और उसके पहाडी लोग थे। शम्बर दिवोदासका प्रतिद्वन्द्वी था। उनसे पहले ही उसके पहाडी लोगोंने आर्योंके बढावको रोकने के लिए सघर्ष छेडा था। इन पहाडियो को आर्य दास और दस्यु नाम से पुकारते थे। पणियो के लिये भी यह नाम इस्तेमाल होता था, जो कि सिन्धु जातिके थे। ऋग्वेदके ऋषियोंका उद्देश्य व्यवस्थित इतिहास लिखनेका नही था, वे कभी-कभी ही इन बातोंका जिक्र करते हैं। यह आशा नही रखनी चाहिए, कि वहा हमें सिन्धु-जाति और पर्वतीय जातिके स्पष्ट परिचायक वाक्य मिलेंगे। तो भी उस समयकी स्थिति देखनेसे बातें स्पष्ट हो जाती हैं।

पणि राजनीतिक सघर्ष छोड चुके सिन्धु-जातिके ही लोग थे। अब हथियार पहाडियोंने उठायी थी। शम्बरके पास सौ अजेय पर्वतीय दुर्ग थे, जिनको दिवोदासने नष्ट किया। दिवोदासका जन पुरुओंकी शाखा भरत था, जिसे त्रित्सु भी कहते थे। परुष्णी (रावी) इनकी पश्चिमी सीमा थी, जिसके किनारे तक पहुँचकर सुदासके समय एक बार पक्थों (पठानों) और दूसरे पश्चिमी आर्यजनोंने त्रित्सुओंकी हालत बुरी कर दी थी। पूर्वमें त्रित्सुओं की सीमा पर शुतुद्रि (सतलुज)और विपाश् (ब्यास) नदियाँ थीं। पश्चिममें दासों, भलाननोंके पास पश्चिमी पहाड जरूर थे, लेकिन भरतोंके सामने सफेद कागजी ही का पहाड था। इनलिए जिस पहाडी जातिने आर्योंको लोहेके

चने चववाये, वह कागडाके पहाडोकी ही होगी। लेकिन, वहाँके आजके खश या हिन्दी-आर्य निवासियोको हम तीन हजार वर्ष पहले ताम्र-युगकी जाति नही कह सकते। तव यहाँ कौन जाति रही होगी? क्या सिन्धु-जातिके ही लोग यहाँ भी रहते थे? इन पहाडियोके लिए भी कृष्ण और कृष्णयोनि (काला) शब्द यही वतलाता है कि शायद वह भी मोहनजोडरो-हडप्पाके निवासियोके भाई-वन्द थे। लेकिन यह भिन्न जातिके थे, इसे समझना आसान हो जाता है, यदि हम ताम्र-युगके हिमालयके किरातोपर विचार करते है।

§३ मोन्-ख्मेर (किरात)

किसी समय सारे हिमालयमें किरात लोग वसते थे। पश्चिममें चम्वासे लेकर पूर्वमें आसामके नागा लोगोकी भूमितक और आगे वर्मा-थाई होते हिन्द-चीन तक इस जातिका पता आज भी लगता है। आजकलके विद्वान् सस्कृतके किरातोको मोन्-ख्मेरके नामसे पुकारते है। किर या किरात जाति का उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, पर इन पहाडोमें उस समय केवल यही जाति निवास करती थी। आज इस जातिके अवशेप या तो तिव्वतकी सीमा के पास रह गये है या तराईके कितने ही स्थानोमे। पश्चिमसे जितना ही पूर्व चले, उतनी ही इनकी सख्या वढती जाती है, और पूर्वी नेपालको तो आज भी किराती देश कहते है। किरात लोग चीनी, मगोल, तिव्वती जातिसे सम्वध रखते है, लेकिन यह सम्वन्व वहुत दूरका है, वैसे ही जैसा हिन्दी आर्योंक पश्चिमी यूरोपीयोके साथ। किरात या मोन्-ख्मेरके मुखोपर मगोलायित मुख-मुद्रा होती है, इसलिए तिव्वती सीमापर वच रहे मोन्-ख्मेरोको कितने ही विद्वान् भी तिव्वती समझ वैठते है, साधारण लोगोकी तो वात ही क्या?

कितने ही मोन्-ख्मेर है, जो अपनी भापा छोड वैठे है, कुछ ने अपनी मुख-मुद्रा को भी अल्पसख्यक होनेके कारण खो दिया, तो इसमें आश्चर्यकी वात नही। कितने ही अवभी अपनी भापा वोलते है। ये लोग है,

चम्बाके लाहुली, लाहुलके निम्न भागोंके निवासी कुल्लूके मलाणा गाँवके वासी, ऊपरी सतलुजके किन्नर या कनौर, माणा-नीतीके मारछा, अस्कोट (अल्मोड़ा)के राजी या राजकिरात, पश्चिमी नैपालके मगर, गुरुंग, मध्य नेपालके तमंग, नेपाल उपत्यकाके नेवार, पूर्वी नेपालकी तीनों किराती जातियां—लिम्बू, याखा, राई—सिक्किमके लेपचा, आसामके नागा आदि। गणना और महाभूतोंके कितने ही नाम इनकी बोलियोंमें तिब्बतीसे मिलते-जुलते हैं, लेकिन कितने ही शब्द इनके स्वतन्त्र हैं। पानीके पर्याय ती शब्दको ले लें। यह चम्बासे नागा पर्वतोंतक एक-सा चला गया है। नेवार लोग यद्यपि पानीके लिए इस शब्दको इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन मामके पानीके लिए वह ला-ती (माम-जल) कहते हैं, जिससे पता लगता है, कि तो का प्रयोग उनके यहाँ भी रहा है। बदरीनाथसे कैलासकी ओर जाते वक्त एक निर्जन पड़ावका नाम ती-पानी है। यहाँ हिन्दी और किरात दोनों भाषाओंके एक ही अर्थके वाचक दो शब्दोंको रख दिया गया है। ये जातियाँ ऐसी हैं, जो अब भी किरात-भाषा बोलती हैं, और कितने ही जगहों पर इन्हें किरात कहा भी जाता है। लेकिन कुछ किरात ऐसी भी हैं, जो अपनी भाषा छोड़कर पहाड़ी या तिब्बती भाषा बोलने लगे। तिब्बती भाषा-भाषियोंके बारेमें कहना मुश्किल है, क्योंकि दोनोंकी मुख-मुद्रामें से कोई अन्तर नहीं है। तो भी यह हमें मालूम है कि तिब्बती लोग ईसाकी सातवीं सदीके उत्तरार्धमें पश्चिमी मानसरोवर और नैपालके हिमालयोंकी ओर बढ़े। वह यहाँके पुराने लोगोंको मोन्पा और उनके देशको मोन्-युल (मोनदेश) कहते थे। काठमाण्डूसे नीचे उत्तरकी तिब्बती सीमान्तके भीतरके इलाकेको आज भी मोन्-युल कहा जाता है।

यह मोन शब्द बर्माके पुराने बाशिन्दोंके लिए भी इस्तेमाल किया जाता था। इन्हें मोन् और कम्बोजिया (कम्बुज) के रिश्तेको लेकर विद्वानोंने मोन्-ख्मेर नामको गढ़ा है। जान पड़ता है, स्पितीके लोग भी पहले मोन् (किरात) थे। नगोरीसे ऊपर नेलंगके रहने वाले भी मोन् हैं, यद्यपि वह आज मोन् (किरात) भाषा नहीं बोलते। नीती-माणा के तोलछा आज

भी पहाडी भाषा बोलते हैं, उसी तरह अल्मोडाके मिलमवाले भी। पर इनके चेहरे-मोहरे किरातोंसे हैं। ये किरातोंके ही अवशेष हैं। नेपालमें जो मोन्, पा अधिक दक्षिणमे खस भाषा बोलने वाली बहुसख्यक लोगोंमें बसे हैं, वे धीरे धीरे अपनी भाषा को भूल गये।

किरात या मोन् लोगोंकी एक शाखा हिमालयके नीचे तराईमे बसती है, जिसे थारू या भोग्ता कहते हैं। थारू लोग हरद्वार या जमुना से पश्चिम नही पाये जाते, पर उनके ताम्र-युगीन पूर्वज जम्मू तक रहे हो, तो कोई आश्चर्य नही। आज थारू नैनीतालकी तराईसे दरभगाकी उत्तरवाली तराई तक मिलते हैं, जिनसे पूर्वके मेची, कोच आदि भी मोन् हैं। थारू लोग अपने दक्षिण वाले सबसे नजदीकी पडोसियोकी भाषा बोलते हैं—उनमें मैथिली, भोजपुरी, अवधी भाषाएँ प्रचलित हैं। लेकिन उनके चेहरे पर मगोलायित मुख-मुद्रा की छाप बतलाती है, कि वे अपने दक्षिणी पडोसियोंमें से नही हैं।

ऊपरके कथनसे मालूम हुआ, कि हिमालयमें मोन् या किरात जातिके लोग अब भी रहते हैं। यह अवश्य है, कि पश्चिममें उनकी सख्या कम होती गई है। इसका कारण यही है, कि वहाँ उनकी भूमिमे दूसरे लोग जबरदस्ती घुस आये। इस प्रयत्नका श्रीगणेश ऋग्वेदिक आर्योंने कागडाके पहाडी किरातोंके दुर्गोंको छीन कर किया। कागडा जिलेमें केवल कल्लू सब-डिवीजनकी मलाणा-उपत्यकामे किरात बोली बोलने वाला मलाणा एक बडा-सा गाँव है। वह भाषामें जरूर किरात है, किन्तु आसपासके खसोंके समुद्रमें एक छोटा-सा द्वीप कैसे जातीय तौरपर अपनेको अछूता रख सकता था? मिलमवाले मुख-मुद्रासे मोन् होते भाषामे खस हैं, उससे उलटे मलाणा वाले मुख-मुद्रासे खस होते भाषासे मोन् हैं। खास कागडामे न अब किरात मुख-मुद्रा मिलती है, और न किरात भाषाका कही पता है। लेकिन स्थानोंके नामोंमें उसका पता जरूर लगता है। बैजनाथका ऐतिहासिक मन्दिर जिस गाँवमें है, उसे यद्यपि आजकल बैजनाथ कहते हैं, किन्तु दसवी-ग्यारहवी शताब्दीके शिलालेखमें उसे किरग्राम (किरातोंका ग्राम) कहा गया है। बैजनाथ तराई से बहुत दूर भीतर नही है।

परुष्णी, विपाश्-शुतुद्रिके बीच भरत त्रित्सुओकी भूमिके पडोसके पहाडी कागडाके लोग ही हो सकते थे और वे उस समय किरात थे। किरात काले नही, कुछ पीले रङ्गके होते है। ऋग्वेदिक आर्योने क्यो पणियोकी तरह इन्हें भी कृष्ण कहा, इसका कारण समझना आसान है। ऋग्वेदिक आर्य रङ्ग-रूपमें यूरोपियनोकी तरह गोरे थे, उनके लिए यह दोनो ही काले हो, तो कोई आश्चर्य नही।

पणियोकी तरह किरात जनोके धन-वैभवने आर्योको अपनी ओर खीचा होगा, इसकी सम्भावना कम है। उस समय यद्यपि पहाडोमे भी जगल और अच्छी चरागाहें थी, लेकिन पञ्जाबकी चरागाहो और जङ्गलोका वह मुकाबला नही कर सकती थी। तो भी आर्योकी सख्या और उनके गो-अश्वोकी वृद्धि ने उन्हे उत्तरकी तरफ बढनेके लिए मजबूर किया, फिर पशु-पाल मोनो और आर्योका झगडा शुरू हो गया। आर्य बलपूर्वक पहाडके नीचे रहने वाले मोनोको भगानेमें सफल हुए। यह इससे भी साबित है कि सप्तसिन्धु—जमुनासे सिन्धु पार तककी भूमि—के उत्तरकी पहाडी तराईमे कही भी धारू जैसी मगोलायित जाति नही मिलती। लेकिन इसे मोन् चुपचाप बर्दाश्त कैसे कर सकते थे? आखिर वह भी पशुपाल, घुमन्तू और लडाकू लोग थे। उन्होने भी बदला लेने के लिए आर्यग्रामोपर आक्रमण शुरू किया होगा। अब आर्य आगे बढे बिना रह नही सकते थे। फिर मोनोके पहाडी दुर्गोमे यही शम्बर युद्ध था, जिसने उन्हे पाला पडा।

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

प्रागैतिहासिक काल होते भी ऋग्वेदके आदिम ऋषियो—भरद्वाज, विश्वामित्र, वसिष्ठ—के समकालीन राजाओ दिवोदास और उसके पुत्र सुदासके समयमें पहुँचकर हम देश-कालके बारेमें कल्पनामें टँगे नही रहते। भीतरी और उससे भी अधिक बाहरी हिन्दू-युरोपीय जातियोकी भाषा और दूसरी सामग्रियोके आधार पर आर्योंके सिन्धु-उपत्यकामें दाखिल होनेका समय ई० पू० १५०० ठीक मालूम होता है। ऋग्वेदके ऋषि इस कालसे इतने बाद हुए, कि अपने प्रथम पूर्वजोके बारेमे वह बहुत कम बतला सकते है। ऋग्वेदके ऋषियोने अपनी ऋचायें इतिहास या ऐतिहासिक पुरुषोके अमर करनेके लिए नही बनाईं। वह मुख्यत पुरोहित थे, और अपने देवताओंके रिझानेके लिए ही इन ऋचाओको उन्होने रचा था। जहाँ-तहाँ बिखरी हुई यजमानोकी प्रशसाओंसे अनुमान होता है, शायद इस तरहकी और भी ऋचायें रही हो। लेकिन, अन्तमें तो ऋचाओका लक्ष्य देवताओको प्रसन्न करना ही था, इसलिए ऋषियोके उत्तराधिकारी अपने पूर्वजोकी हर तरहकी ऋचाओके कण्ठस्थ रखनेके लिए तैयार नही हो सकते थे। ऋग्वेदके समकालीन राजाओ दिवोदास, त्रसदस्यु आदिको देखनेसे उनकी दो तीन पीढियो तकका ही पता लगता है।

ऋग्वेदके सबसे पुराने पाँच जन (कबीले) थे—द्रुह्य, अनु, यदु, तुर्वश और पुरु। सम्भव है इन जनोके नाम अपने किसी पूर्वज नेताके ऊपर पडा हो। उज्बेकोकी तरह घुमन्तू जातियोमे ऐसा अकसर देखा जाता है, और सप्तसिन्धुके आर्य घुमन्तू थे। यही क्यो ? उनके ऋग्वेदकालीन उत्तराधिकारी

भी अर्ध-घुमन्तू थे, जिनके ग्राम वस्तुत गौओं और अश्वोंके सुविधाके ख्यालसे तत्कालीन उपयोगके लिए इकट्ठे बसे घरोंके समुदाय थे। वही पासमें वह कुछ जौकी खेती भी कर लिया करते थे। इन्हीं पाँचो जनोंकी प्रधानता थी। इसीलिये पीछे पञ्चजन शब्द मनुष्यका पर्याय माना जाने लगा। पाँचो जनों मे सबसे पूर्वमे पुरु लोग बसे हुए थे। ऋग्वेदके समयमें इनकी कुशिक, भरत, तृत्सु आदि कई स्वतन्त्र शाखाएँ हो गई थी, जिनमे कुशिक जमुनाके करीब सरस्वती-उपत्यकामे बसे हुए थे। सीमान्तपर विरोधियोंका भारी डर था, इसलिए वहाँ आर्योंके वही जन टिक सकते थे, जो सख्या और बल मे अधिक थे। पुरु जन ऐसा ही था। पीछे इसी पुरु जनमें कुरु पैदा हुए, जिन्होंने जमुना और गगाकी उपत्यकाओंमे अपने प्रभुत्वका विस्तार किया, लेकिन, यह ऋग्वेदसे पीछेकी बात है।

ऋग्वेदकालीन राजाओंके पहलेके राजाओंकी ओर जब हम ध्यान देते है, तो पाँच ही प्रभावशाली राजा पाते है—मनु, पुरूरवा, नहुष, ययाति और मन्धाता। पुरूरवाका सम्बन्ध सम्भवत पुरु जनसे था। मनुकी प्रजा होनेसे मनुष्य आदमियोंका वाचक समझा जाता है। वेदमे नाहुषी प्रजासे मनुष्य-साधारणका अर्थ लिया जाता है, जिसमे नहुषकी विशेषता सिद्ध होती है।

१ मनु

ऋग्वेदमें मनुका नाम ३१ स्थानोंमें आया है, लेकिन उनमें से कुछ जगहोंमें वह इस प्राचीन राजाका वाचक नही है। वस्तुत ऋग्वेदके पहलेके तीन सौ वर्षके कालमें सिर्फ तीन-चार राजाओंका नाम मिलना राजाओंकी दुर्लभताको ही बतलाता है, जिसका अर्थ यह है, कि अभी राजतन्त्र नही जनतन्त्र का बोलबाला था। मनुका नाम लेने वाले ऋषियोंमें भरद्वाज, गोतम और कुत्स जैसे अत्यन्त पुराने ऋषि है। वामदेव भी उसी समयके ऋषि है, जिन्होंने मनुका उल्लेख किया है। दिवोदासके पुत्र या वशज पञ्चालोंने भी मनुका जिक्र किया है। गृत्समद, नदापृण, कश्यप भी

उनका नाम लेते हैं। मनु देवताओके भक्त थे, यह ऋचाओंसे मालूम होता है, और वैसे भी समझा जा सकता है। सदापृण ऋषिके कहने[1] (५।४५।६) से मालूम होता है, कि मनुने विशिशिप्रको जीता था। यह पता नही लगता कि विशिशिप्र आर्य शत्रु था या अनार्य ? अनार्य होने पर वह उत्तरके पहाडो (कागडा-जम्मू)का निवासी था, या मैदानका ? पिता या पितरके तौर पर मनुका अगिरस गोत्री कुत्स और गृत्समदने उल्लेख किया है। कुत्सके कहे अनुसार[2] (१।१४।२) पिता मनुने रुद्रकी पूजा की ? गृत्समदके अनुसार [3](२।३३।।१३) पिता मनुने मरुत् देवताओकी औषधि स्वीकार की। ध्रुवस्यु वान्दन (१०।१००।५)भी मनुको "हमारे पिता" कहते है। भरद्वाज [4](६।२१।११)के अनुसार अग्नि देवताने मनुको दासोके ऊपर किया। दास आर्य-भिन्न सप्तसिन्धुके या पासके पहाडोके, निवासी थे, यह हमे मालूम ही है, कश्यप मारीच[5] (९।९२।५) कहते है, कि पवमान सोम देवताने दस्युसे मनुकी रक्षा की। इन कथनोंसे पता लगता है, कि दासो या दस्युओके साथके सघर्षमें सफलता प्राप्त करनेपर ही मनुकी महिमा बढी। इतना तो निश्चित ही है, कि मनु आर्योके प्रथम या सबसे अधिक प्रभावशाली राजा थे। पर उनका राज्य सप्तसिन्धुमें कहाँ था, यह कहना मुश्किल है।

२. पुरूरवा

अगिरा गोत्रीय हिरण्यस्तूप ऋषि [1](१।३१।४) के अनुसार अग्निने मनुके लिए द्यौ (स्वर्ग) को बनाया, पुरूरवाके लिए सुकृत (सुकर्म, स्वर्ग) सुकृत्तर हुआ। पुरूरवा वीर था, इसका उल्लेख ऋग्वेदमे है। वह एक रङ्गीला राजा था। अप्सरा उर्वशीके साथ उसका प्रेम कुछ ऐसी रोमाञ्चक घटना थी, जिसे ऋग्वेदके सग्रहकर्ता नही भूल सके। यह प्रेम-गाथा वास्तविक घटना हो, तो कोई आश्चर्य नही। पर तब उर्वशी अप्सरा नही मानवी होगी। हो सकता है, वह किसी ऐसे पराक्रमी जनकी कन्या रही हो, जो पुरूरवाके प्रभावको नही मानता था। दोनो प्रेमी हृदयोको अग्नि-परीक्षासे गुजरना पडा था। पुरूरवा अपनी प्रेमिकाके हृदय पर अधिकार

प्राप्त करनेमें सफल हुआ, लेकिन सदाके लिए नहीं। इसीका वर्णन ऋग्वेदके दसवें मण्डल[1] (७।१०।९५)में है। यह सूक्त पुरूरवा और उर्वशीके संवादके रूपमें है, और जो ऋचायें जिसके मुँहसे कहलवाई गई हैं, उनको उसीकी रचना बतलाया जाता है। यह ऋग्वेदके उन थोड़े से सूक्तोंमें है, जो बहुत सरल हैं। हम यहाँ कुछ ऋचाओंको देते हैं—

पुरूरवा—हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर कर ठहर, हम आपसमें बात करें। यदि हम दोनों मन्त्रणा न करेंगे, तो आनेवाले दिन हमारे सुखके नहीं होंगे ॥१॥

उर्वशी—इस हमारी बातसे क्या? प्रथम उषासी मैं तेरे पास आई हूँ। हे पुरूरवा, फिर अपने घर चला जा। वायुकी तरह मैं दुर्लभ हूँ॥२॥

पुरूरवा—तेरे बिना मेरे तूणीरसे बाण नहीं फेंका जाता, श्री नहीं मिलती, सैकड़ों गायोंको मैं जीत कर नहीं ला सकता, वीरों-रहित मेरे कार्य शोभते नहीं, न (मेरे) योद्धा नाद करनेकी सोचते हैं ॥३॥

उर्वशी—हे उषा, यदि वह उर्वशी श्वसुरको धन देनेकी इच्छा करती, तो पासके घरसे शयन-घरमें जाती और दिन-रात आरामसे रहती ॥४॥

हे पुरूरवा, दिनमें तीन बार मुझे तुम दण्डसे पीटते थे। मेरा किसी बातमें झगड़ा नहीं था। मेरे ही घरमें तुम आते थे, तब तुम हे सुवीर, मेरे (अभिन्न) अंग थे ॥५॥

जब पुरूरवा पैदा हुआ, उस समय देवपत्नियाँ आईं, बहने वाली समर्य नदियोंने उसे पालापोसा। हे पुरूरवा, भारी रणमें दस्युओंकी हत्याके लिए देवोंने तुम्हारा संवर्धन किया था ॥७॥

पुरूरवा—जब पुरूरवा मानुष होकर अमानुषियोंको सेवन करनेके लिए बढ़ा, तो वे हरिणीकी तरह या रथमें जोते अश्वोंकी तरह भयभीत होकर भागीं ॥८॥

जब (उसने) मरणधर्मा होते अमृताओंसे सम्पर्क करनेके लिए उनके पास जानेका प्रयत्न किया, तो वे अन्तर्धान हो गईं। उन्होंने शरीरको नहीं दिखाया, क्रीड़ा करते अश्वोंकी तरह भाग गईं ॥९॥

विजलीकी तरह चमक धारण करती जो उर्वशी मेरी कामनाओको पूरा करती थी, जिसने (मेरे लिए) सुजात मानुप-पुत्र जना, वह उर्वशी उसे दीर्घायु करे ।।१०।।

उर्वशी—हे पुरूरवा, तू ने रक्षाके लिए (उसे) ऐसे पैदा किया, मेरे में ओज धारण किया। जानते हुए मैंने तुझे कहा था। उस मय मेरी वात तूने नही सुनी, (अब) क्यो व्यर्थ वोलता है ।।११।।

पुरूरवा—पैदा हुआ पुत्र (तेरी) इच्छा करेगा। क्या जानते हुए वह आँसू नही गिरायेगा? स्नेहयुक्त पति-पत्नीको कौन वियुक्त करेगा? जो श्वसुरके घरमे आग जल रही है, उसे कौन वुझाएगा ।।१२।।

उर्वशी—मै तुझे वतलाती हूँ। वह तेरे पास आँसू नही गिरायेगा, न रोयेगा। मै उसका कल्याण करूँगी, उसे मै तेरे पास भेज दूंगी। तू घर लौट जा, तू मुझे नही पा सकता ।।१३।।

पुरूरवा—सुदेव (पुरुरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके (वह) फिर नही लौटेगा। वह आपदाओके नीचे दवेगा, उसे भेडिये वलात् खा जायेंगे ।।१४।।

उर्वशी—हे पुरूरवा, तू नही मरे, नही गिरे, न अशिव भेडिये तुझे खायें। स्त्रियोकी मित्रता नही हुआ करती, (उनके) ये हृदय (नही, वे तो) शालावृको (भेडियों) के (हृदय) होते हैं ।।१५।।

नाना रूपमें घूमती मैंने मनुष्योमे चार शरदो (सालो) की रात्रियाँ विताई। थोडा-सा घी एक वार दिनमे खाया, उससे ही तृप्त हो विचरण करती रही ।।१६।।

पुरूरवा—आकाशको पूरनेवाली लोकोकी विमानवाली उर्वशीकी मै वसिष्ठ (वामेच्छुक) प्रार्थना करता हूँ, मै सुकृतका दाता तेरे पास रहूँ। (हे) लौट आ, मेरा हृदय जल रहा है ।।१७।।

उर्वशी—हे ऐल (इला - पुत्र), यह देवता तुझसे कह रहे है, कि तू मृत्युका वन्धु होगा। तेरी प्रजा हविसे देवोकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें सुखी होगा ।।१८।।

इस सूक्तसे पता लगता है, कि पुरूरवाने दस्युओंके युद्धमें भाग लिया था। उसकी माँ का नाम इला था। उर्वशीसे उसके एक पुत्र पैदा हुआ था। महाभारत और पुराणोंमें उर्वशी और पुरूरवाकी बहुत-सी कथाएँ आती हैं, पीछेके लेखकोंने प्रयागके सामने झूसी (प्रतिष्ठान) को पुरूरवाकी राजधानी बतलाया है। लेकिन, पीछेकी परम्पराओंका ऋग्वेदमें पग-पगपर इतना विरोध है, कि जो भी उनके सहारे वेदार्थ का उपबृंहण करना चाहेगा, वह दलदलमें गिरे बिना नहीं रहेगा।

३ नहुष

वसिष्ठ[८] (७।६।५)ने कहा है, कि अग्निने नहुषको प्रजाओंका बलिहृत् (शुल्क पानेवाला) बनाया। इसी बातको हिरण्यस्तूप आंगिरस[९] (१।३१।११) ने भी दोहराया है—देवोंने नहुषको प्रजाओं (विशों) का पति बनाया।

४ ययाति

गय प्लात ऋषि[१०] (१०।६३।१)के कहनेसे पता लगता है, कि ययाति नहुष्य, अर्थात् नहुषका पुत्र था। हिरण्यस्तूप आंगिरस[११](३१।१७) से मालूम होता है, कि अग्नि देवता की तरह ययातिके पास मनु, अंगिरा आया करते थे।

५ मन्धाता

यह भी दस्युहन्ता[१२] (८।३९।८) प्राचीन आर्य राजा थे।

ऋग्वेदके प्राचीनतम राजाओंमें यही पांच नाम मिलते हैं। इनका आर्य-जनोंके विरोधियोंके साथ संघर्ष भी हुआ था, पर यह नहीं कहा जा सकता, कि सप्तसिन्धु (जमुनासे सिन्धुके परले पार तककी भूमि)के किस स्थानके ये राजा थे, और आर्योंके सिन्ध-उपत्यकामें प्रवेश करने (१५०० ई० पू०) के कितने बाद हुए, तथा इनसे कितने वर्षों या पीढ़ियों बाद ऋग्वेदके प्रसिद्ध राजा दिवोदास और सुदास आये।

अध्याय ८

शम्बर

§१ दस्यु

आर्य अपने प्रतिद्वन्द्वियोको दास कहते थे। ऋग्वेदके समय (१२०० ई० पू०) उनके मुख्य प्रतिद्वन्द्वी पर्वतवासी दास या दस्यु थे, मैदानी दासोंसे उनको कोई खतरा नही था। पर्वतीय दास हिमालयके किरात थे। यह हम बतला चुके हैं, कि इन्हीको नष्ट करनेके लिए आर्य तुले हुए थे। "इन कृष्ण-योनि दासोंका इन्द्रने नाश किया" (२।२०।७)। "इन्द्रने कृष्ण चमडे वालोको मारा" [२](१।१३०।८) परुच्छेपने कहा। परुच्छेप पर्वतीय दासोके सबसे प्रतापी राजा शम्बरके विजेता दिवोदासका पुत्र था। दासोका रूप काला बतलाया गया है। वसिष्ठ उन्हे शिश्नदेव कहते हैं[१] (७।२१।५)। शिश्नदेवका मतलब है, लिंगको देवता मानकर पूजनेवाले। पूजाके लिए पाषाण-लिंग मैदानी दासोके प्राचीन नगरो मोहन-जोडरो और हडप्पामें भी मिले हैं। किरातोके ताम्र-युगीन अवशेषोकी अभी उतनी छान-बीन नही हुई है। सम्भव है, उनमें भी लिंगको देवता माना जाता हो। नागको देवता तो वह मानते ही थे, जिसके बहुत से नामावशेष हिमालय मे मिलते है। शिश्नको देवता माननेवाले पर्वतीय शत्रु आर्योके सत्य (ऋत)को दबा न दें, इसकी वसिष्ठको बडी चिन्ता थी। भरद्वाज शम्बर-हन्ता राजा दिवोदासके पुरोहित थे। पुरोहितका अर्थ देवताओकी स्तुति करनेवाला, यज्ञ-सम्पादक ही नही था। प्रधानपुरोधा अपने राजाका प्रधानमन्त्री भी था। दिवोदास और उसके पुत्र सुदास बडे सेनानी थे। उनका सबसे बडा बल

योग्य पुरोहित था। पर्वतीय शत्रुओंके शिश्नदेव होनेका उल्लेख वभ्रु वैखानस ने भी किया है[२] (१०।९९।३)।

अपने उत्तरी शत्रुओंके जादू और मायासे भी आर्य बहुत डरा करते थे। वसिष्ठ भी शतयातु (सौ जादू वाले) कहे गये हैं[३] (७।१८।२१)। असुर(दस्यु) बड़े मायावी थे। गृत्समदके अनुसार इन्द्रने मायावी दानवको मायासे ही गिराया[४] (२।११।१०–१९)। जादू और मायाका अर्थ है, उनकी चालें बड़ी गम्भीर होती थीं, उनके पञ्जे आर्योंके गले पर पहुँचे रहते थे। वह केवल सीधी लड़ाई नहीं लड़ते थे, बल्कि अपने-से हजार वर्ष बाद पैदा होनेवाले कौटिल्यके कुछ बातोंमें गुरु थे।

अपने शत्रुओंमें सभी दुर्गुणोंको और अपनेमें सारे गुणोंको देखना। आज भी देखा जाता है। आर्योंको शम्बरके लोग सारे दुर्गुणोंकी खान जान पड़ते थे। प्रजापति-पुत्र विमदके अनुसार[५] (१०।२२।८) वह अकर्म (दुष्कर्मा) थे, वह अमन्तु थे। वह अन्यव्रत (दूसरे धार्मिक आचारोंके माननेवाले) ही नहीं बल्कि वह अमानुष भी थे। आर्य ऋषि मनुकी सन्तान तो वह सचमुच ही नहीं थे, इसी अर्थमें उन्हें अमानुष कहा गया है। विमद गिड़गिड़ाकर कह रहे हैं, कि दस्यु हमारे चारों ओर हैं, अमित्रोंके हननकर्ता इन्द्र, इन दासोंको मार। लेकिन, क्या सचमुच ही दस्यु आर्योंको चारों ओरसे घेरे हुए थे। दक्षिणके मैदानी इलाकेके लिए वह दावेदार नहीं थे। अधिक-से-अधिक वह हिमालयके चरणपर अवस्थित तराईके जङ्गलोंमें बास्ता रखते थे, और आर्योंके आनेसे पहले ही उस भूमिमें उनका बसेरा था। पञ्जाबकी तराई उतनी अस्वास्थ्यकर न रही होगी, जितनी कि गंगाके पूर्व की। अपने पूर्वजोंके समयसे चली आई धरतीको यदि वह छोड़ना नहीं चाहते थे, तो इसमें अपराध क्या था? जब उनके भीतर आर्य पशुपाल घुस आये, तो वह उन्हें चैनसे कैसे रहने देते?

गीतामें कहा गया है "यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्।" (जो करते हो, जो खाते हो, जो हवन करते हो, जो देते हो, जो तपस्या करते हो, उन सबको हे अर्जुन,

मुझे अर्पित करो)। सब कुछ को कृष्णार्पण करनेकी बात यद्यपि यहाँ कही गई है, लेकिन ऐसा सर्व-समर्पणकर्ता गीताकी इन पंक्तियोंके लिखे जानेके बाद शायद ही कोई हुआ हो। लेकिन, ऋग्वेदके ऋषि इस वचनका पूरा-पूरा पालन करते थे। गीताके लेखकके समय वेदकी ऋचायें सिर्फ रटी जाती थी, उनके अर्थोंको जाननेकी जरूरत नहीं समझी जाती थी। ऐसा न होता, तो बाण जैसे प्रतिभाशाली लोग, बचपनमें वेदको पूरी तौरसे कण्ठस्थ करके भी ऋषियों के बारेमें ऐसी बातें न करते, जो वेदके विरुद्ध हैं। इसीलिए हम यह नहीं कह सकते, कि वेदके प्रभावके कारण गीतामें सर्व-समर्पणकी बात कही गई। वेदके ऋषि अपनी सारी सफलताओंका एकमात्र कारण अपने देवताओंको समझते थे। उनके लिए असली विजेता बध्र्यश्व, कुत्स, दिवोदास, सुदास या उनके प्रधान मन्त्रदाता भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र नहीं थे। वस्तुत सारा काम इन्द्रने किया। मानुष विजेता केवल इन्द्रके हाथके हथियार थे।

वह नियति (विधिके विधान)को भी अपनी विजयोंका श्रेय नहीं देते थे। "इन्द्रने दास वर्णको नीचा और गुमनाम किया"[८] (गृत्समद २।१२।४)। "हे इन्द्र, धनी दस्युको मारो"[९] (हिरण्यस्तूप १।३३।४)। "इन्द्र, दास प्रजाको अभिभूत कर"[१०] (गृत्समद २।१।४) ऋषि साधनके तौरपर आर्योंके पौरुषसे इन्कार नहीं करते थे। कण्व-पुत्र घोरके अनुसार[११] (१।३६।१८) अग्नि के साथ यदु और तुर्वश लोग बुलाये गए। अग्नि इसी उद्देश्यसे नववास्तु बृहद्रथ तुर्वीतिको लाये। यदु और तुर्वश आर्योंके पाँच प्रधान जनोंमें बहुत अधिक शक्तिशाली थे। एक समय तक भरतों और इन दोनों महान् जनोंमें आर्योंके मुखिया बननेकी होड़ रही। दिवोदासने इनको अपने वसमें करनेमें सफलता पाई, लेकिन उसमें बलका उतना हाथ नहीं था, जितना कि शम्बरके विरुद्ध सभी आर्योंके एक होनेकी अवश्यकताका। नववास्तु (नये निवास वाले) बृहद्रथ, तुर्वीति इन्हीं दोनों जनोंके उस समय नेता थे, जब वह पश्चिमसे उस भूमिमें आये, जो कि दासोंके संघर्षका मैदान बनी हुई थी। ऋषि वामदेव ने कहा है[१२] (४।१६।१३) "इन्द्रने ५० हजार कृष्णों (कालों) को मारा। उनके दुर्गों (पुरों)को ध्वस्त किया।" यह ५० हजार कृष्ण किस

वक्त मारे गये? शायद उसी समय, जब कि दिवोदासने दासोंका जीवन-मरणका संघर्ष चल रहा था। गृत्समदके अनुसार[११] (२।२०।८) "इन्द्रने दस्युओंको मारकर उनके आयसी पुरोंको नष्ट किया।" अयस्से यहाँ न लोहे का मतलब है, न ताँबे ही का, क्योंकि उन्ही पुरोंको कितनी ही जगह अश्मन्मयी भी कहा गया है, जिसका अर्थ है पाषाणमय। इन पुरियोंका नष्ट करनेवाला दिवोदास था।

दासोंमें शत्रुओंसे सिर्फ पुरुष ही नहीं लड़ते थे, बल्कि उनकी स्त्रियाँ भी डटकर मुकाबला करती थीं। आर्य अपनी स्त्रियोंको हथियारबन्द नहीं करते थे। हो सकता है, सप्तसिन्धुमें १५ पीढ़ियाँ रहनेके बाद उन्होंने पराजित सिन्धु-जातिके लोगोंके नागरिक आचार-विचारकी कितनीही बातें सीखी थीं, उनमें एक यह भी थी—हमें स्त्रियोंको पुरुषोंकी पंक्तिमें नहीं लाना चाहिए। वध्रिकी एक ऋचा[१२] (५।३०।९)में है—"दासने स्त्रियोंको आयुध (हथियार) बनाया।" इस पर इन्द्रने कहा— "इसकी अबला सेना मेरा क्या करेगी?" स्त्रियोंके लिए अबला शब्दका प्रयोग शायद यहीं सबसे पहिले हुआ, जिससे ध्वनित होता है, कि स्त्रियोंमें योद्धा होने की योग्यता नहीं है।

ऋग्वेदके सबसे पुराने ज्ञात आर्य-शासकका नाम मनु है। मनु ऋषि और विजेता था। वह ऋग्वेदसे बहुत पहले हुआ था। ऋग्वेदमें शम्बर-युद्धसे पहलेके ऋषियोंकी ऋचाओंको जमा नहीं किया गया है। तो भी वसिष्ठके पुत्र शक्तिके मुत गौरिवीतिके अनुसार[१३] (१०।७३।७) मनु ऋषि थे—"'ऋषि मनुके लिए इन्द्रने दास नमुचिको मारा।" नमुचि शायद शम्बरका पूर्वज पहाड़ी राजा था। पीछेकी परम्परा इसका सम्बन्ध शम्बरसे ही बतलाती है। शम्बरके प्रतिद्वन्द्वीके प्रधान-मन्त्रदाता भरद्वाज भी कहते हैं[१४] (६।२०।६) "दास नमुचिके सिरको इन्द्रने चूर्ण किया", दूसरे स्थान[१५] (५।३०।७,८) के अनुसार "इन्द्रने दास नमुचिके सिरको काटा।" यह कटाकटी मनुके समयमें हुई थी। वागदेवके अनुसार[१६] (८।३०।२१) "दभीतिके लिए ३० हजार दास मुफ्त दिये।" आर्य राजा दभीतिका प्रतिद्वन्द्वी कौन

दस्यु था, जिसके ३० हजार आदमी खेत आये? हो सकता है दभीति दिवोदाससे पहलेका कोई आर्य-नायक था।

आर्योंको जिन दास-सेनानियोका जवर्दस्त मुकावला करना पडा थो, उनके नाम हमें कई ऋचाओमें मिलते हैं, जैसे —

भरद्वाज[११] (६।१८।८)—चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण।

वसिष्ठ[*] (७।९९।४)—दास वृषशिप्रका उल्लेख करते हैं।

कुत्स आगिरस[१२] (१।१०३।८)—शुष्ण, पिप्रु, कुयव, वृत्र, शम्बर।

गृत्समद[१३] (२।१४।५)—शुष्ण, अशुष, व्यस, रुधिक्रा।

वश अश्व-पुत्र[१४] (८।४६।३२) एक सज्जन दस्यु वल्बूतका नाम लेते हैं, जिसने उन्हें सौ दास (गुलाम) प्रदान किये थे।

पुराने दास महावीरोमें नमुचि और ऋग्वेदकालीनोमें शम्बर महा-पराक्रमी थे। शम्बरके सहायकोमें कितने ही और भी पराक्रमी सेनानी थे, पहाडी शत्रुओके पास सिर्फ शम्बर ही एकमात्र महान् सेना-नायक नही था। शम्बरके वाद जिस पहाडी वीरका सवसे अधिक उल्लेख उसके शत्रु करते हैं, वह शुष्ण है।

§२ शंवरके सेनापति

१. शुष्ण

शुष्ण और उसके प्रतिद्वन्द्वी कुत्स आर्जुनेय औशिज, शम्बर और दिवोदासके समकालीन तथा उनके ही सेनानी थे, यह स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नही मिलता, लेकिन सव देखनेसे यही पता लगता है, कि शुष्ण शम्बरका, और कुत्स आर्जुनेय दिवोदासका दाहिना हाथ था। ऋग्वेदमें तीन कुत्सोका पता लगता है। कुत्स आगिरस एक ऋषि थे, और शायद कुत्स आर्जुनेय के समकालीन थे। पुरु जनका एक कुत्स (पुरुकुत्स) था, जो शम्बरके युद्धसे कुछ पहले हुआ था। शम्बरके प्रतिद्वन्द्वी दिवोदासका समकालीन त्रसदस्यु (दस्युओको त्रास देने वाला) इसीका पुत्र था। तीसरा कुत्स यही अर्जुन-पुत्र था, जो पराक्रममें दिवोदाससे कम

नहीं था। शुष्णको इसीने खतम किया था, लेकिन आर्य ऋषि किसी मनुष्यको यह श्रेय कैसे दे सकते थे? इसीलिये नाभाकने कहा[२४] (८।४०।१०।११) —"इन्द्रने शुष्णके अडो (सतानो) को भी छिन्न-भिन्न कर दिया।" कण्व-पुत्र मेधातिथि[२५] (८।१।२८) के अनुसार शुष्णके चलायमान (चरिष्णु) पुरोको नष्ट किया गया था। पुर उस समय मोर्चाबन्द स्थान, दुर्ग या किलेको कहते थे। यह पत्थरके और लकडीके भी होते थे। लेकिन, खास कर पहाडी लोगोंको पत्थरोंको जोड कर पुर बनानेमें अधिक सुभीता और लाभ था। स्थायी पुरोंके अतिरिक्त चरिष्णुपुर शायद वह थे, जो लडाईके दौरानमें या घमतप्पीके लिये मोर्चाबन्दी करके बना लिये जाते थे।

हिरण्यस्तूप आगिरस[२६] (१।३२।१२) के अनुसार "इन्द्रने शुष्णको छिन्न-भिन्न किया।" पर यह छिन्न-भिन्न करना इतना आसान नहीं रहा होगा, क्योंकि शुष्ण बडा मायावी था। उसके दाव-पेचका मुकाबला इन्द्र जैसा आर्योंका सर्वश्रेष्ठ देवता ही कर सकता था, इसीलिये विश्वामित्रके पौत्र और मधुच्छन्दके पुत्र जेताने कहा है[२७] (१।१११।७)—"हे इन्द्र, तुमने माया (चालों) द्वारा मायी शुष्णको नष्ट किया।" सप्त आगिरस[२८] (१।५६।३३) ने भी शुष्णको मायी और उसके दुर्गोंको आयसी (पत्थरका) कहा है। "शुष्णके पुरोंको चूर्ण किया गया"[२९] (वामदेव ४।३०।१३)।

शुष्ण और कुत्स—जब शुष्णको नष्ट करनेवाले इन्द्र थे, तो उन बाहुओंके उल्लेखकी क्या आवश्यकता, जिन्होंने शुष्णका सहार किया था? पर, ऋषि लोग ऐसी बाहुओंसे इन्कार नहीं करते। इसीलिये वसिष्ठ कहते हैं[३०] (७।१९।२)—"इन्द्र, तुमने कुत्सकी रक्षा की, जो कि तुमने दास शुष्ण और कुयवको आर्जुनेयके लिये मारा।" कुत्स आर्जुनेयका प्रतिस्पर्द्धी शुष्णके अतिरिक्त कुयव भी था, यह इससे पता लगता है। वसिष्ठ भी कुत्स और शुष्णके युद्धका उल्लेख करते हैं[३१] (७।२०।५)—"इन्द्रने नारयी कुत्सके लिये शुष्ण (जैसे) महान् शत्रुको मारा।" कुत्सको भरद्वाज नारयी कहते हैं। लेकिन, नारयीसे हमें यहा यह अर्थ नहीं लेना

चाहिए, जो कि महाभारत और पुराणोमें लिया जाता है। सारथी महारथी या महासेनापतिका वाचक था। इन दोनो ऋषियोंके तरुण समकालीन वामदेव[12] (४।३।१३) सिर्फ शुष्णकी पुरियोंके नष्ट करनेकी ही बात कहते हैं। कुत्स बडा दानी (दाशुष) था (भरद्वाज[13] ६।२६।३)। जिस वक्त शुष्ण और कुत्सकी लडाई हो रही थी, उस समय कुत्स युवा था, यह नोधा गौतम[14] (१।६३।३) के वचनसे मालूम होता है। सव्यके अनुसार "(१।५१।६) इन्द्रने युद्धमें कुत्सको शुष्णसे बचाया था। जिसका अर्थ यही है कि शुष्णने तरुण कुत्सके जीवनको सकटमें डाल दिया था। कुत्सको वायुके घोडोंसे वहन करते इन्द्रने शुष्णका वध किया था[15] (१।१७५।४), जिसका अर्थ शब्दश यह नहीं लेना चाहिये, कि कुत्स आर्जुनेय घोडेपर चढकर युद्धसे भाग गया, और इन्द्रने आकर अपने वज्रसे शुष्णका शिरश्छेद किया।

शुष्णके साथी कुयवके साथ कुत्सके संघर्षका उल्लेख वामदेव करते हैं[16] (४।१६।१२)—"कुत्सके लिये शुष्ण असुरको मारा, इन्द्र, तुमने कुयवके हजारो दस्युओका तुरन्त हनन किया।" शुष्ण और अशुषके मारने और कुत्सकी रक्षा करनेकी बात सव्य आगिरस[17] (१।५१।६) भी करते हैं। कुत्स आगिरस ऋषि[18] (१।१०४।३) आर्जुनेयको लिये कुयवके ही नहीं बल्कि उसकी दो पत्नियोको भी मारनेकी बात कहते हैं। कुयवको क्षारमे स्नात कहा गया है। हो सकता है, दुग्ध-स्नानको टोटकेके तौरपर उस समय माना जाता हो। कुयवकी दोनो पत्निया अपने पतिके साथ हथियार लेकर लडती होगी। न लडतीं, तब भी स्त्रियो पर आर्य इतनी उदारता दिखानेके लिये तैयार नही थे। सारथी (महासेनापति) कुत्सके लिये शुष्ण, अशुज और कुयवके मारने तथा दिवोदासके लिये शम्बरकी ९९ पुरियोंके इन्द्र द्वारा नष्ट होनेका उल्लेख गृत्समद[19] (२।१९।४) ने भी किया है। गौरिवीति[20] (५।२९।९) और भरद्वाजने सारथी कुत्सका उल्लेख किया है। सारथी विशेषण कुत्स आर्जुनेयके लिए विशेष तौरसे प्रयुक्त मालूम होता है।

२ पिप्रु

यह दूसरा दस्यु सेनानी था, जिसका उल्लेख ऋग्वेदमें अनेक बार आया है। इसने आर्य-वीर ऋजिश्वाके साथ युद्ध किया था। महानतम चार ऋषियोंमें वामदेव[१६] (४।१६।१३) ने कहा है, —"इन्द्र, तुमने विदथीके पुत्र ऋजिश्वाके लिये पिप्रु मृगयुको मारा, ५० हजार कृष्णों (कालों) को नष्ट किया, और उनके पुरोंको ध्वस्त किया।" वभ्रु वैखानसके अनुसार[१७] (१०।९९।११) "ऋजिश्वा औशिजने पिप्रुके व्रजको विदारित किया।" इससे पता लगता है, कि ऋजिश्वा उशिज-कुलका था। पिप्रु अपने व्रज (गौओंके झुण्ड) को लेकर रहता था, इसी समय ऋजिश्वाने गौओंको लूटके लिये उसके ऊपर आक्रमण किया, और उसका आक्रमण सफल रहा। वसिष्ठके पौत्र गौरिवीति इस सफलतामें अपने भी श्रेय लेना चाहते हैं, इसीलिये कहते हैं[१८] (५।२९।११)—"गौरिवीतिकी स्तुतियोंने इन्द्र, तेरी वृद्धि की, और तूने वैदथीके लिये पिप्रुको मारा।" ऋजिश्वा पिप्रुके संघर्षमें खतरेमें पड़ा था,या ऋषिने योंही इन्द्रको उसका श्रेय दिया, यह नहीं कहा जा सकता। सव्य आंगिरस[१९] (१।५१।५) के अनुसार भी "इन्द्रने पिप्रुके पुरको नष्ट किया, और दस्यु-हत्या (दासयुद्ध) में ऋजिश्वाकी रक्षा की।"

चालीस सालसे ऊपर तक शम्बर और उनके सहायकोंके साथ आर्यों का जो युद्ध हुआ, उसे ऋग्वेदमें दस्यु-हत्या कहा गया है। हत्या केवल व्यक्तिगत हननको ही उस समय नहीं कहा जाता था, बल्कि वह युद्धके लिये भी इस्तेमाल होता था।

३ वगृद, ४ कुरंज, ५. पर्णय

ऋजिश्वाके मुकाबिलेमें लड़ने वाले सेनानियोंमें पिप्रुके अतिरिक्त वगृद भी था। सवरके अनुसार ऋजिश्वाने वगृदके सौ वीरोंको हराया था[२०] (१।५३।८)। ऋजिश्वाने बहुतसे कृष्णगर्भों (दस्युओं) को मारा था, इसे कुत्स आंगिरस भी बतलाते हैं[२१] (१।१०१।१)। पिप्रुके

साधन बहुत दृढ थे। अग औरव[४८] (१०।१३८।३) के अनुसार पिप्रु असुर माग्री था, जिसे इन्द्रकी सहायतासे ऋजिश्वा हरानेमें सफल हुआ। यहा असुर शब्द पिप्रुके लिये इस्तेमाल किया गया है, दास और असुर दोनो शब्द पर्याय माने जाते थे।

६. वर्ची

उदव्रजमें शम्बरके साथ वर्ची भी मारा गया था, यह गर्गके कथन [४९](६।४२ २१)से मालूम है। वसिष्ठने उदव्रज और शम्बरका एक साथ उल्लेख नही किया है, पर उनके कहने[५०] (७।९९।५) से मालूम होता है, कि वर्चीने भारी सख्यामें असुर योद्धाओंके साथ दिवोदासका मुकाबला किया था—"सौ हजार वीरोंके साथ वर्ची असुरको मारा।" सौ हजार (एक लाख) योद्धा किसी एक जगह जमा होकर मारे गये होगे, इसकी सभावना कम है। इसका यही अर्थ है,कि बहुत भारी सख्यामें दास युद्ध में काम आये। दासो की इतनी बडी सेना जहा एकत्रित हुई होगी, वहा आर्योकी भी सेना कम नही रही होगी, इसलिये उदव्रज किसी ऐसे स्थानमें रहा होगा, जो पहाडमे होने पर भी काफी समतल था, और वह स्थान कागडेके पहाडोमें घुसनेका द्वार होगा, जैसे घमेरी (नूरपुर)। वर्चीके सौ हजार आदमियोंके मारे जानेकी बात गृत्समद[५१] (२।१४।६) भी करते है, और वामदेव[५२] (४।३०।१५) भी कहते है—"दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी।" (दास वर्चीके सौ हजार मारे।) इससे यह भी पता लगता है, कि वर्ची शम्बरका कोई मामूली अनुयायी नही था, वह अपने तौरसे भी बहुत भारी प्रभुता रखता था।

गृत्समद[५३] (२।१२।१४) वर्ची के शतसहस्र आदमियोंके मारनेके साथ शम्बरके सौ पुरियोंके ध्वसकी भी बात करते है।

जिन असुर सेनापतियोका उल्लेख अभी किया गया है, उनके अतिरिक्त कुछ और भी रहे होगे, लेकिन इन्द्रकी महिमा गानेके लिये उनके नामोंके गिनानेकी आवश्यकता[५४] (७।१८।२०) नही थी। मन्यमान

पुत्र देवकको शम्बरके साथ इन्द्र द्वारा मारे जानेका उल्लेख वसिष्ठने किया है। जिससे सन्देह होता है, कि देवक भी शम्बरकी तरह अनार्य राजा था। पर, देवक और पिताका नाम मन्यमान उसे आर्यजनका आदमी बतलाते हैं। देवक अपने लोगोंके विरुद्ध असुरोंकी तरफ रहा होगा, इस तरहका उदाहरण हमें ऋग्वेदमें और नहीं मिलता। उस समय सप्तसिन्धुके आर्योंका शम्बरसे जबर्दस्त मुकाबला था। शम्बर ईंटका जवाब पत्थरसे देना चाहता था। यदि आर्य कृष्णों, कृष्ण-गर्भोंका नाम तक मिटा देना चाहते थे, तो वह भी श्वेतों और श्वेतगर्भोंको कम से कम अपनी सीमाके पास जिन्दा नहीं छोडना चाहता था। शम्बरके लोग बडे वीर और लडाके थे, इनकी गवाही ऋग्वेदके ऋषि भी देते हैं, और साथ ही हमें यह भी मालूम होना चाहिये, कि जिन गोरखोंकी वीरताको देखकर अंग्रेजोंने उन्हें अपनी भाडेकी सेनामें सबसे ऊंचा स्थान दिया, और आज भी भरती करके अपने साम्राज्यकी रक्षा के लिये मलायाके जंगलोंमें जिन्हे कटवा रहे हैं, उनमें सबसे बडी संख्या किरात-संतानोंकी है, जिसे आप उनकी आंख और नाकपर मंगोलायित मुख-मुद्रा देखकर जान सकते हैं।

पिप्रुके व्रजसे पता लगता है, कि दस्यु लोग बहुत भारी संख्यामें गायोंको रखते थे। आर्योंकी आजीविका मुख्यत गो-अश्व तथा उसके बाद अज-अवि (भेड-बकरी) थे। दास शायद अश्वका अधिक उपयोग नहीं रखते थे। पहाडी रास्तोंके लिये अभी पहाडी टाघन तैयार नहीं हुए थे, और आर्योंके बृहत्काय सैन्धव घोडे पहाडी युद्ध और यात्राके लिए उतने सहायक नहीं हो सकते थे। कुत्स आर्जुनेयको यद्यपि सारथी कहा गया है, किन्तु पहाडी युद्धमें रथका कोई उपयोग न हो सकता था, इससे भी मालूम होता है, कि सारथी रथचालक नहीं बल्कि सेनापति जैसी कोई बडी सैनिक उपाधि थी।

§३ शम्बर

ऋग्वेदिक आर्योंके समय दो बहुत जबर्दस्त युद्ध लडे गए थे—दस्यु-हत्या (शंबर युद्ध) या दासोंके साथ युद्ध और दूसरा आर्योंके अपने

बीचका "दाशराज्ञ-युद्ध।" पहले युद्धके प्रधान प्रतिद्वन्द्वी शम्बर और दिवोदास थे, और दूसरे में दस राजाओंके खिलाफ सुदासने तलवार उठाई थी। इन दोनो युद्धोका उल्लेख यद्यपि ऋग्वेदमे है, लेकिन सबसे अधिक शम्बर-हत्या (शम्बर-युद्ध) को ही दोहराया गया है। इसका कारण भी है। दाशराज्ञ-युद्धमे लडनेवाले दोनो पक्ष इन्द्रके भक्त थे, इसलिये इन्द्रकी महिमा बढानेके लिये उसका उतना उपयोग नही हो सकता था। अधिकसे अधिक यही कहा जा सकता था, कि इन्द्रने दस राजाओंसे किसी कारण रूठ कर सुदासको विजय प्रदान की। लडते वक्त दोनो ही ओरके ऋषि इन्द्रको प्रसन्न करनेकी कोशिश करते रहे होगे। शम्बर-हत्या (४० वर्षों)की तरह दाशराज्ञ युद्ध भी बहुत दिनो तक चलता रहा—उसमें सदा अतिम विजेताकी ही विजय नही होती रही। बीच-बीचके विजयोंके लिये दसो राजाओंके ऋषियोंने इन्द्रकी महिमा गाते ऋचायें बनाई होगी, जिन्हें पीछे सुरक्षित रखनेकी अवश्यकता नही थी। शम्बर-हत्या इन्द्रदेवो और शिश्नदेवोंके बीच थी। इसमें दस्युओकी पूर्ण पराजय और इन्द्रके भक्तो की विजय हुई। इन्द्रकी महिमा को पूरी तौरसे यही दिखाया जा सकता था, इसीलिये ऋग्वेदमें सबसे अधिक आई इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओमे यदि शम्बर-हत्याका अधिक उल्लेख हो, तो कोई आश्चर्य नही। कुछ विद्वानोका तो कहना है, कि सारे ऋग्वेदमें शम्बर-हत्याकी ही प्रतिध्वनि पाई जाती है।

भरद्वाज, वसिष्ठ, वामदेव सभीने शम्बरके युद्धका वर्णन किया है, लेकिन, शम्बरसे लडनेवाला दिवोदास था, जिसके पुरोहित (पधान-मन्त्री) भरद्वाज थे। भरद्वाजने सोम (भाग या भाग जैसी किसी नशीली वनस्पति) की महिमा गाते हुए कहा है[४] (६।४३।१)—"जिसके मद में (मस्त) इन्द्रने दिवोदासके लिये शम्बरको मारा।" शम्बरके पिताका नाम कुलितर था, यह वामदेवके कथन[५] (४।३०।१४) से मालूम होता है—"इन्द्रने दास कौलितर शम्बरको बडे पर्वतोंके भीतर (वृहत पर्वतादधि) मारा।" शम्बर वृहत् पर्वतके भीतर रहता था। वृहत् पर्वत उस समय हिमालयको

कहा जाता था। भरतोंकी भूमि उस समय परुष्णि (रावी) और शुतुद्रि-विपाश् (सतलुज-व्यास) के बीचमें थी, इनके पास बडा पर्वत कागडेका हिमालय ही था। सिवालिकका छोटा पर्वत उनीसे मिला हुआ था, जिसे अब भी अलग नही समझा जाता। छोटे पर्वतमें नही, बल्कि बृहत् पर्वतमे शम्बरके होनेकी बात यही बतलाती है,कि उसके पुर सिवालिकके पीछेवाले बडे पहाडो में थे। १९वी शताब्दीके आरम्भ तक अजेय माने जानेवाला किला-कागडा उनीमें पडता है। कोई आश्चर्य नही, यदि इस पहाडीने शम्बरके पुरका भी काम दिया हो। किला-कागडामे इस शताब्दीके भयानक भूकम्पके पहले बहुत सी पुरातात्विक सामगी थी, जिनमेंसे अधिकाश को भूकम्पने ध्वस्त कर दिया। यह ऐसे क्षेत्रमें पडता है, जिसे भूकम्पका क्षेत्र माना जाता है, इसलिये शम्बरकी अश्मन्मयी किसी अजेय पुरीके अवशेषके पानेकी आशा नही रखी जा सकती।

शम्बरके पुरोंके दर्दराने (ध्वस्त करने), तथा धन-सम्पन्न (वसुमन्त) पर्वतमे आर्योंके प्रवेश करनेका उल्लेख सोमाहुतिने किया है" (२।२४।२)—"शम्बर पर्वतोमें रहता था (पर्वतेषु क्षियन्)" और ४०वें वर्षमें उसे मारनेमें आर्योंको सफलता मिली "(गृत्समद २।१२।११)। वह गिरि का दास था, जिसे मारकर अपनी अद्भुत रक्षाओंसे इन्द्रने दिवोदासको बचाया —वामदेव" (६।२६।५)। वसिष्ठके अनुसार" (७।९९।५) —"इन्द्र और विष्णुने शम्बरकी ९९ पुरियोंको भ्रष्ट किया।"

शम्बरकी ९९, १०० या ९० पुरियोंके होनेका उल्लेख मिलता है। वसिष्ठकी तरह वामदेव भी" (४।२६।३) शम्बरकी ९९ पुरियोंके नष्ट करने और एक (सौवी) पुरीको दिवोदास अतिथिग्वको देनेका उल्लेख करते हैं। वामदेवने अपनी ऋचाओंमें इन्द्रके मुखसे सारी बातें कहलवाई है, जिससे पता लगता है, कि ऋषियोंके ऊपर उनके देवता आते थे। यह आश्चर्यकी बात नही। हिमालयमें अब भी हजारो ऐसे पुरुषस्त्री मिलेंगे, जिनके सिर पर देवता आकर "मैं" यह कर सारी बातें बतलाते

है। हिमालय ही में क्यो, दूसरी जगहोमें भी ऐसे ओझा-सयानो या देववाहनोकी कमी नही है। फर्क इतना ही है, कि ऋग्वेद-कालमें जिस तरह सभी लोग देवताओके ऐसे प्रादुर्भाव पर एकान्त श्रद्धा रखते थे, वैसी श्रद्धा अब मैदानमें नही देखी जाती। दिवोदासका दूसरा नाम अतिथिग्व था। कितनी ही ऋचायें उसे केवल अतिथिग्वके नामसे स्मरण करती है। इस शब्दसे यह तो साफ मालूम होता है, कि दिवोदास अतिथियोका अनन्य सेवक था। अतिथिके साथ गौ शब्द क्यो इस्तेमाल हुआ, इसका अर्थ लोग गोघ्नसे लगाते है। लेकिन उसको उपाधियोमें शामिल करनेकी कोई आवश्यकता नही थी। गौका कोई ऐसा ही अर्थ था, जिससे दिवोदासके अतिथिदेव होनेका भाव निकलता हो।

दिवोदासके पुत्र या सतान परुच्छेप[११] (१।१३०।७) ने ९९ नही, ९० पुरियोंके नष्ट करनेका उल्लेख किया है—"इन्द्रने दिवोदास अतिथिग्वके लिये ९० पुरिया छिन्न-भिन्न की।" पीछेके ऋषि सुहोत्र[१२] (६।३१।४) के अनुसार "दस्यु शम्बरकी सौ पुरियोको इन्द्रने नष्ट किया।" यह ९०, ९९ और १०० पुरियोका भेद क्यो? वसिष्ठ और भरद्वाजका कहना ही ठीक है ९९ पुरियोको दिवोदासने नष्ट कर दिया, और एक को अपने लिये सुरक्षित रक्खा।

शम्बरको कहा मारा गया, इसका उल्लेख भरद्वाजके पुत्र गर्ग करते है[१३] (६।४७।२१), जो शायद शम्बर-युद्धके समय अपने पिताके दाहिने हाथ होकर दिवोदासकी सहायता कर रहे थे। उनका कहना है—"इन्द्र (दिवोदास) ने शम्बर और दास वर्चीको उदव्रजमे मारा।" दूसरे दासोकी तरह शम्बरके भी व्रज या गोष्ठ रहे होगे। किसी विशेष जलके पास एक व्रज था, जिसे उदव्रज कहते थे। यह स्थान कागडा जिलेमे ही कही रहा होगा, लेकिन तीन हजार वर्ष बाद भी उस स्थानका वही नाम रहे, यह जरूरी नही है।

शम्बर और उसकी जातिके साथ जो भीषण युद्ध हुआ था, उसका कुछ वर्णन हम विजेता दिवोदासके प्रकरणमे भी करेंगे।

§४ किरात

जान पडता है, कागडेमें अब भी इस सघर्षकी परपरा नामान्तरसे जूद है। कागडा प्रदेशका नाम जलन्धर है। हिमालयके पाच खण्डो—पाल, कूर्माचल (कुमाऊ), केदार (गढवाल), जलन्धर और कश्मीरमें क जलन्धर है। कश्मीरकी सीमासे पूर्व सतलुज तकके इलाके को जलन्धर ौर पश्चिमी को दुर्गर (डोगरा) इन दो हिस्सोमें वाटा जाता था। दोनो ी सीमा रावी थी। आज जलधरका अर्थ मैदानी जलन्धर नगर लिया ाता है, लेकिन पहले यह पहाडी भागका नाम था। पौराणिक परम्परा तलाती है जलन्धर एक भयकर राक्षस था, जिसे देवीने मारा। देवी नगर-कोट (भवन) की प्रसिद्ध भवानी थी। मरने पर जलन्धरका विशाल शरीर जितने भूखडमें गिरा, उसका नाम जलन्धर पडा। जलन्धरके कानकी जगह पर बने गढका नाम कनगढा या कागडा पडा। जलन्धर शब्दका अर्थ , जलो (रावी आदि) का धारण करनेवाला। इस भूभागसे होकर सतलज, व्यास, जैसी नदिया आती हैं, इसलिये उसका यह नाम उचित ही है।

वैदिक-कालकी परपरा वृत्रको पानीको रोक रखनेवाला वतलाती है, जिसे इन्द्रने अपने वज्रसे मारकर पानियोको मुक्त किया। शम्बरको भी वृत्र कहा गया है। यद्यपि अपने समकालीन ऋषियोंके वचनोमे वह एक दुर्दान्त असुर शत्रु, वहुत यातु (जादू) और माया रखते भी वह आदमी ही था। जैसे-जैसे समय वीतता गया, शम्बर के आदमीके रूपको लुप्त कर उसे दानव बना दिया गया। शम्बरके साथ ४० वर्षों तक जो भीषण सघर्ष चला था, उसको पुराने कालमें इन्द्र-वृत्र-युद्ध भी कहा जाता था। उस समय पौराणिक-कालकी दुर्गा भवानी आर्योमें ख्याति नही रखती थी। पीछे इनकी महिमा बढी। इन्द्रको जब लोग भूल से गए, तो शम्बर-दिवोदास, वृत्र-इन्द्रके युद्धको देवी और जलन्धरका युद्ध बना दिया गया, और जलन्धरके विकराल शरीर के पर्वताकार गिरनेसे इस भूमिका नाम जलन्धर रख दिया गया।

हमारे पास तक शम्वर-दिवोदास (किरात-आर्य) युद्ध की जो कुछ भी सूचना आई, वह आर्योंके स्रोतोंसे ही आई। शम्वरके लोग भी इस घटना को जरूर याद करते रहे होंगे, पर उसके जाननेका हमारे पास अव कोई साधन नही है। जहा तक शम्वरकी जाति के लोगोका सवाल है, ४० सालके युद्धमें लाखोकी सख्यामें मरने पर भी, पहाडमें उन्हें शरण लेनेके लिये वहुत जगह थी, जहा पर आर्य पहुच नही सकते थे। पराजित होने पर वह पहाडमें और भीतर की तरफ चले गये। व्यास, रावीके ऊपरी भागोमें चम्वा-कुल्लूके इलाकोमें वह वहुत समय तक आर्योंसे सुरक्षित रहे, लेकिन अव वहा भी उनका पता केवल चम्वाके लाहुली, लाहुलके निचले भागो और कुल्लूके मलाणा गावमें ही किरात-भाषाके उपयोगके कारण लगता है। यह लोग भी भाषामें किरात-वशकी ही सूचना देते है, धर्ममें अपने दूसरे भाइयोकी तरह ही है। किरातोकी मगोलायित मुख-मुद्रा चनावके ऊपरी भागोमें ही देखी जाती है। पर, उनसे आशा नही हो सकती, कि वह शम्वर-युद्ध सम्वन्धी अपनी प्राचीन परम्पराको रक्षित रखेंगे। तो भी उनकी लोक-परम्पराओ और पुरातात्त्विक अवशेपोके अध्ययनकी आवश्यकता है।

किरातोको निचले पहाडोंसे भगानेवाले आर्य थे। उनको अपने में विलीन करनें वाले या और उत्तरकी ओर भगानेवाले आर्य नही, वल्कि उन्हीके मध्य-एसियाके भाई-वन्द खस थे, जो मैदानसे नही, वल्कि पहाडो ही पहाड काशगर, कशकर (गिलगित), कश्मीरमे अपने खस या कश नामकी छाप छोड कर आगे वढे थे। वह किरातोकी भूमिमें नेपाल तक प्रवेश कर गये। यह प्रवेश शान्तिपूर्वक ही नही रहा होगा। दोनो ही जातिया पशुपाल थी। चरागाहोंके लिये पशुपालोकी खूनी लडाइया हुआ ही करती है, यह ईसा-पूर्व द्वितीय शताब्दीके मध्य-एसियामें हूणो और शकोंके वारेमें हम जानते है। चीनके प्रहारसे जान वचाकर भागते हूण (मगोलायित) जव अपनी भूमिसे निकल पशुपाल शकोकी भूमिमें आये, तो दोनोमें खूनी सघर्ष हुए, जिनमें असफल हो शक अपनी भूमिको छोडनेके लिये मजवूर हुए,

और भागते हुए हिन्दुस्तान तक पहुचे। खसो और किरातोंके भी आरभिक सघर्ष हुए होगे। किरात जिन उपत्यकाओको छोडते गए, खस उनपर अधिकार करते गए। जो किरात आत्म-समर्पण करनेके लिए तैयार हुए, वह वही रह कर समयान्तरमे खस बन गए।

शम्बरके वशजोका यही परिणाम हुआ।

अध्याय ६

दिवोदास

§१. पूर्वकालके आर्य-नेता

१ दध्यङ्ङ (दधीच)

दिवोदासके पहले मनु आदि राजाओंके बारेमे हम बतला चुके है। दिवोदासके पुत्र या सन्तान परुच्छेपने निम्न प्राचीन आर्य नेताओका नाम लिया है [1] (१।१३९।९) दध्यङ्ङ (दधीचि), अगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु। इनमें अत्रि, कण्व राजा थे, इसमें सन्देह है।

२ रुम, ३ रुशम, ४ श्यावाक, ५ कृप

कुछ और भी राजाओका नाम ऋग्वेदमें मिलता है, पर यह नही कहा जा सकता, कि वह दिवोदाससे पहले हुए या बादमें। मेधातिथि[2] (८।३।१२) ने रुशम-श्यावक-कृपकी इद्र द्वारा रक्षा करनेकी बात कही है। देवातिथि ने[3] (८।४।२) भी रुम, रुशम, श्यावक, कृपके रक्षणकी बात कही है। पिजवन भी कोई पुराना वश-स्थापक था, जिसके ही कुलमें दिवोदासका पिता वध्र्यश्व और पुत्र सुदास पैदा हुए। पिजवनके बारेमें इससे अधिक कोई सूचना हमें नही मिलती।

६ वध्र्यश्व

वध्र्यश्वके साथ हमारा पैर इतिहासकी ठोस भूमिपर पडता है। भरद्वाज और सुमित्रने इसका उल्लेख किया है। सुमित्र अपनेको वध्र्यश्वकी सन्तान (वाध्र्यश्व) कहता है। उसके कहे अनुसार[4] (१०।६९।१,

२।११।१२) वध्र्यश्व द्वारा स्थापित अग्नि दर्शनीय था। अग्नि सप्त-सिन्धुके आर्योंके लिये जीता-जागता देवता था। हरेक घरमें अग्निकी स्थापना और पूजा होती थी। आर्य इस साकार देवताके बडे भक्त थे। सुमित्रके अनुसार (२) वध्र्यश्वका अग्नि घृतवर्धन था। पुराने जमानेमें उसे वध्र्यश्वने जलाया था। जैसे पिता पुत्रकी, उसी तरह वध्र्यश्व अग्निकी सपर्या (सेवा) करता था (१०)। वध्र्यश्वकी अग्निने बराबर शत्रुओंको जीतनेमे सहायता की। वध्र्यश्वकी अग्नि वृत्रहा (शत्रु-नाशक) है (१२)। सुमित्रके इन वचनोंसे पता लगता है, कि वध्र्यश्व एक शक्तिशाली आर्य-वीर था। उसने बहुतसे शत्रुओं पर विजय प्राप्त की थी। शत्रुके लिये वृत्र शब्दका उपयोग बतलाता है, कि वह दस्यु रहे होंगे। वध्र्यश्वके पुत्र दिवोदासके प्रधान शत्रु यद्यपि दस्यु थे, पर उन्हें हाथमे करने के लिये आर्योंसे भी उसे लडना पडा था। वध्र्यश्व आरंभिक विजेता था, जैसाकि इतिहासमें हम सिकन्दरसे पहले फिलिप, समुद्रगुप्तसे पहले चन्द्रगुप्तको पाते हैं। पुत्रकी विजयोंके सामने पिताकी कीर्ति धूमिल हो गई। वध्र्यश्व जिस भरत-पुरु-त्रित्सु जन का था, उसका निवास रावी-सतलुजके बीचमें था। भरद्वाजके कथन[५] (६।६१।१) के अनुसार सरस्वतीने वध्र्यश्वको प्रतापी पुत्र दिवोदास प्रदान किया। जान पडता है, अपनी विजयोंके सिल-सिलेमें वह सतलुजसे पूर्व सरस्वतीके किनारे पहुचा, वहीं सरस्वती-तट पर दिवोदासका जन्म हुआ। सरस्वती सप्तसिन्धुकी पवित्र नदी थी। उसका माहात्म्य आजकी गगा जैसा था।

भरद्वाज—दिवोदासकी सफलताओंके बारेमें कहनेसे पहले भरद्वाजके बारेमें कुछ विशेष तौरसे कहना आवश्यक है, क्योंकि भरद्वाज ही दिवोदासके चाणक्य, अपने समयके सबसे प्रभावशाली पुरोहित थे। वह ऊँचे दर्जेके कवि थे। उनकी सैकडों ऋचायें ऋग्वेदके छठे मण्डलमें मिलती हैं, जिसका नाम ही भरद्वाज-मण्डल है। भरद्वाज भरतोंके ही नहीं, दूसरे जनोंके राजाओंके भी श्रद्धाभाजन थे। जिन राजाओंने उन्हें बडे-बडे दान दिये, उनका उल्लेख स्वय, उनके पुत्र गर्ग तथा दूसरे ऋषियोंने

किया है। उनसे साफ है, कि ये सभी राजा भरद्वाज और दिवोदासके समकालीन थे।

७ अभ्यावर्ती चायमान

पार्थवोके इस सम्राट्ने वधूके साथ एक रथ और बीस गायें दीं[1] (६।२७।८)। वधू दासीको भी कहा करते थे। चायमानने दासीके साथ रथ दिया था।

८. सुमीढ

भरद्वाजको सुमीढने दो घोडियाँ और सौ गायें, पेरुकने पक्व अन्न और शाडने हिरण्यसहित दस रथ दिये[2] (६।६३।९)। सबसे अधिक दान शाडका था।

९. पुरुनीथ

नोधा गौतम[3] (१।५९।७)के अनुसार पुरुनीथ शातवनेयने भी भरद्वाजको दान दिया। शतवन शायद किसी स्थानका नाम था।

१० प्रस्तोक

गर्गके अनुसार[4] (६।४७।२२) इसने "दस कोश और दस घोडे दिये।" कोश आजकल खजानेको कहा जाता है, लेकिन उस समय यह कोई निश्चित निधि थी। यही गर्गने यह भी बतलाया है, कि "दिवोदास अतिथिग्वसे शम्बरका धन हमने पाया।" शम्बरसे जो धन मिला था, सभी भरद्वाजको कैसे दिया जा सकता था, उसके और भी भागीदार थे। शायद इसीलिए गर्ग अगली ऋचा में कहते हैं—"मैंने दिवोदाससे दस घोडे, दस कोश, दस वस्त्र-भोजन, और दस हिरण्यपिण्ड (सोनेके डले) पाये।"

दिवोदासके मरनेके बाद यद्यपि भरद्वाज या उनके पुत्र गर्गको पुरोहिती (प्रधानमन्त्रित्व) नही मिली, और दिवोदासके प्रतापी पुत्र सुदासके पुरोहित वसिष्ठ बने, पर, जान पडता है, इसके कारण वसिष्ठ और भरद्वाजका वैमनस्य उतना उग्र नही हुआ, जितना कि वसिष्ठका स्थान विश्वामित्रके

लेन पर। वसिष्ठ सन्तानोंमें भी कडवाहटका पता नहीं लगता, जैसाकि मृळीक वासिष्ठकी इस ऋचासे मालूम होता है[10] (१०।१५०।५)—"अग्निने अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्वकी रक्षा की," अग्निको वसिष्ठ आह्वान करते हैं।

इन उद्धरणोंसे मालूम होगा, कि भरद्वाज अनेक जनोंमें प्रभाव रखते थे। उन्होंने अपने इस प्रभावका शम्बर-युद्धमें दिवोदासके पक्षमें पूरी तौरसे इस्तेमाल किया था। बाहरी शत्रुओंके इस भयकर सघर्षके समय आर्योंके भीतरी सघर्षको यदि स्थगित न किया गया होता, तो इसमें सन्देह है, कि ४० वर्ष की लडाइयोंके बाद भी शम्बर पर विजय प्राप्त की जा सकी होती। इसमें भरद्वाजका महत्त्व मालूम होता है।

११ कुत्स आर्जुनेय, १२ श्रुतर्य, १३. तुर्वीति, १४ दभीति, १५. ध्वसति, १६. पुरुषात।

आर्य सेनानियोंके बारेमें हम कुछ बतला चुके हैं, जिनमें कुत्स आर्जुनेय मुख्य था। भरद्वाजने[11] (६।२०।५) सारथी (सेनापति) कुत्सके लिए स्तुति की है। वसुक्र ऋषि ने तो[12] (१०। २९। २) कहा है, कि इन्द्र स्वय कुत्सके साथ रथ पर बैठकर लडने गये। क्या इसी कारण तो कुत्स को सारथी नहीं कहा गया? कुत्स आगिरस (कुत्स आर्जुनेयसे भिन्न)[13] (१।११२। ९,२३)के अनुसार "इन्द्रने वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य, कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीतिकी रक्षा की थी।" ये सभी समकालीन थे, यह कहना मुश्किल है। भरद्वाज[14] (६।१९।१३)एक ही वाक्यमें कुत्स, आयु और अतिथिग्वकी रक्षा करनेकी बात करते हैं। अतिथिग्व दिवोदास था, कुत्स आर्जुनेयको हम जानते हैं, आयु भी इसी समयका कोई आर्य योद्धा रहा होगा।

१७ देवक मान्यमान

शम्बर और उसकी जाति वालोंके अतिरिक्त एक आर्य नाम वाला व्यक्ति देवक मान्यमान है, जिसे एक ही ऋचामें शम्बरके साथ मारे जानेका उल्लेख वसिष्ठने किया है[15] (७।१८।२०)। अन्य आर्य राजाओं या

जननायकोके सघर्षका जो उल्लेख ऋग्वेदमें है, उनके वारेमें हम निश्चय नही कह सकते, कि वह दिवोदासके समकालीन थे। कुछ उनमें समकालीन रहे होगे, और कुछ उसके वाद के।

१८ सुश्रवा

भव्यने इन्द्रकी महिमा गाते[15] (१।५३।९) वतलाया है, कि उसने सुश्रवाके ऊपर आक्रमण करनेवाले दो-दस (वीस) जन-राजाओ को ६० हजार ९९ आदमियोके साथ हराया। यह वीस जन-राजा (जन-राज) कौन थे, और सुश्रवा कौन था? भव्य ही आगे कहते है[16] (१।५३।१०)—"तुम (इन्द्र)ने सुश्रवाकी रक्षा की (१०)"। सुश्रवाके वारेमें इससे अधिक हमें कुछ मालूम नही है।

१९ तुर्वयाण

भव्य आगिरसने सुश्रवाके साथ तुर्वयाणकी भी इन्द्र द्वारा रक्षा की वात कही है (१०), और कुत्स, अतिथिग्व और आयुको तरुण महान् राजा सुश्रवाके अधीन होनेकी वात वतलाई है। इससे सुश्रवाके वारेमे हमारी जिज्ञासा वढ जाती है, परन्तु आगे कोई समाधान नही मिलता।

२०. ऋणचय

यह रुशम जनका वहुत ही धनाढ्य राजा था, जिसने वभ्रु[17] —(५।३०।१२, १४)को चारहजार गायें दी—"रुशमोके राजाने चारहजार गायें दी, ऋणचयके धनको मैंने ग्रहण किया। वह रात मैंने रुशमोके राजा ऋणचयके पास विताई।" चार हजार गायोके (आज ८ लाख रुपये) दान देने वाले राजाका वैभव असाधारण रहा होगा।

२१ पाकस्थामा कौरयाण

कण्व ऋषि दिवोदासके समकालीन थे, और तुर्वश-यदु जनोके पुरोहित होनेसे उनके सहायक और उनके पुत्र सुदास के विरोधियोके समर्थक

रहे होंगे, यदि वह तब भी जिन्दा थे । उनके पुत्र मेवातिथि (मेध्यातिथि) ने कुरयाणके पुत्र पाकस्थामाकी महिमा गाई "(८।३।२१, २२) है—"मरुत् देवताओंने जो दिया था, उसे पाकस्थामा कौरयाणने मुझे दिया। पाकस्थामाने सुन्दर घुरोवाला लाल रङ्गका रथ दिया। उसने वस्त्र और शक्तिदायक अभ्यञ्जन दिये। लाल (रथ)के दाता उस भोज (पाकस्थामा) का मैं वर्णन करता हूँ (२४)। यदु-तुर्वश जनोंकी भूमिके पास ही पाकस्थामाकी भूमि रही होगी। कुरयाण उसके जनका नाम होगा, अथवा पिता या पूर्वजका।

२२. देवश्रवा, २३. देववात

देवश्रवा और देववात भारत थे, जिसका अर्थ है, वह भरतजनके थे। पीछे हुए भरत राजाका ऋग्वेदमें कोई वर्णन नहीं आता। देववातकी सन्तान सृजयका उल्लेख वामदेवने भी किया है[२] (४।१५।४), इसलिए यह देववात पहले ही का कोई पुरुष है। देवश्रवा और देववात दोनों भाई, अग्नि देवताके परम उपासक थे, जिनकी महिमा गाते हुए दोनोंने कहा है[३] (३।२३।१-५)—"अग्नि मथित हुआ, (वह) युवा, कवि, अध्वरका नेता गृहमें है। वनोंको विनाश करते भी वह अजेय, अमृत जातवेदा है। भरतोंकी सन्तान देवश्रवा और देववातने सुदक्ष धनवान् अग्निको मथा। दस अगुलियोंने पुरातन, सुजात, माताओंमें प्रिय अग्निको पैदा किया। देववात-देवश्रवा के अग्नि की तुम स्तुति करो। . . . पृथ्वी के श्रेष्ठ धन-सम्पन्न स्थानमें स्थापित किया। हे अग्नि, तुम दृषद्वती आपया, सरस्वतीके तट पर धनसहित प्रज्वलित रहो।"

लकड़ीके दो पाटोंवाली अरणियोंमें मथ (रगड़)कर अग्निको उत्पन्न किया जाता था, उसीका जिक्र यहां आया है। इन ऋचाओंमें वर्णित दृषद्वती आजकी घग्घर नदी है, सरस्वती आज भी निमाळिकने कुरुक्षेत्र होकर बहने वाली इसी नामसे पुकारी जाती है। इन दोनोंके बीचकी नदी सरस्वती ही आपया है।

२४. सृञ्जय दैववात, २५. महिराध साञ्जय

उपरोक्त दैववातके पुत्र सृञ्जयका उल्लेख भरद्वाजने[२३] (६।२७।७) किया है—"उस (इन्द्र) ने तुर्वशको सृञ्जयके लिए प्रदान किया, वृचीवतोको दैववातके लिए दिया।" तुर्वश और वृचीवतोको दैववात सृञ्जयके वसमे करा देना यहाँ अभिप्रेत है। दैववात अपत्य वाचक है, मुख्य नाम सृञ्जय है, यह वात वामदेवके इस कथनसे स्पष्ट हो जाती है[२४] (४।१५।४)—"यह जो अग्नि पूर्वमें दैववात सृञ्जयके लिए प्रज्वलित हुआ"। भरद्वाज-पुत्र गर्गके कथन[२५] (६।४७।२५)से यह भी पता लगता है, कि "सृञ्जय-पुत्र (साञ्जय)ने भरद्वाजोकी पूजा की।" यह सृञ्जय-पुत्र कौन था? महिराध।

२६. पुरुकुत्स

कुत्स नामधारी तीन व्यक्तियोका पता ऋचाओंसे मिलता है, यह हम वतला आये है। यह कुत्स पुरुजनका था, इसीलिए इसे पुरुकुत्स कहा गया। इसका पुत्र त्रसदस्यु सुदासका समकालीन था, इसलिए पिता दिवोदासका समकालीन रहा होगा। भरद्वाजने इसकी महिमा गाई, इससे भी इसी वातका समर्थन होता है। भरद्वाजके कहने[२६] (६।२०।१०)से पता लगता है, कि इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए दासोकी सात शारदी पुरोको दर्दराया। शरदकालीन पुरोके कहनेसे जान पडता है, कि पहाडके लोग उस समय सर्दियोंसे वचनेके लिए तराई की गरम जगहोमें आ अपने दुर्गवद्ध स्थानोमें रहते थे। कुमाऊँ-गढवालमें ठण्डी जगहोके निवासियोका अपने पशुओके साथ तराईमें घमतप्पीके लिए आना अव भी देखा जाता है। पुरुकुत्स ने किरातोकी ऐसी सात शारदी पुरोको लूटा होगा। वसिष्ठके भाई अगस्त्य (१।१७४।२)की ऋचामें भी इस वातका उल्लेख मिलता है—"इन्द्रने मृध्रवाच (म्लेच्छ)के सात शारदी पुरोको नष्ट किया, और युवा पुरुकुत्सके लिए अनवद्य अरणा (नदी)को देकर वृत्र (शत्रु)का वध किया।" इससे पता लगता है, कि सात पुरियोको लेते उनके पास वहनेवाली नदीको भी

पुरुकुत्सने दखल कर लिया। नोधा गोतम भी यही बात[७] (१।६३।७) दुहराते हैं—"इन्द्रने पुरुकुत्सके लिए सात पुरोको ध्वस्त किया।" कुत्स आंगिरस[८] (१।११२।७) बतलाते हैं, कि अश्विद्वयने पृष्णिगु पुरुकुत्सकी रक्षा की। पृष्णिगु विचित्र गौओ वाले पुरुकुत्सका विशेषण है, या वह एक अलग राजा था?

२७ त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य

यह सुदासके पुरोहित वसिष्ठके अनुसार[९] (७।१९।३) पुरुकुत्सका पुत्र था—"इन्द्र तुमने सुदासकी रक्षा की, वृत्रहत्या (शवर-युद्ध) में पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी रक्षा की।" त्रसदस्युने स्वय कहा है,[१०] (४।४२।८-९)—"दौर्गह त्रसदस्युके बन्धनमें रहते समय सात ऋषि पितर थे, उन्होने इस त्रसदस्युके यज्ञ को कराया। पुरुकुत्सानीने इन्द्रवरुणको हव्य प्रदान किया। तब राजा त्रसदस्युको शत्रुनाशक अर्वदेव मिला।" पुरुकुत्सानी त्रसदस्युकी माँ रही होगी। इसका नाम ही बतलाता है, कि यह दस्युओंके लिए त्रासकारी था। अर्वदेव क्या इसके पुत्रका नाम था?. त्रसदस्युको दौर्गह कहा गया है, दुर्गह कोई पूर्वज रहा होगा? सवरण[११] (५।३३।८)ने गैरिक्षित पौरुकुत्स्यसे हिरण्ययुक्त दस सफेद घोडोके पानेका उल्लेख किया है। गैरिक्षित का मतलब है गिरिमें रहने वाला। शायद उत्तर (व्यास-सतलुजके बीच) के पहाडोमें त्रसदस्युका कोई दुर्ग था। वामदेवके कहने[१२] (४।३८।१)से मालूम होता है, कि त्रसदस्यु भारी दाता था। त्रसदस्युसे दान पाने वालोमें सौभरि भी थे, जिन्होने कहा है[१३] (८।१९।३६, ३७)—"अतिमहान् अर्य, सत्पति पौरुकुत्स्य त्रसदस्युने मुझे पचास वयुर्य दी, और सूरान्तु नदीके किनारे तीन-सत्तर (२१०) श्यामा गौएँ दी।" वयुओका अर्थ यहाँ बछुए नही है। सौभरिको इतनी वयुओकी आवश्यकता क्या थी? वह दासियाँ थी, जो पर्वतवासियोकी लडकियाँ रही होगी। सौभरिने इसी सूक्तमें[१४] (८।१९।३२) मे कहा है—"अग्नि सम्राट् त्रसदस्युका रक्षक है।" सम्राट् शब्द का अभी उतना प्रचार नही था, और न

उसका वैसा भारी अर्थ उस समय लिया जाता था, जैसाकि आजकल पुरुकुत्सका पुत्र होनेके कारण त्रसदस्यु पुरु-जन का था, जो कि मतलुज-व्यासके पूर्वमें पहाड तक उस समय निवास करता था।

२८ कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र

इसीके नाममें पहले पहल हम कुरु शब्दका उपयोग पाते हैं। पुरुकुत्सका पौत्र होनेके कारण यह पुरु और सुदासके समय भी मौजूद और शायद उसका शत्रु भी था। इसका पुरोहित कवष ऐलूष था, जो दाशराज्ञ-युद्धमें पानीमें डूबकर मरा था। कवषने अपने यजमानकी उदारताका (१०।३२।९ और १०।३३।४) उल्लेख किया है। "दाता कुरुश्रवणके दिये हुए धन भद्र हैं। मैं (कवष ऋषि) ने त्रसदस्युके पुत्र राजा कुरुश्रवण से याचना की, जो कि दाताओमे बहुत बडा है।

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास अतिथिग्व

दिवोदासको अपने आर्य जनोंके साथ भी पहिले कुछ सघर्ष करना पडा था, लेकिन उतना नही, जितना कि उसके पुत्र सुदासको। यह हमें मालूम ही है, कि दस्युओके साथ लोहा लेने वाले आर्य-नायकोमें कुत्स आर्जुनेय, ऋजिश्वा, वैदथी आदि भी थे। हम यह भी बतला चुके हैं, कि कुत्स आर्जुनेय शायद दिवोदासका सेनापति था। पञ्चजनोमे तुर्वश और यदुने पश्चिमसे आकर दस्युओंसे लोहा लिया था। जान पडता है, तुर्वश और यदुने शम्बरसे निर्णायक युद्ध लडनेके पहले ही दिवोदासने समझौता कर लिया था। यह समझौता बिल्कुल शान्तिपूर्वक नही हुआ था, क्योकि दिवोदासके मरनेके बाद उसके उत्तराधिकारी सुदासके साथ लडने वाले दस राजाओमें यह दोनो जन मुख्य थे। जहाँ तक दिवोदासका सम्बन्ध है, वसिष्ठके अनुसार[१५] (७।१९।८) तुर्वश और याद्व (यदु) ने अतिथिग्वकी अधीनता स्वीकार की थी। अमहीयु आगिरस[१७] (९।६१।२) ने भी सोमकी

महिमा गाते हुए कहा है, कि उसने तुर्वश और यदुको दिवोदासके वशमें कर दिया।

शम्बरके अतिरिक्त कुछ और दस्यु-शासकोंको दिवोदासने हराया था, जिनमें वर्ची तो शम्बरके साथ ही उदन्वजके महायुद्धमें मारा गया। सव्य आंगिरस कहते हैं[२८] (१।५३।८)—करञ्ज और पर्णयको अतिथिग्व (दिवोदास)के लिए इन्द्रने मारा। वगृदके सौ पुरोंको ऋजिश्वाने तोड़ा। सौ पुरोंका तोड़ने वाला दिवोदास था। वगृद शम्बरका दूसरा नाम नहीं है। सव्यकी सौ संख्याका अर्थ बहुसंख्यक है। किसी अज्ञात ऋषिकी एक ऋचा (१०।४८।८)में इन्द्रसे कहलाया गया है—"मैंने गुंगुओंसे अतिथिग्व (दिवोदास)को अन्न-धन दिलवाया, पर्णय और करञ्जको मारा।" गुंगु जान पड़ता है, किसी अनार्य कबीलेका नाम था।

दिवोदास देवोंका प्रिय था, यद्यपि उसने अशोककी तरह "देवानां प्रिय"की उपाधि नहीं धारण की। उसके पुत्रने ऋचाओंको बनाकर ऋषियोंकी सूचीमें नाम लिखवाया, और पौत्र या दूसरा पुत्र परुच्छेप भी ऋषि था, लेकिन, दिवोदासकी कोई ऋचा नहीं मिलती। तो भी देवताओंका साक्षात्कार उसे होता था। दीर्घतमाके पुत्र कक्षीवान्‌के अनुसार[२९] (१।११६।८) दोनों अश्वि-देवता दिवोदासके पास आये थे। कुत्स आंगिरसके अनुसार[३०] (१।११२।१४) अश्विद्वयने शम्बर-हत्यामें अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की थी। कक्षीवान्[३१] (१।११९।४) सिर्फ अश्विद्वय द्वारा दिवोदासकी भारी रक्षा करनेकी ही बात नहीं करते, बल्कि यह भी सूचित करते हैं, कि उन्होंने उसे बचाया। भुज्यु शायद दिवोदास का कोई सहकारी आर्यनायक था।

२ शम्बर-हत्या

शम्बर के वर्णन में हम इस महायुद्ध के बारे में भी बतला आये हैं। इसमें लाख के करीब दस्युओं के मारे जाने की बात अतिरञ्जित है। दिवोदासके पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भरद्वाजके प्रभावकी बात हम बतला चुके हैं। इसमें शक नहीं, आर्यजनोंमें इस समय जो एकता थी, उसका

बहुत कुछ श्रेय भरद्वाजको है। जहाँ तक हथियारका सम्बन्ध है, जिसके ही बलपर शम्बरको जीता गया था, उसका श्रेय दिवोदासको ही देना होगा। ऋषि अपने देवताओको दूर स्वर्गमें रहकर तमाशा देखनेवाले नही मानते थे। देवता सघर्षोमें उनके साथ रहते सीधे भाग लेते थे। कुत्स आर्जुनेयके रथ पर इन्द्र स्वय चढकर शुष्णसे लडने गया था। देवताओके साथ यह सम्पर्क कैसे स्थापित होता था, इसका स्पष्ट वर्णन हमे नही मिलता। लेकिन, वामदेवने अपनी ऋचाओमें इन्द्रको उत्तम पुरुष "मै" में जिस तरह वर्णित किया है, उससे जान पडता है, कि देवता शरीर पर आया करते थे। गढवालमें पाण्डव-नृत्य होते है। वहाँ पञ्च पाण्डव और द्रौपदी जीवन भरके लिए एक व्यक्तिको चुन लेते है, और उनके शरीर पर आकर सारी बात उत्तम पुरुषमें बतलाते है। वह पाण्डव-नृत्यमे भी अपने वाहनके शरीर द्वारा शामिल होते है। किन्नर देशमे अब भी देवताओके साथ उनके भक्तोका सजीव सम्बन्ध देखा जाता है। वहाँके एक देवताने तो एक बडे अग्रेज अफसरके ऊपर इतना प्रभाव डाला था, कि उसने उसके लिए राजासे कहकर जमीनकी माफी दिलवाई। यह ठीक है, कि इसके भीतर यदि कोई वास्तविकता है, तो यही, कि आदमी हैपनाटिज्ममे आकर वैसी चेष्टाएँ करने लगता है, और चित्तकी अत्यन्त एकाग्रताके कारण उसकी कुछ बातें सही भी निकलती है। इन और दूसरे स्थानोमें आधुनिक उच्च-शिक्षा-प्राप्त पुरुषोको भी आज इसके बारेमें अकल बेच खाते देखते है, तो आज से तीन हजार वर्ष पहले इन बातो पर कितना विश्वास किया जाता होगा, यह आसानीसे समझा जा सकता है। इन्द्र, अग्नि, सोम, अश्विद्वय आदि वेदकालीन आर्य देवता ऐसे ही किसी ढङ्गसे अपने भक्तोके सहायक होते थे।

भरद्वाजके अनुसार[१] (६।२६।३) इन्द्रने अतिथिग्व (दिवोदास)की महिमा बढाते अमर्मा (शम्बर)के सिरको काटा। परुच्छेप दैवोदासि[२] (१।१३०।७)के अनुसार—"इन्द्रने दिवोदासके लिए ९० पुर तोडे, अतिथिग्व के लिए शम्बरको पहाडसे नीचे मारा।"

शम्बर-हत्याके प्रत्यक्षदर्शी भरद्वाज कहते है—

"अग्नि, तुमने सोम छानने वाले दिवोदासका बहुत श्रेष्ठ धन, भरद्वाजको भी दिया" (६।१६।५)।"

"वृत्रहा (शत्रुनाशक) अग्नि दिवोदासका सच्चा पति है"" (६।१६।१९)।

"इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिए शम्बरको मारा। यह सोम छना है, इसे पीयो" (६।४३।१)।

इन वचनोंसे पता लगता है, कि शम्बरको पहाड़के नीचे लड़ाई लड़नी पड़ी। युद्धका स्थान उदन्वज था, इसे ऋषि गर्गने बतलाया है*।

भरद्वाजके समकालीन वामदेव भी कहते हैं" (४।२६।३)—"मैं (इन्द्र)ने शम्बरकी ९९ पुरियोंको तोड़ा, और सौवींको दिवोदास अतिथिग्व को दिया।" इस प्रकार सौवीं पुरी इस दिवोदासके हाथमें पहाड़ोंमें उसके और उसके वंशजोंके हाथमें रही, जिससे वह पहाड़के लोगों पर अपना प्रभुत्व रखते थे। शम्बरकी भूमिका देश सुमन्त (धन-सम्पन्न) था। यह तो निश्चय ही है, कि उस समयकी सबसे उपयोगी धातु ताम्र—जिसे आर्य अयस् कहते थे—इसी तरफ से आर्योंके पास आती थी। गाय-भेड़-बकरी भी पहाड़ निवासियों के पास बहुत थी।

ऋचाओंके जङ्गलमें बिखरी ऐतिहासिक सूचनाओंसे मालूम होता है, कि दिवोदास और सुदास यद्यपि अपने कालके सबसे बड़े आर्य-नायक थे, किन्तु वही एक मात्र नायक नहीं थे। दूसरे भी वैभवमें न नगण्य थे, न पराक्रममें। पुरुओंमें पुरुकुत्स, त्रसदस्यु और कुरुश्रवण अपने समयके प्रतापी राजा थे, जो हजारोंका दान देते थे। पुरुओंकी कीर्ति बढ़ानेमें उन्होंने बहुत काम किया था, और उसीके कारण वेद-कालके बाद पुरु-कुल बराबर प्रताप बढ़ा। यद्यपि दस हजार ऋचाओंके जङ्गलमें से हमें सूईकी तरह ऐतिहासिक तथ्योंको ढूंढना पड़ता है, पर वह अधिक विश्वसनीय है। उनके बादकी परम्परा महाभारत रामायण और पुराणोंमें मिलती है, जो अधिक

---

* देखो अध्याय ८।३ (पृष्ठ १०२)

व्यवस्थित रूपमें होनेपर भी उतनी विश्वसनीय नही है। तो भी, सप्तसिन्धु के बाद में गगा-जमुनाकी उपत्यकाओंसे कुरुओकी प्रधानता स्थापित हुई।

§३ हथियार

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युगमें थे, जिसमें सिन्धु-उपत्यकाके नागरिक उससे डेढ हजार वर्ष पहलेसे रहते आये थे। अयस्, लोह, अश्मन् तांबेके नाम थे। इसीके इषु (बाण), कुलिश या वज्र (गदा), परशु (फरसा) जैसे युद्धके हथियार बनते थे। उनके निषग (तूणीर), और ज्या चमडेके थे। असैनिक हथियारोमें वाशी (बसूला), आदि तांबेके थे।

१. इषु, २ निषंग

प्रजापति-पुत्र ऋषि यज्ञने[५] (१०।१०३।२, ३) कहा है—"योद्धा पुरुषो, इन्द्रकी सहायता पा विजयी बनो, शत्रुओको पराजित करो। रुलानेवाले जागरूक विजयी अजेय दुर्धर्ष (वीर) हाथमें बाण लिये है ॥२॥

"हाथमें बाण लिये तूणीरवालोके गणके साथ स्वयवशी इन्द्र युद्धमें रहते है। फेके बाणो द्वारा शत्रुको जीतनेवाले सोमपायी और श्रेष्ठ धनुर्धर इन्द्र, शत्रुओको परास्त करते है।"

३ धनुष, ४ ज्या, ५ वर्म

भारद्वाजके पुत्र पायु हथियारोकी बडी प्रशसा करते है। आखिर उनके पिता शम्बर-विजेता दिवोदासके पुरोहित (प्रधानमन्त्री) भी तो थे। अपने पिताकी तरह ही दिवोदासके युद्धमें उन्हें भी सर्वस्वकी बाजी लगानी पडी होगी। उन्होने वर्म, कवच, धनुष, इषुधि (तर्कश) की तारीफ की है। ज्याके बारेमें कहते है[६] (६।७५।१-४) यह ज्या युद्धसे पार ले जानेकी इच्छा करती है, मानो प्रिय वचन बोलनेके लिए ही धनुर्धरके कानके पास आती है, जैसे स्त्री प्रिय सखाका आलिगन करती बात करती है ॥३॥

वेमनस्क स्त्रीकी तरह हो शत्रुके ऊपर आक्रमण

करते समय, पुत्रको माताकी तरह रक्षा करें, और अच्छी तरह जानते (दिवोदासके) शत्रुओंको वेध डालें।।४।।"

सुदास ऋग्वेदका एक महान् विजेता था। वह यदि हथियारोंकी महिमा गाये, तो आश्चर्य क्या? उसने अपने सूक्त[1] (१०।१३३।१) की सातमें से छ ऋचाओंमें यही प्रार्थना की है, कि दूसरों (शत्रुओं) की ज्या छिन्न-भिन्न हो जाये—"अन्येषा ज्याका अधिधन्वसु नभन्ता।"

६ कुलिश

विश्वामित्रने कुलिशकी उपमा देते हुए कहा है[1] (३।२।१)—"हम यज्ञ बढानेवाले वैश्वानर (अग्नि) के लिये पवित्र घृतकी तरह स्तुति करेंगे। जैसे कुलिश (कुल्हाडा) रथको बनाता है, वैसे ही मनुष्य और ऋत्विक् देवोंको बुलाते दो प्रकारके (गार्हपत्य और आहवनीय) अग्निका सत्कार करते हैं।"

७ परशु

कुलिश केवल वज्र या गदाको ही नहीं कहा जाता था, वह कुल्हाडेका भी पर्याय था। परशु लडाईका फरसा था, जिसे परशुरामके नाममें भी हम देखते हैं। विश्वामित्रने परशुका उल्लेख करते हुए कहा है[1] (३।५३।२२)—"हे इन्द्र, जैसे फरसेको पाकर शिम्बल (वृक्ष) दुखी होता है, वैसे ही हमारे शत्रु सन्तप्त हों। जैसे सेमलका वृक्ष गिर जाता है, जैसे हांडी (उगा) उबलकर फेन गिराती है, वैसे ही हमारे शत्रु गिर जावें।"

८ वाशी, ९ ऋष्टि

वाशी आजकल बसूलेको कहते हैं। इसका इस्तेमाल उस समय भी होता था। ऋषि त्र्यारुणकी स्तुति[1] (५।५७।२) है—"हे सुबुद्धि मरुतो, तुम वाशी-सहित, ऋष्टि (छुरी)-सहित, सुन्दर धनुष-युक्त, बाण-युक्त, तूणीरधारी सुन्दर घोडे, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुधके साथ तैयार होओ।" मरीचि-पुत्र कश्यप भी[1] (८।२९।३) वाशीका उल्लेख

करते हैं—"देवोमें निश्चल (वह) एक आयसी (ताँबेकी) वाशी (वसूला) हाथमें धारण करता है।"

१०. वज्र

वज्रको कुलिश भी कहते हैं। यह एक तरहकी गदा थी, जो पाषाण-युगसे चली आई थी। दधीचि विदथ-पुत्रकी हड्डियोका इन्द्रने वज्र बनाया, यह कथा पुराणोमें आती है। कश्यपने[15] (८।२९।४) कहा है—"एक (देव) हाथमें रक्खे वज्रको धारण करता है, उससे वृत्रो (शत्रुओ) का नाश करता है।"

११. अत्क

यह एक परिधानका भी नाम था, पर शुनहोत्र[16] (६।३३।३) के कथनसे किसी हथियारका भी यह नाम मालूम होता है—"हे सूर्य इन्द्र, तुम आर्य और दास दोनो अमित्रो वृत्रो (शत्रुओ) को मानो तेज धारावाले अत्कोंसे मारते हो, युद्धमे मनुष्योको विदारण करते हो।"

१२ नाव

हलके बारेमे हम वामदेव ऋषिके प्रकरणमें बतला आये हैं। आर्य नावोका इस्तेमाल करते थे, व्यापारकी ओर उनकी प्रवृत्ति अधिक नही थी। उनकी नावें अधिकतर सावारण यातायातके साधन के तौरपर इस्तेमाल होती थी। दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान्‌की ऋचा[17] (१।११६।५) में सौ पतवारो वाली (शतारित्रा) नावका उल्लेख आया है—"हे दोनो अश्विनीकुमारो, तुमने निरालम्ब, अयुक्त स्थान, अगाध समुद्रमें सौ पतवारोवाली नावपर बैठाकर ध्वते भुज्युको पार किया।"

अध्याय १०

सुदास

§१. सुदास वीतहव्य

एक महाप्रतापी राजाके बाद उसका पुत्र उससे भी अधिक प्रतापी हो, सा इतिहासमें कम देखा जाता है। सुदास अपवाद रूपसे प्रतापी पुत्र था, उसने दिवोदासकी सफलताओंको बहुत आगे बढाया। दिवोदासने पहाडके स्युओंके संकटको नष्ट करके सप्तसिन्धुको आर्योंके लिये सुरक्षित ही ही कर दिया, बल्कि हिमालयकी समृद्ध चरागाहों और उपत्यकाओं, उनकी ानोंका रास्ता भी खोल दिया, और सिन्धुसे सरस्वती तकके आर्य-जनोंमें कता स्थापित करके उसे एक राज्यका रूप दे दिया। लेकिन, सारे आर्यजन सके लिए तैयार नहीं थे, इसलिए दिवोदासके मरते ही उन्होंने हर जगह सर उठाया। इसके लिए सुदासको अपने पिताने भी अधिक संघर्ष करना ा। सुदास और दाशराज्ञयुद्धके सम्बन्धकी बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्री ग्वेदमें मिलती है। वसिष्ठका एक पूरा सूक्त (७।१८) इसीके वर्णनमें । त्रित्सु जन भी पहले विरुद्ध था। त्रित्सु-भरतके वैभवके लिए ही उसने संघर्ष किया था। पृथु और पर्शु जन भी उसके सहायक थे। पृथु और पर्शु ामके जन ईरानियोंमें भी मिलते हैं। इससे यह नहीं समझना चाहिए, कि ोदिक पृथु-पर्शु पीछे ईरानमें देश जानेवाले पार्थियन और पार्शियन जन हैं। ईरानी और सप्तसिन्धुके आर्य एक ही वंशकी दो शाखायें थीं। दोनोंके एक जगह रहनेके समय प्राचीन पृथु-पर्शु जनका ही कुछ लोग ईरानमें गये और कुछ सप्तसिन्धुमें आये, यह असम्भव नहीं है। सुदासके सहायकोंमें

भरतोके पुराने पुरोहित दीर्घतमाकी सन्तानें भी थी। भरद्वाजकी सन्तानोको यद्यपि सुदासके समय पुरोहित (मन्त्री) पदसे वचित किया गया, किन्तु उन्होंने सुदासके शत्रुओका साथ दिया हो, ऐसा पता नही लगता। वसिष्ठ तो युद्धके मुख्य सूत्रधार थे, और शायद उनके सम्बन्धी जमदग्नि भी उनके साथ रहे। विश्वामित्रने पीछे वसिष्ठका स्थान ग्रहण किया, दाशराज्ञयुद्धमे वह और उनका जन कुशिक सुदासका सहायक था।

दस राजा शत्रु थे, लेकिन उसका यह अर्थ नही, कि शत्रुओकी सख्या केवल दस ही थी। मुख्य शत्रु दस थे। लेकिन इनकी गणना ऋग्वेदमें नही दी गई है। विद्वानोका भी इसमें मतभेद है। तो भी दस प्रधान शत्रुओमें १ तुर्वश, २ यदु, ३ अनु, ४ द्रुह्यु, ५ पुरु तो अवश्य ही थे। वाकी पाँच ६ शिम्यु, ७ कवष (कुरुश्रवणका पुरोहित), ८ भेद, ९-१० दो वैकर्ण रहे होगे। तुर्वश और यदुके पुरोहित कण्व थे, एव द्रुह्युके भृगु (गृत्समद), पुरुके अत्रि। इनके भी अपने यजमानोके साथ होनेकी अधिक सम्भावना है। कवषके कारण उनका यजमान कुरुश्रवण भी सुदासके विरोधमें खिच गया हो, तो कोई अचरज नही। तुर्वश-यदुने मत्स्योपर एक वार प्रहार किया था, लेकिन मत्स्य अव अपने शत्रुओके साथ मिलकर सुदासके विरोधी थे। इस प्रकार (११) मत्स्य दसकी सूचीसे वाहरके शत्रु थे। १२ पक्थ (पख्तून), १३ भलानस, १४ अलिन, १५ विषाणी, १६ अज, १७ शिव, १८ शिग्रु, १९ यक्षु ये सभी किसी न किसी समय शत्रु थे।

युध्यामधि, चायमान कवि, मतुक, उचथ, श्रुत, वृद्ध, मन्युके नाम भी आते है, जो भी सुदासके विरुद्ध इस सघर्षमें शामिल हुए थे।

१ वसिष्ठ पुरोहित

भरद्वाज दिवोदासके समय वहुत प्रभावशाली पुरुष थे, लेकिन सुदासके दाशराज्ञयुद्ध-विजयके समय वसिष्ठ उनसे भी अधिक प्रभाव रखते थे। वसिष्ठ अपनेको भरतो (सुदासके जन) का विधाता मानते थे। वह

कहते हैं' (७।३३।६)—"गौकी तरह भरत पहले दण्डसे भयभीत अ-जन, (अनाय) बच्चे से थे, इससे पहले (जब) कि वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए। फिर त्रित्सुओं (भरतों) की प्रजा खूब बढ़ी।" दुमित्र (त्रित्सु) सुदासके अपने जन युद्धमें भागनेके लिए मजबूर हुए, और उन्होंने सारा धन (भोजन) सुदासको प्रदान किया (७।१८।१४)।" सारे भोजनके देनेकी बातका उल्लेख फिर (१७) वसिष्ठ करते हैं। भरद्वाजके कुलवालोंने शरीरसे भी दिवोदासकी सहायता की थी। उस वक्त अभी श्रुवा और अग्निका पक्का बँटवारा नहीं हुआ था, और न अग्नि उठानेका काम किसी एक वर्गके हाथमें दे दिया गया था। वसिष्ठके लोग सुदासके लिए खुल कर लड़े थे, जिसके लिए ऋषिने स्वयं उन्हें प्रेरित किया था' (७।३३।१-३)—"मेरे गोरे, दक्षिण ओर चूड़ा बाँधनेवाले प्रसन्न हो, मैं उठकर कहता हूँ, कि तुम मुझसे दूर न रहो।" फिर सुदासकी सफलतामें अपने कुलवालोंकी सहायताका उल्लेख करते कहते हैं (३)—"कौन इस प्रकार नदी पार हुआ है, किसने इस प्रकार भेदको मारा, किसने इस प्रकार दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की? वसिष्ठो, तुम्हारी वाणीने इन्द्रने रक्षा की।" सिर पर सारे केशको रखना प्राचीनकालमें मुसलमानोंके आनेके समय तक हमारे यहाँ प्रचलित था। उसे बहुत सजा कर जूड़ेकी शक्लमें बाँधा जाता था। चूड़ा (जूड़ा), अलग-अलग जनोंकी अलग-अलग ढङ्गसे बाँधी जाती थी। वसिष्ठके कुलके लोग सिरके दाहिनी ओर बाँधते थे, इसलिए उन्हें "दक्षिणत कपर्दा" (दाहिने जूड़ावाले) कहा गया है। ईसवी सनके आरम्भ होनेके करीब तक स्त्रियाँ भी पगड़ी बाँधती थीं। वैदिक नारियाँ भी उसे बाँधती होंगी। ऐसा होनेपर वसिष्ठके कुलकी स्त्रियाँ भी दक्षिणत कपर्दा रही होंगी। कुमारियाँ चार-चार कपर्द बाँधती थीं।' (१०।११४।३) उन्हें चतुष्कपर्दा कहते थे। यहाँ कपर्दसे जूड़ा नहीं, बल्कि चोटी अभिप्रेत हो सकती है—शायद दो कपर्द कानोंके पासके सामने लटकते थे, और दो पीछेकी ओर।

सुदासका कार भारी प्रदर्शन भी था। यद्यपि ऋचाओंमें उसके लिये

कोई प्रमाण नही मिलता। कुछ वेदानुशीलकोका मत है, कि प्रतर्दन वडा लडका था, जिसे भरद्वाजने पिताकी गद्दीपर वैठाया। पर, मनस्वी सुदास इसे वर्दाश्त नही कर सका, अथवा वह योग्य पिताका योग्य पुत्र नही था, और दिवोदासकी सफलताओको अक्षुण्ण नही रख सकता था। असन्तुष्ट लोगोने सुदासका पक्ष लिया, जिनमें वसिष्ठ मुख्य थे। वसिष्ठने सुदासका अभिषेक करके उसे भरतोका राजा घोषित किया। दोनो भाइयोमें लडाई हुई, जिसमे ही शायद प्रतर्दन मारा गया, और जिस तरह समुद्रगुप्तकी गद्दीपर वैठे अपने वडे भाई रामगुप्तको मारकर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य वन वैठा, वैसे ही सुदास भरतोका अधिराज हुआ। ऐसा माननेपर त्रित्सुओंके साथ आरम्भमें सुदासके सघर्षकी भी व्याख्या हो जाती है।

२. सुदास

वसिष्ठको सुदासने दान दिये, जिनका उल्लेख वसिष्ठने स्वय किया है[1] (७।१८।२२-२३)—"देववातके नाती सुदासने ववुओंके साथ दो रथ और दो सौ गायें मुझे दी। हे अर्हन (पूजनीय) अग्नि, पैजवन (सुदास) के दानको पा होताकी तरह मैं स्तुतिगान करता घर जा रहा हू।" "पैजवन (सुदास) ने सोनेके आभूषणवाले चार घोडे मेरे लिये दान दिये (२३)।"

दिवोदासका पुत्र सुदास था, इसपर कुछ विद्वान् सन्देह प्रकट करते है, जिसकी वसिष्ठके इस वचन[1] (७।१८।२५) से गुजाइश नही रहती—"हे मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो (दिवोदास न पितर)। और पैजवनके घरकी रक्षा करो।" वसिष्ठ सुदासके ही श्रद्धाभाजन नहीं थे, वल्कि पौरुकुत्सि त्रसदस्यु भी उनकी कृपाका पात्र था, इसीलिये वह इन्द्रकी महिमा गाते कहते है[2] (७।१९।३)—"तुमने सुदासकी सारी रक्षाओंसे रक्षा की, युद्धमें पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी रक्षा की।" इससे यह सन्देह हो सकता है, कि त्रसदस्यु सुदाससे नही लडा, पर यह भिन्न समयकी वात हो सकती है। वसिष्ठ कहते है—

"इन्द्र, हवि-दाता दानी सुदासके लिये वह भोजन अन्न-धन सदा है (७।१९।६)।"

"इन्द्रने सुदासके लिये लोक बनाया, धन दिया (७।२०।२)।"

"इन्द्र, तुम्हारी मैकडो रक्षायें और सहस्रो प्रशसायें सुदासके लिये हो (७।२५।३)।"

"सुदासके रथको न कोई हटा सकता, न रोक सकता है, जिसका कि रक्षक इन्द्र है। वह गौओ-वाले व्रजमे जाता है (७।३२।१०)।"

"हे इन्द्र-वरुण, दास और आर्य शत्रुओको मारो, सुदासकी रक्षा करो।"

वसिष्ठके कथनमे (७।८३।१) पता लगता है, कि इन्द्र-वरुणकी कृपा पा पृथु और पर्शु गायोंके (लूटनेके) लिये पूर्व दिशामे गये। "तुमने दासो और वृत्रोको मारा, आर्य शत्रुको मारा और सुदास की रक्षा की।" पहले जिन शत्रुओंके विरुद्ध ऋषि अपने देवताओंसे प्रार्थना करते थे, वह दस्यु थे, किन्तु अब आर्य और दस्यु दोनोंके नाशके लिये उन्हें प्रार्थना करनी पडी। सुदासके शत्रु तो मुख्यत आर्य ही थे।

§२. दाशराज्ञयुद्ध

१. शत्रु

शम्बर-युद्धकी तरह दाशराज्ञयुद्ध भी कोई एकाध सालका सघर्ष नही था। इसमे सुदासका काफी समय लगा था। वसिष्ठ कहते है (७।८३।६-७)—"इन्द्र-वरुणने दस राजाओंसे बाधित सुदासकी त्रित्सुओंके साथ रक्षा की।" इसका अर्थ यह है, कि त्रित्सुओंके साथ जो गृह-कलह हुआ था, वह अब शान्त हो गया था, एव दस राजाओंने सुदास और उनके त्रित्सुजनको पराजित करनेका प्रयत्न किया था। अगली ऋचामें वसिष्ठ कहते है, कि जब यज्ञानां अ-भक्त दस राजाओंने इकट्ठा हो (समिता) सुदासने युद्ध किया। "समिता"का अर्थ एकत्रित होना है, या समिती (युद्धक्षेत्र) में लडनेकी बात यहा की गई है। सुदासके शत्रुओंमे तुर्वश और यदु मुख्य थे। वसिष्ठके कहनेसे (७।१८।६-८) पता लगता है कि

"तुर्वश, मत्स्य, भृगु और द्रुह्युने मिलकर एक दूसरेका सहायक बन आक्रमण किया था।" अगली दो ऋचाओ (७, ८) से मालूम होता है, कि पक्थो, भलानसो,अलिनो, विपाणियो, शिवोने भी आक्रमण किया था, जिसमें आर्यकी गाये त्रित्सुओको मिली। दुर्दान्त, बुरी नीयतवाले शत्रुओने परुष्णीको ले लिया, पर अन्तमे चयमानका पुत्र कवि पृथिवीपर गिर पडा। परुष्णीमें शत्रुओको मुँहकी खानी पडी, और सुदासने उनको छिन्न-भिन्न कर दिया अन्यत्र[१५] (७।८३।८) फिर इसी युद्धके बारेमें वसिष्ठ कहते है—"दाशराज्ञमें सब तरफसे घिरे सुदासको इन्द्र-वरुणने सहायता की। युद्धमें कपर्दवाले सफेद त्रित्सु प्रार्थना करते थे।"

विश्वामित्रने व्यास और सतलुजको अगाधसे गाध बननेके लिये ऐसी सुन्दर प्रार्थना की है, जिसे ऋग्वेदकी सर्वोत्कृष्ट कविता कह सकते है। परन्तु, नदियोको गाध बनानेका दावा वसिष्ठ भी करते है। नदिया ऋषिकी प्रार्थनासे गाध न हुई हो। सयोगसे वैसा हो जाना असम्भव नही। शत्रुओका पीछा करते सुदासके घोडसवारोने कही पर नदीमें कम पानी पाया होगा। यह घटना दाशराज्ञयुद्धके समय हुई थी, अत वसिष्ठको ही इसका श्रेय देना पडेगा। वसिष्ठ इसके बारेमें कहते है[१६] (७।१८।५)—"इन्द्रने सुदासके लिये नदियोको गाध और सुपारा कर दिया।" इसके बाद ही तुर्वश, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु आदिके ऊपर प्रहार और चायमान कविके मारे जानेका उल्लेख है। इससे यही जान पडता है, कि जिस नदीको पार करके सुदासने शत्रुओपर आक्रमण किया था, वह शुतुद्रि और विपाश् नही, बल्कि परुष्णी (रावी) थी। दोनो वैकर्णोके २१ लोगोको राजा (सुदास) ने काटा, वैसे ही जैसे ऋत्विज यज्ञमें कुशको काटता है।[१७] (७।१८।११-१४) यही नही, बल्कि वही (१२) उल्लेख है, कि वज्रबाहु (इन्द्र) ने श्रुत कवष, वृद्ध और द्रुह्युको पानीमें डुबा दिया। जान पडता है, परुष्णी (रावी) को पारकर शत्रुओंने एक बार भरतोकी भूमि (रावी और सतलुजके बीचके द्वाब) में आनेमें सफलता प्राप्त की थी। सुदासने उनके ऊपर जो भीषण आक्रमण किया, उससे भागते शत्रुओके कितने ही लोग नदीमें डूब कर मर गये।

सुदासने किसी जगह नदीको सुपार पा उसे पार कर शत्रुओंका पीछा किया। वसिष्ठके आगेके वचन (१३) से यह पता लगता है, कि सुदासने अपने शत्रुओंके सात दुर्गोंको ध्वस्त किया। उनकी बहुत सी सम्पत्ति मित्रुओंको मिली। इस युद्धमें भारी नर-संहार हुआ था—"आक्रमणकारी अनु और द्रुह्यके साठ सौ, छ हजार, छियासठ वीर मर कर सो गये (१४)।"

सुदासका सबसे बड़ा युद्ध यही दाशराज्ञयुद्ध था, जिसमें उसने अपने बुरी तरह से हरा कर शत्रुओंको परुष्णी (रावी) के पश्चिम भगाते उनके देशपर आक्रमण किया।

वसिष्ठ सुदासके शत्रु भेदका भी उल्लेख[१८] (७।१८।१८) करते सुदासकी सफलताका श्रेय इन्द्रको देते हुए कहते हैं—'इन्द्र, तुम्हारे बहुतसे शत्रु पराजित हो गये। अब अश्रद्धालु भेदको वशमें करो। जो (कोई) तुम्हारी स्तुति करता है, उसको यह हानि पहुचाता है। उसे वज्रसे मारो।" भेद नाम आर्य जैसा मालूम नहीं होता, हो सकता है, दाशराज्ञयुद्धमें सुदासको फसा और निर्बल देखकर इस नामके किसी राजा या जनने हाथ-पैर फैलाने की कोशिश की हो।

इन सफलताओंके बाद सुदासको कीर्तिका बढ़ना स्वाभाविक था। वसिष्ठने भी कहा है[१९] (७।१८।२४, २५)— जिस (सुदास) की कीर्ति पृथिवी-आकाशके भीतर विस्तृत है, जिसने खूब दान बाटा है, लोग जिसकी स्तुति इन्द्रकी तरह करते हैं, जिसने युद्धमें युध्यामधिको नष्ट किया। मरुत् इस सुदासको पिता दिवोदासकी तरह मानें। पंजवनके निवेश की रक्षा करें, सुदासका बल अविनाशी अजर तथा अक्षिति हो।"

२ युद्ध

वसिष्ठकी पुरोहिती (प्रधान मन्त्रित्व) में ही सुदासने दाशराज्ञ-युद्ध[२०] (७।८३।१-१०) और पूर्वमें जमुना तककी विजय-यात्रा की थी, यह वसिष्ठके इस वचन[२१] (७।१८।१९) से मालूम होता है—"यमुना और मित्रुओंने इन्द्रको संतुष्ट किया। यहा भेदको इन्द्रने मारा। अज,

शिग्रु और यक्षु अश्वोंके सिरोकी वलि लेकर आये।" भेद जमुनाके पास का ही कोई राजा या जन था। अज, शिग्रु और यक्षु शायद जमुना और गगाके वीचमें रहनेवाली आर्य-भिन्न जातिया थी, जिन्होने सुदासकी अधीनता स्वीकार की।

वसिष्ठने भरतोके नामको अमर करते हुए कहा [३] (७।८।४)—"जव सूर्यकी तरह वडे प्रकाशके साथ अग्नि चमकते हुये (उन) भरतोकी स्तुति सुनते है। जिस भरत जनने कि युद्धमें पुरुओको पराजित किया।"

सुदासकी सफलताका सवसे अधिक श्रेय वसिष्ठ और उनके लोग लेना चाहते थे, इसके लिये सुदास वहुत दिनो तक तैयार नही रह सकता था। हो सकता है, अभिमानवश कुछ अवहेलना भी की गई हो। वसिष्ठका पुत्र ने शक्ति शायद पिताकी गम्भीरताका उत्तराधिकारी नही था। पीछेकी परम्परासे मालूम होता है, कि मन्त्रिपदको दूसरेके हाथमें देना उसे वहुत वुरा लगा, और विरोधका परिणाम शक्तिको सुदासके हाथो अपने प्राणोंसे हाथ धोना पडा। सुदासके पहले सघर्षोमें विश्वामित्रने भी सहायता की थी, इसलिए वसिष्ठसे विमुख होने पर सुदासने विश्वामित्रको वह स्थान दिया।

३. सुदेवी रानी

सुदासकी रानी सुदेवी अपने पतिकी योग्य पत्नी थी, जिसे सुदास ने कुत्स आगिरस[३१] (१।११२।१९) के अनुसार अश्विन्का प्रसादसे पाया।

§३. अश्वमेध

१ विश्वामित्र

विश्वामित्रके नदी-सूक्तके देखनेसे मालूम होता है, कि वह ऋग्वेदके सर्वश्रेष्ठ कवि है। उनको इसका कुछ अभिमान भी था [३४](३।५३।१२) —'जो यह दोनो पृथिवी और आकाश है, उनकी और इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रकी यह स्तुति भरतोंके जनकी रक्षा करती है।" विश्वामित्रने नदियोको गाव वना कर सुदासको पार कराया, यह दावा

गलत मालूम होता है, लेकिन विश्वामित्र कहते हैं [५] (३।५३।९) —"महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धु अर्णव (नदी) को रोका, जिसने इन्द्रने कुशिकोंके साथ प्यार करते पार कराया।"

कुशिक पुराने पुरुजनमें ही सम्बन्ध रखनेवाला एक जन था, जो सरस्वती की उपत्यकामें रहता था। वसिष्ठके लोगोंकी तरह यह भी बहुत शक्तिशाली जन था। विश्वामित्र कहते हैं [६] (३।२९।३)—"वैश्वानर अग्नि अश्वकी तरह हिनहिनाते कुशिकोंके यहां प्रज्वलित किये जाते हैं। वह अग्नि हमें सुवीर्य, सुअश्वयुक्त रत्न प्रदान करे।" "कुशिक लोग एक-एक घरमें अग्निका सेवन करते हैं[७]" (३।२९।१५)। सरस्वतीकी उपत्यकाके ये आर्य इस बातका अभिमान करते थे, कि हमारे हरेक घरमें अग्निकी प्रतिष्ठा है, सभी अग्निदेवके भक्त हैं। जहां तक बड़े शत्रुओंके पराजय करने और जमुना-उपत्यकाके अनार्योंको अधीन करनेका सम्बन्ध था, यह काम वसिष्ठके समय ही हो चुका था। विश्वामित्रके समय इन सफलताओंको कायम रखना भर था, लेकिन उतनेमें विशेषता क्या रहती? इसीलिये विश्वामित्रने सुदाससे अश्वमेध करवाया।

२. अश्वमेध

सुरभि सुगन्धित अश्व-मांस आर्योंका एक प्रिय खाद्य था, यह ऋचाओं में मालूम होता है[८] (१।१६२।१२)। पर, अश्वको हवनके रूपमें बलि देकर एक बड़े यज्ञ द्वारा अपने प्रभुत्वको प्रस्थापित करना शायद इसी समय पहलेपहल किया गया। इस यज्ञका ऋचाओंमें सिर्फ एक उल्लेख है, यद्यपि वहां अश्वके साथ मेधके शब्दका प्रयोग नहीं किया गया है, लेकिन, निम्न ऋचा [९] (३।५३।११) से स्पष्ट हो जाता है, कि सुदासने जो घोड़ा छोड़ा था, उसका उद्देश्य राजनीतिक था—"हे कुशिको, सजग हो जाओ, सुदासने घोड़ेको छोड़ा है। राजाने पूर्व, पश्चिम और उत्तरमें शत्रु का नाश किया। वह पृथिवीमें यश (पैदा) कर रहा है" पूर्व, पश्चिम और उत्तर (प्राक्, प्रत्यक्, उदक्) का ही नाम लेना और दक्षिणको छोड़ देना बतलाता है, कि सुदास

की विजय सिन्धुनद, हिमालय और जमुनाकी ओर हुई। दक्षिण (मरुभूमि) का वहुत सा भाग उस समय भी शायद इतना समृद्ध नही था, कि वह किसी विजेताका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता। इस घोडेको रोकनेवाला शायद कोई नही था, इसलिये इसके कारण और कोई सघर्ष नही करना पडा, अन्यथा विश्वामित्रकी ऋचाओमें उसका उल्लेख जरूर होता। भरतो के राजा सुदासके विश्वामित्र जीवन भर पुरोहित रहे। भरतोके अभिमानके प्रति भी उनकी एक ऋचासे असतोष व्यक्त होता है[१०] (३।५३।२४)—"हे इन्द्र, भरत-पुत्र लडाई (फूट) जानते है, मेल नही। शत्रुकी तरफ घोडा भेजते है और नित्य युद्धमें धनुप धारण करते है।"

सुदासके समय सप्तसिन्धुके आर्योका चरम उत्कर्प हुआ। उसीके समय सवसे वडे ऋपि पैदा हुए। यही समय है, जव कि जन-तन्त्रकी अलग-अलग रखनेकी मनोवृत्ति पर भारी प्रहार हुआ। हरेक अभिमानी आर्यजन अपनी सीमाओंके भीतर किसी दूसरे जनके हस्तक्षेपको वरदाश्त नही कर सकता था, पर, यह नीति तभी तक चल सकती थी, जव तक कि किसी प्रवल शत्रुसे मुकाविला नही था। दुर्दान्त शम्वरने अपनी सफलताओंसे आर्यो को वतला दिया, कि तुम्हारी डेढ चावलकी खिचडी वहुत दिनो तक नही पक सकती। पडोसके आर्यजनोने शत्रुओंके मुकावलेमें पूरी सफलता न देखकर यदुओ और तुर्वशोको पश्चिमसे वुलाया। फिर पृथु और पर्शु भी इसी उद्देश्यसे पूर्वकी ओर आये। लेकिन, अलग-अलग रह कर कोई सफल नही हो सकता था। दिवोदासने सारे आर्यजनोंके वलको लेकर शम्वरकी शक्तिका सर्वदाके लिये उच्छेद किया। दिवोदासके वाद फिर आर्यजनोंने अपनी पुरानी मनोवृत्तिको अपनाना चाहा। पर, वह उसमें सफल कैसे होते? विकसित आर्थिक जीवन और पराक्रमी सुदास उसमें वाधक थे। उसने सारे सप्तसिन्धुको एकतावद्ध करनेका काम किया, और जमुनासे पूर्व भी आर्योके प्रसारका रास्ता खोला।

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

§१. शासक, शासित

यह बतला चुके हैं, कि सप्तसिन्धुमें पहलेपहल आते समय आर्य जन-व्यवस्थामें थे। उनके प्रमुख पाच जन थे, जिनमें सबसे पूर्ववालेका नाम पुरु था। इसीकी एक शाखा भरत जन था। दिवोदास और सुदास भरत जनमें हुए। आर्योंके निवास और प्रभावको पूर्वमें बढानेमें यही जन सबसे आगे था। पीछे भरत नामक कोई राजा भी हो सकता है, लेकिन देश की ख्याति उसके नामपर नही, बल्कि ऋग्वेदके इसी भरतजनके नामपर हुई। जन-प्रथासे निकलकर अब वह सामन्ती-व्यवस्थामें आ चुके थे, और पितृ-सत्ताके स्वच्छन्द वातावरणसे निकल राजाकी निरकुशताकी ओर बढ रहे थे। पर, जनतान्त्रिकतासे उनको इस तरह छुट्टी नही मिल सकती थी। आर्योंकी आर्थिक व्यवस्था अभी पुरानी थी। गाय-घोडे, भेड-बकरी उनके सबसे बडे धन थे, यही उनकी जीविकाके साधन थे। अपने पशुओंके चरनेके लिये उन्हे खुली गोचर भूमि और रहनेके लिये गोष्ठ चाहिये थे। एक-एकके पास हजारो गायें-घोडे होते थे। ऐसे लोगोंके लिये घना बसा नगर उपयुक्त नही हो सकता था। मोहनजोदरो और हडप्पा जैसे नगर सिन्धुमें थे, पर ग्राम उनके अधिक अनुकूल थे। आरम्भमें ग्रामका अर्थ क्षुष्ट था, अर्थात् तृण और तुष भाषाका ओर। पीछे ग्राम मनुष्योंके जुटनेकी जगह मकानोंका क्षुष्ट माना जाने लगा। आर्य बस्तियोंका विभाजन, ग्राम और राष्ट्रके रूपमें था। राष्ट्र और जनपद एक ही अर्थके वाचक थे। जनोंकी प्रधानताका

द्योतक—जनोका निवासस्थान—जनपद और सामन्तोकी प्रधानताका द्योतक राष्ट्र। ग्रामके मुखियाको ग्रामणी (ग्राम + नी) कहते थे, और राष्ट्रके मुखियाको राजा। राजाके लिये सम्राट्, स्वराट्, शास, ईशान, भूपति, पति का भी प्रयोग देखा जाता है। राजाकी सन्तानोको राजपुत्र और राजदुहिता कहते थे।

१. ग्रामणी

ऋषि नाभानेदिष्टने मनुको ग्रामणीकी उपाधि दी है, जो ग्रामके नेताके लिये नही, वल्कि आर्योके समूहके नेताके लिये इस्तेमाल हुआ है। इससे हजार वर्ष वाद सिंहलके एक प्रतापी राजाको ग्रामणी—नटखटपनके कारण दुष्ट-ग्रामणी—कहा जाता था। ऋषिने मनुकी उदारता की प्रशसा करते कहा है[1] (१०।६२।११)—"सहस्रके दाता ग्रामणी मनुका कोई अनिष्ट न करे। इसकी दक्षिणा (दान) सूर्यके साथ सव जगह पहुचे। सावर्णि मनुको देव आयु प्रदान करे, जिससे न थके हम धन पायें।"

२ राष्ट्र

वसिष्ठने वरुणको राष्ट्रोका राजा कहा है[2] (७।३४। १०, ११) —

"इन नदियोंके जलको सहस्र नेत्रवाले उग्र वरुण देखते है।"

"वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप है। उनका क्षत्र (वल) अपूर्व और सर्वगत है।"

एक कल्पित महिला-ऋषि जुहूने भी राष्ट्रका उल्लेख किया है[3] (१०। १०९।३)—

"उन्होने कहा, हाथसे इसको ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्मजाया है। भेजे दूतमें यह (वैसे ही) आसक्त नही हुई, जैसे कि क्षत्रियसे रक्षित राष्ट्र।"

क्षत्रिय (राजा) अभी अपने पुराने अर्थमें व्यवहृत होता था, जैसा कि ईरानके सम्राट् दारयवहु (दारा) ने इस शब्दको अपने लिये इस्तेमाल

किया। जुहूको उसके पति वृहस्पतिने त्याग दिया था। उसे पत्नीको पुन स्वीकार करनेके लिये इन ऋचाओंमें कहा गया है।

३. विश्

विश्का अर्थ जनता था, जिससे ही पीछे वैश्य (विश्की सन्तान) शब्द बना। विश् शक्तिशाली जनका वाचक था, वैश्य या बनियेका नहीं। विश् राजाको बनाने-बिगाडनेका अधिकार रखती थी, जैसा कि राजाके गद्दीपर बैठनेके समय पढे जानेवाले (आगे उद्धृत) मन्त्रोंसे मालूम होगा। सर्वपुरातन ऋषि भरद्वाजने विशोंके राजाको उपस्थान (मुजरा) करनेका उल्लेख किया है' (६।८।४)—"महान् मरुतोंने आकाशमें अग्निको धारण किया, विशोंने पूजनीय नमस्कर उस राजाकी स्तुति की। विवस्वान् (सूर्य) के दूत वायुने दूरसे वैश्वानर अग्निको यहा पहुचाया।'

४ राजा

राष्ट्रोंके राजाके बारेमें अभी हम (वसिष्ठके वचनमें) कह चुके है। उनके वृद्ध समसामयिक भरद्वाजने अग्निकी उपमा राजासे दी है' (६।४।४)—"हे अग्नि, तुम हमें अन्न दो। राजाकी तरह शत्रुओंको नष्ट करके अन्न हमें प्रदान करो।" आगे भी' (६।१२।२)—"हे राजन्, तुम यशस्वी बुद्धिमान् हो। यज्ञ करते (यजमान) बहुत सा हव्य तुम्हें प्रदान करते है। तुम त्रिभुवनमें अवस्थित मनुष्यके उत्तम हव्योंको वेगसे (देवताओं के पास) ले जाओ।"

फिर' (६।३०।५) भरद्वाज कहते है—"इन्द्र, तुमने जलको फैलनेके लिये मुक्त किया, दृढ पर्वतको तोडा। सूर्यके साथ द्यौ और उषाको पैदा करने तुम मनुष्यके लोगोंके राजा हुए।" अथवा' (६।३६।४) इन्द्रको "जनोंके अद्वितीय पति और सारे भुवनका एक राजा" कहा है। वसिष्ठ भी इन्द्रके बारेमें भरद्वाजके कथनका समर्थन करते है' (७।२७।३)—"इन्द्र जगत् (जगम) के लोगोंके राजा, पृथिवीमें जितना स्थर जो धन है, उसके राजा है। उसीसे वह राजा (यजमान) जो धन देते है, या स्तुति करनेपर

हमारे पास धन भेजें।" वसिष्ठने मित्र (सूर्य) और वरुणकी एक साथ स्तुति करते उन्हें राजा कहा है[७] (७।६४।२)—"महान् सत्य-रक्षक, सिन्धुओंके पति, क्षत्रिय (राजा) मित्र-वरुण सामने पधारो। हे शीघ्र दाता, मित्र और वरुण द्यौलोकसे अन्न और वृष्टि भेजो।"

कण्वपुत्र प्रगाथने इन्द्रको जनोंका राजा कहा है[८] (८।५३।३)—"हे इन्द्र, तुम छाने और अनछाने (सोम) के स्वामी हो। तुम जनोंके राजा हो।"

§२ राजा

१ राजाभिषेक

अगिराकी सन्तान ध्रुवने उन मन्त्रों[९] (१०।१७३) को बनाया है, जिन्हें राजगद्दीके समय हाल तक पढा जाता था। इनमें राजाको चेतावनी दी गई है, कि विश् (जनता) की इच्छा ही तुम्हें अचल रख सकती है—

"मैंने तुम्हें लाकर बैठाया। तुम भीतरसे बढो, ध्रुव और अचल बनो।

"सारी विश् (जनता) तुम्हें पसन्द करे, तुम राष्ट्रसे भ्रष्ट न हो। तुम्हारा राष्ट्र भ्रष्ट न हो॥१॥

"पर्वतकी तरह अचल हो यहा बढो, च्युत मत हो।

"इन्द्रके समान यहा ध्रुव रहो, इस राष्ट्रको धारण करो॥२॥

"इस (राजा) को हव्यसे इन्द्रने ध्रुव करके धारण किया।

"उसे सोमने, ब्रह्मणस्पतिने आशीर्वाद दिया॥३॥

"द्यौलोक ध्रुव (अचल) है, पृथिवी ध्रुव है, ये पर्वत ध्रुव है।

"यह सारा जगत् ध्रुव है, विशोका यह राजा ध्रुव है॥४॥

"तेरे राष्ट्रको देव बृहस्पति ध्रुव।

"राजा वरुण ध्रुव, इन्द्र-अग्नि ध्रुव धारण करें॥५॥

"ध्रुव हविष्से हम ध्रुव सोम (विजया) को मिश्रित करते है।"

"इन्द्र प्रजाओंको एक तथा बलि लानेवाली बनाओ॥६॥"

२. सम्राट्

सम्राट्का अर्थ राजाओंका राजा नहीं था। याज्ञवल्क्यने बृहदारण्यक उपनिषद् (४।२।१) में जनकको "सम्राट्" कहा है। पर, जनक केवल विदेह जनपदका राजा था। भरद्वाजने[१४] (६।७) वैश्वानर अग्निको भी उसी या अच्छे राजाके अर्थमें सम्राट कहा है—

"द्युलोककी मूर्धा, भूमिके विचरनेवाले, यज्ञके लिये उत्पन्न,

"कवि, सम्राट्, जनोंके अतिथि वैश्वानर अग्निको देवताओंने पैदा किया ॥१॥

वसिष्ठने सविता (सूर्य) को सम्राट् कहा है[१५] (७।३८)—

"देवी अदिति देव सविताकी सेवा करती आज्ञा पालन करती स्तुति करती है। वरुण, मित्र अर्यमा-सहित सम्राट् (सम्यक् प्रकाशमान) देवताकी स्तुति करते हैं ॥४॥"

३ शास

शास राजाके अर्थमें आया है। शासन शब्दमें वही भाव मिलता है। पीछे राजाके लिये शास (शाह) ईरानमें ही रह गया। स का ह होना ईरानी भाषामें आम तौरसे देखा जाता है—शासका शाह और शासानु-शासनका शाहंशाह बना। ऋग्वेदमें भी यही उसका अर्थ है, जैसा कि विश्वा-मित्रकी ऋचा[१६] (३।४७) से मालूम होता है—

"मरुतों-सहित वृषभ, वर्धनशील दिव्य शास (राजा),

विश्वविजेता उस उग्र इन्द्रको हम नवीन रक्षाके लिये यहां आह्वान करते हैं ॥५॥"

४ ईशान

ईशान ऋग्वेदमें अभी शासकका पर्यायवाची नहीं बना था। यह भी राजाके लिये वैसे ही इस्तेमाल होता था, जैसे बहुत पीछेतक ईश्वर और परमेश्वर। वसिष्ठने इन्द्रके बारेमें कहा है[१७] (७।३२)—

"हे सूर्य इन्द्र, न दुही गायोंकी तरह हम तुम्हें नमस्कार करते हैं।

इस जगत्के सर्वदर्शी जग-स्थावरके ईशान तुम्हें ॥२२॥"

५. स्वराट्

राट्, राजा एक ही शब्द है, और उसके साथ स्व लगानेसे उसका अर्थ स्वय राजा होता है। गौतम नाधाने कहा है[१७] (१।६१)—

"द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्षसे भी वढ कर इसकी महिमा है। इन्द्र अपने गृहमें स्वराट् है ॥८॥

६ नृपति

आगिरस कुत्सने इन्द्रकी प्रशसामें कहा है[१८](१।१०२)—

"हे नृपति, तुम वलमें तेहरी रस्सीकी तरह, तीन भूमि और तीन प्रकाशोवाले हो। तुम इस सारे भुवनको वहन करते हो। सनातनसे जन्म लिये तुम शत्रु-रहित हो ॥८॥"

७ पति राजा

पति और राजा दोनो शब्दोका इकट्ठा राजाके लिये इस्तेमाल आगिरस तिरश्चीके वचन[१९] (८।८४) में मिलता है—

'हे इन्द्र, श्येन (वाज) द्वारा लाये गये छाने हुए सुखमय सोमको खुशीके लिये पियो। तुम शाश्वत विशो(जनता)के पतिराजा हो ॥३॥"

८ राजपुत्र, राजदुहिता

राजा होनेपर राजपुत्र और राजदुहिताका होना स्वाभाविक है। राजा जनताका आदमी नही था, उसका सिहासन अव उसके ऊपर था, वैसे ही, जैसे कि इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्रका। इसलिये राजाका लडका होना विशेष सम्मानको प्रकट करता था। दीर्घतमासन्तान ऋषि कक्षीवान्की पुत्री घोषा अपनेका राजदुहिता कहती है। इससे यह जरूर मालूम होता है, कि राजाका शब्द अभी वहुत व्यापक था, तभी कक्षीवान् राजा हो सकते थे। घोषाने दोनो अश्विनीकुमारोकी स्तुति करते कहा है[२०] (१०।४०)—

"हे अश्विनो, सवेरे जगानेके लिये दो बूढे राजाओकी तरह तुम्हारी स्तुतिकी जाती है। नेवाके लिये किसके घर तुम जाते हो? किसके पास नष्ट करते हो? नरो, किसके सवन (यज्ञ) में राजपुत्रकी तरह तुम जाते हो ॥३॥

हे नरो अश्विनो, राजाकी दुहिता घोषा चारो ओर घूमती, तुम्ह पूछती है। दिन हो या रात तुम मेरे पास रहते हो। रथ और अश्व-युक्त मेरे भतीजेका दमन करते हो ॥५॥"

इन उद्धरणोंसे मालूम होगा, कि विश् (जनता) अभी पगु नही हुई थी। वह शस्त्र-बद्ध मौजूद थी। उनके शस्त्रोकी जरूरत हर जगह थी। गावोंके निवासके कारण आर्य जनयुगीन अर्थतन्त्रसे बिल्कुल मुक्त नही हुए थे, इसलिये निरकुश राजा पैदा नही हो सकता था। तो भी अब राजा विश्से ऊपर था।

§३ शासन-पत्र

ऋग्वेदसे उस कालके प्रशासनका सकेत भर मिलता है। गण-पति शब्द से गण का सकेत मिलता है। बुद्धके समकालीन लिच्छवि और कितने ही दूसरे गण मौजूद थे। बुद्धकालमें ग्रामका मुखिया ग्रामणी होता था, जिसे गामजेट्ठ (गावका मुखिया) भी कहते थे। गावके ज्येष्ठकी प्रतिध्वनि हिमालयके कुछ स्थानोमे बूढे या बुढेरेमे मिलता है। बूढे गावमे व्यवस्था रखनेके जिम्मेवार होते थे, फर उगाहनेमें भी उनसे सहायता ली जाती थी। ऋग्वेदके ग्रामोके ग्रामणी भी यही काम करते होंगे।

१ सभा

सभा और समिति दोनो ऋग्वेदमें कई जगह आया है। सभाका अर्थ कुछ व्यापक था। उसमें राजनीतिक—ग्राम, राष्ट्र, जन—सभायें ही शामिल नही थी, बल्कि जुयेकी सभा भी। कवष ऐलूष-पुत्रने इसका उल्लेख किया है[1] (१०।३४)—

"जुआडी पूछनेपर शरीर फुलाकर 'मै जीतूंगा' कहते सभामें जाता है।
"पाशे कभी इसकी इच्छा पूरा करते है, कभी प्रतिद्वन्द्वीकी ।।६।।"

सभाका प्रयोग, जान पडता है, पीछे जूयेकी सभाके लिये ज्यादा होने लगा, इसीलिये जूआशालाके अध्यक्षको सभिक कहा जाता था। शुनहोत्र-पुत्र गृत्समद सभेयको सभासद्के अर्थमें प्रयुक्त करते है[१] (२।२४)—

"ब्रह्मणस्पतिके वाहन (घोडे) हमारा स्तोत्र सुनते है। सभेय विप्र (ऋत्विक्) स्तुति-सहित हव्य प्रदान करते है ।।१३।।"

आर्य अपने जवानोको "सभेय" होनेकी प्रार्थना करते थे, अत उनकी सभायें महत्वपूर्ण थी, जिनमे उनके जवान अपनी वाग्मिता दिखलाते थे। देवातिथि काण्व कहते है[११] (८।४)—

'हे इन्द्र, तुम्हारा सखा, अश्व-युक्त रथी, सुरूप, गोमान्, धनी, वयसे युक्त हो सदा आह्लाद करता सभामे जाता है ।।९।।"

भरद्वाजने भी गायोकी प्रशसा करते सभाका उल्लेख किया है[१४] (६।२८)—

"हे गायो, हमें तुम मोटा करो, हमारे कृश और असुन्दर शरीरको सुदर वनाओ, घरको भद्र वनाओ। हे भद्र वोलनेवालियो, सभाओमें तुम्हारे महाभोजन (अन्न) का वखान किया जाता है ।।६।।"

२ समिति

समिति ही युरोपीय भाषाओमें कमीटी या कमीती है। (शतम और केन्तमका मुख्य भेद यह है, कि शतमके श का केन्तम में क हो जाता है।) समिति या कमीटी आज छोटी सभाको कहते है, लेकिन ऋग्वेदिक कालमें यह राजसभा, राष्ट्रकी वडी सभा अथवा ससद्को कहा जाता था। वुद्धकालमें गणोकी पार्लियामेण्टके लिये सस्था शव्दका प्रयोग होता था। हरेक गण-राजधानीमे सस्थागार (सथागार) का होना आवश्यक था। पालि-सूत्रोमें उन्ही नगरोमें सथागारोका उल्लेख मिलता है, जो गणराज्योकी राजधानी थे। ऋग्वेदमें संस्थाका प्रयोग नही है। उस समय भी सस्था रही होगी,

पर राजतंत्रके अधिक अनुकूल समिति थी। मरीचि-पुत्र कश्यप ने सोमको उपमा देते कहा है[५] (१०।९७।६)—

"राजा जैसे समितिमें जाते हैं।"

लेकिन, समितिका अर्थ युद्धक्षेत्र भी होता था, जैसा कि कश्यपके ही वचनसे मालूम होता है[६] (९।९२।६)—

"जैसे होता ऋत्विज पशुगृहमें जाते हैं, जैसे भला राजा युद्ध में जाता है। वैसे ही पवित्र होता सोम कलशोंमें जाता है।

सवनन ऋषि समितिका उल्लेख मन्त्र (सलाह) के सम्बन्धमें करते हैं[७] (१०।१९१।३)—

"तुम्हारा मन्त्र समान (एक साथ), समिति एक सी हो।"

३. ग्राजपति, कुलप

शासन या सामाजिक व्यवस्थामें कुलों और ग्राज (समुदायों) का भी स्थान था। प्रतर्दनने[८] (१०।१७९।२) कुलप और ग्राजपतिका उल्लेख किया है—

"हे इन्द्र हवि पक चुका है, आओ। सूर्य काल (दिन) के भागके मध्यमें पहुँच गया है। कुलप जैसे विचरने ग्राजपतिका वैसे ही (तुम्हारे) सखा निधियोंके साथ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

इससे मालूम होता है, कि कुलोंके मुखियासे ऊपर ग्राजोंके मुखियाका स्थान होता था। ग्राम कुलोंका समुदाय था। शायद ग्राम समुदाय ग्राज कहा जाता था, जिसका पति ग्राजपति था। एक ग्राम कई कुलोंमें बटा होता था। बड़े गाव या नगरको पुर नहीं कहते थे। सम्बरकी पुरियां किलेबन्द स्थान थे, यह हम देख चुके हैं।

ऋग्वेदमें जो छिटपुट वर्णन आता है, उससे उस समयके शासनका पूरा रूप अंकित करना सम्भव नहीं है। राज-व्यवस्थामें प्रशासन, न्याय-व्यवस्था, कर (बलि) उगाहना मुख्य था। प्रशासनके लिये शायद १ कुलपति, २ ग्राजपति, ग्रामणी, गणपति और अन्तमें समिति तथा उसका प्रधान

३ राजा था। दीवानी-फौजदारी मुकद्दमोको देखनेका भार भी इन्हीके ऊपर होगा। विश्का वलिहृत् (कर देनेवाला) कहा गया है। वहुत सम्भव है, कर नगद नही, जिन्स के रूपमे उगाहा जाता था। कर उगाहने मे कुलपति, ग्रामपति सहायक होते होगे।

सैनिक प्रशासनके वारेमें इतना ही कह सकते है, कि आर्य सैनिक अनुशासनवद्ध थे। वह हजारोकी सख्यामें शत्रुओपर आक्रमण करने या प्रतिरक्षण के लिये जाते थे। सेनाका सवसे ऊपरका अधिकारी राजा था, लेकिन आर्जुनेय कुत्सको सारथी उपाधि शायद राजाके वाद सवसे वडे सेनापति होनेके कारण मिली थी। सम्भवत अफसर दशिन् (दशपति), शतिन् (शतपति) और सहस्रिन् (सहस्रपति) होते थे। चतुरग नही त्रिरग सेना थी—रथ, घोडे और पैदलकी। अभी हाथीकी सेना नही वनी थी। सप्तसिन्धुमें सिंह जरूर थे, पर हाथियोके होनेका ऋग्वेदसे पता नही लगता, और न उनके पालतू वनानेका ही कोई उल्लेख है।

४ पुरोहित (प्रधान-मंत्री)

राजाके पुरोहितका काम केवल यज्ञ और धार्मिक वातोमें सलाह देना भर नही था। वसिष्ठने वडे अभिमानसे कहा है। त्रित्सु भरत अनाथ शिशुकी तरह थे। जव वसिष्ठ उनके पुरोहित हुये, तो वह शक्तिशाली वन गये। पुरोहितको वृहस्पति भी कहा जाता था। वामदेवने वृहस्पति पुरोहित के वारेमें कहा है[९] (४।५०।१)। वसिष्ठने तृत्सुओकी अपनी पुरोहितीका उल्लेख किया है[१०] (७।८३।४)।

भाग ४

सांस्कृतिक

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

§१ शिक्षा

चाहे कितनी भी पिछडी मानव-जाति हो, उसके लिये भी पूर्वजो द्वारा अर्जित ज्ञान और अनुभवको एक पीढीसे दूसरी पीढीमे पहुचाना आवश्यक होता है, जिनके वास्ते उसे किसी न किसी तरहकी शिक्षा-प्रणाली अपनानी पडती है। वैदिक आर्य अपने पूर्वार्जित ज्ञानको एक पीढीसे दूसरी पीढीमे पहुचाते थे। जिन ज्ञानको वह परम पवित्र मानते थे, वह वेदके मन्त्र थे। ऋग्वेदिक आर्योके समयसे पहले मोहनजोदरोके लोग एक तरहकी चित्रलिपि इस्तेमाल करते थे, जिनके हजारके करीब अक्षर मिल चुके है, पर अभी तक पढनेकी कुजी नही मिली है। लिखनेका पूरी तौरसे प्रचार हो जाने पर भी वेदोको गुरुमुखसे सुनकर पढने का रवाज हमारे यहा अभी भी पसद किया जाता था, फिर ऋग्वेदके कालमे उसे लिपिबद्ध करनेका प्रयत्न किया गया होगा, इसकी सम्भावना नही है। आर्य बहुत पीछे तक वेदके लिपिबद्ध करनेके खिलाफ रहे क्योकि तब उनकी गोपनता नष्ट हो जाती। वैदिक वाङ्मय ही क्यो, बौद्ध और जैन पिटक भी शताब्दियो तक कण्ठस्थ रखे गये। बौद्ध त्रिपिटक बुद्ध-निर्वाणके चार शताब्दी बाद और जैन-आगम आठ शताब्दी बाद लिपिबद्ध हुये। कानसे सुनकर सीखे जानेके कारण वेदको श्रुति कहते है। इसीलिये भारी विद्वान्‌को बहुश्रुत—बहुत सुना हुआ—कहा जाता। हमारी लिपिकी उत्पत्ति कैसे हुई और उसका सम्बन्ध किस

पुरानी लिपिसे है, इसका निर्णय अभी नही हो सका है। इतना मालूम है, कि हमारी सबसे पुरानी वर्णमाला ब्राह्मी है, जिसके निश्चित कालवाले नमूने अशोक के अभिलेखोमें मिलते है, जो ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दी में या बुद्ध-निर्वाणसे ढाई सौ वर्ष बादके है। पिपरहवाके ब्राह्मी अक्षर बुद्धकालीन है, यह विवादास्पद है। ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दीसे पहिलेकी वर्णमालाके नमूने मोहनजोडरो, हडप्पाकी चित्रलिपिमें मिलते है। दोनो लिपियोका सम्बन्ध स्थापित करना मुश्किल है। यद्यपि मोहनजोडरोकी चित्रलिपिसे उच्चारणवाली वर्णमाला का निकलना बिल्कुल सम्भव है, पर, ब्राह्मी मोहनजोडरोकी लिपिसे निकली, इसे सिद्ध करना अभी समव नही है।

उस समय किसी प्रकारकी मौखिक शिक्षा पुरानी (अतएव पवित्र) कविताओकी जरूर होती थी। उसका सग्रह ऋग्वेदमें होना चाहिये था। पर, वैसा नही देखा जाता। ऋग्वेदके प्राचीनतम ऋषि और उनकी कृतिया, हमें भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तक ले जाती है। उससे पुराने दो-चार ही ऐसे ऋषि मिलते है, जिनकी कृतिया पुरानी हो सकती है, पर, भाषा और सग्रहकी गडबडी ने उनकी प्राचीनताको बहुत कुछ गवा दिया है। अनुमान किया जा सकता है, कि ऋग्वेदके महान् ऋषियोने इन्द्र, अग्नि, मित्रके ऊपर जो हजारो ऋचाये बनाई थी, उनमें कुछ शब्द या भावमें भरद्वाजसे पुरानी हो सकती है, पर, इसे निश्चयपूर्वक नही बतलाया जा सकता। हमारे सबसे पुराने देवता द्यौ और पृथिवी है, जिन्हे ऋग्वेदमें पितरौ (दोनो माता-पिता) कहा गया है। द्यौ पिता और पृथिवी माता द्यौ-पितर का ख्याल बहुत पुराना है। वह केवल शतम (आर्य-स्लाव) वश का ही नही बल्कि केन्तम् (ग्रीस, रोम आदि) का भी पूज्य देवता था। जुपितर द्यौ-पितरका ही शब्दान्तर है, ज्यौस द्यौस् ही है। द्यौ-सम्बन्धी कितनी ही ऋचायें मिलती है, किन्तु ऋग्वेदिक कालमें द्यौकी नही, बल्कि इन्द्र की प्रधानता थी।

ऋग्वेदसे पहलेकी परम्परासे आई ज्ञान-सम्पत्ति अलग नहीं मिलती, इसलिये हम नहीं कह सकते, कि उस कालमें श्रुतिकी शिक्षण-परम्परा किस तरहकी थी। शिक्षा, शिक्षण, प्रशिक्षण शब्दोंका जो अर्थ आज है, वह उस समय नहीं था। ऋग्वेदमें शिक्षाका अर्थ देना है, जैसा कि वसिष्ठकी एक ऋचा' (७।२७।२) से मालूम होता है—

"हे पुरुहूत इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे सच्चा मनुष्योंको दो (शिक्ष)।"

वसिष्ठकी ही दूसरी ऋचामें (७।१०।३५) शिक्षाका अर्थ अनुकरण है—

"इन मेंढकोंमें एकके वचनको दूसरा शाक्त (आचार्य) की तरह अनुकरण करता बोलता है। मेंढको, जब तुम सुन्दर तीरसे बोलते हो, तो जलमें सब अंग अच्छा हो जाता है।"

यहां बरसात के आरम्भमें मेंढकोंको एक दूसरेका अनुकरण करने बोलनेको ऋग्वेदकालीन गुरु-शिष्योंके पाठसे तुलना की गई है। गोस्वामी तुलसीदासने उस ऋचाको शायद ही देखा हो, पर जान पड़ता है यह उपमा परम्परासे चली आई थी, इसीलिये उन्होंने कहा—

"दादुर धुनि चहु ओर सुहाई। वेद पढ़ह जनु बटु समुदाई।"

एक मेंढक आवाज निकालता है। उसके बाद दूसरे अनुकरण करते हैं, फिर लड़ी लग जाती है। पुराने समयकी वेद पढ़ानेकी प्रक्रिया अब भी देखी जाती है। गुरु स्वर-सहित मन्त्रको एक बार पढ़ता है। शिष्य उसे दो बार दोहराते हैं। आज गुरु-शिष्य पुस्तकका सहारा लेते हैं। वेद जब लिपिबद्ध नहीं थे, तो गुरु कठस्थ ऋचाको एक बार बोलता होगा और शिष्य दो बार। इस प्रकार बराबर दोहराने छोटी आयुमें ही बच्चोंको अपना वेद कठस्थ हो जाता था। यद्यपि सामको छोड़कर और किसी वेद को संगीतके स्वरोंके साथ नहीं पढ़ा या दोहराया जाता था पर तो भी पद पाठकी तरह उन की एक लय हो ही जाती थी। पवित्र ऋचाओं या मन्त्रोंकी शिक्षा शिष्य गुरुसे इसी तरह पाता था। भरद्वाज-वसिष्ठकी चौथी-पांचवीं पीढ़ी तकके ही रचित मन्त्र ऋग्वेद में मिलते हैं, ऋग्वेदके

सबसे पिछले ऋषियोंने गुरुमुखसे अपने पूर्वज ऋषियोंके ब्रह्म (मन्त्र, पद) का अध्ययन किया था।

ब्रह्म (ऋचा) में अद्भुत शक्ति मानी जाती थी। तभी तो विश्वामित्रने कहा[1] (३।५३।१२)—

"जो यह दोनो द्यौ तथा पृथिवी है, उनसे मैंने इन्द्रको तुष्ट किया। विश्वामित्रका यह ब्रह्म भारत-जनकी रक्षा करता है।"

वेदवाणीकी अद्भुत शक्तिको स्वय प्राचीनतम ऋषियोंने अपने मुँहसे बखाना था, इसलिये उसके सीखने और कठस्थ करनेकी ओर लोगोका ध्यान बहुत हो, यह स्वाभाविक था।

लेकिन, केवल देवताओको प्रसन्न करनेसे ही उनकी लोक-यात्रा नही चल सकती थी। उस समय सीखनेकी और भी बहुत सी चीजे थी। जिस युद्ध-कौशल को आर्य तरुण गुरुमुखसे सीखते थे, वह सब वेदमें नहीं दिया गया है। नाना शिल्प भी उस वक्त प्रचलित थे, जिन्हें भी सीखना जरूरी था। इन शिल्पोमेंसे कुछ का ही नाम ऋग्वेदमें मिलता है। मोहन-जोडरो और हडप्पामें ऋग्वेदसे डेढ-दो हजार वर्ष पहलेकी जो चीजें उपलब्ध हुई है, उनसे पता लगता है, कि उस समय इजीनियर (वास्तुशिल्पी), राज-गीर, शखरकार, पटकार (जुलाहे) सुनार, चर्मकार, वेणुकार, लोहार, कुम्हार आदि बहुतसे शिल्पकार थे, जिन्हें अपनी बातें अगली पीढी में पहुचानी पडती थी। खेती और उसके लिये उपयोगी ऋतुओंके ज्ञानकी भी शिक्षा आवश्यक थी। इस प्रकार ऋग्वेदिक आर्योको जितनी शिक्षा लेनी पडती थी, वह उतनी ही नही थी, जिनका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है।

§२. स्वास्थ्य

आर्य यथार्थवादी थे। अपने देवताओ पर उनकी परम भक्ति थी, लेकिन पौरुषको भूल कर नही। वह जानते थे, इन्द्र भी दिवोदास, सुदासके पौरुषके सहारे ही शत्रुओका सहार कर सके, इसलिये शरीरकी पुष्टि और स्वास्थ्यकी ओर उनका ध्यान विशेष था। सप्तसिन्धुमे अपनेसे अधिक

सभ्य, सम्कृत तथा साधन-सम्पन्न लोगोंको पराजित करनेमें आर्य इसीलिये सफल हुये, कि उनके पास तेज चलनेवाले घोडो और घुमन्तुओं की लडाकू प्रकृति के अतिरिक्त तगडा शरीर भी था। उनके सामने मोहनजोदरो के नागरिक खर्वकाय थे। हरेक घूमन्तू या अर्ध-घुमन्तूकी तरह आर्य खुलेमें रहना पसन्द करते थे, इसीलिये उन्होंने अपना वास नगरोमे नही, ग्रामोमें रखा। खुली हवामे वास, दूध-घी-मास प्रधान-भोजन स्वास्थ्य-सवर्धनके ये सबसे अच्छे साधन उनके पास मौजूद थे। घुडसवारी स्वय एक व्यायाम है। उस समय शायद ही कोई ऐसा आर्य हो, जो चतुर घोडसवार न हो। शत्रुओंसे प्रतिरक्षा तथा स्वय भी दूसरोकी गायो और भेडोको लूटनेके लिये उन्हे हर वक्त हथियारबन्द रहना पडता था। इसी लिये वह घोडसवारीमे भी चुस्त थे। मल्ल या मल्लविद्याका उल्लेख ऋग्वेदम नहीं मिलता। पर, पीछे पजाब और पूर्वी उत्तर-प्रदेशमे एक जनका नाम मल्ल बतलाता है, कि उनमे कुश्तीका रिवाज था। मुष्टियुद्धका स्पष्ट उल्लेख विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दाकी ऋचा[1] (१।८।२) मे है—

"हे इन्द्र, तुम्हारे द्वारा रक्षित हम घोडोंसे मुष्टिहत्या (मुष्टियुद्ध) द्वारा शत्रुओंको रोकेंगे।"

कुश्ती (मल्लयुद्ध) या मुष्टियुद्ध केवल स्वास्थ्यके लिये ही उपयुक्त नहीं थी, बल्कि युद्धमें भी इनका उपयोग था, इसलिये आर्य तरुण उनको अच्छी तरह सीखते थे।

नृत्य मनोरजनकी एक उत्तम और मानवकी सबसे पुरानी सृष्टिकला है। यह अच्छा व्यायाम भी है। पीर जाटके दिनोमें जहाँगीरने नृत्य जानने एक तरुणको मैंने पसीने-पसीने होते देखा था। उस समय आधुनिक व्यायामके शौकीन एक तरुण दशकने बतलाया था, कि इस नृत्यसे कमरके दोनो तरफकी पेशियोंपर भी बहुत जोर पड रहा है जहाँपर आधुनिक व्यायामकी शैलियोंसे भी जोर पहुचाना असम्भव नहीं, तो मुश्किल है। अंगिरा-गोत्री मन्त्रने नर्तयन् (नचाते) शब्दका प्रयोग[2] (१। ५१। ३) किया है, पर वह हथियार नचानेके अर्थमें—

"हे इन्द्र, तुमने अंगिराओं (पुरोहितों) के लिये वर्षा कराई। अत्रिको शतदुर हथियारसे बचनेके लिये भगाया। विमदको अन्न-सहित (धन) दिया, और संग्राममें वज्र नचाते हुये स्तुतिकर्त्ताकी रक्षा की।"

संस्कृत-असंस्कृत सभी आदिम तथा सभ्यतामें सबसे आगे बढी आधुनिक जातियोंमें नृत्य बहुप्रचलित व्यायाम और विनोद है। ऋग्वेदिक आर्य सोम (भांग) के बडे प्रेमी थे। उसे पीकर मस्त होनेमें उन्हें बडा आनन्द आता था। मस्ती और आनन्द दोनोंके लिये मद शब्दका प्रयोग इसीको बतलाता है। आर्य नर-नारी अपनी सोमगोष्ठियोंमें गीत और नृत्यका भी आनन्द लेते थे, जिससे उनके स्वास्थ्यको बहुत लाभ था।

§३ रोग

रोगोंमें यक्ष्मा, हृदयरोग, कुष्ठका उल्लेख ऋग्वेदमें आता है। यक्ष्मा शायद ज्वरका ही दूसरा नाम था, और तपेदिक (टी० बी०) के लिये राजयक्ष्माका प्रयोग होता था। आथर्वन ऋषिने कहा है[1] (१०। ९७। ११, १२)

"जब मैं इन औषधियोंको हाथमें लेता हूं, तो यक्ष्माकी आत्मा वैसे ही नष्ट होती है, जैसे पकडनेवाली मृत्युसे जीव।

"हे औषधियो, जैसे उग्र और मध्यस्थ दूसरोंको बाधित करता है, वैसे ही तुम इसके पर्व-पर्व (पोर-पोर) में व्याप्त हो यक्ष्मको हरो।"

कल्पित नाम वाले प्रजापति-पुत्र यक्ष्मनाशन ऋषि यक्ष्मासे राजयक्ष्माका भेद करते हुये कहते हैं[2] (१०। १६१। १)—

"हवि द्वारा तुझे अज्ञात यक्ष्मा और राजयक्ष्मासे मुक्त करता हूं। यदि किसी ग्रह (भूत-प्रेत) ने पकडा है, तो उससे इन्द्र-अग्नि इसे मुक्त करें।"

हृदयरोग पुराना रोग है। बुढापेसे शरीरके भीतरी अंगोंके जीर्ण-शीर्ण होनेका ही यह एक रूप है। बिना किसी ज्वर या दूसरे रोगके हृदयके विपन्न होनेसे आदमीका एकाएक प्राणान्त होने को पुरानी परिभाषामें रोगियोंकी (श्लाघनीय) मृत्यु कहा जाता था। मृत्यु न देकर यदि वह

कष्ट देता रहे, तो वह उत्पीडक रोग है। कण्व-पुत्र प्रस्कण्वने मित्र (सूर्य) से इनसे बचनेकी कामना की (१। ५०। ११)—

"आज द्यौलोकके ऊपर चढता मित्र (सूर्य) मेरे हृद्‌रोग और पीलियाको नष्ट करे।"

पीलियाके कारण शरीर पीला (हरिमाण) हो जाता था।

यक्ष्मा, जान पडता है, शरीरके बहुतसे रोगोका नाम था, जैसा कि विवृहा काश्यपके कथन (१०। १६३। १-६) से मालूम होता है—

"तेरे दोनो नेत्रो, दोनो नासिका-छिद्रो, दोनो कानो, चिबुक, मस्तिष्क और जिह्वासे शीर्षन्यानीय यक्ष्माको दूर करता हू ॥१॥

"तेरी ग्रीवासे, धमनियोसे, स्नायुओसे, हड्डीसे, दोनो पहुचो, दोनो बाहुओ और दोनो कन्धोसे यक्ष्माको दूर करता हू ॥२॥

"तेरी अतडियोसे, गुदासे, हृदयसे, मूत्राशयसे, यकृत्‌से, तेरे मास-पिण्डोसे यक्ष्माको दूर करता हू ॥३॥

"तेरी जाघोसे, दोनो पिडलियोसे, दोनो गुल्फोसे, दोनो एडियोसे, दोनो नितम्बोसे, कमर और मलस्थानसे यक्ष्माको दूर करता हू ॥४॥

"तेरे मूत्रस्थानसे, लोमसे, नखसे, तेरे सर्व आत्मा (शरीर) से इस यक्ष्माको मैं दूर करता हू ॥५॥

"अग-अगसे, रोम-रोमसे, पर्व-पर्वसे उत्पन्न तेरी सारी आत्मा (शरीर) से इस यक्ष्माको दूर करता हू ॥६॥"

घोषाके गुप्त रोगसे पीडित होनेकी बात स्पष्ट उल्लेख ऋग्वेदमें नही आती, जिसका कि दूसरी जगहो मे जिक्र आता है। दीर्घतमा-पुत्र कक्षीवान्‌के कथन (१। ११७। ७) से मालूम होता है कि वह किसी रोगसे पीडित होकर बिना ब्याहे ही पिताके घरमें बैठी थी—

"हे अश्विनो, तुमने स्तुति करते हुए पुत्र विष्यक विष्यापुत्रो पिताके घरमे बैठी हुई घोषाके लिये पति प्रदान किया।

रोगोकी चर्चा उन समय भी काफी होगी, पर इनके लेनो का अधिक विभाजन नही हुआ था।

§४. चिकित्सा

ऋग्वेदसे छ शताब्दियो बाद बुद्धके समय औषधियोका काफी विस्तार-और विकास हो चुका था। पर, अभी रस और धातु-भस्मोंके प्रयोगमें आने-में शताब्दियोकी देर थी। बुद्धके समय पंचभैषज्य (घी-मक्खन-तेल-मधु खाड), चर्बी, मूल, कषाय, पत्ता, फल, गोद, नमकवाली दवा कच्चे मास-रक्तकी दवाइया प्रचलित थी। अजन, तेल, नस्य, धूमवत्ती और मद्ययुक्त औषध भी इस्तेमाल किये जाते थे। ताप देकर पसीना निकालना, सीगसे खून निकालना, मालिश, चीर-फाड, मलहम-पट्टी, सर्प-चिकित्सा, विष-चिकित्सा पाण्डुरोग-चिकित्सा, ग्रह (भूत) चिकित्सा, चर्मरोग-चिकित्सा का भी उल्लेख "विनय-पिटक" (महावग्ग, भैषज्य-स्कन्धक) मे आता है। इनमें से अधिकाश औषधियो और चिकित्साओका पहिले भी प्रचार रहा होगा।

ऋग्वेदमें निम्न रोगोका उल्लेख आता है—

अगद, अजका, अज्ञात यक्ष्मा, अनमीव, अनूक्ष्य, अप्वा, अम, अशीपद, अशीमिद, जीवगृभ, दुर्नामा (ववासीर), नवज्वार, पृपन्य, पृष्ठ्यामयी, यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, वदन, वध्रि, विवधृ, विसूचि, सुराम, श्राम, हरिमा, हृद्रोग।

औषधियोकी सख्या बहुत थी, तभी तो भिषग् आथर्वनने[११] (१०।९७।६) कहा है—

"जैसे राजा लोग समितिमे एकत्रित होते है, वैसे ही जिसके पास औषधियोका समागम होता है उसे रोगनाशक, राक्षसनाशक विप्र भिषग् कहा जाता है।"

आजकल वैद्य लोग धन्वतरिको इष्ट मानते है, किन्तु वैदिक कालमें यमल अश्विनो (अश्विनीकुमारो) की महिमा गाई जाती थी। इरिम्बिठिने[१२] (८।१८।८) कहा है—

"वे (दिव्य) भिषग् अश्विद्वय हमारा कल्याण करें, बाधाओको यहासे दूर हटावें।"

हिरण्यस्तूप अश्विनीकुमारोंकी प्रशंसामें कहते हैं[1] (१।३४।९-९)—

"शुभके स्वामी, हे अश्विनो हमें तीन बार दिव्य, तीन बार पार्थिव और तीन बार जलीय दवाइयोंको दो। मनुकी तरह मेरी सन्तानोंको तीनों प्रकारसे सुख दो ॥६॥

"हे नासत्यो, तुम्हारे तीन प्रकारके रथके तीन चक्के कहा हैं? नाभि-सहित तीनों धुरे कहा हैं? उस शक्तिशाली गदहेका जोड़ना कब होगा, जिसके साथ तुम यज्ञमें आओगे ॥९॥"

इससे मालूम होता है, कि अश्विनीकुमारोंके रथमें गदहा (रासभ) जुतता था। चाहे घोड़ेके समान न समझते हों, लेकिन गदहे पालने और उसके इस्तेमाल करनेमें आर्य हीनता नहीं अनुभव करते थे।

मादक सोमको भी औषध माना जाता था, यह आश्चर्यकी बात नहीं। आजकल भी दवाइयोंमें मद्यसारका प्रयोग काफी देखा जाता है। प्रगाथ-पुत्र हर्यतने कहा है[2] (८।६१।१७)—

"मित्र, वरुण, सूर्यके उदय होनेपर सोमको ग्रहण करते हैं, सो आतुर (रोगी) का भेषज है।"

कण्व-पुत्र मेधातिथि ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषि हैं। वह अश्विनीकुमारोंकी महिमा गाते[3] (८।२२।१०) कहते हैं—

"हे जिनने तुमने पक्वको, जिनने अधिगु, जिनने वध्रिको रक्षाकी, उनके साथ अति शीघ्र आओ। जो आतुर (रोगी) है, उसकी चिकित्सा करो।"

स्त्रियोका वस्त्रसे सु-आच्छादित रहना अच्छा समझा जाता था। विश्वमना आगिरस कहते[८] (८।२६।१३) है—

"हे अश्विद्वय, सेवा करनेपर वस्त्रसे आच्छादित वधूकी तरह यज्ञ द्वारा सेवित हो तुम मगल करते हो।"

वस्त्रोका अधिक व्यवहार होनेपर भी वह कितने प्रकारके थे, इसका पता कम लगता है। उनके परिधान थे—

१ द्रापि—वामदेवने इस वस्त्रका उल्लेख[९] (४।५३।२) किया है—

"द्युलोकके धारक, भुवनके प्रजापति कवि (सविता) पिशग (पीली) द्रापि धारण करते है। वह प्रार्थित तर्पित हो विचक्षण सविता सुन्दर धन प्रदान करें।"

दीर्घतमा-सन्तान कक्षीवान् भी द्रापिका वर्णन करते है[१०] (१।११६।१०)—

"हे अश्विकुमारो, द्रापिकी तरह तुमने च्यवनके बुढापेको खोल फेंका। हे दर्शनीयो, तुमने उस परित्यक्त के जीवनको बढाया, और (उसे) कन्याओका पति बनाया।"

अजीगर्त-पुत्र शुन शेप वरुणकी प्रशसा करते है[११] (१।२५।१३)—

"सुनहली द्रापिको धारण करते वरुण (अपना) पुष्ट शरीर ढाकते है। चारो ओर किरणें फैलती है।"

इन ऋचाओंसे मालूम होता है, कि पिशग, हिरण्य अर्थात् (पीली), सुनहली द्रापि पहनी जाती थी। शायद हिमालयके बहुत से स्थानोकी स्त्रियोंके दोढू (चादर) की तरह इसे पहिना जाता था।

२ अत्क—भरद्वाजने इसका उल्लेख किया है[१२] (६।२९।३)—

"इन्द्र, श्रीके लिये तेरे पैरोकी हम सेवा करते है। वज्र-युक्त तुम शत्रुओको बलसे पराजित करते हमे दक्षिणा देते हो। हे नेता, दर्शनीय सुरभि अत्कको पहने तुम सूर्यकी तरह भ्रमण करते हो।"

कल्पित वेन भार्गव ऋषि वेन नामक देवताका वर्णन करते कहते है[१३] (१०।१२३।७)—

"गन्धर्व स्वर्गमें ऊचे स्थित, सामने विचित्र आयुधधारी, सुरभि अलंकृत पहने दर्शनीय (वेन) प्रिय सुख उत्पन्न करते हैं।"

३ शिप्र—यह शिरस्त्राण और उष्णीष (पगडी) दोनोका नाम था। वसिष्ठने इन्द्रके लिये कहा है[१४] (७।३५।३)—

"हे शिप्रवाले (इन्द्र), सुदासके लिये तेरी सैकड़ो रक्षायें, महत्तो अभिलाषायें और दान हो। इन सब मर्दोके हथियारोको नष्ट करो, और (हमें) उज्ज्वल रत्न दो।"

वामदेवके कथनसे [१५](४।३७।४) मालूम होता है, कि शिप्र शिरस्त्राण था—

"हे ऋभुओ, तुम्हारे अश्व मोटे है, रथ चमकते है, तुम ताम्र-शिप्र (अय. शिप्रा), अन्नवान् और अच्छे निष्क (सुवर्ण) वाले हो। हे इन्द्रके पुत्रो, बलके नातियो, तुम्हारे आनन्दके लिये यह अग्रणी सेवन किया जा रहा है।"

शिप्रसे यहा तावेके शिरस्त्राणका पता लगता है। पर, शिरस्त्राण भी उष्णीष (पगडी) काही एक विकसित रूपहै। इसप्रकार आर्योकी पोशाकमे उष्णीष भी थी। प्राय ईसवी सनके आरम्भ तक भारतमें स्त्री-पुरुष दोनो उष्णीष (पगडी) बाधते रहे। उस समय भारतसे जो लोग बाहरके उपनिवेशोमें जाकर बसे, वहा भी नर-नारी दोनोंके साथ उष्णीष गयी। बर्माकी सीमान्त पर चीन में—जहा पुराने समयमे पूर्व-भारत उपनिवेश आबाद था—आज भी स्त्री-पुरुष पगडी बाधते है। द्रापिका ही रूपान्तर पीछेका उत्तरासग (चादर) है। सुखान या अच्छे अन्तर्वासकने पीछे धोतीका रूप लिया। स्त्रियोंमें उसीने उत्तरीय या उत्तरा-सगसे जुड़कर साडीका रूप लिया, या घेरेको बढा देने पर लहगा बन गया। मोहन-जोदरो और हडप्पाकी पोशाकमें भी अन्तर्वास और उत्तरा-सगका पता लगता है। सुखन यापायजामा शकोकी पोशाक थी, जो इन्हींके साथ ईसा-पूर्व और पश्चात्की प्रथम शताब्दियोंमें भारत आया, और पीछे हमारे राजाओंने उसे अपनी पोशाकमें शामिल कर लिया, यह अपने सिक्को परगुप्तवश पहले गुप्त राजाओंके देखनेसे मालूम होता है।

§२ भूषा

आभूषणोमें कुण्डल (कर्णशोभन), गलेकी तावीज या हमेल, छातीका हार तथा हाथमें ककण (खादि) का पता लगता है। यह जेवर सोने और मणिके होतेथे। वैदिक कालमे चादीका यदि अभाव नही, तो प्रचार जरूर कम था। पुराने समयमें चादीकी दुलर्भताके कारण चादी और सोनेका भाव वरावर देखा जाता है, यह भी उसके प्रचारमें वाधक था। सोना हमारे यहा थोडा वहुत होता था, और उससे भी अधिक सोना अल्ताईकी खानें ताम्रयुगके एसिया के भिन्न-भिन्न देशोको प्रदान करती थी, जो वीचकी जातियोंसे होता भारत पहुचता था।

१ **कर्ण-आभूषण**—कुरुसुति ऋषि कर्णशोभन (कर्णाभरण) का उल्लेख करते है[१६] (८।६७।३)—

"हे शत्रुनाशक इन्द्र, तुम वसु, तुम प्रशसनीय सुने जाते हो। हमें वहुतसे कर्णशोभन प्रदान करो।"

कक्षीवान्[१७] (१।१२२।१४) विश्वे (सारे) देवोंसे प्रार्थना करते है—

"हे विश्वेदेवो, हमे हिरण्यकर्ण (सुवर्ण-कुण्डली), मणिग्रीव (मणि-कण्ठावाला), रूपवान् पुत्र प्रदान करो। सद्य निकलती हमारी श्रेष्ठ वाणी और हव्यको पसद करो।"

२ **सोनेका कण्ठा**—गलेमें निष्क (सोने) पहननेका उल्लेख है। निष्क सोनेकी मुद्रा नही था। कुषाणोंसे पहले सोनेकी मुद्रा भारतमें किसी राजाने नही ढाली न उसका नमूना कोई मिलता। हो सकता है, गलेमें पहननेके लिये विशेष आकारके सोनेके टुकडे वनते हो, जिन्हें निष्क कहा जाता था। अत्रि-गोत्रीय वभ्रु, ऋषि गलेमें निष्क पहने हुए ऋत्वजोका उल्लेख करते है[१८] (५।१९।३)—

"स्तुतिकर्ता अन्नाकाक्षी, निष्कग्रीव ऋत्विज इस अग्निके वलको वढ़ाते है।"

निष्कग्रीव होके लिये वसिष्ठने सुनिष्क कहा है[१९] (७।५६।११)—

"वे सुन्दर आयुधवाले गतिशील मुनिष्क मरुत् स्वय शरीरको सजाते।"

कक्षीवान्ने विश्वेदेवोको (१।१२२।१४) मणिग्रीव बतलाया है, जिससे पता लगता है, कि आर्य पुरुष-स्त्री गलेमें निष्क ही नही, मणियोकी भी माला धारण करते थे।

३ रुक्मवक्ष—वसिष्ठने[1] (७।५६।१३) छातीपर रुक्म और कन्धेपर खादिके धारण करनेका उल्लेख किया है—

"हे मरुतो, तुम्हारे कन्धोपर खादि और वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) पडा हुआ है। जैसे वृष्टिके समय बिजली चमकती है, वैसे ही जल देते हुए तुम अपने आयुधोसे शोभित होते हो।"

४ खादि, ५ ऋष्टि, ६ शिप्र—ऊपरकी ऋचासे पता लगता है, कि खादि कन्धेपर पहनी जाती थी। श्यावाश्वकी ऋचा (५।५४।११) में भी उल्लेख है—

"मरुतो, तुम्हारे कन्धोपर ऋष्टि (हथियार), पैरोमें खादि, वक्षपर रुक्म (स्वर्णाभरण) है। रथपर तुम शोभायमान हो। किरणो (हाथो) में आगकी तरह चमकनेवाली बिजलिया और सिरपर फैले सुनहले शिप्र है।"

यहा कन्धेपर नही, बल्कि पैरोमे खादिका वर्णन बतलाता है, कि पैरके कडेको भी खादि कहा जाता था। खादि ककणको भी कहते थे, यह श्यावाश्वकी एक ऋचा[1] (५।५८।२) से मालूम होता है—

"हे विप्रो, शक्तिशाली हाथमें खादि पहने, कपानेका बनी, मायावी, दाता इन मरुतोंके गणकी वदना करो, जो सुखदाता अमित महिमावाले बडे ऐश्वर्य-शाली है।"

भरद्वाज (६।१६।४०) भी शिशुके हाथमे खादि (ककण) का उल्लेख करते है—

"सुन्दर गतिवाले विशो (जनता) की अग्निको (वह) हाथम खादि-युक्त उत्तम शिशुको तरह धारण करते है।"

मोहनजोदरोके लोगो और ऋग्वैदिक आर्योके आभूषणमे कुछ समानता जरूर रही होगी, क्योकि मोहनजोदरोवाले अधिक सस्कृत होनेसे भूषण

ऋग्वेदमें आर्य नर-नारियोकी वेष-भूषाके बारेमें जो बातें मिलती है। उनसे पता लगता है, कि आर्य उन्हे कपडा पहननेका शौक था, जो ऊनी और कुछ चमडेके भी होते थे। वह तरह-तरहके सोने और मणिके आभूषण पहनते थे। केशोका सिंगार फूलोंसे करते थे। सभी आर्य पुरुष दाढी रखनेके शौकीन नही थे, प्रौढोमें उसका अवश्य रवाज था।

अध्याय १४

क्रीडा, विनोद

§१ नृत्य

नृत्य-गीत, सोमपान, घुडसवारी, कुश्ती, जूआ सप्तसिन्धुके आर्योंके मनोरञ्जनकी चीजे थी। इनका विशद वर्णन ऋग्वेदमें न होना स्वाभाविक है, क्योंकि उसके सग्रहका यह उद्देश्य नही था। आगिरस नव्य ऋषि नृत्य[1] (१।५७।३) का उल्लेख करते है, लेकिन, साकेतिक भाषामे ही, वहा इन्द्रके वज्र नचानेकी बात कही है।

§२ संगीत

सगीत भी आर्योंके लिये मनोरजनका एक साधन था, ऋग्वेदका नवा मण्डल और प्राय सारा सामवेद सोम-सम्बन्धी गानोंके लिये ही है। गान-साधन (गायत्र) होनेके कारण आठ अक्षरोवाले तीन पादोंके छन्दको गायत्री कहा जाता था। घोर-पुत्र कण्व ऋषिने इसीलिये कहा है (१।३८।१४)—

"मेधा उत्पन्न करो, पर्जन्य गेय की तरह विस्तृत करो। उक्थ्य (गेय) गायत्रका गान करो ॥१४॥"

हम समझ सकते है कि आज भी विवाह आदि पहाडी तथा मैदानी लोक-गीतोमे भी तीन पादवाले इस छन्दका बहुत प्रयोग है। वैदिक गायत्र गान और लोक-गीतोंके तीन पादवाले गानोंका सम्बन्ध तुलनात्मक अध्ययन शायद हमे सप्तसिन्धुके आर्योंके गान-विधिका परिचय दे सके।

§३. पान

(१) **सोम**—मादक पानोमें सोमका आर्योमें वहुत रवाज था। एक तरहकी सुरा भी वह पीते थे, पर उसे महत्व नही दिया जाता था। (१) कण्व-पुत्र कुसीदि इन्द्रके प्रिय सोमपानके लिये कहते हैं[1] (८।७१।७-८)—

"चमसो (प्यालो) और चमुओ (काष्ट-पात्रो) मे तुम्हारे लिये जो सोम छाना गया है। हे इन्द्र, इसे पियो, तुम इसके स्वामी हो ॥७॥"

"जो सोम चमुओमें पानीमें चन्द्रमाकी तरह दिखाई देता है, इसे पियो, तुम ईश्वर हो ॥८॥"

सोमवाला नवा मडल विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दाके सूक्तसे शुरू होता है, जिसकी प्रथम ऋचा[2] (९।१।१) है—

"इन्द्रके पीनेके लिए छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ट और मदिष्ट (मस्त करनेवाली) धाराके साथ प्रवाहित होओ।"

शुन शेप ऋषिने कहा है[3] (९।३।१)—

"यह अमर देव द्रोणो (घडो)में वैठनेके लिए पक्षीके समान डाला जाता है।"

सोमके सवसे अधिक सूक्तोके रचयिता काश्यप असित-देवल कहते हैं[4] (९।५।१)—

"सुप्रकाशित, सवके पति, पवित्र, कामवर्षक, प्रसन्नकर्ता, सोम शब्द करते विराजते है।"

"पवमान (छाने जाते, पवित्र) सुन्दर महान् सोम, रात्रि और दर्शनीया उपाकी कामना करते है ॥६॥

"पवमान सोमकी भारती, सरस्वती, इळा तीनो महान् सुन्दरी देवियाँ हमारे इस यज्ञमें आयें ॥८॥"

असित फिर कहते हैं[5] (९।८।४, ६)—

"तुम्हें दसो अगुलियाँ मार्जित करती है, सात स्तुतियाँ प्रसन्न करती है, (तुम्हें पी) पीछे विप्र मस्त होते है ॥४॥

"कलशोंमें छाने हुए पीले सोमके वस्त्रोंके समान गव्य (गोरस) आच्छादित करता है ॥६॥

फिर कहते हैं[१] (९।११।१, ३, ६)—

"हे नरो, पवमान सोमके लिए गीत गाओ। यह देवोंके लिए यजन करना चाहता है ॥१॥

"देवताओंके लिए कामनासे सोम देवताको अथर्वों (ऋषियों) ने मधुसे मिश्रित किया। सो हे राजा सोम, तुम हमारे लिए बहो, हमारी गायोंके कल्याणके लिए, जनोंके कल्याणके लिए, घोड़ोंके कल्याणके लिए, ओषधियोंके कल्याणके लिए बहो ॥३॥

"अरुण स्वशक्तिमान् द्यौका छूनेवाले सोमके लिए गाथा गाओ ॥४॥

"नमस्कारके साथ पास जाओ, सोमको दहीसे मिश्रित करो, इन्द्रके लिए सोम प्रदान करो ॥६॥"

यह ध्यान देनेकी बात है, कि सोमकी स्तुतियाँ अधिकतर तीन पदवाले गायत्री छन्दमें हैं। लोकगीतोंमें आज भी उत्तरी-भारतके बहुत व्यापक क्षेत्रमें इस छन्दका प्रयोग होता है। अन्तिम तीसरे पदको गाते वक्त दोहरा दिया जाता है, जिससे वह चौपदा हो जाता था। यही ऋग्वेद-कालमें भी होता होगा। ऋग्वेदिक आर्योंका सबसे प्रिय पान सोम था, जो उनके देवताओंको भी मस्त करता था, इसीलिए अत्रि देवल गद्गद् होकर सोमका गुणगान करते हैं[२] (९।१५।१, २, ४)—

"यह शूर सोम इन्द्रके बनाये स्थानमें सूक्ष्म स्तुतियोंके साथ शीघ्रगामी रथों द्वारा जाता है ॥१॥

"यह (उस) बड़े यज्ञ में बहुत काम करना चाहता है, जहाँपर अमर रहते हैं ॥२॥

"यह मनुष्योंको ओजसे धन धारण करता, यजमानि यजन सोमोंको हिलाता, तेज करता है ॥४॥"

फिर[३] (९।१७।४, ७)—

"सोम कलशोमें दौडता, पवित्र (-पात्र) मे सीचा जाता यज्ञो म उक्थो (सामगान) द्वारा बधावा पाता है ।।४।।

'वाजी (अन्नवान्) (सोम), तुमको रक्षा-इच्छुक विप्र नर यज्ञके लिये स्तुतियो द्वारा मार्जित करते है ।।७।।"

फिर [1]*(९।२२।१,२,३७)—

"यह सोम, बना कर छोडे जाने पर तेज रथोकी तरह अन्नवान् हो जाते है ।।१।।

"विस्तृत वायुकी तरह, पर्जन्यकी वृष्टियोकी तरह, अग्निकी शिखाकी तरह, यह सोम व्याप्त है ।।२।।"

'दीर्घ-मिश्रित इस पवित्र सोमको विप्र स्तुतियोंसे व्याप्त करते है ।।३।।"

"हे सोम, तुम पणियोंसे गो-हितकारी धनको लेते हो, विस्तृत यज्ञमे शब्द करते हो ।।७।।"

सोमका उस समय इतना अधिक उपयोग होता था, कि वह दुर्लभ नही हो सकता था। सोम (नवम)-मण्डल के ११४ सूक्तोमे सोमके गुणोकी जितनी महिमा गाई गई है, उतना उसके उद्गम और दूसरी बातोके बारेमे नही कहा गया है। रहूगण-पुत्र गोतमके कहने" (१०।३२।२) से जान पडता है, कि सोम ऊचे पहाडो पर होता था—

"पहाड (वर्षिष्ठ मानु) पर बैठे भूरे (सोम), तुम्हारे लिये गाये, घी-दूध दुहाती है ।।२।।"

रहूगण पुराने भरद्वाजसे भी पुराने ऋषियोमे थे, उनके दिव्य-पान सोमकी प्रशसामें गाये जानेवाले लोक-गीत यदि पीढियो तक लोगोकी जिह्वापर रहें, तो कोई आश्चर्य नही। रहूगण कहते है [1] (९।३७।१)—

"राक्षसोको नाश करता देव-कामी तृप्तिकारक छना हुआ सोम पीनेके लिये पवित्र (पान-पात्र) मे जाता है ।।१।।"

"वह भीगा हुआ सोमदेवता कवि द्वारा प्रेषित इन्द्रके लिये द्रोण (घडो) में दौडता है ।।६।।"

अयास्यने सोमके गुणगानमें तीन सूक्त (४४-४६) रचे हैं। वह एक जगह" (९।४६।१,२,५) कहते हैं—

"पर्वतमें बटे सोम क्षरण करते निपुण घोड़ोंकी तरह यज्ञके लिये तैयार किये जाते हैं ॥१॥"

"पिता-माता द्वारा सवारी कन्याकी तरह परिष्कृत इदु (सोम) वायुके पास जाते हैं ॥२॥"

"हे धन जीतनेवाले, मार्ग-ज्ञाता सोम, (हमें) महाधन प्राप्त कराने बहो ॥५॥"

अवत्सार ऋषिकी कविता है" (९।५६।३)—

"हे सोम, तुम्हें दसों अंगुलियां उसी तरह बुलाती हैं, जैसे जारको कन्या। प्रदान करने के लिये तुम शोधे जाते हो ॥३॥"

सोमको सर्वविजेता कहा जाता था।" (९।५९।१)—

"हे गो-विजेता, अश्व-विजेता विश्व-विजेता, रमणीय-विजेता सोम, बहो। (मेरे लिये) सन्तान-सहित रत्नको ले आओ ॥१॥"

यह भी" (९।६०।१)—

"हजार जानेवाले सूक्ष्मदर्शी छाने जाते सोमका गान गायत्र-सामसे करो ॥१॥"

अमहीयु आंगिरस सोमके ऐतिहासिक कार्योंको बतलाते हुये कहते हैं" (९।६१।१,२,२०)—

'हे सोम पीनेके लिये बहो, तुम्हारे ही मदसे निन्यानवे पुरियां नष्ट की गई ॥१॥"

"(तुमने) इस प्रकार शम्बरकी पुरियों को और नवें-नवतीं किलोंको दासोंके वधमें तुम्हारा मित्र हुआ ॥२॥

"तुमने अंगिरा ऋषियोंके लिये दिन-प्रति-दिन अन्न दिया। तुम गोदाता और अन्नदाता हो ॥२०॥

निध्रुव काश्यप सोमकी महिमा गाते हुये कहते हैं" (९।६३।३,४,५)—

"इन्द्र-विष्णुके लिये छाना (जो, सोम कलशमें) टपकता रहता है, वह वायु (देव) के लिये मधुमान् हो ।।३।।"

"यह शीघ्रगामी भूरे सोम सत्यकी धाराके साथ दुष्टो की ओर जाते है ।।४।।"

"इन्द्रको बधावा देते जलमें जाते सबको आर्य बनाते यह सोम सूमडोको मारते है ।।५।।"

आर्यसमाजी "कृण्वन्तो विश्वमार्यं" (सबको आर्य बनाते) वाक्यको लेकर उड चलते है, और यह नही जानते, कि निध्रुव ऋषिने सबको आर्य बनानेका श्रेय सोम(भग) पान को दिया था। आगे ऋषि कहत है[१] (९।६३।१२,१३)—

"तुम हमें गौ और अश्व-युक्त सहस्र धन, और अन्न तथा यश भी दो ।।१२।।"

"सोम सूर्य देवताकी तरह पत्थरोंसे घोटा छाना जाकर कलशमें सरस प्रवाहित होता है ।।१३।।'

यमदग्नि भृगु-पुत्रका गीत है[२] (९।६५।१।८,१५)—

"कुशल वहिनें(अगुलिया) लुगाइया क्षरणकी इच्छासे महान् स्वामी सोमको प्रेरित करती है ।।१।।"

"जिसका रग पीला (हरि), मधुरसप्रद है। उस सोमको इन्द्रके पानके लिये पत्थरोंसे(पीसकर) निचोडते है ।।८।।"

"(सोम,) जिस तेरे मदकारक तीव्र रसको पत्थरोंसे दूहते है, तो तुम पापनाशक होते वहो ।।१५।।"

यमदग्नि अपनी सोमगाथामें सोमके उद्गमका कुछ परिचय देते है[३] (९।६५।२८-२५)—

"जा सोम परे जो उरे और जो शर्यणावतमें निचोडे गये ।।२२।।"

"जो आर्जीकों (व्यास-तटवासियो), कृत्वो (याग कर्मकुशलो) में, जो पस्त्योंके मध्यमें और जो पाचो जनोमें(निचोडे गये) ।।२३।।"

"वे निचोडे गये देव सोम आकाशसे वृष्टि और सुवीर सन्तान लावें ।४।"

"गायके चमड़ेपर तैयार किया जाता यमदग्नि द्वारा प्रज्वलित पीला म बह रहा है ॥२५॥"

जागिरस पवित्र ऋषिने निम्न मन्त्रको सोमकी महिमामें गाया था, न्तु रामानुजी उनीको लेकर सात-आठ शताब्दियोंसे करोड़ो आदमियोंको ाओंको धातुके शस्त्र-चक्रसे माऊकी तरह दाग रहे हैं। इन अन्धेरखातेका कोई ठिकाना है? मन्त्र है[1](९।८३।१)—

"हे ब्रह्म (मन्त्र) के पति, तुम्हारा पवित्र रूप फैला हुआ है। प्रभु होकर ा गात्रोंमें चारो ओर व्याप्त हो। जो तपे हुये तनवाला नहीं है, वह ारिपक्व उसे नहीं प्राप्त करना। जो परिपक्व है, वही वहन करते ा प्राप्त करते है ॥१॥"

गृत्समद सोमके बारेमें कहते हैं[1](९।८६।४७)—

"छाने जाते (समय) तुम्हारी धारायें भेड़के सूक्ष्म रोमोंको लाघ ' जाती हैं। हे सोम, दो चमुओं (पात्रों) में जब तुम गोरसमें मिलाये, ने जाकर कलशोंमें बैठते हो ॥४७॥"

वसिष्ठ सोमकी महिमाको जानते थे—युद्धमें सोम पीकर मन्त्र योद्धा द्भुत पराक्रम दिखलाते, और शान्तिके समय उसे पीकर लोग आनन्द-भोर होते हैं। प्राचीनताका भक्त होने पर भी आधुनिक आदमीको सोमके ने ऋषियोंके भावका पता नहीं लग सकता, क्योंकि नशीले पानके विरुद्ध जके वायुमण्डलमें विद्रोह, घृणा भरी हुई है। विजया (भाँग) की प्रशंसा कविनोंको यदि सुने, तो मालूम होगा, कि सप्तसिन्धुके आर्य क्यों सोमसे ने भक्त थे, और क्यों महर्षि वसिष्ठ कहते हैं[1](९।९०।३)—

"(हे सोम) शत्रु-समूहवाले सब वीरोंवाले बलवान् जैसा धनोंके शत्रु ाण आयुध-युक्त, शिघ्र धनुषवाले, युद्धोंमें अजेय, लड़ाइयोंमें शत्रुओंको ाश्त करनेवाले होकर तुम रहो ॥३॥"

प्रतर्दन प्रतापी दिवोदासका पुत्र थे। अनेक युद्धोंमें उन्होंने भाग या था। शायद उन्हें वसिष्ठ करते सुदास भरतोंका राजा हुआ। ाता की जाती है, प्रतर्दन दिवोदासका जेठा लड़का होने पर भी

युद्ध और शासनकौशलमें अपने अनुज सुदासके समान नही था। खानदानी पुरोहित भरद्वाजने प्रतर्दनका पक्ष लिया होगा, पर उससे कुछ नही बन सका। वसिष्ठ सुदासकी पीठपर हुये, और वह भरतोका प्रतापी राजा बन गया। प्रतर्दन सोमकी प्रशसामें २४ त्रिष्टुपोको गाते अपनेको योग्य ऋषि सावित करने है। वह सोमके बारेमें ऐसी उपमाये देते है, जो एक सैनिक ही के मनमें आ सकती हैं "(९।९६।१,५,६,११,१२)

"सेनानी शूर सोम गौ (के लूटने) की इच्छासे रथोंके आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्रके आह्वानको भला बनाते सोम मित्रोको बहुतसे वस्त्र देते है ॥१॥"

"बुद्धियो (कविताओ) का उत्पादक, द्यौलोकका उत्पादक, पृथिवीका उत्पादक, अग्निका उत्पादक, सूर्यका उत्पादक, इन्द्रका उत्पादक और विष्णुका उत्पादक सोम बह रहा है ॥५॥"

"सोम देवोमें ब्रह्मा, कवियोकी कविता, विप्रोमें ऋषि, मृगोमें महिष, गृध्रोमे वाज, वनोका कुठार (हो) शब्द करता पवित्र (-पात्र) मे उफन कर बहता है ।६।"

"हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पहलेके पितरोने कर्म किये। वीर, तुम बिना रुके अश्वोंसे शत्रुओको मारते हो। तुम हमारे मघवा (इन्द्र) बनो ॥११॥"

"धन-धारक शत्रुनाशक आयुधधारक हविमान् हो जैसे तुम मनुके लिये बहे। ऐसे ही धनधारक हो इद्रकी सहायताके लिये बहो, आयुधोको पदा करो ॥१२॥"

क्या अपने अनुज सुदासके साथके सघर्षमें प्रतर्दनने सोमकी महिमा गाते इन त्रिष्टुपोको रचा ?

कुत्स ऋषिने ६० हजार धन सोमकी कृपासे पाये थे ' (९।९७।५३)—"हमारे श्रुत (वाणी) तीर्थमे उस पवित्रतासे बहो, जिससे तुमने पक्व वृक्ष (-फल) की तरह आनन्दके लिये शत्रुको हराकर साठ हजार (गो) धन दिये ॥५३॥"

काश्यप रेभके कहनेसे मालूम होता है, कि सोमके छाननेके समय पुरानी कारकी गाथायें गाई जाती थीं (९।९९।४)—

"पुने (छाने) जाने उन सोमकी पुरानी गाथाओंसे स्तुति करते हैं। और इधर-उधर घूमती अंगुलियां देवोंका नाम (हवि) लिये घूमती हैं।४।"

विश्वामित्र वाक्-पुत्र या प्रजापति ऋषि सोमके छाननेमें उनके कपड़े और गायके चमड़ेके आवश्यक होनेका उल्लेख करते हैं (९।१०१।१६)—

"भेड़के बालोंसे गायके चमड़ेपर सोम छाना जाता है। तृप्तिकर्त्ता हरित वर्ण वह (सोम) शब्द करता इन्द्रके स्थानमें जाता है।१६।"

काश्यप मरीचि-पुत्र सोमपानके स्थानोंका निर्देश करते हैं (९।११३। १,२,७,९,११)—

"वृत्रनाशक इन्द्र शरीरमें बल धारण कर पराक्रम करनेकी इच्छासे शर्यणावत्में सोमपान करे। हे सोम, इन्द्रके लिये तुम क्षरित होओ।१।"

"दिशाओं के पति ऋत वचन, सत्य, श्रद्धा और तपसे छाने गये हे निचा सोम, आर्जीक (ध्यान-उपत्यका) में क्षरित होओ।२।"

"जहां निरन्तर ज्योति है, जिन लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस ह्रास-रहित अमर लोकमें मुझे ले चलो।३।"

"जिस तीन (प्रकारके) उत्तम स्वर्गमें इच्छानुसार विचरण होता है। जहां ज्योतिवाले लोक हैं वहां (हे सवितर) मुझे अमर बनाओ।९।"

"जहां आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद हैं, जहां (सारी) इच्छायें प्राप्त होती हैं, वहां मुझे अमर बनाओ। हे सोम, इन्द्रके लिये बहो।११।"

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि सोम सर्वसाधारण आर्योंके लिये आनन्ददायक और स्वास्थ्यके एक श्रेष्ठ पेय ही नहीं था, बल्कि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये उसे पात्रमें एक बहुत आवश्यक साधन था। सोम में जौ, गाय आदिकी हवि देवताओंको प्रदान करने से उनमें

कितना ही आगमें जलकर उनके काम नही आती थी। गायके चमड़ेपर दो पत्थरो द्वारा पीसे घोटे गये ऊनी (वालके) छन्ने मे छाने, लकडीके चमुओ और धातुके द्रोणो-कलशोमें सुसज्जित रक्खे सोमके पीनेके लिये इन्द्र, अग्नि आदि देवताओका आह्वान किया जाता था। आर्यभक्तोंके विश्वासके अनुसार देवता आकर उन्हे पीते थे। पुराने ऋषियोकी गोष्ठीमें इन्द्र और अग्निने, वरुण और मित्रने साकार रूपमे आकर सोमपान किया था, इसके वारेमें पीछेके ऋषि शपथ खानेके लिये तैयार थे। सोमरस देवपूजाका ऐसा साधन था, जिसकी एक बूंद भी नष्ट नहीं होती थी, और चमू तथा कलशमें भरा दधिमधुसे मिश्रित सारा सोमरस भक्तोके काम आता था।

सोमपान आर्योके लिये अतिसाधारण पेय होते भी दिव्यपान था। इसलिये देवताओंके पीछे ही वह उसे प्रमादके तौरपर ग्रहण करते थे। आजकल भी वैरागी साधु स्वादिष्ट भोजनको सीधे अपने खाने की बात न कह कर उसके साथ "रामजीके पीछे" लगाते हैं अर्थात् सभी भोजन पहले रामजीको अर्पित होगा, उसके बाद हमारा और आपका "पावना" (खाना) होगा। इसी तरह वैदिक आर्य भी देवताओंके पीछे ही प्रसाद-रूपमें सोमको ग्रहण करते थे।

सोम पवित्र और परम ग्राह्य था, पर, सुरा (मद्य) नीची दृष्टिसे देखी जाती थी। आज भी हिन्दुओंके वही भाव भाग और शराबके बारेमें देखे जाते हैं। तिब्बतमें भागको 'सोमराजा' कहते हैं। वहा वह बहुत पैदा होती है। तिब्बती लोगोमें शायद ही कोई हो, जो नशा न करता हो। लेकिन, देखनेसे ऐसा मालूम होता है, कि मानो उनको मालूम ही नही है, कि उनका सोमराजा (हमारी भाग) नशेकी चीज है, और उसे दूध-चीनी मिर्च-इलायची मिलाकर अत्यन्त स्वादिष्ट बनाया जा सकता है। वह "सोमराजा" का अर्थ नही जानते। उनके यहा सोमराजाका वही उपयोग है, जो हमारे यहा सन और पटसन का। वह उसके छिलकोकी रस्सी बनाते हैं। हमारे यहा पुराने समयमें भागके रेशोका कपडा बनता था। अभी भी कुमाऊ और गढवालमें भगेडा बनता है, जिसे आजसे सौ साल पहले

लोग पहनते थे, अब वह थैलेका काम देता है। कोरियामें भी भागके रेशेका कपड़ा बनता है। वहांवाले भी तिब्बतियोंकी तरह उसका यही उपयोग समझते हैं। तिब्बती लोग "सोमराजा"के पास तक नहीं फटकते। उनकी जगह वह अपनी छङ (जौ की कच्ची शराब) पीते हैं। अरा (अरक, चुवाई शराब) अधिक पसन्द करते हैं, लेकिन वह महंगी चीज है। ऋग्वेदिक आर्योंसे तिब्बतियोंकी चार उल्टी है। वह भांगको नहीं पसन्द करते, सुराको अच्छा समझते हैं।

(२) सुरा—सप्तसिन्धुके सोमभक्त आर्य सुरासे कोई वास्ता नहीं रखते थे, यह तो नहीं कह सकते, पर उसे हीन दृष्टिसे देखते थे, यह मेधातिथि काण्वकी निम्न ऋचा " (८।२) से मालूम होता है—

"जैसे सुरा पिये बदमस्त हो हृदयमें लटने, नंगे गो-स्तनोंकी तरह रहते हैं ॥१२॥"

वसिष्ठ भी सुराको नापसन्द करते थे " (७।८६)—

"हे वरुण, अपने बल नहीं बल्कि, सुरा, क्रोध, जूआ, अज्ञानसे वह दोष होता है। जेठा कनिष्ठको और स्वप्न भी (उन्हें) पापमें ले जाता है ॥६॥"

पर सुराके प्रेमी भी थे, तभी तो कहा गया "(१०।१०७।९)—भोज (दाता) सुराको पाते हैं।

§४. जूआ

जूयेका रवाज, जान पड़ता है, सप्तसिन्धुके आर्योंमें काफी था। महाभारतके युधिष्ठिरने इसे अपने पूर्वजोंसे सीखा था। जूयेके मारे लोग तबाह हो जाते थे, इसलिये आर्य ऋषि उसके बचनेका उपदेश देते थे, जैसा कि कवष ऐलूष ने अपनी ऋचाओं ' (१०।३४) में किया है।

जुआरी कहता है—"हरे पासे (अक्ष) मित्रके-से मेरे ऊपर-ऊपर रहते मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। मुञ्जवान् (पर्वत) से उत्पन्न (जैसे) सोम पिया जाता है वैसे ही विभीदक (बहेड़े) के फलसे बने मुझे मुग्ध करते हैं ॥१॥"

"यह मेरी पत्नी मुझमे न कभी उदास हुई न लज्जित हुई। मेरे लिये और मित्रोंके लिये (यह) कल्याणी रही। केवल अक्ष (पाशे)का भक्त होनेके कारण मैने अनुव्रता भार्याको छोड दिया ।।२।।"

"सास द्वेष करती है, जाया (स्त्री) छोड देती है। मागनेपर वह (जुआडी किसीको) पसन्द करनेवाला नही पाता। जैसे बूढे घोडेको कोई नही खरीदता, वैसे ही जुआडीके भोगको मै (कही) नही पाता ।।३।।"

"खलमें आकर्षक पाशेने जिसे पकडा, उसकी जायाको दूसरे बिगाडते है। पिता-माता और भाई उसके लिये कहते है 'हम इसे नही जानते, इसे बाध कर ले जाओ' ।।४।।"

"शरीरसे बूढा कहनेपर 'मैं जीतूंगा' कहता जुआडी (द्यूत-) सभामें जाता है। पाशे (कभी) इसकी इच्छा पूरा करते है, और कभी प्रतिद्वद्वीके कामको सिद्ध करते है ।६।"

"जुआडीकी जाया मन-मारे सतप्त होती है। (आवारा) घूमते पुत्रके बारेमें माता "कहा है" पूछती है। ऋणी हो धन के तकाजेसे डरता वह दूसरोंके घरमें रात बिताता है ।।१०।।"

"स्त्रीको और दूसरोकी जायाको, अच्छे बने घरोको देखकर जुआडी सतप्त होता है। पूर्वाह्णमें उसने (शानसे) लाल घोडोको जोडा था, और (दिनके) अन्तमें वृषल (अकिंचन) सर्दीके डरके मारे अग्निके पास बैठता है ।।११।।"

"पाशोंसे मत खेलो, कृषि करो। उसी धनको बहुत मान कर रमण करो। हे जुआडी, वही गाये है, वही जाया है, सो मुझे इस स्वामी सविताने बतलाया है।१३।"

जूयेके इस बीभत्स रूपको देखकर भी जूआ खेलनेमे आर्य बाज आते होगे, इसकी सम्भावना नही है। जूआ खेलनेके लिये राजदण्ड होता था, इसका ऋग्वेदमें पता नही।

अध्याय १५

देवता (धर्म)

आर्य अपने देवताओंके परमभक्त, पौरुषके पूजक तथा आशावादी थे। उनके देवता भी उन्हीं गुणोंके धनी थे। यद्यपि उनके देवताओंकी सख्या ३३ और ३३३९ बतलाई गई है, पर उनके देवताओंके नाम ऋग्वेदमें नहीं मिलते। देवताओंके अतिरिक्त पितरों—मृतपूर्वजों—को भी वह पूजनीय समझते थे। देवताओंकी अर्चना वह निष्काम भावसे नहीं करते थे। निष्काम उपासना बहुत पीछेकी बात है। आर्योंका परलोकपर विश्वास था, वह स्वर्ग-नर्क मानते थे, पर पुनर्जन्मका ऋग्वेदमें कहीं पता नहीं है।

§१. देवता

आजकल देवकी जगह देवता शब्द अधिक इस्तेमाल किया जाता है, इसके दो कारण है। पुराने समय में राजाको भी देव कहते थे, इसलिये एक अलग शब्दकी कहनेकी जरूरत महसूस हुई। फारसीके सम्पर्कमें आनेपर हमारे लोगोंको मालूम हुआ, कि देव राक्षसोंको भी कहते हैं, इसलिये अपनी पूज्य भावनाका सम्मान करते हुये उन्होंने सदियों तक शब्दको छोड़ कर देवता कहना शुरू किया। विश्वास्-गुरु मनुने उसका (८।३०।१) देशमें व्याख्यान कोई नहीं होना—

"हे सखे, तुम्हारेमें न कोई शिव है और न कोई अच्छा। तुम स्वयं समझ लो।'

१ देव-संख्या

ऋग्वेदमें देवोकी गणना तरह-तरहसे हुई है। भरद्वाज [२](६।५०।१) और वसिष्ठने[१] ,(७।३५ और ७।४१।१) सख्याका उल्लेख किया है। भरद्वाजने[२] (६।५०) अदिति, वरुण, मित्र, अग्नि, अर्यमा, सविता, भग (१), रुद्र, वसुगण, मरुत् (४), रोदसी (द्यौ-पृथिवी) (६), दोनो भिषग् (अश्विनौ), (७), नासत्य (अश्विनौ) (१०), सरस्वती, वायु, ऋभुक्षा, पर्जन्य (१२) का उल्लेख किया है। उन्होने[१] (६।५१।५) द्यौको पिता, पृथिवीको माता, अग्निको भाई वतलाया है। आदित्य, आदितिका भी वही उल्लेख है। ऋषि लोग पृथिवीकी सुन्दर और ऐश्वर्यशाली वस्तुओको भी देवता मानते थे। इसीलिये भरद्वाज [४](६।५२।४-६) ने उषा, पर्वतो, पितरो, सिन्धुओ (नदियो) के साथ सरस्वती (नदी), पर्जन्य (मेघ) से भी रक्षाकी कामना की—

"उगती उषायें, मेरी रक्षा करे। फूलती नदिया मेरी रक्षा करें। अचल (ध्रुव) पर्वत मेरी रक्षा करें। देव-यज्ञमें देवताओंके साथ वुलाये पितर मेरी रक्षा करें।।४।।"

"हम सदा सुन्दर मनवाले होकर उगते सूर्यको देखें। देवोंके पास हवि ले जानेवाले वसुओंके पति अग्नि (देव) शक्ति-युक्त होकर आवें।।५।।"

"इन्द्र रक्षा के साथ हमारे पास आये। सिन्धुओके साथ फूलती सरस्वती, ओषधियोंके साथ हमारे पास पर्जन्य, पिताकी तरह सुप्रशसनीय सु-आहूत सुखमय अग्नि हमारे पास आय।।६।।"

वसिष्ठने एक सूक्त [५] (७।३५) में निम्न देवोकी गणना की है—

"इन्द्र-अग्नि, इन्द्र-वरुण, इन्द्र-सोम, इन्द्र-पूषा, भग, पुरन्धि, अर्यमा, धाता, रोदसी (द्यौ-पृथिवी), अद्रि (पर्वत), अग्नि, मित्र-वरुण, अश्विद्वय, अन्तरिक्ष, इन्द्र, वसुगण, रुद्र, त्वष्टा, ग्नायी (देविया), सोम, ब्रह्मा, द्यावा, यज्ञ, सूर्य, चार प्रदिशायें, पर्वत, सिन्धु (नदिया), आप, अदिति, मरुत्गण, विष्णु, पूषन्, वायु, सविता, उषा, पर्जन्य. क्षेत्रपति, विश्वदेव (देवसमूह),

"महस-सूनु, युवा, अद्रोघवाच, अतितरुण तुम्हें स्तुति द्वारा हम पुकारते हैं, जो कि तुम ज्ञानी, अद्रोही सबमें प्रिय धनोंको प्रदान करते हो।"

भरद्वाज अग्निकी महिमामें कहते हैं " (६।८)—

"वह व्रत-पालक अग्न परमव्योममें उत्पन्न हो व्रतोंकी रक्षा करता है। वह सुकर्मा आकाशको नापता है। वैश्वानर (अग्नि) अपनी महिमासे नाक (स्वर्ग) को छूता है।२।"

"आकाशमें महिप (महान्) ने उसे ग्रहण किया, विशोंने पूज्य राजा समझकर उपस्थान (सम्मान) किया, विवस्वान् (सूर्य) के दूत अग्नि वैश्वानरको वायुने दूरसे लाकर धारण किया।४।"

भरद्वाज अग्निको युग-युगका अमर दूत कहते हैं " (६।१५।)—

"हे अग्नि, देव और मनुष्य युग-युगके अमृत दूत, हव्यवाहक, रक्षक, पूज्य, जागृत, विभु, विशोंके स्वामी तुम्हें धारण करते और नमस्कार पूर्वक बैठाते हैं।"

विश्वामित्र " (३।२६)—

"हम कुशिक लोग अग्निको हवि-युक्त मनसे समझकर सत्य-युक्त स्वर्गके जानकार, सुदानी, रयी, अणु, देव अग्निको धनकी इच्छासे पुकारते हैं।१।"

"माताओ जैसे से कुशिक अश्वकी तरह हिनहिनाते वैश्वानरको* युग-युगमें प्रज्वलित करते रहें। सो अमरोंमें जागरूक अग्नि हमें सुवीर, सुअश्व-वाला बनाये।३।"

"मैं अग्नि जन्मसे ही सब जाननेवाला हूं। घृत मेरी नाभ (है) और अमृत मेरे मुखमें है। मैं त्रिविध तेजवाला, अन्तरिक्षका विमान, अजस्र-साप हवि नामवाला हूं ॥७॥"

वामदेव अग्निकी स्तुतिमें कहते हैं " (४।३)—

"जाओ, त्रिये यज्ञके राजा, रुद्र होता हो और पृथिवीके सच्चे

---

*सभी नरों का पूज्य अग्नि

यजमान। सुनहले रूपवाले अग्निको अचित्त विजलीसे तुम्हारी रक्षाके लिये बनाओ ।।१।।"

"हे अग्नि, पतिकी कामना करती सुन्दर परिधान-युक्त स्त्रीकी तरह हम तुम्हारे लिये यह स्थान बनाते हैं। तेजसे सम्मुख हो यहा बैठो, और सामने स्वपाक बनो ।२।"

सप्तसिन्धुके भरत-सन्तान देवश्रवा और देववात अग्निकी स्तुति करते हैं[१८] (३।२३।४)—

"हे अग्नि, हम अन्नस्थान वाली उत्तम पृथिवीमें सुदिनके लिये तुम्हें स्थापित करते हैं। तुम दृषद्वती (घग्गर), आपया (मरकण्डा), सरस्वतीके तट पर धन-युक्त हो मनुष्योमें दीप्तिमान् होओ।"

२ अरण्य—पूज्य, दाता और प्रकाशमान होनेके कारण ऋषि लोग किसी वस्तुको भी देवता मानते थे। इसीलिये अरण्य (जगल) भी उनके लिये देवता थे। जब हम भारतमाताकी प्रशसामे वन्देमातरम् गान करते है, उस समय भी उसी तरहकी कल्पना हमारे दिमागमे घूमती है। सप्तसिन्धुके आर्योके परम धन थे गाय-घोडे, भेड-बकरी। इनके लिये अरण्य भारी अवलम्ब थे। इसीलिये इरम्मद-पुत्र देवमुनिने अरण्यकी स्तुति बडे भक्तिभावसे की है[१९] (१०।१४६)—

"यदि दूसरे (सिह आदि) न आवें, तो अरण्यानी हिंसा नही करती। वहा स्वादु फल खाकर यथेच्छ रह सकते है ।५।"

"अजन-वर्ण (काली) सुगन्धि-युक्त, किसान के बिना बहुत भोजन-वाली, मृगोकी माता अरण्यानीकी मै स्तुति करता हू ।६।"

३ आप—आप जल और नदी दोनोको कहते है। दोनो ही आर्योके पूज्य थे। उनके भाईबन्द पारसीक भी आप देवताओंके माननेमें उनके साथी थे। सिन्धुदीप-पुत्र अम्बरीषने आपकी स्तुति करते कहा है[२०] (१०९)—

"आप देवी, सुखमय हो। वह हमें धन दें, भली-भाति देखने (जानने) के लिये ज्ञान दें ।१।"

"हे आपो, जो तुम्हारे पास अत्यन्त शिव (मंगलमय) रस है, उसे लालनेवाली माताकी तरह हमें प्रदान करे।२।"

"देवी आप हमारे कल्याणके लिये, पानके लिये हो। हमारे चारो ओर कल्याणकी वर्षा करें।४।"

४ इळा—सरस्वती उषा, आप की तरह इळा भी आर्योकी देवी थी। इळाका अर्थ अन्न है। अन्न देवता से भी बढ कर है ही। विश्वामित्रने इळाके साथ भारती और सरस्वतीकी स्तुति[1] (३।४) की है—

"भारतियोंके साथ भारती, देवो और मनुष्योके साथ इळा, अग्नि, सारस्वतोके साथ सरस्वती, तीनो देविया (हमारे) सामने इस यज्ञमे बैठें।"

भारतीका अर्थ आजकी सरस्वती लेना नही होगा। अनेक भारतियोंके साथ भारतीका रहना कुछ विशेष अर्थ रखता है। शायद बहुतसी भारतीसे यहा भरत देशकी पूज्य देविया अभिप्रेत हो, और सारस्वत-समुदायसे सरस्वती-तटके निवासी देवी-देवता।

५ इन्द्र—इन्द्र आर्योके सबसे बडे और तेजस्वी देवता थे। यद्यपि ईरानी आर्योने जरथुस्त्रके मतके अनुसार देव शब्दका अर्थ राक्षस और देवोंके राजा इन्द्रको राक्षसराज बना दिया है, पर यह समझना गलत होगा कि जरथुस्त्रसे पहले भी इसका यही अर्थ था। हम जानते ही है, कि बिना अपवादके सभी इन्दो-युरोपीय जातियोंके पूर्वज दिव्य अर्थ होने देव शब्दका उपयोग करते थे। ऋषिप्रवर सबसे ज्येष्ठ भरद्वाज इन्द्रकी महिमामें कहते है[1] (६।१७)—

'इन्द्र, रक्षा करो, जो कि तुम पशुओंके रक्षक, जो वृषन (मनोरामना पूरक), जो शिप्रवान्, जो मतिया (अभिलाषाओं) का वर्षण वृषभ हो, जो पर्वतोंके विदारक वज्रधर, जो घोडोंपर चलनेवाले, वह इन्द्र विचित्र अन्न-धन प्रदान करे।२।"

भरद्वाजके पुत्र गर्गने इन्द्रकी रक्षा करते हुये प्रार्थना की है" (६।४७)—

"त्राता इन्द्र, अविता (रक्षक) इन्द्र, हर यज्ञमें सुन्दर तौरसे पुकारे गये इन्द्र, शूर इन्द्र, शक्र, पुरुहूत (बहुत पुकारे जानेवाले) इन्द्रको मैं पुकारता हूं। मघवा (धनवान्) इन्द्र हमारी स्वस्ति करे।११।"

"जो इन्द्र रूप-रूपमें भिन्न रूप हुआ, सो उसके रूपको बतलानेके लिये है। इन्द्र (अपनी) मायाओंसे बहुरूप होता है। इसके रथमें हजार घोडे जुते हैं।"

वसिष्ठ[२४] (७।२९) इन्द्रको सोम पीने के लिये बुलाते हैं—

"हे इन्द्र, यह सोम तुम्हारे लिये छाना हुआ है। हे घोडेवाले, उसके पास जल्दी आओ। इस चारु (भली प्रकार) छनेको पीयो, और हे मघवा, आकर हमें मेघ (धन) दो।१।"

सोम आर्यों और उनके देवताओंका अत्यन्त प्रिय पेय था। उसको पीकर वह प्रसन्न और मस्त होते थे। वसिष्ठने[२५] (७।३२) कहा है—

"यह दही मिला कर (दध्याशिर) सोम छाने गये हैं। हे वज्र-हस्त, मस्त होने के लिये दोनो घोडोंके साथ उनके लिये उनके पास के स्थानमें आओ।४।"

वसिष्ठ शतयातु (सौ जादूवाले) कहे जाते थे, लेकिन वह जादूमें चतुर थे, इन्द्रके बलपर ही। इसीलिये वह इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं[२६] (७।१०४)—

"हे इन्द्र, माया (छल) से हिंसा करनेवाले यातुधान (जादूगर) पुरुष और स्त्रीको नष्ट करो। बिना गर्दनके राक्षस नष्ट हो, वे उगते सूर्यको न देख पायें।२४।"

विश्वामित्र तीनो ऋषियोंमें सबसे पीछे प्रभुतामें आये। उन्होंने सुदासको अश्वमेध-यज्ञ कराया। वह इन्द्रकी स्तुति करते कहते हैं[२७] (३।३२)—

"हे इन्द्र, गवाशिर (दूध-सहित) मधे सफेद (शुक्र) सोमको पियो। तुम्हारे मदके लिये हम (इसे) देते हैं। ब्रह्मकृत् (मन्त्रकर्त्ता), मरुत्गणों और रुद्रोंके साथ तृप्त होने तक (इसे) पियो।२।"

"इन्द्र, जो तुम्हारे शक्ति और बलको बढाते हैं, वह मरुत् तुम्हारे ओजको बढायें। हे वज्र-हन्त, सुमुकटवर (सुशिप्र), गण-सहित रुद्रोंके साथ मध्याह्नके सवन (सत्र) मे (सोम) पियो।३।"

"सारे देव इन्द्रके सुकृत को, बहुतसे व्रतोंवाले कर्मको नष्ट नही कर सकते। जिसने द्यौलोक और इस पृथिवीको धारण किया, सुदर्शना पूर्ण और उषाको पैदा किया।८।"

विश्वामित्र इन्द्रके घोडोंको मोरकी बतलाते हैं (३।४५)—

"हे इन्द्र मोरके रोमवाले मन्त घोडोंके साथ आओ। (जालमे) फसानेवाले बहेलियेकी तरह, मरुभूमिकी तरह कोई तुझे न रोके।१।"

वामदेव इन्द्रकी प्रशसामे कहते हैं (४।१६)—

"इन्द्र सूर्यके समीप रूप धारण करता है। अमृतके शरीर-हन्तवाले मृगकी तरह, तेजमें जलाते सिहकी तरह, भयकर होते आयुधोंको धारण करता है।१४।"

"हे शूर, जनोंके किसी युद्धके भीतर तीक्ष्ण अशनि गिरे। हे स्वामी, जब घोर युद्ध हो, तो हम लोगोंके शरीरकी तुम रक्षा करना जानो।१७।"

"तुम वामदेवकी स्तुतियोंके रक्षक हो। (हमारे) अगडु हो युद्धमे सखा बनो। हे महाबुद्धिमान्, हम तुम्हारा अनुगमन करें। तुम सदा स्तुति-कर्त्ताओंके बहुप्रशसनीय होओ।१८।"

वामदेव फिर कहते हैं (४।१७)—

"हे इन्द्र, तुम महान् हो। महा पृथिवीने तुम्हारा अनुमोदन किया। द्यौने तुम्हें माना। तुमने अपने बलसे वृत्रको मारा, अहि (वृत्र) द्वारा रोकी जाती सिन्धुओं (नदियों) को मुक्त किया।१।"

"तुम्हारे प्रकाशके जन्मनेपर द्यौलोक चमकने लगा। तुम्हारे कोपसे भयभीत भूमि तपी, सुन्दर होनेवाले मेघ बढे, नदियां आकर मरुभूमियों को नष्ट करती चली।२।"

वामदेव फिर गाते हैं (४।२२)—

"कामनापूरक श्रेष्ठ नेता शची-वान् उग्र इन्द्र चार धारवाले वज्रको दोनो बाहुओमें लिये ऊनवाली (भेडोवाली या ढाकती) परुष्णी (रावी) का सेवन करते है, उसके स्थानोंको मित्रताके लिये वयन करते है।२।"

"जो उत्पन्न देव, देवतम महान् अन्नो और महान् बलोंसे युक्त है। दोनो बाहुओमें बल धारण किये उसने अभिलषित, द्यौ और भूमिको बहुत कँपाया।३।"

वामदेव इन्द्रके मुँहसे उसकी महिमा कहलवाते है [१२](४।२६)—

"मै मनु हू, मै सूर्य और कक्षीवान् विप्र ऋषि हू। मैने आर्जुनेय कुत्सको अलकृत किया, मुझे ही उष्णा कवि करके देखो।१।"

"मैने आर्यके लिये भूमि दी, दाता मर्दको मैने वृष्टि दी। मै शब्द करते जल लाया। देव मेरे सकल्पका अनुगमन करते है।२।"

"जब मैने युद्धमें अतिथिग्व (दिवोदास) की रक्षा की, मैने मस्त हो शम्बरके नौ और नब्बे पुर (दुर्ग) ध्वस्त किये। तो सौवींको (उसे) रहनेके लिये दिया।३।"

गृत्समद भी ऋग्वेदके प्रसिद्ध ऋषियोमें है। वह इन्द्रकी सर्वशक्तिमत्ताके बारे में कहते है [११](२।१२)—

"जिसकी आज्ञामें अश्व है, जिसकीमें गायें, जिसकीमें ग्राम, जिसकी आज्ञामें सारे रथ है। जिसने सूर्य और उषाको पैदा किया, जो नदियोका नेता है, हे लोगो, वह इन्द्र है।७।

"जिसने पर्वतोमें रहनेवाले शम्बरको चालीसवी शरदमे (मार) धरा। ओजस्वी हो जिसने सोये हुये अहि दानवको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है।११।"

वसिष्ठने आर्योकी सारी विजयोका श्रेय इन्द्रको दिया है। इनके दो सूक्तोमें (७।१८।१०) ऋग्वेदिक आर्योके सघर्षोके सम्बन्धमें बहुमूल्य सूचनाये मिलती है, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके है। वह कहते है [१४](७।१८)—

"हे इन्द्र, हमारे पितरोंने तुम्हारी स्तुति करने वाले बहुत धन प्राप्त किये। तुममें ही सुन्दर दुधार गायें, तुममें ही अन्न है। देवोंके भक्त को तुम बहुत सा धन देते हो।१।"

"जैसे स्त्रियोंके साथ राजा, वैसे ही विद्वान् और कवि तुम स्तुतियोंवाले होकर रहते हो। हे मघवन्, स्त्रोताओंको गौओं और अश्वोंके साथ रूप दो। धनके लिये हमें तुम सिखाओ।२।"

"देवभक्ति-सहित सर्वा-युक्त यह मेरी मधुर स्तुतियां तुम्हारे पास जा रही हैं। हे इन्द्र, तुम्हारा पथ्य धन हमारी ओर आवे। तुम्हारी सुमति-से हम शर्म (सुख)-युक्त होवें।३।"

जैसे धेनुके लिये सुन्दर तृण, वैसे ही तुम्हें दुहनेके लिये वसिष्ठने ब्रह्मो (मन्त्रों) को रचा। सब तुम्हें ही गो-पति कहते हैं। इन्द्र हमारी सुन्दर स्तुतिके पास आवें।४।"

आगिरस प्रियमेध कहते हैं[५] (८।५८)

"जो पानमें प्राप्त है, उस वज्रधारी इन्द्रके लिये गाये मधुर आशिर (दूध) दुहाती हूं।७।"

"हे प्रियमेध-सन्तानो, अर्चना करो, खूब अर्चना करो, अर्चना करो। दुर्ध्वनसको जैसे वैसे ही हे पुत्रो अर्चना करो।८।"

"गगर (बाजा) आवाज कर रहा है, गोधा (गोहके चमड़ेवाला बाजा) ध्वनि कर रही है। पिंगा (पीले प्रत्यंचा) चिल्ला रही है। इन्द्रके लिये ब्रह्म (स्तुति) उद्यत हो।९।"

"विमुरुमारकी तरह नवीन व्यापार नई पिता-माता (द्यौलोक और पृथिवी) के सामने वह (इन्द्र) महिष (महान्) मृगों समान और बहुत कर्मवाले हैं।१५।"

"हे सुन्दर मुखवाले स्वामी, मुझसे स्वागत करो। सहस्रसाव, सोम-सहित निष्पाप, स्तवन करनेवाले मुझसे स्वागत करो। तब हम दोनों मित्र हों।१६।

आर्षेयोंमें कुछ लोग इन्द्रके अस्तित्व पर संदेह करते थे जैसा कि भृगु-गोयोंके नवमें मण्डल[६] (८।८९) से मालूम होता है—

"यदि सत्य है तो हे युद्धेच्छुको, इन्द्रके लिये सच्चे स्तोम (स्तोत्र) को पढो। नेम ऋषि तो कहता है, इन्द्र नही है। किसने (इद्रको) देखा, फिर किसकी स्तुति करें।३।"

नेमके ऐसा सन्देह करनेपर इन्द्रने स्वय जवाव दिया—

"हे भगत, यह हू मै, देख मुझे। यहा सारी सृष्टिको (अपनी) महिमा से मै वशमें करता हू। दिशायें मेरे सत्यका वधावा देती है। मै भुवनोका विदारक हू।४।"

ऋषि इन्द्रको शरीरधारी समझते थे। उसके मुकुट और दो भुजाओका वर्णन ऊपर हो चुका है। विमद (प्रजापति-पुत्र) ने इन्द्रकी मूँछ-दाढी (श्मश्रु) का वर्णन किया है[१७] (१०।२३)

"दाहिने हाथमें वज्र-युक्त, कार्य-निपुण घोडोंके रथवाले इन्द्रकी हम पूजा करते है। सोम द्वारा प्रसन्न हो सेनाओ और अन्नके साथ अपनी श्मश्रुको हिलाते शत्रुओंके सहारके लिये वह प्रकट हुये।१।"

"जैसे वृष्टि पशुयूथोको भिगोती है, वैसे ही हरित (पीले) सोमसे इन्द्र अपने श्मश्रुओको भिगोते है। फिर सुन्दर यज्ञमें जा छने मधुर सोमको पीकर जैसे वायु वनको वैसे ही अपने श्मश्रुओको हिलाते है।४।"

विमद ऋषि केवल सोम-पानसे ही इन्द्रकी तृप्ति नही समझते, वह उनके भोजनके वारेमे कहते है[१८] (१०।२३)—

"हे इन्द्र विमद-लोगोने सुदाता तुम्हारे लिये अपूर्व विस्तृत स्तोम (स्तुति) रचा। इस (इन्द्र) राजाके भोजनको हम जानते है, इसलिए गोपालोकी तरह (ग्रास) दिखा कर पास पशुको बुलाते है।६।"

वसुक्र इन्द्रकी अद्वितीय प्रतिभापर विश्वास रखते समझते है, कि इन्द्र असम्भवको सम्भव कर सकते है[१९] (१०।२८ ३)—

"हे मघवन् इन्द्र, अन्नके लिये पुकारते समय तुम्हारे लिये जल्दी-जल्दी पत्थरसे मददायक सोमको, (पीसकर हम) छानते है, तुम उसको पीते हो। वे बैल पकाते है, तुम उन्हें खाते हो।३।"

"हे स्तुत्य, मेरे लिये तुम ऐसा कर दो, कि नदियां उल्टी दिशामें बहें। घास खानेवाला मृग सिंहको भगाये, सियार वराहको वनमें हटा दे।४।"

"इन्द्रकी कृपा होनेपर शशक श्वापदका सामना कर सकता है। मेंढक सर्पके पहाड़को तोड़ सकता है। (उनकी कृपा से) महान् भी क्षुद्र के वशमें आ सकता है, बछड़ा सांडसे लड़ सकता है।९।"

"पिंजड़ेमें बंधा सिंह चारों ओर अपने पैरको जैसे रगड़े, वैसे ही गरुड़ (बाज) पक्षी अपना नख रगड़ने लगे। जो रुचा प्यासा महिष है, उनके लिये वह गोचा पानी लाये।१०।"

इन्द्रके रूप आदिके बारेमें आंगिरस वत्स कहते हैं" (१०।९६)—

"इसका वह वज्र हरित (पीला) है, जो आयस (तांबे या पत्थर का) अत्यन्त सुन्दर दोनों हाथोंमें है। धनी, सुशिप्र (सुमुकुट), सुन्दर, क्रोधरूपी बाणवाले इन्द्रको हरित (सुनहले) सोमसे अभिषिक्त किया।३।"

"जो हरित (पीले) सोम-दाढ़ी पीले केशवाले ताम्रसे दृढ़ सोम पी कर शरीर (बल) को बढ़ाते हैं, जिसे हरित घोड़े यज्ञमें ले जाते हैं, वह दो घोड़ोंपर चढ़े सारी दुर्गतिको दूर करते हैं।८।"

इन्द्र मनुष्यकी तरह साकार था, इस बातका उल्लेख यास्क भी करते हैं (निरुक्त उत्तरषट्क ७।२।२)—

"देवताओंके आकारका चिन्तन करते वह पुराने लगते हैं। चेतना-वान् (मनुष्य) की तरह ही स्तुतियां (ऋचायें) बतलाती हैं। पुरुष जैसे अंगोंके साथ उनकी स्तुति की जाती है।"

इन्द्र-सम्बन्धी ऋचाओंके देखनेसे भी यास्कको बातकी सत्यताका पता लगता है। इन्द्र शिप्र (शिर टोपी या मुकुट) वाले हैं। वह घोड़ेके रथ पर सवार होकर चलते हैं। वह सोम पीकर मस्त होते हैं। उनके दोनों हाथोंमें चार कोनेवाला वज्र है। उनके घोड़े सोनेकी हैं। उनके मुंह-पर पीली दाढ़ी-मूंछ है। उनके खानेके लिये भक्तगण वृषभ पकाते हैं। शचि उनकी पत्नी है इत्यादि।

पृथिवी और द्यौलोककी स्तुति माता-पिताके तौरपर ऋषियोंने की है।

पुरुष—पुरुष-सूक्त ऋग्वेदके पीछेके सूक्तोंमें[९] (१०।९०) है। इसके ऋषि नारायण कल्पित मालूम होते हैं। सूक्तमें ब्रह्माण्डमय विराट् पुरुषकी कल्पना है—

"हजार सिरोंवाला, हजार आखोंवाला, हजार पैरोंवाला पुरुष है। वह चारों ओर भूमिको ढाक कर दस अगुलमें अवस्थित होता है ॥१॥

"यह जो कुछ भूत और भावी है, सब पुरुष ही है। वह अमृतत्वका स्वामी है, जो कि अन्नसे अतिरोहण (वर्धन) करता है ॥२॥

"पुरुषरूपी हविसे देवोंने जिस यज्ञको पसारा। उस (यज्ञ) का घी वसन्त था, ईधन ग्रीष्म, हवि शरद थी ॥६॥

"उससे अश्व और जो कुछ भी मुखमें दोनो ओर दातवाले (प्राणी) हैं, उत्पन्न हुये। गाये उनमे उत्पन्न हुई। उसमे भेड-बकरिया उत्पन्न हुई ॥१०॥

"इसका मुख ब्राह्मण हुआ, दोनो बाहे राजन्य (क्षत्रिय) बनी। उसकी दोनो जाघें वैश्य (हैं), दोनो पैरोंसे शूद्र उत्पन्न हुआ ॥१२॥"

पूषन्—पुष्टिकारक देवताके लिये यह नाम दिया गया है। इसके गुण सूर्यपर अधिक घटते हैं। एक देवताके भी अनेक गुणोंको लेकर ऋषि अनेक देवताओंकी कल्पना कर लेते थे, जैसे एक ही सूर्य आदित्य, सविता, मित्र, सूर्य और पूषन्के नामसे अलग-अलग माना जाता था। ऋषि-त्रयमें सबसे ज्येष्ठ भरद्वाजने पूषन्की प्रशसोमें ६ सूक्त (६। ५३-५८) रचे हैं, जिससे इस देवताका महत्त्व मालूम होता है। भरद्वाजकी ऋचाओंसे पूषन्के व्यक्तित्वका भी पता लगता है,[१०] (६ ५३)—

"हे पथके पति पूषन्, अन्न प्राप्तिके लिये रथकी तरह हम तुम्हें सन्मुख करते हैं।

"प्रकाशमान पूषन्, अ-दाता कृपण पणि को दानके लिये प्रेरित करो। (उस) के मनको मृदु बनाओ ॥३॥"

दूसरे सूक्त[११] (६।५४) में भरद्वाज कहते हैं—

"हे पूषन्, तुम हमें ऐसे विद्वान्से मिलाओ, जो बतलावे 'यही है'।

"हमारा गोधन नष्ट न हो, हमारा (पशुधन) कूएमें न गिरे। स्वस्ति-युक्त गौवोंके साथ तुम आओ ॥७॥

"पूषन् अपने दाहिने हाथको चारो ओर रक्खे। हमारे नष्ट (लुप्त) गोधनको वह फिर लावें ॥१०॥"

भरद्वाजकी उपरोक्त ऋचाओंसे मालूम होता है कि, पूषन् भूलोंको रास्ता बतलाने वाला, गौओंका रक्षक देवता था। उन्हींके एक मन्त्र[१] (६। ५५। ७) से मालूम होता है, कि पूषन्के सिरपर कपर्द (जूडा) था।

"महारथी, कपर्दी ईशान मित्रसे हम धनकी प्रार्थना करते हैं।"

भरद्वाजने पूषन्को मत्तू (करम्भ)-प्रिय कहा है[२] (६।५६)—

"जो (मनुष्य) उस पूषन्को करम्भ (-दान)से प्रार्थना करता, उसे दूसरे देवकी प्रार्थना करनी नहीं पडती ॥१॥

"महारथी, सच्चे स्वामी इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ शत्रुओंको मारते हैं ॥२॥

"महारथी सूर्य (पूषन्) सुनहले चक्रोंको चलाते हैं ॥३॥"

यहा पूषनको सूर (सूय) कहा गया है। भरद्वाजके कथन[३] (६।५७)से मालूम होता है, कि जैसे इन्द्र सोमपानको पसन्द करते हैं, वैसे ही उनके मित्र पूषन करम्भ (सत्तू) को—

"पायसे छाने सोमको पीनेके लिये एक (इन्द्र) पास आते हैं, अन्य (पूषन्) करम्भ(सत्तू) चाहते हैं ॥२॥

"एकका वाहन बकरा है, और दूसरेको घोडे ले जानेवाले हैं। इन दोनोंके साथ (हा) मृधो (शत्रुओं) को मारते हैं ॥३॥"

भरद्वाज फिर पूषन्की सूर्यकी तरह स्तुति करते हैं[४] (६।५८)—

"बकरी-खींचेवाला, पशुपति, अन्नदानी स्तुति-प्रिय जो पूषन् सारे विश्वमें प्रसिद्ध हैं। वह देव-भुवनको प्रकाश करने निखिल लोकको [illegible] करता है ॥३॥

"हे पूषन्, तुम्हारी जो नावें समुद्रके भीतर और आकाशमें चलती हैं, स्तुति किये जाते सूर्यकी कामनासे (तुम) दूत बनते हो ।।३।।

"पूषन् द्यौ और पृथिवीके सुन्दर बन्धु, अन्न-पति, धनवान्, दर्शनीय रूपवान् हैं। स्वेच्छासे बल-युक्त, सुन्दर गतिवाले हैं, जिन्हें देवोंने सूर्य लोक के लिये दिया ।।४।।"

इन ऋचाओंसे मालूम होता है, कि पूषन्का सूर्य और पोषण (पशु पोसने) से विशेष सम्बन्ध था, और वह इन्द्रके सखा अन्नके देवता और स्वयं सत्तूके प्रेमी थे—आजके तिब्बती लोगोंकी तरह सारे आर्य उस समय सत्तू प्रेमी (सातूखोर) थे।

१२. **प्रजापति**—परमेष्ठी प्रजापति ऋषि यह कल्पित नाम मालूम होता है। इस नामसे रचित सूक्तका सारे ऋग्वेद में एक विशेष महत्व है। यद्यपि वह दसवें मण्डलका सूक्त [५]। (१० १२९ में होनेसे पीछेकी कृतियोंमें है, पर इसीमें पहिले पहल उपनिषद्के रहस्यवाद और अज्ञेय ब्रह्मका वर्णन मिलता है—

"न असत् था न तब सत् था, न लोक थे, न आकाशसे परे जो है वह (था)। उस समय क्या आवरण, कौन किसका स्थान, (था) ?क्या गहन गम्भीर था ।।१।।

'तब न मृत्यु थी, न अमृत, न रात्रि, न दिनका ज्ञान था। वायु बिना वही एक अपने धारणसे था। उसमें दूसरा और कोई नहीं था ।।२।।

"अन्धकारसे छिपा अन्धकार आगे था। यह सब अज्ञात सलिल था। छूछे (शून्य) से जो ढका था, तपस्याके प्रभावसे वह एक उत्पन्न हुआ ।।३।।

"उसके पहले काम (इच्छा) थी। मनमें पहला बीज जो था। कवियोंने बुद्धि द्वारा हृदयमें विचार करके असत् में सत्के बन्धुको प्राप्त किया ।।४।।

"तिर्छा फैला हुआ था, इसकी रश्मि मानो अध थी, मानो ऊपर थी। बीज धारण करनेवाले थे, महिमायें थीं, स्वशक्ति स्वधा पूरी थी, प्रयति (प्रगति) परे थी ।।५।।

"कौन जानता, कौन यहां बोलता है, (कि) कहांसे यह सृष्टि उत्पन्न हुई। इन (सृष्टि) के होनेके पीछे देव हुये, (अतः) कौन जाने जहांसे उत्पन्न ॥६॥

"यह सृष्टि जहांसे हुई, अथवा धारण हुई या न हुई। जो इसका अध्यक्ष परम आकाशमें है। सो भाई, जानता है या नहीं जानता ॥७॥"

प्रजापति-पुत्र यज्ञ भी कल्पित नाम है। उनके रचित सूक्तमें भी प्रजापतिका वर्णन मिलता है, परन्तु वह उतना रहस्यमय नहीं है " (१० १३०)—

"जो यज्ञ तन्तुओंसे चारों ओर फैला हुआ एक सौ देव-कर्मोंसे विस्तृत है। जो पितर आये हैं, वह बुन रहे हैं। 'इधर बुनो, चौड़ा बुनो' कहते विस्तृत फैले यज्ञमें हैं ॥१॥

"तब यज्ञकी क्या प्रमा-प्रतिमा (सीमा-आकृति) थी, क्या निदान था, क्या घी था, क्या परिधि (माप) थी। छन्द क्या था, उक्थ (साम (गान) क्या था, जब कि सारे देवोंने यजन किया ॥२॥

"अग्निके साथ गायत्री छन्द हुआ। उष्णिक्के साथ सविता हुआ। अनुष्टुप् द्वारा सोम, महान् तेजस्वी (सूर्य), उक्थों द्वारा (हुआ), बृहस्पतिके वचनका आश्रय बृहती ने लिया ॥४॥

"विराट् (छन्द) ने मित्र और वरुणका आश्रय लिया। इन्द्र और दिनका भाग यज्ञ त्रिष्टुप् हुआ। जगतीने सभी देवोंका आश्रय लिया। उसे ऋषियों, मनुष्योंने यज्ञ किया ॥५॥

"सात दिव्य ऋषि स्तोमों(स्तुतियों) छन्दों सहित हो प्रमा-युक्त हुये। पहले ऋषियोंने पयको दुहकर तीनोंने जैसे घीको प्राप्त वैसे पयको पाया ॥७॥'

प्रजापतिके इस छोटे सूक्तमें पहलेके जैसा चमत्कार नहीं। पहलेको सन्तुष्ट करनेपर्यन्त पूर्वक मानना चाहिये। इसी सूक्त के रूपमें सत्यश्रुत आर्यने दार्शनिक ज्ञान भरनेकी शुरुआत की। दूसरे सूक्तमें छन्दोंके नामोंका एक ढंग मात्र बन

दिया गया, और स्तोम (स्तुति) और उक्थ (सामगान) का भी उल्लेख किया है।

१३. **मन्यु**—देव शब्दका व्यापक अर्थ है। उसमें प्रकृतिके भीतरकी चमत्कारिक शक्तियाँ ही सम्मिलित नही है, बल्कि मनुष्यके भीतरकी शक्तिया भी देव है। सप्तसिन्धुके ऋषियोको अभी शान्ति और अहिंसाका पाठ पढनेमें बहुत देर थी। उन्हें अपने शत्रुओपर प्रहार करनेके लिये मन्यु (क्रोध) की अवश्यकता थी। इसीलिये तपके पुत्र मन्युने उसकी प्रशसा की[५५] (१०।८३)—

"हे वज्र-बाण-तुल्य मन्यु, जो तुम्हारा ओज सबमें पुष्ट होता है, वैसे बलवान् तुम्हारे साथ हम दास और आर्यको पराजित करें।।१।।

"मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु (है) क्रोध होता, वरुण जातवेद (अग्नि) (है)। जो मानुषी प्रजायें है, वह मन्युकी प्रशसा करती है। हे मन्यु, तपस्यासे युक्त हो हमारी रक्षा करो।।२।।

"बलमें अतिबली मन्यु तपके साथ आओ, शत्रुओको मारो। अमित्रनाशक, वृत्रनाशक और दस्युनाशक, तुम हमारे पास सारे धन लाओ।।३।।"

उसी कल्पित नामवाले ऋषिने फिर कहा है[५६] (१०। ८४)—

"तुम्हारे साथ रथपर चढकर हर्षित होते ढीठ, वेगवान्, तीक्ष्ण बाणोवाले आयुधोको तेज करते अग्निरूप नर अभियान करें।।१।।

"अग्निकी तरह प्रज्वलित यज्ञमें पुकारे जाते हे मन्यु, हमारे सेनानी (आगे) बढें। शत्रुओको मार कर हमें धन दो, ओज देते दुश्मनोको भगाओ।।२।।"

१४ **मित्र**—मित्र, मिथ्र, मिहिर ईरानी आर्यो और वैदिक आर्योका सम्मिलित देवता है। उसका नाम पीछेके देवताओमें हमारे यहा नही मिलता, लेकिन मित्रकी महिमा ईरानमें पीछे बहुत बढी। एक बार उसकी उपासनाकी ओर रोमके सामन्त भी बहुत झुके थे। उस समय ईसाइयत और मिथ्र-भक्तिमें होड थी। कुछ समय तक यह कहना मुश्किल था, कि वहा

ईसाका धर्म विजयी होगा या मित्र का। मित्र की स्तुति में हम विश्वामित्रकी कुछ ऋचायें देते हैं" (३.५९)—

"पुकारनेपर मित्र लोगोंको प्रेरित करता है। मित्र पृथिवी और द्यौको धारण करता है। मित्र मनुष्योंको कृपादृष्टिसे देखता है। मित्रके लिये घृत-सहित हविका हवन करो॥१॥

"हे मित्र आदित्य, वह मनुष्य धनवान् हो, जो तुम्हारे व्रतमें प्रार्थना करता है। तुम्हारे द्वारा रक्षित वह न हत होता, न पराजित (होता)। दूर या नजदीकसे लाया पाप उसे नहीं प्राप्त होता॥२॥

"महान् आदित्य नमस्कारसे उपासना करने योग्य है। सुन्दर कर्मवाला जन जाकर उसकी स्तुति करता है। उस अतिप्रशंसनीय मित्रके लिये इस प्रिय हविको अग्निमें हवन करो॥५॥

"शक्तिशाली मित्रके लिये पाँच जन पूजा करते हैं। वह सारे देवोंका पालन करता है॥८॥"

१५. रुद्र—रुद्र विशेषणके रूपमें रुलानेवालेको कहते हैं। वेदके रुद्र और पीछेके शंकरका कोई सम्बन्ध नहीं है, यद्यपि दोनोंको एक मानके रुद्रपरक मन्त्रोंको जमा कर "रुद्राष्टाध्यायी" (रुद्री) तैयार की गई है। वसिष्ठ अपने यजमान भरतोंको कहते हैं" (७.४६)—

"हे भरतो, सुनो, यह तुम्हारी वाणियाँ (रचनायें) स्थिर-धनुष, शिप्र-बाण चलानेवाले, अप्रधृष्य अजेय, विजेता, वेगा, तीक्ष्ण आयुधवाले रुद्रके लिये हैं॥१॥

"(हे रुद्र,) देवताओंने छोड़ी गई जो तुम्हारी विजली पृथिवीपर गिरना चाहती है, वह हमें बचावे। हे स्वयं पीनेवाले, तुम्हारे पास हजारों औषध हैं। तुम हमारे पुत्र-पौत्रोंको हिंसा न करो॥३॥

"हे रुद्र, हमें न मारना, न त्यागना। क्रुद्ध हुये तुम्हारे वज्रमें हम न पड़ें। जीवोंके प्रशंसनीय हमारे घरमें आकर भोगी बनो। तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो॥८॥'

आगिरस कुत्सके सूक्त[९] (१।११४) से रुद्रके रूप-गुणका कुछ और पता लगता है—

"शक्तिशाली, जूडाधारी, शत्रुवीरो के नाशक रुद्रके लिये यह स्तुतिया हम लाते है, जिसमे कि दोपायो और चौपायोका कल्याण हो। इस ग्राममें सभी पुष्ट और अरोग रहें॥१॥

"हम दीप्तिमान् यज्ञसाधक वकु कवि रुद्रको रक्षाके लिये आह्वान करते है। वह अपने दिव्य क्रोधको हमसे परे फेके। हम उसकी सुमति (प्रसन्नता) चाहते है॥४॥

"उस दीप्तिमान् सुन्दर, जटावान्, रूपधारी, द्यौलोकके वराहको नमस्कारसे हम आह्वान करते है। वह हाथमें अच्छे भेपज लिये हमारे वास्ते वर्म (रक्षा), सुख और घर प्रदान करे॥५॥"

१६ वरुण—वरुण पुराना देवता है। विद्वानोका कहना है, कि इसीको पारसियोने अहुरमज्द (असुरमेध) माना। ईरानी और भारतीय आर्य शतवशकी शाखाके है। उसकी दूसरी शाखा वाले स्लावों (रूसियो, चेको आदि) में ईसाई होनेसे पहले पेरुन (परुन) *देवताकी वडी महिमा थी। पेरुन (परुन) यही वरुण है, इसमें[१] सन्देह नही। भारतमें इन्द्र ने वरुण के तेजको मलिन कर दिया, तो भी पुराने ऋषि वरुणकी प्रार्थना गद्‌गद् होकर करते है। वसिष्ठने कई ऋचायें वरुणकी स्तुतिमें रची है। यद्यपि वहा उसे विश्वे (सारे) देवोमें सम्मिलित करके वरुणको गौण वना दिया। वह कहते है[१०] (७।३४)—

"सहस्र आखोवाले उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देखते है॥१०॥

"वह राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके रूप है। वह अनुपम वल वाले और सर्वगामी हैं॥११॥"

इन ऋचाओंसे जल और वरुणका सम्वन्ध स्पष्ट है।

---

*स्लाव्यान्ये व्-द्रेव्नोस्ति (न० स० देर्भाविन्, मास्क्वा १९४५)

वसिष्ठ वरुणकी स्त्री वरुणानीका भी उल्लेख करते हैं" (७ ३४)—
"द्यौ-पृथिवी हमें अभिलषित धन दें, वरुणानी हमारी स्तुति सुनें। त्वष्टा उपद्रव-नाशसे हमारे लिये सुन्दर गृहवाला हो। वह सुदानी हमें धन दे ॥२२॥"

वसिष्ठने अपने सातवें मण्डलके ८२-८५ सूक्तोंमें इन्द्र और वरुणकी साथ-साथ और ८६-८९ सूक्तोंमें केवल वरुणकी स्तुति की है। ६०-६५ सूक्तोंमें उन्होंने मित्र और वरुणका वर्णन किया है। इन सूक्तोंसे वरुणपर प्रकाश पड़ता है' (७। ६०)—

"पुकारे गये उदय होते हे सूर्य, आज (हमें) निष्पाप करो, मित्र और वरुणके लिये सत्य होओ। हे अदिति, अर्यमा, देवताओंके पास हम स्तुति करते तुम्हारे प्रिय हों ॥१॥"

केवल वरुणकी स्तुतिपरक वसिष्ठकी कुछ ऋचायें हैं "(७। ८६)—
"उस (वरुण) की महिमासे जल स्थिर हुये। जिसने विस्तृत द्यौ-पृथिवीको स्थापित किया। दर्शनीय महान् आकाश और नक्षत्रको उसने दोहरा फैलाया ॥१॥

"हे वरुण, देखनेका इच्छुक उस पापके बारे में मैं पूछता हूँ। जाननेकी इच्छासे मैं पूछने जाता हूँ। (सभी) कवियोंने एक सा मुझे कहा—'यह वरुण तुझसे क्रुद्ध है' ॥३॥"

"हे तेजस्वी दुर्धर्ष वरुणानी वरुण, क्या पाप था, कि तुम ज्येष्ठ-सखा (होते) अपने स्तुतिकर्त्ताको मारना चाहते हो, उसे मुझे बताओ, जिससे मैं इस नमस्कारके साथ जल्दी तुम्हारे पास आऊँ ॥४॥

"हमारे पैतृक प्रोतोंका छोड़ दो हमने सामने जो किया, उसे भी (छोड़ दो)। हे राजन् पशु चरानेवाले चोरकी तरह, हमें वसे बछड़ेकी तरह वसिष्ठको छोड़ दो ॥५॥

"पाप-रहित हो मैं धारण करने योग्य (वरुण) देवकी मातृभूमि (द्यौ) उचित अर्थ (स्वामी) देव वरुणके। वह भागे फिर पापके लिये प्रेरित करे ॥७॥"

भरद्वाजने देव-समुदायमें वरुणका नाम देकर वेगार सी टाली है। विश्वामित्रने जरूर वरुणके प्रति कुछ उदारता दिखलाई है, पर उतनी नही, जितनी कि वसिष्ठने। क्या इसीलिये तो वसिष्ठको मैत्रावरुणि (मित्र और वरुणका पुत्र) नही कहा गया? अपने मण्डल के अन्तिम सूक्त[१४] (३।६२)में विश्वामित्रने इन्द्र और मित्रके साथ वरुणकी प्रशसा की है—

"हे इन्द्र-वरुण, यह धनका इच्छुक महान् यजमान वरावर रक्षाके लिये तुम्हारा आह्वान करता है। मरुतो, द्यौ और पृथिवीके साथ तुम मेरी स्तुति सुनो ॥२॥

"हे सुकर्मा मित्र और वरुण, तुम दोनो हमारी गोशालाओको घृतसे पूर्ण करो। हमारे आवासोको मधुसे पूरा कर दो, सीच दो ॥१६॥"

वसिष्ठकी की हुई वरुणानीकी स्तुति को हम वतला चुके है[१५] (७।३४।२२)

१७ **वायु**—विश्वामित्रके पुत्र मधुच्छन्दा वायु देवताकी स्तुति करते है[१६] (१।२)—

"हे दर्शनीय वायु, आओ, सोम सजे है। उन्हें पीयो और स्तुति सुनो ॥१॥

"हे वायु, सोम छानते समय जाननेवाले स्तुतिकर्त्ता उक्थों (साम-गान) से अच्छी तरह तुम्हारी स्तुति करते है।

१८ **वास्तोष्पति**—घरोका देवता इस नामसे पुकारा जाता था। वसिष्ठने कहा है[१७] (७।५५)—

"हे रोगनाशक वास्तोष्पति, सभी रूपोमें आवेश कर तुम हमारे सुख-कर सखा वनो ॥१॥

"हे अर्जुन (गोरे) सरमा-पुत्र, पिशग (सुवर्ण वर्ण), जव खाते तुम दातो को दिखाते हो, तव ओठोंके पास हथियारकी तरह वे चमकते है। इस समय तुम सो जाओ ॥२॥

१९ **विश्वकर्मा**—ऋग्वेदी विश्वकर्माका पीछेके देवशिल्पी विश्वकर्मा से कोई सम्वन्ध नहीं है। विश्वकर्माका वर्णन ऋग्वेदके सवसे पीछेके दसवें मण्डलमे आया है। वहाके वर्णनमे वह विश्व (ससार) का वनानेवाला

जान पड़ता है। भुवन-पुत्र विश्वकर्मा इस सूक्त "(१०।८१) के ऋषि हैं, जो कल्पित मालूम होते हैं। भुवन नामको सूक्तकी पहली ऋचासे लिया गया है, और विश्वकर्माको इस सूक्तमें चार बार दोहराया गया है।

"जिसने हमारा पिता हो उस सारे भुवनको हवन किया। वह आशीर्वादसे धनकी कामना करता पहले डॉक कर दूसरेमें प्रविष्ट हुआ।१।।

"क्या अधिष्ठान (आधार) है, आरम्भ कौन सा और कैसे (काम) हुआ था, जिससे सर्वदर्शी विश्वकर्माने भूमिको उत्पन्न किया, (अपनी) महिमासे द्यौको बनाया।।२।।

"चारों ओर चक्षु और चारों ओर मुंह, चारों ओर बाहु और चारों ओर पैर वाला वह एक देव, उत्पन्न करते दोनों बाहुओं-परोंसे द्यौ और पृथिवीको कम्पित करता है।।३।।

"क्या वन था, क्या वह वृक्ष था, जिससे (विश्वकर्माने) द्यौ और पृथिवीको गढ़ा। हे मनीषियो, मनसे यह पूछो जो कि भुवनोंको धारण करते, (वह) जिसपर अधिष्ठित हुआ।।४।।"

२० विष्णु—यह ऋग्वेदके गौण देवताओंमें है। पीछेके विष्णु-की कल्पनामें ऋग्वेदके इन मन्त्रोंका सहारा उसी तरह लिया गया है, जिस तरह शिवकी कल्पनामें ऋग्वेदके कपर्दी रुद्रका। पर, वैदिक आर्योंको पौराणिक या महाभारतके विष्णु और रुद्रसे कोई मतलब नहीं था। वसिष्ठने एक सूक्त " (७। १००) में विष्णुकी महिमा गाई है—

"द्यौ-उच्चा मद बहुतों द्वारा यशोगान किये गये विष्णुको हवि देता हूँ। जो मनसे विष्णुकी सेवा करता है वह इतना (शीघ्र ही) पाता है।।१।।

"इस देवने तो विष्णो-सहित इस पृथिवीको अपनी महिमासे तीन बार विक्रान्त किया। वृद्धसे अधिरूढ़ शोभनशक्तियोंसे अतिशयशाली विष्ण दौनिगात् हों, इस बृहत्का नाम हो।।३।।

'मनुष्यों क्षेमके लिये देवोंने उसके विष्णुने इस पृथिवीको विक्रमण किया (नापा)। उसकी स्तुति करनेवाले उस स्थिर है। सुन्दर शिखोंवाली विस्तृत शिखरों उस विष्णुने बनाया।।४।।'

२१. सरस्वती—सरस्वती वेदकी एक प्रमुख देवी थी। कुरुक्षेत्रके पास बहनेवाली सरस्वती भी पीछेकी गगाकी तरह ऋग्वेदिक आर्योमें एक श्रेष्ठ देवी मानी जाती थी। सरस्वती का शब्दार्थ सर (जल) वाली है। गगा अपनी धारासे अलग नही है, पर सरस्वती धारासे अलग भी देवी मानी जाती थी। इसके रूपका कुछ पता वसिष्ठ और विश्वामित्र-के मन्त्रोंसे मालूम होता है। वसिष्ठने कई सूक्तों[११] (७।९५-९६) में सरस्वती की स्तुति की है। वह पहले सूक्तमें[१०] (७। ९५) कहते है—

"यह सरस्वती पापाणमें दुर्गकी तरह पख और वेगवाले जलके साथ दौडती है। अपनी महिमासे अन्य सिन्धुओ (नदियो) को वाधित करती वह रथोकी तरह जाती है॥१॥

"नदियोमें शुचि, गिरियोंसे समुद्र तक जाती, अकेली यह सरस्वती मनुष्योंके लिये भुवनके भूरि धनको चेताती घी और दूधको दुहाती जाती है॥२॥

"हे सुभगा सरस्वती, तुम्हारे लिये यह वसिष्ठ यज्ञका द्वार खोलता है। हे शुभ्रवर्णा, वढो, स्तोताको अन्न दो। तुम नदा हमें स्वस्तिके साथ पालन करो॥६॥"

अगले सूक्त[११] (७। ९६) मे वसिष्ठ कहते है—

"हे वसिष्ठ, नदियोमें वलवती सरस्वतीके लिये वडा गान करो। द्यौ और पृथिवीमें सरस्वतीको ही सुन्दर स्तोमो (स्तुतियो) द्वारा पूजो॥१॥

"हे शुभ्रवर्णा, तेरी महिमासे पुरु लोग (दिव्य और मानुप) दोनो प्रकार का अन्न प्राप्त करते है। वह मरुतोकी सखी रक्षिका (सरस्वती। धनिकोंके धनको हमारे पास भेजे॥२॥"

विश्वामित्रको सरस्वतीकी महिमा विशेष तौरसे गानी चाहिये थी, क्योंकि उनके कुलवाले कुशिक लोग सरस्वतीके तटपर रहते वतलाये जाते है। लेकिन, उन्होने ऐसा पक्षपात नही दिखलाया। एक जगह[११] (३।४।८) इळा और भारतीके साथ सरस्वती और सारस्वतोका उल्लेख उन्होने किया है, जिसे हम इळाके प्रकरणमे देख चुके है।

भरत जनके ऋषि देवश्रवा, देववात एक ही जगह सरस्वतीके साथ उसकी दो सहायक नदियोंका वर्णन करते हैं" (३। २३। ४)—

"हे अग्नि, हम अन्नस्थान उत्तम पृथिवीमें सदा सुदिनके लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं। दृषद्वती, आपया, सरस्वतीके तटके मनुष्योंके लिये धनयुक्त हो तुम दीप्तिमान बनो ॥४॥"

इस ऋचामें आई दृषद्वती, आपया, सरस्वती हरियानामें बहनेवाली घग्गर, मरकण्डा और सरस्वती नदियां हैं, यह हम पहले कह चुके हैं।

भरद्वाज के कथनानुसार" (६।६१) यह भी मालूम होता है, कि सरस्वतीने ही दिवोदासको प्रदान किया था—

"इस सरस्वतीने दानी वध्र्यश्वको ऋण-रहित अपराजित दिवोदान प्रदान किया। हे सरस्वती, जिसने लोभी, कजूस पणिका भक्षण किया, उग तेरा दान बल-युक्त है ॥१॥

"यह सरस्वती भिन्न तोड़नेवालेकी तरह अपनी बल-शक्ति-लहरोंसे गिरियोंको सानुको तोड़ती है। हम तटोंके तोड़नेवाली सरस्वतीकी भक्ति सुन्दर स्तुतियों द्वारा करते हैं ॥२॥

"प्रियोंमें प्रिया सुनेंविता सात बहनोंवाली सरस्वती हमारे लिये स्तुति-योग्य हो ॥१०॥

"हे सरस्वती, हमें उत्तम धनमें ले जाओ, हमें हानि न पहुंचाओ। जलसे हमारा धन न मांगे। हमारी मित्रता और पड़ोसको स्वीकार करो। तुम्हारे क्षेत्रमें हम अरण्यमें न भटकें ॥१४॥"

२२ सविता—गायत्री छन्दमें विश्वामित्र द्वारा रचित सविताकी स्तुति मशहूर है। यद्यपि गायत्री आठ अक्षरोंवाले तीन पादोंके किसीभी गीति छन्दको कह सकते हैं, लेकिन सवितासी महिमा गानेके कारण इस ऋचाका सावित्री, या गायत्री नाम हो गया। " (३। ६२)—

"सविता देवताके उस श्रेष्ठ तेजको हम ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

"भग सविता देवतासे हम अन्न मांगते हैं ॥११॥

वह सुकृती सविता देवता (अपनी) सुनहली बाहुओंको सवन देनेके लिये ऊपर उठाते हैं। युवा सुदक्ष महान् सविता लोकके रक्षणकेलिये दोनो हाथोंको घृत (जल)से प्रेरित करते हैं ॥११॥ [७१] (६ ७१)

"सुनहली जीभवाले हे सविता, सुखद अहिंसक तेजोंसे आज हमारे घरकी रक्षा करो। नये सुखके लिये रक्षा करो। अहित करनेवाला हम पर शासन न करे ॥३॥

वह सुवर्णपाणि, लौह-हनु, मधुर-जिह्व, यशस्वी सविता देवता प्रदोष कालमें उगें। वह दाताके लिये बहुत अन्न प्रेरित करें ॥४॥

हे सविता, आज धन, कल धन हमारे लिये दिनप्रति-दिन धन प्रदान करो। हे देव, इस स्तुति द्वारा बहुत निवासके हम धनभागी होवें ॥६॥

२३ सोम—ऋग्वेदका नवम मडल सोमका मडल है। भरद्वाज, वसिष्ठ और विश्वामित्र तीनो ऋषियोने सोमकी प्रशसामें सूक्त रचे हैं। सोम भागकी जातिका एक नशीला पौदा था, जिसमें ऋषियोने दिव्यताकी कल्पना की। पेय सोम और उसमें वास करने वाले सोम-देवताके भी गुणोका वह वर्णन करते हैं। इन्द्र, अग्नि और दूसरे देवता सोमके बहुत प्रेमी थे। भरद्वाजने उन्हींके प्रकरणमे सोमकी महिमा गाई है। उनके पुत्र गर्गने एक सूक्त ही [७२] (६। ४७) सोमके सम्बन्धमें रचा है, जिसमें पेय सोमके गुणोका भी वर्णन मिलता है—

"यह निश्चय स्वादु है, और यह तीव्र मधुमान (मीठा) है, और यह रसवान् है। इसके पीनेवाले इन्द्रको युद्धमें कोई परास्त नही कर सकता ॥१॥

"यह स्वादु है, यह अति मद-दायक है, जिससे कि इन्द्र वृत्रयुद्धमें मस्त हुआ, जिसने शम्बरकी निन्नानवे पुरियोको नष्ट किया ॥२॥

"जिसने पृथिवीके विस्तार, द्यौके शरीरको बनाया, वह यह (सोम) है। सोम तीन चीजो (औषध, जल, गाय) में पीयूष (अमृत) देता है, विस्तृत आकाशको धारण करता है।"।४।

वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवने सोमकी प्रशसा देवताओंके दिव्य पानकी तरह की है।

असित, देवल ऋषियोंके दो होनेका सन्देह वैदिक-परम्परामें मिलता है। पर, जान पडता है, ऋषिका असली नाम देवल था, अधिक गोरा होनेके कारण उन्हें अ-सित कहा जाता था। असित बौद्ध त्रिपिटकमें मिलते हैं। मज्झिम निकायके अस्सलायण सुत्त (२।५।३) में बुद्धने असित-देवलको एक महान् ऋषिके तौरपर याद किया है। देवलने सात ब्राह्मण ऋषियोंका मान-मर्दन किया था। देवलसे रुष्ट होकर सातों ऋषियोंने शाप दिया, पर देवलपर उसका कोई प्रभाव नहीं पडा। ऋषियोंने पूछा—"आप कौन हैं?"

जवाब मिला—"आप लोगोंने असित देवल ऋषिको सुना है?"

"हां, भो।"

"वही मैं हूँ।"

वह गोत्रसे काश्यप और सोमके खास तौरसे ऋषि थे, । उन्होंने नवें मण्डलमें सोमकी स्तुतिमें १९ सूक्त (६–२४) रचे हैं।

नवां मण्डल सारा ही सोमकी स्तुतिवाले सूक्तोंका संग्रह है, जिसके ऋषि हैं—१ मधुच्छन्दा (विश्वामित्र-पुत्र), २ मेधातिथि, ३ कण्व आंगिरस, ४ शुनःशेप अजीगर्त-पुत्र, ५ हिरण्यस्तूप आंगिरस, ६. असित-देवल, ७ दृढच्युत, ८ इध्मवाह दृढच्युत-पुत्र, ९ नृमेध आंगिरस, १० प्रियमेध काण्व, ११ बिन्दु आंगिरस, १२ रहूगण गौतम-पिता, १३ श्यावाश्व आत्रेय, १४ तृण आप्त्य, १५ प्रभूवसु आंगिरस, १६ बृहन्मति आंगिरस, १७ मेध्यातिथि काण्व, १८ अयास्य आंगिरस, १९ कवि भृगु-पुत्र, २० उचथ्य आंगिरस, २१ अवत्सार काश्यप, २२ असितधान्य आंगिरस, २३ यमदग्नि भार्गव, २४ निध्रुवि काश्यप, २५ काश्यप मरीचि-पुत्र, २६ भृगु वरुण-पुत्र, २७ वैखानस, २८ भरद्वाज बृहस्पति-पुत्र, २९ सौम आत्रेय, ३० विश्वामित्र गाथि-पुत्र, ३१ वसिष्ठ मित्रावरुण-पुत्र (१९-२१), ३२ पवित्र आंगिरस ३३ पर्वतश्री भालन्दन-पुत्र, ३४. रेणु विश्वामित्र-पुत्र, ३५ ऋषभ विश्वामित्र-पुत्र, ३६ हरि-

मन्त आगिरस, ३७ कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, ३८ वसु भरद्वाज, ३९. प्रजापति वाक्-पुत्र, ४० वेन भार्गव, ४१ आकृष्टभाष आत्रेय, ४२ सिकता आत्रेयी, ४३. अज आत्रेय, ४४ गृत्समद, ४५ उशना काव्य, ४६ नोधा गोतम-पुत्र, ४७ प्रस्कण्व कण्व-पुत्र, ४८ प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ४९ इन्द्रप्रमति, ५० वृषगण, ५१ मन्यु, ५२ उपमन्यु, ५३ व्याघ्रपाद वासिष्ठ, ५४ शक्ति वसिष्ठ-पुत्र, ५५ कर्णश्रुत्, ५६ मृलीक, ५७ वसुक्र, ५८ पराशर शक्ति-पुत्र, ५९ वत्स आगिरस, ६० अम्बरीष वार्षागिर-पुत्र, ६१ ऋजिश्वा भरद्वाज-पुत्र, ६२ रेभ काश्यप, ६३. अग्निगु श्यावाश्व-पुत्र, ६४ ययाति नहुष-पुत्र, ६५ नहुष मनु-पुत्र, ६६ मनु सवरण-पुत्र, ६७ विश्वामित्र वाक्-पुत्र, ६८ प्रजापति वाक्-पुत्र, ६९ तृत आप्य, ७१ पर्वत काण्व, ७२ नारद काण्व, ७१ शिखण्डिनी काश्यपी, ७२ अग्नि चक्षु-पुत्र, ७३ चक्षु मनु-पुत्र, ७४ मनु आप-पुत्र, ७५ गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ७६ उरु आगिरस, ७७ ऊर्ध्वसद्मा आगिरस, ७८ कृतयशा आगिरस, ७९ ऋणचय, ८० विष्ण्य ईश्वर-पुत्र, ८१ त्रयरुण, ८२ त्रसदस्यु, ८३ अनानत परुच्छेप-पुत्र, ८४ शिशु आगिरस। इन ८४ ऋषियो द्वारा रचित सोम-स्तुतिया नवें मण्डलके रूपमें एकत्रित कर दी गई है। इनमें एक ओर भरद्वाजसे पहलेके भी कश्यप आदि ऋषि हैं, और दूसरी तरफ वसिष्ठके पुत्र शक्ति तथा उनके पुत्र पराशर और गौरिवीतिकी ऋचायें भी मौजूद हैं। मण्डलका आरम्भ विश्वामित्र-पुत्र मधुच्छन्दा की ऋचा से हुआ है।

§३ पितर आदि

इन्द्र आदि देवताओंके अतिरिक्त आर्य अपने पहले के पूर्वजो, पितरोंको भी पूजते थे, और मानते थे, कि वह देवताओंके लोकमें विराजमान हैं। यम-पुत्र शत्र, यह सदिग्ध सा नाम है, उसी तरह विवस्वन्के पुत्र यम भी कल्पित हैं। इन दोनो पिता-पुत्रोंने पितरोका काफी गुणगान किया है "(१०।१४)—

"यमने हमारे गमनको सबसे पहले जाना। उनका यह मार्ग नष्ट नहीं किया जा सकता। जहा हमारे पुराने पितर गये, उसी अपने रास्ते (सारे) जन्तु जायेंगे ॥२॥

"कव्य (पितरोंके लिये पूजा-द्रव्य) ने मातरी, अगिरो (पुरोहितो) से यम, ऋक्वो (ऋचाओ) ने बृहस्पति बढे। जिनको देवताओंने बढाया, और जिन्होंने देवोको, उनके लिये स्वाहा (है), दूसरे (पितर) स्वधासे प्रसन्न होते हैं ॥३॥

"हे यम, अगिरो-पितरोके साथ इस प्रस्तर (यज्ञ) में आकर बैठो। तुम्हें कवियोंके गाये मन्त्र (यहा) लावे। हे राजन्, इस हविसे तुम प्रसन्न हो, यजमानको प्रसन्न करो ॥४॥

"जाओ, प्राचीन मार्गोंसे (वहा) जाओ, जहा कि हमारे पुराने पितर गये हैं। यम और वरुणदेवको देखो। दोनो राजा स्वधासे प्रसन्न हैं ॥७॥"

"चार आखोवाले सरमा-पुत्र दोनो काले कुत्तोको अच्छे मार्गसे हटाओ। और यमके साथ आनन्दसे रहने वित्र पितरोके और यमके साथ आओ ॥१०॥

"हे यम, मनुष्योंके द्वारा प्रशसनीय पथपाल, सरलक तुम्हारे वह जो चार आखोवाले दोनो श्वान हैं, उनके द्वारा हे राजन्, उनकी रक्षा करो और इसे स्वस्तिसे निरोग रक्खो ॥११॥

"बडी नाकोवाले प्राणभक्षक अतिबलवान् यमके दोनो दूत लोगोंके पीछे-पीछे चलते हैं। वह दोनो (हमें) सूर्यको देखनेके लिए पुन यहा अच्छा प्राण प्रदान करे ॥१२॥

"यमके लिये सोम छानो, यमके लिये हविका हवन करो। अग्निदूत सत्कृत यमके पास जाता है ॥१३॥

"यम राजाके लिये मधुमत्तम (अतिमधुर) हविका हवन करो। पुराने पथकर्ता पूर्वज ऋषियोंके लिये यह (मेरा) नमस्कार है ॥१५॥"

यम नामके ऋषिने अपने सूक्तमें यमकी महिमा गाई है। उनके ऋषित पुत्र यमने पितरोंके बारेमें कहा है" (१०।१५)—

"उत्तम, मध्यम और साधारण सोमपायी पितर अनुग्रह करें। अमित्र होकर जो धर्मज्ञ हमारे प्राणरक्षाके लिये यज्ञमें आये हैं, वे हमारे पितर हमारी रक्षा करें।।१।।

"जो कि पूर्वके हैं, जो कि ऊपर गये हैं। जो पार्थिव लोकमें बैठे हैं, या जो निश्चय सम्पन्न लोगोंमें हैं, आज पितरोंके लिये यह नमस्कार(है)।।२।।

"पितरो, लाल ज्वालाओंके पास बैठे दाता मनुष्यके लिये धन दो। उसको पुत्र दो, उसे यहां उत्साहित करो।।७।।

"जो हमारे पूर्वके पितर वसिष्ठोंने सोमपानकी कामना की थी, उनके साथ हविको प्राप्त कर यम सुखी हो तृप्त हो।।८।।

"जो अग्निसे दग्ध, जो अग्निसे अदग्ध (न जलाये गये) द्यौलोकके मध्यमें स्वधासे सतुष्ट (पितर) हैं। हे स्वराज, उनके साथ एक हो इस सुनीति शरीरको यथाशक्ति बनाओ।।१४।।"

पितर-सम्बन्धी इन ऋचाओंसे आर्योंका अपने मृत पितरोंके सबधमें क्या विश्वास था, इसका पता लगता है। वह समझते थे, कि पितर यम देवताके साथ विशेष सम्बन्ध रखते हैं, वह उनके कृपापात्र हैं। अपनी सन्तानोंके पास उनकी पूजा-भक्ति स्वीकार करनेके लिये वह आते हैं। यमके चार-चार आखवाले दो काले कुत्ते परलोकके यात्रियोंके लिये बडे भयकर जन्तु हैं। लबी नाकोवाले दो प्राण खानेवाले यमदूत भी कम भयकर नहीं हैं। देवताओंके लिये स्वाहारूपी अन्न आधार है, और पितरोंके लिये स्वधा।

§४ सकाम कर्म

ऋग्वेदके ऋषियो और उनके प्राचीन वशजोंको निष्काम कर्मसे कोई वास्ता नहीं था। वह गोसाईजीके इस वाक्यके माननेवाले थे—"सुर नर मुनिकी यह ही रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती।" वह देवताओंके लिये यज्ञ, हवन या सोमपान करते-कराते उनके सामने बराबर अपनी अभिलाषायें रखते थे। उनका मोटो था—"देहि मे ददामि ते" (मुझे दो

फिर मैं तुम्हें दूंगा)। बृहस्पति-पुत्र भरद्वाजकी अग्निसे यह प्रार्थना उनके भावको बतलाती है" (६।१)—

"जो तुमने द्यौ और पृथिवीको विस्तृत किया, (वह तुम) प्रशंसामें प्रशंसनीय और प्रभामें रक्षक हो। हे अग्नि, बहुत अन्न और विशेष धन द्वारा हम लोगोंको धनवान् बनाओ, दीप्त करो ॥११॥

"हे वसु, हमें मनुष्यों-सहित धन दो, हमारे पुत्रों-पौत्रोंको बहुत पशु दो। पहले (जिनकी) कामना की गई, (वह) बड़ा धन, भद्र यश हमें प्राप्त हो ॥१२॥

"हे राजा अग्नि, तुमसे हम बहुत प्रकारके धन और धान्य पायें। हे बहुत श्रेष्ठ राजा अग्नि, तुम्हारे पास बहुतायत है तुम्हारे पास बहुतसे धन हैं ॥१३॥"

भरद्वाज अग्निसे सौ वर्ष जीनेकी कामना करते हैं" (६।४)—

"हे अग्नि, शत्रुओंसे रहित रास्तेसे हमें शीघ्र स्वस्तिके पास पहुंचाओ। पाप दूर करो, स्तुति करनेवाले सूरियोंको जो देते हो, उन सुखके साथ हम सुन्दर वीर सन्तानों-सहित सौ वर्ष जीयें ॥८॥"

उनकी अग्निसे दूसरी याचना है" (६।५)—

"हे अग्नि, तुम्हारी रक्षासे उस कामनाको हम पायें। धन-युक्त, वीर-सन्तान-सहित धन प्राप्त करें। अन्नकी कामना करते अन्नको पायें। तुम्हारे अजरामर यशको प्राप्त करें ॥७॥"

और भी" (६।२४)—

"हे इन्द्र, भक्तको तुम रक्षाके लिये सेवन करो। यज्ञके शत्रुओंसे (उनकी) रक्षा करो। वन और धरमें शत्रुओंसे हमारी रक्षा करो, हम सौ हिम (वर्ष) सुनीयें सन्तानों-सहित आनन्दसे रहें ॥१०॥"

वसिष्ठ भी आदित्य देवतासे सौ शरद (वर्ष) जीनेकी कामना करते हैं" (७।६६)—

"यह देवहितैषी श्वेत-चक्षु उग रहा है।

कल्याणके लिये सात वहिनें (किरणें) सुनहले रथमें सूर्यको वहन करती हैं ॥१५॥

"वह देवहितैषी शुक्लनेत्र उग रहा है। हम सौ शरद (वर्ष) देखें, सौ शरद जीयें ॥१६॥"

वसिष्ठ मरुत् देवताओंसे कामना करते हैं[८] (७।५९)—

"सुगन्धी पुष्टिवर्धक त्र्यम्बककी हम उपासना करते हैं। वह बधनसे बेरकी तरह मुझे मुक्त करे, अमृतसे नहीं ॥१२॥"

फिर वरुणसे वसिष्ठ कहते हैं[९] (७।८८)—

"इन ध्रुव भूमियोंमें रहते अदितिके पास (हम) रक्षाकी इच्छा करते हैं, वरुण, हमें बधनसे मुक्त करे। तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥७॥"

विश्वामित्रकी एकसे अधिक बार प्रार्थना है[१०] (३।३०।२२,३।३१।२२)

"हम शीघ्रगामी, मघवा (धनवान्) श्रेष्ठ नेता, श्रोता, उग्र शत्रुओंके घातक धनवान् इन्द्रको इस आये युद्धमें रक्षाके लिये यज्ञमें पुकारते हैं ॥१०॥"

वामदेव इन्द्रसे प्रार्थना करते हैं[११] (४।३०)—

"हे वृत्रहन्ता, तुमने अन्धो और पगुओ दोनोंको मुक्त किया। तुम्हारा वह सुख हटाया नहीं जा सकता ॥१९॥"

दिवोदास-पुत्र परुच्छेपने पिशाचोंसे बचनेके लिए इन्द्रसे प्रार्थना की है[१२] (१।१३३)—

"हे इन्द्र, चिल्लानेवाले पिशग (पीले) रगवाले पिशाचका नाश करो, सारे राक्षसोंको खतम करो ॥५॥"

सूर्यके रूपमें कोई स्त्री या पुरुष ऋषि, पत्नीकी कामना करता है[१३] (१०।८५)—

"तुम दोनों यहीं रहो, बिछडो नहीं, पुत्रों और नातियोंके साथ खेलते अपने गृहमें मुदित रहते सारी आयुको प्राप्त करो ॥४२॥"

§५ अर्चना की सामग्री

यह बतला चुके हैं, कि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये सप्तसिन्धुके आर्योंके पास दो क्रियायें थीं—अग्निमें हवन करना और सोम तैयार करके चमुओं और कलशोंमें रखकर देवताओंको अर्पित करना। हवनकी सामग्री नाना प्रकारकी होती थी, जिनमेंसे कितनी चीजोंका पता विश्वामित्रकी ऋचाओंसे मालूम होता है[1] (३।२८)—

"हे जातवेद, स्तुतिरूपी धनवाले अग्नि, प्रात सवनमें हमारे पुरोडाश हविका सेवन करो ॥१॥

"हे अति तरुण अग्नि, तुम्हारे लिये परिष्कृत पुरोडाश पकाया गया है, उसका तुम सेवन करो ॥२॥

"हे अग्नि, पुकारे गये तुम दिनके अन्तमें पुरोडाशको लाओ, तुम साहसके पुत्र और यज्ञमें अवस्थित हो ॥३॥

"हे जातवेद कवि, यहां मध्याह्नवाले सवनमें पुरोडाशका सेवन करो। हे अग्नि, यज्ञमें धीर लोग महान् तुम्हारे भाग को नष्ट नहीं करते ॥४॥

"हे साहसके पुत्र अग्नि, तृतीय सवनमें हवन किये गये पुरोडाशकी कामना करो। और स्तुतिके साथ अमर देवताओंमें अविनाशी जागरूक रत्नवान् सोम को (ले जाकर) स्थापित करो ॥५॥

"हे जातवेदा अग्नि, आहुतिको बढ़ाते दिनके अन्तमें पुरोडाश सेवन करो ॥६॥"

देवताओंके लिये हवन या सोमपानकी क्रियायें तीन समय हुआ करती थीं, जिनको तीन सवन कहते थे। सवेरे होनेवालीको प्रात सवन, मध्याह्नमें होनेवाली को माध्यन्दिन सवन और शामवालीको तृतीयसवन या सायसवन कहते थे। विश्वामित्रने अपने इस सूक्तमें तीनों सवनोंका उल्लेख किया है। पुरोडाश पीछे दूसमें पके चावलवाली रोटीको कहा जाने लगा, लेकिन सप्तसिन्धु के आर्य चावलका कहीं जिक्र नहीं करते। उसकी जगहजौ को डालकर वह पुरोडाश बनाते थे। इसका यह अर्थ नहीं, कि सप्तसिन्धुमें चावल नहीं होता था। मोहनजोदड़ो और हड़प्पाके लोग चावल खाते थे, पर हमें

"जैसे श्रुवामे घी, चमूमें सोम वैसे ही हे अग्नि, हम तुम्हारे मुँहमें हवि रखते है। हमें तुम अन्न, धन, प्रशस्त सुवीर्य सन्तान और बडे यशको प्रदान करो ॥१५॥"

वसुश्रुत ऐन्द्र ऋषि इन्द्रके लिये वृषभ (साड) और मोटे मेषके पकानेकी बात करते है[१८] (१०।२७)—

इन्द्र कहते है—"हे भक्त, मेरा स्वभाव है, कि सोम सवन करने वाले यजमानको (धन) देता हू। जो अ-हव्यवस्तु देता है, सत्यको नष्ट करता है, पापी और चोर है, उसका मै नष्ट करनेवाला हू ॥१॥"

ऋषि कहते है—"न-देवभक्तो (अपना) शरीर भरने वालोको जब मै युद्धके लिये ले जाता हूँ। तब तुम्हारे लिये मोटे वृषभको पकाता हू, और पद्रहवी (अमावस्या) को तीव्र छाने हुए सोमका सेचन करता हू ॥२॥"

वही ऋषि फिर[१९] (१०।२७।) कहते है—

"मोटे मेषको वीरोने पकाया था, जूयेके स्थानमें पासे फेंके हुए थे। दो बडे धनुषोको लेकर (वह) पवित्र-युक्त शोधन करते जलके भीतर विचरण करते है ॥१७॥"

दीर्घतमा ऋषि सोधे घोडेको पकते बतलाते है[२०] (१।१६२)—

"जो पक्व घोडेको देखते है। जो कहते है 'सोधा है, देवताओको प्रदान करो'। जो घोडेके मास-भोजनका सेवन करते है, उनकी कामना हमें प्राप्त हो ॥१२॥

"जो (यह) मास पकानेकी उखा (हडिया) में (उसे पकाते) देखते, जो पात्रोमें जूसको डालते है। चरुओंके मुँहको ढाक गरम रखते, सूना (काटनेके पीढे) पर अश्वको सजाते है ॥१३॥"

गाय, घोडे, मेषके अतिरिक्त अजा (बकरी) मासको भी देवताओंको अर्पित किया जाता था, इसे बतलानेकी अवश्यकता नही।

§६. मन्त्र-तन्त्र

देवताओको हवि और सोमसे प्रसन्न करके ऋषि प्रिय वस्तुओको

मागते और अप्रियको हटाना चाहते थे। इनके अतिरिक्त मन्त्र-तन्त्र द्वारा भी वह अनिष्ट-निवारणकी कोशिश करते थे, यद्यपि उतना नहीं, जितना कि पीछे उसे देखा जाता है। आर्य-स्त्रियोंको जादू-टोनेपर ज्यादा विश्वास था, वह इसके लिये जडी-बूटियोंका भी इस्तेमाल करती थी। इन्द्राणीके नाममें किसी कल्पित ऋषि-स्त्रीने सौतसे त्राण पानेके लिये कहा है। [१०] (१०।१४५)—

"इस अतिबलवान् वनस्पति औषधिको खोदती हू, जिसके द्वारा सौतको बाधा दी जाती, जिसके द्वारा पतिको अच्छी तरह प्राप्त किया जाता है ॥१॥

"हे उतान-पर्णवाली बलवाली, देवोंकोपसन्द, सुभगे (औषधि), सौतको मुझसे दूर भगा और पतिको केवल मेरा बना ॥२॥

"मैं उत्तम हू, हे उत्तमे, मैं उत्तमसे उत्तम बनूं, और जो सौत है, वह मुझसे नीचे से और नीचे हो ॥३॥

"उस (सौत) का नाम नहीं लेती, उस जनमें मन नहीं प्रसन्न होता। मैं सौतको दूरसे दूर ही भेजती हूँ ॥४॥

"मैं शक्तिमती हू, और (हे औषधि,) तुम अत्यन्त शक्तिमती हो। हम दोनों शक्ति-युक्त हो मेरी सौतको परास्त करें ॥५॥"

यह टोटका-टोना ऋग्वेदके दसवें मण्डलमें आया है, जो उसके बहुत पीछे रचे गये भागोंमेंसे है। टोटके-टोनों और मन्त्रोंका अधिक प्रयोग अथर्ववेदमें मिलता है।

९७ परलोक

ऋग्वेदमें कहीं ऐसा वर्णन नहीं मिलता है, जिससे मालूम हो, कि सप्तसिन्धुके आर्य पुनर्जन्मको मानते थे। मरने के बाद अपने कर्मोंके अनुसार दूसरे लोकोंमें जाना उन्हें मान्य था। यमलोक और स्वर्ग दो परलोकोंका पता लगता है।

१ यमलोक—यह ग्रमका लोक था, जिसका वर्णन हम यम देवताके साथ कर चुके[1] है। इसके वारेमें आर्य कहते थे[1-2] (१०।१४।१२)—

"जहा हमारे पूर्वके पितर गये।

यमलोक तक पहुचनेके रास्तेमें चार आखोवाले भयकर काले कुत्तोका वर्णन भी हम कर चुके है।

२. स्वर्ग

कक्षीवान् ऋषि देवभक्तोको देवोके पास जानेकी वात कहते है[1-1] (१।१२५)—

"जो देवोंको तृप्त करता है, वह देवोके पासवाले स्थानमें जाता है, नाक (स्वर्ग) पीठपर आश्रित हो अधिष्ठित होता है। उसके लिये आप (जलदेवता) घृत प्रदान करते है। सिन्धु, यह दक्षिणा उसको सदा मनस्तृप्ति करती है॥५॥"

कश्यप मारीच ऋषि स्वर्गको सदा ज्योतिमान्, सुख-युक्त अमृतलोक[1-1] (९।११३।७-११) कहते है, और वहा आनन्द, मोद, प्रमोदका होना वतलाते है (११)।

ऋग्वेदमें धर्म-कर्म, देवताओ, पूजा-सामग्री और स्वर्ग-परलोकके वारेमें जो वातें आई है, वह सक्षेपमें यही है।

---

[1]देखो पृष्ठ २०३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

ऋग्वेदिक आर्य ताम्र-युगके अन्तमें थे, कृषि भी उनकी जीविकाका साधन थी, पर उसमें पशुपालनकी प्रधानता थी। उस समयके कपड़ा बुनना आदि शिल्पोंके बारेमें हम कह चुके हैं*। इनका ज्ञान उनको अवश्य था।

§१. कृषि

१ हल, फाल

कृषिके बारेमें हम पहिले कुछ कह आये हैं।

हलका उपयोग वह करते थे, और सीरा (नदी, हल) का भी उल्लेख मिलता है[1] (४।१९)। वामदेव कहते हैं—

"इन्द्रने वृत्रको मारकर पहलेकी उषाओं, शरदों और ग्रीष्मों सिन्धुओं को मुक्त किया। चारों तरफ मौजूद बाधा गई सीराको पृथिवीके ऊपर बहनेके लिये मुक्त किया ॥८॥"

सीरा यहां नदी को कहा गया है। नदी और हलकी दोनोंके लिये सीरा कहना उनकी आकारकी समानताके कारण था।

वृध सौम्य भी सीरा (हलकी हलाई) के बारेमें कहते हैं (१०।१०१)—

"सीराको जोड़ो, जूयेको फैलाओ। यहां (इस) स्थानमें बीज बोओ। और स्तुतिसे हमारे लिये भरपूर अन्न हो। पास पकी फसलमें हमारे पहुंचे ॥३॥"

"कवि सीराको जोड़ते हैं, जूयेको पृथक् करते हैं। देवोंके लिये सुन्दर स्तोत्रके साथ धीर हैं ॥४॥

---

*देखो पृष्ठ ३४-३५

'पशु-प्याव बनाओ, रस्सी (वरहा) जोडो। पानीवाले गडहेसे हम सुसेचन करते (उसे) निरन्तर सीचें ॥५॥

"पशुओका प्याव तैयार है, सुसेचन (के लिये) जलवाले अक्षय कुये (अवत) में सुवरत्र (वरहा, रस्सा) हैं ॥६॥

"घोडोको तृप्त करो, हित (वस्तु) पाओ, स्वस्तिके साथ वहन करनेवाले रथको तैयार करो। द्रोण भरके पत्थरके चक्केवाले असत्रकोश- (मान वँधे) युक्त कुण्डको मनुष्योके पीनेके लिये भरो ॥७॥"

२. कुआ

पजाव जैसी जगहमें उस समय भी खेतीके लिये और आदमियो-पशुओ के पीनेके लिये भी आजकी तरह ही कुओकी वडी अवश्यकता थी। पानी स्वाभाविक स्वयज और खनित्रिय (खोदकर निकाले) दो प्रकारके होते थे। यश वासिष्ठके कथनसे मालूम होता है [1] (७।४९)—

"जो जल दिव्य या खनित्रिय अथवा जो अपने उत्पन्न वहते है। जो समुद्रार्थ शुचि पवित्र जलदेविया है, वह मेरी रक्षा करें ॥२॥"

भरद्वाज भी कूए (केवट) का उल्लेख करते है [2] (६।५४)—

"हमारी गौवें नष्ट न होवें, हमारी (गौवें) मारी न जायें (वह) कुएमें न गिरें। विना हानिके (गोष्ठ में) आवें ॥७॥"

गृत्समद भी कुए (उत्स) का उल्लेख करते है [3] (२।१६)—

"तुम शत्रुनाशक हो, युद्धमें नावकी तरह हम तुम्हारे पास जाते है, सवनमें ब्रह्माके स्तोत्र-वचनके साथ जाते है। हमारे इस वचनको अच्छी तरह जानो। हम कुयेंकी तरह इन्द्रको धनसे सीचेंगे ॥७॥"

३. कुल्या

पीछे और आज भी कुल्या या (कूल) छोटी-वडी नहरोको कहते है, लेकिन उस समय कुल्याका अर्थ कूल या तटवाली था, जो नदी या नहर दोनो का नाम था। कृष्ण आगिरस कहते है [1] (१०।४३)—

"जैसे जल सिन्धुकी ओर बहते हैं, कुल्या ह्रदकी ओर बहती है, वैसे (ही) सोम इन्द्रकी ओर (बहे)। इसके तेजको यज्ञशालामें ब्राह्मण उसी तरह बढाते हैं, जैसे दिव्य दाता द्वारा (भेजी) वृष्टि जौको बढाती है ॥७॥"

भौम आत्रेय भी कुल्याका उल्लेख करते [1](५।८३) हैं—

"हे पर्जन्य, महान् कोश मेघ को उठाकर सींचो। रुकी हुई कुल्या पूर्वकी ओर बहे। घी (जल) से द्यौ और पृथिवीको भिगो दो, धेनुओंके लिये सुन्दर प्याव हो (जाये) ॥८॥"

§२. वास्तु

आर्य यद्यपि नगरोंके निवासी नहीं थे, न सप्तसिन्धु के नगरोंका उल्लेख मिलता है, पर, हमें मालूम है, कि सिन्धु-उपत्यकाके निवासी मोहन जोदड़ो और हड़प्पा जैसे अच्छी तरह बने-ठने शहरोंमें रहा करते थे[1]। यद्यपि आर्य केवल घुमन्तू पशुपाल नहीं थे। वह कृषक भी थे, और अपने पशुओंकी अनुकूलता देखकर गावोंमें रहते थे। उनके ग्रामोंमें दम, शाला, कुटी ही नहीं, बल्कि हजार खम्भेवाली और हर्म्य जैसी इमारतें भी थीं। हर्म्य यद्यपि पीछे राजप्रासादको कहा जाता था, पर वसिष्ठके कथन[2] (७।५६) से ऐसा नहीं मालूम होता—

"मरुद्गण घोड़ेकी तरह सुन्दर गतिवाले, हैं, उत्सवदर्शी मनुष्योंकी तरह शोभन हैं। वे हर्म्यमें स्थित शिशुओंकी तरह शुभ्र और क्रीडाप्रिय बछड़ोंकी तरह जलधारक हैं ॥१६॥"

सहस्रस्थूण हजार खम्भोंवाले हाल का उल्लेख श्रुतविध आत्रेयकी ऋचामें है[2] (५।६२)—

"हे मित्र-वरुण सुकृत (यज्ञ) में दानशील हो यजमान के अन्नकी रक्षा करो। क्रोध-रहित तुम दोनों राजा, हजार खम्भोंवाले गृहको धारण करो ॥६॥

---

[1] देखो पृष्ठ १४

उद्धृत कर चुके हैं। यह दोनो ही भार-माप बड़े हैं, इनसे छोटे पसर या दूसरे माप भी रहे होगे।

मापमे अगुलका उल्लेख नारायणने किया है [१०](१०।९०)—

"वह सहस्र-शिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-चरण पुरुप भूमिको चारो तरफ घेर कर दस अगुलसे अधिक होकर खडा हुआ ॥१॥"

अगुल और योजनके बीचमें हस्त और धनुपके माप आते हैं, जो उस समय रहे होगे, क्योकि योजनका उल्लेख कक्षीवान् ने [११](१।१२३) किया है—

उपा जैसी आज, वैसी ही कल वरुणके दीर्घ धामका सेवन करती है। निर्दोप एक-एक उपा तुरन्त तीस योजन (तक जा) कार्य करती है ॥८॥" [१२] (१०।८६।२०) ऋचा में भी योजन है।

§५ सख्या

ऋग्वेदमें सख्याका अन्त अयुत (दस हजार) मे किया गया है। उसके बाद उसी को दस, शत या सहस्र लगा कर बढाया जाता होगा। सख्याका उल्लेख ऋचाओमें निम्न प्रकार हुआ है—

एक दो उभ (६।३०)—

पराक्रमके लिये फिरसे[१३] बढे अकेले जरा-रहित इन्द्र धन देते हैं ॥१॥

"इन्द्र द्यौ और पृथिवीका अतिक्रमण करते हैं। उनका आधा ही उभै (दोनो) द्यौ और पृथिवीके बराबर है ॥१॥"

[१४] (६।२७)—

पार्थवोका सम्राट् अभ्यावर्ती चायमान धनवान् है। हे अग्नि, वधू-सहित रथ और बीस गायें यह दोनो मुझे प्रदान करे ॥८॥"

एक और दो—भरद्वाज [१५] (६।४५)

"हे वृत्रहन्ता, तुम हम जैसोंके एक और दोके रक्षक हो। ॥५॥"

प्रथम—वसिष्ठ [१६] (७।४४)—

"तेज घोडोंमें दीधिक्र (है, वह) प्रथम रथोंके आगे होता है ॥१४॥"

तीन, चार, सात, नौ, दस—गृत्समद [१७] (२।१८)

"तव नया प्रात. हुआ, चार जूआ (पत्थर) तीन कषा (स्वर) सात रश्मि (छन्द) वाले नवीन रथ (यज्ञ) को जोडा। दस पात्र (वाले) मनुष्यके लिये स्वर्गप्रद वह स्त्रियो और स्तुतियो द्वारा प्रसिद्ध हुआ ॥१॥"

प्रथम, द्वितीय, तृतीय—गृत्समद [८] (२।१८)

"वह यज्ञ इस इन्द्रके लिये प्रथम, द्वितीय और तृतीय सवनमें पर्याप्त हुआ। वह मनुष्यके लिये शुभ लानेवाला है ॥२॥"

चार—प्रतिरथ [९] (५४७)

चार (ऋत्विज) कल्याण-कामनासे (हवि) धारण करते है, दस (दिशायें) गर्भस्थ सूर्यको प्रेरित करती है। तीन प्रकारकी इसकी श्रेष्ठ किरणें सद्य यज्ञके अन्त तक विचरण करती है ॥४॥"

पांच—वसिष्ठ [१०] (७।१५)

"जो युवा कवि गृहपति घर-घरमें पचजनोके सामने बैठता है ॥२॥"

विश्वामित्र [११] (३।२७):

"हे शतक्रतु इन्द्र, पाचो जनोमें जो तेरा इन्द्रत्व है, (इसलिए) उन्हें हम तुम्हारा समझते है ॥१९॥"

साठ, हजार,—वसिष्ठ [१२] (७।१८)

"गौ चाहनेवाले अनु और द्रुह्युके साठ सौ छ हजार साठ और छ वीर सो गये। यह सब इन्द्रके वीर्यके काम है ॥१४॥"

सात—भरद्वाज [१३] (६।७४)

"हे सोम-सदृश, असुर-सम्बन्धी बल हमे दो। यज्ञ तुम्हे प्राप्त हो। घर-घरमे सात रत्न धारण करते हमारे दोपायो और चौपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥"

आठ—हिरण्यस्तूप [१४] (१।३५)

"पृथिवीके आठो (दिशायें) तीनो (धन्वा) सप्त सिन्धुओंको प्रकाशित किया। सुनहली आभावाले सविता देव यजमानको श्रेष्ठ रत्न देने आये ॥८॥

नौ, नब्बे—वसिष्ठ [१५] (७।१९)

अध्याय १७

आर्य-नारी

ऋग्वेदमे यह नही मालूम होता, कि सप्तसिन्धुकी आर्य-स्त्रियोकी स्थिति उतनी हीन थी, जितनी पीछे देखी गई। यह ठीक है, अब वह सामन्तवादी व्यवस्थाके अधीन थी, जिसमें जन (पितृसत्ताके) अवस्थाके अधिकार सुलभ नही थे। शुद्ध जन-व्यवस्थामें स्त्रिया हथियार लेकर लड सकती है। ईसा-पूर्व छठी शताब्दीमें मध्य-एसियाके शकोमे ऐसा ही देखा जाता था, जहाँ घुमन्तू स्त्रियोने कितनी ही वार हथियार उठाये। लेकिन, स्त्रियोंका युद्ध-में जाना आर्य बुरा समझते थे। शम्बरके पहाडी लोग जन-अवस्थामें थे, उनके लिये स्वाभाविक था, कि दिवोदासके साथ उनका जो जीवन-मरणका सघर्ष चल रहा था, उसमें पुरुषोकी तरह स्त्रिया भी शामिल हो। पर आर्य ऋषियोने "अवला क्या करेगी" कह कर इसका उपहास किया था,* यह हम बतला आये है। इस प्रकार आर्य-स्त्रियो के सग्राममें खुलकर भाग लेनेकी सम्भावना सप्तसिन्धुमें नही थी। वैसे अप-वादके तौरपर स्त्रियोंने कभी अपने हाथ दिखाये हो, तो दूसरी बात है।

युद्धके बाद सबसे महत्त्व था ऋचाओ (पदो) की रचनाका, जिसके कारण उन्हें ऋषि, ऋषिका कहा जाता। ऋषिकाओकी सख्या ऋग्वेदमें दो दर्जनसे कम नही है। पर, विश्लेषण करनेपर उनमेंसे अधिकाशको मानुषी नही कल्पित ही देखा जाता है। केवल घोषा और विश्ववाराको ही ऐतिहासिक ऋषि माना जा सकता है। ऋषिकाओंके नामसे जो ऋचायें ऋग्वेदमें संगृहीत है, उनकी रचयित्रिया स्त्रिया ही रही होंगी, यह कहना मुश्किल

---

*पृष्ठ ९५

है। हा, इन ऋचाओंमे ऋग्वेदिक आर्य-स्त्रियोंके जीवनके बारेमें कितनी ही बातोंका पता जरूर लगता है। इन कल्पित-अकल्पित ऋषिकाओंकी कुछ सूक्तिया निम्न प्रकार हैं;

१. अदिति—ऋग्वेदके दसवें मण्डलका ७२वा सूक्त बृहस्पति अथवा अदितिका बनाया बतलाया जाता है। इसमें अदितिका नाम (१०।७२) आया है, शायद इसीलिये इसे अदितिका बनाया सूक्त कह दिया गया। अदिति (द्यौ) दक्षकी पुत्री कही गई है, और दक्ष (सूर्य) को भी अदितिका पुत्र बतलाया गया है—

"उत्तानपद (वृक्ष) से भूमि उत्पन्न हुई, भूमिसे दिशायें उत्पन्न हुई। अदितिसे दक्ष, दक्षसे अदिति उत्पन्न हुई ॥४॥"

"हे दक्ष, जो तेरी दुहिता अदिति है, उसने देवोंको जन्म दिया। उसके पीछे महान् अमृतबन्धु (अमर) देव उत्पन्न हुये ॥५॥"

"शरीरसे अदितिके जो आठ पुत्र* उत्पन्न हुये। (उनमेंसे) सातके साथ वह देवताओंके पास गई। (पर) मार्तण्डको परे स्थापित कर दिया।८॥"

इनमें दिव्य अदिति (द्यौ) का वर्णन है। वह सप्तसिन्धुकी ऋषिका नहीं थी।

२ इन्द्र-मातायें—इन्द्रकी माताओंका सूक्त (१०।१५३) भी इसी तरह कल्पित नामसे है। इस सूक्तमें इन्द्रके जन्म तथा बीरताका वर्णन है। असली ऋषिका नाम मालूम न होनेपर इन्द्रको जन्म देनेवाली इन्द्र-माताओं को इसका रचयिता मान लिया गया। इसकी कुछ ऋचायें हैं—

"उत्पन्न इन्द्रके पास कार्य-तत्पर, सुन्दर-वीर्य-अभिलाषिणी इन्द्रानना नारी है।१॥"

"हे इन्द्र, तुम नारीके बल्से ओजसे पैदा हुये। तुम कामनापूरक (पुत्र) हो।२॥"

---

*मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, भग, भग, विवस्वान्, आदित्य

"हे इन्द्र, ओजके साथ वज्र को तेज करते तुम (अपने) साथी अर्क (सूय) को दोनो बाहोमे धारण करते हो।४।"

३ इन्द्राणी—यह भी कल्पित नाम है। इसकी ऋचाओ (१०। १४५) में कही इन्द्राणीका नाम नही आया है। स्त्रीको सौतसे भय होना स्वाभाविक है। सपत्नी-बाधनके लिय यहा जडी-बूटियोके प्रयोगका उल्लेख है, जिसे हम 'मन्त्र-तन्त्र'के प्रकरणमें* (अध्याय १५) बतला आये है। इन्द्राणीका एक और सूक्त' (१०।८६) मिलता है, जिसमे इन्द्राणीके तेजका पता जरूर लगता है। घरमे वृषाकपि (अग्नि) के अधिक सम्मानको इन्द्राणी सह नही सकी, इसलिये वह इन्द्रके सामने उसके प्रति रोष प्रकट करती है। इन्द्रने ही आगमे घी डालते हुये आरभ किया—

"सोम छाननेके लिये कहा था, पर स्तोताओने देवेन्द्रकी उस यज्ञमे स्तुति नही की, जहा यज्ञमें पुष्ट मेरा सखा आर्य (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) सतुष्ट हुआ। इन्द्र सबसे उत्तम है।१।"

इन्द्राणी कहती है—हे "इन्द्र, तुम विचलित होकर वृषाकपिके पास दौडे जाते हो, अन्यत्र सोमपानके लिये नही जाते।०।२।"

"क्या है, जो तुम्हें इस पीले (हरे) मृग वृषाकपि ने (ऐसा) बना दिया, कि उसके लिये पुष्टिकारक धन तुम अर्य (स्वामी) देते हो।०।३।"

"हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृषाकपिके तुम रक्षक हो। उसके कानमें वराह (को काटने) की चाहवाला कुत्ता काटे ०।४।"

मेरे लिये साफ की हुई तैयार प्रिय वस्तुको कापने दूषित कर दिया। इसके सिरको काट लो। इस दुष्कर्माको सुख न होवे।५।"

इन्द्र—"सुबाहु, सुअगुलीवाली, बडे बालो, मोटी जाघोवाली हे शूर-पत्नी (इन्द्राणी,) तुम क्यो हमारे वृषाकपिपर क्रुद्ध हो।८।"

इन्द्राणी—यह दुष्ट वृषाकपि मुझे अवीरपुत्रोवाली समझता है। परन्तु मै वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नी हू। मेरे सखा मरुत् है।९।"

---

*देखो पृष्ठ २१०

"हवन या युद्धके समय नारी वहा पहले आती है। सत्यकी विधाता वीरपुत्रा "इन्द्र-पत्नीकी पूजा होती है० ।१०।"

इन्द्र— इन नारियोमे इन्द्राणीको मैंने सौभाग्यवती सुना है। दूसरोकी तरह इसका पति बुढापेमे नही मरता ॥११॥

"हे इन्द्राणी, (अपने) मित्र (उस) वृषाकपिके विना मै नही खुश रह सकता, जिसके द्वारा प्राप्त यह प्रिय हवि देवताओंके पास जाती है।१२।

"हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे बैलोको खा जाये, प्रिय हविका भख जाये ०।१३।"

"(भक्त) मेरे लिये पन्द्रहके साथ बीस (३५) बैलोको पकाते है, और मै खाकर मोटा हू। मेरी दोनो कुक्षियो को (भक्तजन) पूर्ण करते है ०।१४।"

"हे वृषाकपि, मरुभूमि और काटने लायक जो वन है, वह कितने योजन है। आओ पागवाले उन गृहोमें ०।२०।"

वृषाकपि अग्नि है। अग्निके मुखसे ही इन्द्र हवि ग्रहण करता है, इसलिये वृषाकपिको वह अपना परममित्र माने, तो कोई आश्चर्य नही। इसी कारण इन्द्राणीका वृषाकपिके ऊपर कोप था। देवताओमें भी पारिवारिक कलह कितना था ?

४ उर्वशी—उर्वशी अप्सरा थी, जिससे पुरुरवाने प्रेम किया। जैसे आज पजाबमे हीर-राझा, सोहनी-महीवालकी प्रेम-कथायें प्रचलित है, उसी तरह उर्वशी और पुरुरवाकी प्रेम-कथा सप्तसिन्धुमें उस समय प्रचलित थी। सम्भव है, वह मानुष प्रेमी और प्रेमिका रहे हो, जिन्हें मानव-देवी बना दिया गया। ऋग्वेदके इस प्रेम कथानकवाले सूक्त (१०।९५) को उर्वशी और पुरुरवाकी रचना बतलाया गया है, जिससे यही मालूम होता है, कि असली रचयिता (लोककवि) का नाम विस्मृत हो गया था। उस को छोडकर जाती उर्वशी से प्रेमी पुरुरवा बहुत अनुनय-विनय करता है, उसे रोता (चलाता) करता है। लेकिन, उर्वशी रुकने के लिये तैयार नही होती। वह कहा तक कह देती है, कि स्त्रियोमे प्रेम नही होता उनके हृदय भेडियोंके से है। "(१०। ९५।१५) १७वी ऋचामे वसिष्ठका नाम आया है, जिससे सन्देह होता है,

कि शायद वसिष्ठ ही इन ऋचाओंके कर्त्ता रहे हों[५] (१० ९५)—

"अन्तरिक्षको भरनेवाली लोकोको नापनेवाली उर्वशीसे मैं वसिष्ठ प्रार्थना करता हू। सुकृत-दाता (पुरूरवा) तुम्हारे पास रहे, लौटो, मेरा हृदय तप रहा है।।१७।"

यह सूक्त ऋग्वेदके उन सूक्तोमें है, जिन्हें उत्तम काव्य कहा जा सकता है। इसे हम पहले दे आये हैं।*

५. **घोषा कक्षीवान्-पुत्री** दोनो अश्विनीकुमारोकी प्रशसामें घोषाने दो सूक्त (१०।३९। ४०) रचे है। पहले सूक्तमें उसने भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके ऊपर अश्विनीकुमारोके किये गये उपकारोका उल्लेख किया है। ये व्यक्ति थे—तुग्र-सन्तान च्यवान[१] (१०।३९।५) विमद, शुन्ध्यु, पुरुमित्र, वध्रीमती (७), पेदु (१०), शयु (१३), भृगु (१४)। घोषा अपनी सुन्दर रचनामे किसी भी ऋषिका मुकाबिला कर सकती है। वह कहती है[२] (१०।३९)—

"हे अश्विनो, सारी पृथिवीपर जानेवाला तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले यजमान प्रतिदिन प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते है। तुम्हारे पिताके सुन्दर पुकारे जानेवाले नामकी तरह तुम्हारे (नामका) हम सदा आह्वान करते है।१।"

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथको गढते है, वैसे इस स्तोम (स्तुति) को तुम्हारे लिये मैंने बनाया। पतिके लिये जैसे बधूको अलकृत करते है वैसे ही मैंने मानो नित्य पुत्र और पौत्रको धारण करती इसे अलकृत किया।१४।"

दूसरे[८] (१०।४०) सूक्तमें घोषा (५) कुत्स (६), भुज्यु-वगज सिजार-उशना (७), कृश-मजु (८) का उल्लेख किया है। घोषा राजाकी दुहिता थी, यह उसकी निम्न ऋचा[९] (१०।४०) से पता लगता है—

"हे अश्विनो, राजाकी दुहिता घुमक्कडा घोषा तुमसे बात करती है,

---

*देखो पृष्ठ८८–९

हे नेताओ, (वह) तुमसे आज्ञा मागती है। दिन हो या रात इस समय अश्व वाले रथी अर्वन्को तुम दमन करते हो।४।"

अश्विद्वयसे अपनी कामना प्रकट करती हुई घोषा वर मागती है—

"मैं उस बातको नहीं जानती, उसे तुम बतला दो, जिसे कि युवा और युवती घरोमे रहकर अनुभव करते है। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट वीर्यवान् तरुणके गृहमे जाऊ, हे अश्विनो, (मेरी) यह (कामना) पूरी करो।११।"

सप्तसिन्धुकी आर्य कुमारिया क्या कामना करती थी, यह घोषाके इस वचनसे मालूम होता है। स्वस्थ प्रिय पति पाना उनके जीवनका लक्ष्य था। घोषाके पुत्र कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र एक बडे ऋषि थे, जिनकी ऋचायें ऋग्वेदके पहले मण्डल के दस सूक्तोमे मिलती हैं। कक्षीवान्के राजा होनेका उल्लेख कही नही मिलता। घोषाका ब्याह जिससे हुआ, उसका भी नाम नही पाया जाता। उसके पुत्र सुहस्तको माताके नामसे ही याद किया गया है। पुत्रने भी माकी तरह दोनो अश्विनीकुमारोकी प्रार्थना की है" (१०।४१। १-३)। घोषा चिरतक पिताके घरमे क्वारी बैठी रही" (१।११७।७)

६ जुहू यह भी कोई कल्पित नाम मालूम होता है। दसवें मण्डल-मे जुहू का एक सूक्त (१०।१०९) मिलता है। यद्यपि पीछेके लोगोने जुहूको ब्रह्मवादिनी बतलाया है, पर यहा उसने ब्रह्मकी कोई बात नहीं कही, और सिर्फ विश्वदेवोकी स्तुति की। हा, उसने ब्रह्मचारीका उल्लेख जरूर किया है। इस सूक्तके बारे में बतलाया जाता है, कि जुहूके पति वृहस्पतिने किसी कारण उसे त्याग दिया था, जिसके लिये समझा-बुझाकर, देवोने उसको सीधे रास्तेमे लानेमें सफलता पाई। उसकी कुछ ऋचाओंसे सप्तसिन्धुके दाम्पत्य-जीवनपर प्रकाश पडता है।' (१०।१०९)—

"उन प्रथमोने कहा (ऐसा करनेसे) ब्रह्म-पाप लगा। फिर प्रवाजो (पूर्वजो)—सूर्य, वायु, जल, उग्र सुरक्षित सोम और आप देवियों—ने उसके साथ प्रायश्चित्त कराया।१।"

प्रथम सोमराजने आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिरसे वृहस्पतिको प्रदान किया। मित्र और वरुणने उनका अनुगमन किया। होता अग्नि हाथ पकडकर उसे ले आया।२।"

"इसका शरीर हाथसे ही पकडना चाहिए, यह ब्रह्मजाया है—(यह) उन्होने कहा। भेजे गये दूतके साथ इसने उसी तरह सम्पर्क नही किया, जैसे क्षत्रिय-का रक्षित राष्ट्र।३।"

"पुराने देवो और तपस्यामें बैठे उन सात ऋषियोने कहा—भीमा पत्नीको ब्राह्मणके पास ले आयें, निकृष्ट (पत्नी) भी परमस्थान पर स्थापित होती है।४।"

"विना पत्नीके ब्रह्मचारी रह विचरता, वह (वृहस्पति) देवताओका एक अग हो गया। सोम द्वारा लाई गई पत्नी जुहूको जैसे देवोने, वैसे ही वृहस्पतिने प्राप्त किया।५।"

"देवोने फिर(उसे) प्रदान किया, और फिर मनुष्योने प्रदान किया। राजाओने(वात) सच्ची करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया।६।"

जहा तक ऋचाओका सम्बन्ध है, इसमें जुहू अग्नि देवताकी पत्नी मालूम होती है। सप्तसिन्धुके आर्यपुरुष अपनी पत्नीसे अनबन कर बैठते होगे, फिर उनका पुनर्-मिलन कुछ इसी तरह होता होगा।

७ **दक्षिणा**—यह भी कल्पित नाम है। दक्षिणाको प्रजापतिकी पुत्री कहा जाता है। इसके सूक्त " (१०।१०७) में दान-दक्षिणाकी महिमा गाई गई है—

"मघवा (धनवान्) सूर्यका महान् तेज आविर्भूत हुआ, (उसने) इनको और सारे जीवोको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरो द्वारा दी गई बडी ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पख दिखाई पडा।१।"

"दक्षिणावाले (दानी) ऊचे द्योलोकमें स्थान पाते है, जो अश्व-दायक (है) वह सूर्यके साथ होते है। सोना-दायक अमरताको पाते है, वस्त्र-दायक सोमके पास जा आयुको प्राप्त होते है।२।"

"देवोकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। वे (देव) कजूसोको

तृप्त नहीं करते। और दोषसे डरनेवाले बहुतेरे जो नर दक्षिणामें तत्पर हैं, (वह) तृप्तिको प्राप्त होते हैं।३।"

"दक्षिणावान् (दानी) पहले बुलाया जाता है। दक्षिणावान् श्रेष्ठ ग्रामणी होता है। जो पहले दक्षिणा देता है, उसीको मैं जनोंका नृपति मानता हूं।५।"

"यज्ञकर्त्ता, सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाले उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा कहते हैं। जिसने पहले दक्षिणासे आराधना की, वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है,।६।"

"दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है। दक्षिणा चन्द्र (चांदी) और जो सोना है, उसे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा है। आदमी जानते हुये दक्षिणाको कवच बनाता है।७।"

"भोज (भोजन-दाता) न मरते, न दरिद्र होते, न क्लेश पाते हैं, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो सारा भुवन और यह स्वर्ग है, सबको दक्षिणा उन्हें प्रदान करती है।८।"

"भोज पहले ही सुरभि-मूल पाते हैं। भोज सुन्दर वस्त्रवाली वधू पाते हैं। भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते हैं। जो बिना बुलाये आते हैं, उन्हें भोज जीत लेते हैं।९।"

"भोजके लिये (लोग) शीघ्रगामी अश्व सजाते हैं। भोजके लिये यह सुन्दरी कन्या है। भोजका यह घर पुष्करिणी सा देव-विमान सा अद्भुत परिच्छन्न है।१०।"

दानकी महिमा आर्योंमें बहुत थी। अतिथियोंको अन्न-भोजन देनेमें वह बड़े उदार थे। हरेक सम्पत्तिशाली आर्य अपने घरको देव-विमान और पुष्करिणी सा देखना चाहता था।

८ निवावरी या सिरका—इन्हें अग्नि-सोमी ऋचायें बतलाया गया है, पर यह भी लक्षित नाम है, मूल रचयिताका नाम मालूम नहीं है। निवावरीने अपनी ऋचाओं "(९।८६) में सोमकी महिमा गाई है—

अतिप्राचीन कालमे वहिन भाइयोका व्याह होता था। थाई भूमिके राजवशमे अव भी यह होता है। ईरानके सासानी राजवश मे भी इसे देखा जाता था, और मिस्रके फरवा भी रक्तको शुद्ध रखनेके लिये ऐसा करते थे। यम-यमीके इस मवादसे यह जरूर मालूम होता है, कि इसे सप्तसिन्धुके आर्य ठीक नही मानते थे।

यमी वैवस्वतीका एक और सूक्त [15] (१०।१५४) मिलता है, जिसकी भाषा वहुत नवीन मालूम होती है। इसमें प्रेतके वारेमें कहा गया है—

"किन्ही (पितरो) के लिये सोम छाना जाता है, कोई घृतका सेवन करते है। हे देवापि (प्रेत), उनके पास तुम जाओ जिनके लिये मधु वहता है, ।१।"

"तपस्याके कारण जो दुर्धर्ष हैं, तपस्यासे जो स्वर्ग गये, जिन्होने महान् तपस्या की, हे देवापि (प्रेत), तुम उनके पास जाओ।२।"

"जो युद्धमें लडते है, जो शूर वहा शरीर छोडते हैं, और जो सहस्रो दक्षिणा देते है, हे देवापि, तुम उनके पास जाओ।३।"

वैदिक आर्य यमको मृत्युका देवता समझते यह मानते थे, कि पितर उनके पास जाते हैं। उसी यम और मृत्युकी वातोको यमीके इस सूक्तमें वतलाया गया है।

१० **रात्रि**—भारद्वाजी रात्रि भी कल्पित ऋषिका है। रात्रिका वर्णन इस सूक्त [16] (१०।१२७) में आया है। दूसरी परम्पराके अनुसार सोभरि-पुत्र कुशिक (विश्वामित्रके वश-स्थापक) इसके ऋषि माने गये हैं। गायत्री छद होनेसे यह गानेकी ऋचाये है ?

"देवी रात्रि चारो ओर आकर प्रकट हुई, उसने नक्षत्रो द्वारा सारी शोभाको धारण किया ।।१।।

"देवीने आते समय अपनी वहिन उषाको ग्रहण किया। उसने तमको हटाया ।।३।।

"ग्राम चुप है, वटोही चुप है, पक्षी चुप है, इच्छावाले वाज चुप है ।।५।।

"हमें (चारो ओर) काला अन्धकार दिखाई दे रहा है, वह स्पष्ट मौजूद है। हे उषा, ऋणकी तरह तुम उसे हटाओ ॥७॥

११ लोपामुद्रा—यह वसिष्ठके भाई अगस्त्यकी पत्नी थी। पति-वियोग सहन करनेमें असमर्थ लोपामुद्रा का अगस्त्यके साथ का सवाद निम्न प्रकार[१८] (१।१७९) है—

(लोपामुद्रा)—पहिले (बीते) वर्षों बुढापा लानेवाली उषाओंको दिन-रात सहती रही। बुढापा शरीर-शोभाको नष्ट करता है। फिर ऐसी, पत्नीके पास पति क्यों जाये? ॥१॥

'जो पुराने सत्यपालक थे, देवोंके साथ सच्ची बातें करते थे। वह अन्त न पा पडे रहे। फिर" ॥२॥

(अगस्त्य)—"हम व्यर्थ नहीं थके, देव लोग हमारी रक्षा करते हैं। हम सारे भोगोंको पा सकते हैं, यदि ठीकसे दोनों चाहें, तो यहा सैकडों ले सकते ॥३॥

"कामको मैंने रोका है, पर यहा-वहा-कहींसे वह आ जाता है। अधीरा कामिनी लोपामुद्रा धीर उत्साह लेते पतिका सगम करती है ॥४॥

१२. वसुक्र-पत्नी—इन्द्रके पुत्र वसुक्रकी पत्नीके नामसे एक सूक्त[१९] (१०।२८) मिलता है, जिसमें वसुक्र-पत्नी तथा इन्द्रकी बातें आती हैं। वसुक्र-पत्नी कहती है—

"दूसरे सारे देवता आये, मेरे ससुर यहा नहीं आये। यदि आते, तो यह भुना दाना खाते, और सोम पीते। अच्छी तरह खाकर फिर अपने घर जाते ॥१॥"

इस सूक्तसे ऋषि वसुक्र भी बतलाया गया है। इन्द्र ही नहीं ऋषि-मिनुको आर्य भी भुने जौका खाना और सोमका पीना बहुत पसन्द करते थे। "यदन्न पुरुषो भवति तदन्नस्तस्य देवता" (जो भोजन आदमी खाता है, वही उसका देवता भी)।

१३ वाक्—अम्भृण ऋषिकी पुत्री वाक् भी कवयित्री नाम है। यहा वाक् (वाणी) देवी की महिमा वर्णन की गई है "(१०।१२५)—

"सौभाग्यके लिये तेरे हाथको मै ग्रहण करता हू। तू मुझ पतिके साथ जरा अवस्था तक बनी रह। भग, अर्यमा, सविता, पुरन्धि देवोने तुझे गृहपति धर्मके लिये मुझे प्रदान किया ।।३६।।"

"दोनो (पति-पत्नी) यही रहे, न विछुड, सारी आयुको प्राप्त करे। पुत्र और नातियोंके साथ खेलते अपने घरमें प्रमुदित रहें ।।४२।।'

"हे इन्द्र, सिंचन समर्थ हो इस (वधू)को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमे दस पुत्रोको धारण करे, (और) पतिको ग्यारहवा बनाओ ।।४५।।

"हे वधू, तू ससुरपर सम्राज्ञी हो, सासपर सम्राज्ञी हो। ननदपर सम्राज्ञी हो, देवरोपर सम्राज्ञी हो ।।४६।।"

यह बतला चुके है, कि ऋग्वेदकी ऋषिकाओकी सख्या चाहे दो दर्जन हो, पर उनमे ऐतिहासिक घोषा और विश्ववारा ही है। स्त्रीका स्थान उस कालमें काफी ऊचा था, पर पुरुषके समान नही था, यह इन ऋचाओसे मालूम होता है। सास-ससुर, ननद-देवरपर शासन करनेकी कामना नारीको होती थी, और सौत उसके सिरदर्दका सबसे बडा कारण थी।

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

शौनककी अनुक्रमणीके अनुसार ऋग्वेदमें १०४१४ मन्त्र, १,५३,८२६ शब्द, ४,३२,००० अक्षर हैं। ऋचाओंकी संख्या गिननेपर उन्हें १०४६७ पाया गया। ऋग्वेदका दो प्रकारसे विभाजन है, एकमें मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रमको रक्खा गया है। ऋग्वेदमें १० मण्डल, १०१७ सूक्त और १०४१४ मन्त्र हैं। अष्टक, अध्याय और सूक्तके अनुसार दूसरी गणना होती है, जिसके अनुसार ऋग्वेदमें ८ अष्टक, ६४ अध्याय और १०१७ सूक्त हैं। मण्डल, अनुवाक और वर्गके अनुसार गणना करनेपर ऋग्वेदमें १० मण्डल, ८५ अनुवाक और २००८ वर्ग (बालखिल्यके १६ सूक्तोंको छोड़कर) पाये जाते हैं। आजकल सबसे अधिक प्रचलित गणना मण्डल, सूक्त और ऋचाके क्रमसे है।

भिन्न-भिन्न मण्डलोंकी भाषा देखनेसे पता लगता है, कि सभीकी भाषा एक समान नहीं है। यह बतला चुके हैं, कि ऋग्वेदिक आर्य हिन्दू-यूरोपीय वंशकी उस शाखाके अन्तर्गत हैं, जिसमें ईरानी और संस्कृत आते हैं, और जिसे शतम्-शाखा कहा जाता है। शतम्-शाखाकी कोई जाति टवर्ग नहीं बोल सकती। इसलिये संस्कृतमें आनेवाले आर्य टवर्ग (मूर्धन्यवर्ण) नहीं बोल सकते थे, यह निश्चित है। ऋग्वेद में यद्यपि आदिमें टवर्गीय अक्षर लगनेवाला कोई शब्द नहीं मिलता, पर मूर्धन्य वर्णोंका प्रयोग अक्सर मिलता है। यह टवर्ग संस्कृत आर्योंमें प्रचलित

हुआ? निश्चय ही सप्तसिन्धुकी प्राचीन जातिके घनिष्ट सम्पर्कमें ही उच्चारणमें यह परिवर्तन आया। आज भी द्रविड भाषाओमें टवर्गकी प्रचुरता उत्तरी भारतके कानोको खटकती है। सप्तसिन्धुमें आनेके तीन सौ वर्षबाद ऋग्वेदके महान् ऋषि हुये। वह टवर्ग बोलते थे, यह कहना आसान नही है, क्योकि शताब्दियो तक ऋचाये लिपिवद्ध नही हो कठस्थ रक्खी गई थी। मूल पालि त्रिपिटक (बुद्धके सूक्त) मागधी-कोसली भाषामें रहे, जिसमें ल और श अक्षरो का प्राचुर्य एव र तथा स अक्षरोका बहुत कुछ अभाव सा था। पर वर्तमान पालि त्रिपिटकमें मागधीके इन विशेष अक्षरोका वायकाट सा देखा जाता है—श का तो बिल्कुल ही प्रयोग नही होता। इस परिवर्तनका कारण यही था, कि शताब्दियो तक बुद्धके सूक्त मागधीभाषियो के नही, बल्कि पश्चिमी भाषाभाषियो—विशेषकर लाट-गुजरातमे गये उपनिवेशिको—के मुखमें रहे, जिनके कारण यह परिवर्त्तन हुआ। इसे देख हम नही कह सकते, कि ऋचाओंके रचने और उनके लिपिवद्ध होनेके समय के बीचमे अक्षरोका परिवर्तन नही हुआ होगा। वैदिक भाषाके प्रकाण्ड विद्वान् डा० बटेकृष्ण घोषने ऋग्वेदके अक्षरो और उनके उच्चारणपर सूक्ष्म विवेचन किया है। मूर्धन्य वर्णोका प्रचार आर्योकी भाषा में भारतमें आनेपर हुआ। डा० घोष र की अपेक्षा ल की प्रचुरताको आर्योके भारतमे पूर्वकी ओर बढनेका प्रभाव बतलाते है। पर, र की जगह ल के प्रयोग स्लाव भाषाओमें भी बहुत आते है। इसलिये हमें मानना पडेगा, कि जहा तक र और ल के प्राचुर्यका सवाल है, वह शतम्-वशकी दूसरी शाखाओमें भी देखा जाता है।

डा० घोष इस निष्कर्षपर पहुचे है,* कि जहा तक भाषाका सवाल है, ऋग्वेदके पहले नौ मण्डलोकी भाषा एक सी है। दसवें मण्डलकी भाषामें जरूर परिवर्त्तन है। दसवें मण्डलमे भी कितनी ही ऋचाओ और सूक्तोकी भाषा पुरानी दीख पडती है, साथ ही बाकी मण्डलोमे कितनी

---

*The Vedic Age PP 33-40

हीकी भाषामें नवीनता पाई जाती है। तो भी यह माननेमें आपत्ति नहीं होनी चाहिये, कि पहले नौ मण्डलोंकी भाषा प्राय पुरानी है। इन नौ मण्डलोंमें भी यदि ऋषियोंके काल-क्रमको देखें, तो पहले भरद्वाजका मण्डल (छठा), फिर वसिष्ठका (सातवां), फिर विश्वामित्रका (तीसरा), फिर वामदेवका (चौथा) आता है। यह भाषा-भेद भरद्वाज[1] (६।१।१,२) और रक्षोहाकी ऋचाओं[2] (१०।१६२।१-२) की तुलनासे मालूम हो सकता है।

वेदकी भाषा अपेक्षाकृत बहुत पुरानी, ताम्र-युगके समाजकी भाषा है, विकासमें वह वहां नहीं पहुंची थी, जहां कि पालि, प्राकृत, अपभ्रंश और हमारी भाषायें आधुनिक कालमें पहुंची। इस प्रकार उसे अपरिचित और दुरूह शब्दोंवाली भाषा कहा जा सकता है, लेकिन जहां तक भाषाकी प्रकृतिका सम्बन्ध है, उसे सरल होना चाहिये। किन्हीं-किन्हीं बातोंमें वह सरल है भी। उसे हम पाणिनीय संस्कृतकी पृष्ठभूमिमें रखकर पढ़ना चाहते हैं, इसलिये हरेक पाणिनीय नियमके अपवादोंकी संख्या देखकर हम समझते हैं, कि वैदिक भाषाकी प्रकृति अधिक विशिष्ट है। यदि वेदकी भाषाको वैदिक उदाहरणों अर्थात् वैदिक पाठशालाओंके सहारे पढ़ा जाये, तो वह जरूर सरल मालूम होगी। भाषाके ज्यादा सरल होनेका मतलब संदिग्ध होना भी है। चीनी भाषा दुनियाकी अत्यन्त सरल भाषा है—यहां उसकी लिपि-में हमें कोई मतलब नहीं, जो निश्चय ही बहुत कठिन है। चीनी भाषा के पूर्ण व्याकरणके लिखनेके लिये शायद पांचसौ पृष्ठोंकी भी आवश्यकता नहीं होगी, पर उसके कारण सन्देह होनेकी भी गुंजाइश है। क्रियाओंमें वचन और काल, पुरुषका कोई पता नहीं। बोलने वाले स्वरोंसे आवश्यकतानुसार अभिप्रायको असंदिग्ध बनानेकी कोशिश की जाती है। वैदिक भाषामें एक ही क्रिया के कालको न निश्चित करके पाठक को मजबूर किया जाता है, कि वह प्रकरणसे उसका अर्थ निकाले। संभावित अर्थ है और होने वाला हो सकता है। वैदिक भाषाके ऐसे अनिश्चित और अर्थपूर्ण क्रियापदोंको लेट लकारसे अलग कर दिया गया है। इस प्रकार वैदिक भाषाकी कठिनाईसे

इन्कार नही किया जा सकता। पर, यदि सस्कृतके द्वारा नही, बल्कि ऋचाओमें आये व्याकरण और उसके प्रयोगोद्वारा सिखलाया जाये, तो यह भाषा उतनी कठिन नही मालूम होगी।

जहा तक शब्दोका सम्बन्ध है, ऋग्वेदमें कितने ही शब्द दूसरे अर्थोमें प्रयुक्त होते है। कारु काम करनेवालेको कहना चाहिये, लेकिन ऋग्वेदमें कारु कविको कहते है, जो ऋचायें बनाता है। इसी तरहके दूसरे भी शब्द वहा मिलते है।

सन्धियोके नियमोको भी वेदमें उतना पालन नही किया गया, स्वरके बाद स्वर आनेपर भी उसे ज्यो का त्यो रहने दिया जाता है।

§२. छन्द

ऋक्का अर्थ ही है पद्य। सारा ऋग्वेद पद्य-बद्ध है। सात छन्द प्रसिद्ध माने जाते है, पर छन्दोकी सख्या और अधिक है। यज्ञ ऋषिकी ऋचाओ[1] (१०।१३०।३-५)में गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप, वृहती, विराट्, त्रिष्टुप्, जगती इन सात छन्दोका उल्लेख है। यही मूल छन्द भी है। यह हम बतला चुके है, कि गानेके लिये गायत्री छन्द सबसे अधिक प्रचलित था। सोमपानके समय हरेक पीनेवालेका कण्ठ खुल जाता था, जैसे आज भी मद्य पीते समय देखा जाता है। ऋग्वेदका नवा मण्डल सोम मण्डल है, जिसमें सौसे ऊपर ऋषियोने सोमके गुणोका गान किया है। इस मण्डलकी बहुत अधिक ऋचायें गायत्री छन्दमें है। गायत्री छन्दके गानेको गायत्र साम कहा जाता है।

ऋग्वेदके १०४१४ मन्त्रोमें छन्द है—

१. गायत्री	२४६७
२ उष्णिक्	३४१
३ अनुष्टुप्	८५५
४ वृहती	१८१
५. त्रिष्टुप	४२५३

६. पंक्ति	३१२
७ जगती	१३४८
८. अतिजगती	१७
९ शाक्वरी	१९
१०. अतिशाक्वरी	९
११. अष्टि	६
१२ अत्यष्टि	८४
१३ धृति	२
१४ अतिधृति	१
१५ एकपादवाले	६
१६. दोपादवाले	१७
१७ प्रगाथ बार्हत	१९४
१८. ककुभ	५५
१९ महाबार्हत	२५७

इनके देखनेसे मालूम होता है, कि २००से अधिक बार आनेवाले छन्द गायत्री, उष्णिह्, अनुष्टुप्, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती है। इनमें भी सबसे अधिक उपयुक्त होनेवाला छन्द त्रिष्टुप् है, जिसके बाद दूसरा नम्बर गायत्रीका तीसरा जगतीका और चौथा अनुष्टुप् का। पीछे अनुष्टुप् मन्त्रोंमें बहुत प्रयुक्त हुआ है। गायत्रीमें गानके लिये अन्तिम पादको दोहराना आवश्यक था, इस प्रकार वह भी अनुष्टुप् बन जाता था। दोनोंको एक कर देने पर अनुष्टुपोंकी संख्या २३२३ हो जाती है।

§३. रचना

१ वाणी—पद्यबद्ध रचना को लेकर ऋ, जैसा कि वसिष्ठ "(७।३३) ने कहा है—

"सबसे राजा निष्कोर इन्द्रको वाणियां शत्रुओंको निरस्त करनेके लिये हैं ॥१२॥"

२. सूक्त—वसिष्ठने सूक्तका भी उल्लेख किया है '(७।२९)—

"हे मघवन् इन्द्र, जो सूक्तों द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, सो तुम्हारा अलंकार है ॥३॥"

'(७।५८।६)—"मरुत् हम सूक्तका सेवन करें।"

३ श्लोक—श्लोकका भी उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है, लेकिन इसका अर्थ वही है, जो पुण्यश्लोकमें आता है, अर्थात् श्लोकका अर्थ यशसा या कीर्ति है। कण्वने कहा है "(१।३८।१४)—

"मुखमें श्लोक बनाओ, गोकी तरह फैलाओ, उनथ्य गायत्रको गाओ।"

४ साम—साम गीतिको कहते थे। ऋग्वेदकी ही बहुत सी ऋचाओंका गान के साथ जो संग्रह है, उसीको सामवेद कहते हैं। सारे सामवेदमें मौके कम ही ऐसे मन्त्र हैं, जो ऋग्वेदमें नहीं आये हैं। गुरुआ ऋषि सामसे विश्वेदेवोंकी स्तुतिका उल्लेख करते कहते हैं' (१।१०७)—

"सामों द्वारा स्तुति किये जाते देव (अपनी) रक्षाके साथ हमारे पास आवें ॥२॥"

गृत्समद ऋषि पिष्टपू और गायत्रीके सामकी बात करते हैं '(२।४३)-

"और पिष्टपूके जैसे सामगायक, वैसे ही दोनों वाणियोंको बोलते वह अनुरंजन करता है ॥१॥"

कण्व-गोत्री कुसीदि ऋषि कहते हैं "(८।७०)

"इन्द्र, गीयमान सामको सुनें, उसका स्तुतिगान करें, वह असुरों हमारे ऊपर कृपा करें ॥५॥"

५. स्तोम—स्तुति या स्तोकको उस समय स्तोम कहते थे। कुत्स आंगिरस इन्द्र-अग्निके लिये कहते हैं "(१।१०९)—

"हे इन्द्राग्नि, सुना है, तुम दामाद और सालेको भी ज्यादा देनेवाले हो। इसलिये सोमके प्रदानके समय तुम्हारे लिये मैं नवीन स्तोम बनाता हूं ॥२॥"

६४ काव्य

नदी-सूक्त—[1](३।३३।१-१३) पुरुरवा-उर्वशी सूक्त[2] (१०।९५)को देखनेसे मालूम होता है, कि कविताकी मनोहारिणी शैली ऋग्वेदिक आर्योंमें मौजूद थी। लेकिन ऋषियोंकी ऋचाओंको कविताकी दृष्टिसे नहीं सुरक्षित किया गया। उनका प्रयोजन देवताओंको प्रसन्न करना था। बिल्कुल सम्भव है, उस समय मधुर लोकगीत और पवाडे प्रचलित थे, जिनकी उस समय काफी कदर थी।

उपमा—कविताको सजानेमें अलंकारोंका उपयोग भी ऋषि करते हैं। अलंकारोंमें सबसे अधिक उपमाका इस्तेमाल देखा जाता है, जिसके लिये इव या उसीके अर्थमें न का प्रयोग बहुत हुआ है। गृत्समदने एक सूक्त "(२।३६।१,८) की हरेक पंक्तिमें इसका प्रयोग और एक से अधिक बार किया है—

"अग्निद्वय पत्थरकी तरह, शत्रुको बाधा दो, सिद्धकी तरह निधियुक्त वृक्षको प्राप्त करो। ब्रह्माकी तरह यज्ञमें उक्थ (गीत) गानेवाले हो, दूतकी तरह बहुतोंके लिये पुकारने लायक हो॥१॥"

इस सूक्तमें और उपमायें दी गई हैं—रथी, अजा (बकरी), स्त्री, दम्पती, सींग, शफ (खुर), चक्रवाक, नाव, युग (जुआ), नाभि, उपधि, प्रदि, श्वान, गर्त, वर्म, बात, नदी, हाथ, पाद, ओष्ठ, स्तन, नासा, कर्ण, हे पृथिवी, धान, तलवार। सात त्रिष्टुप् ऋचाओंके भीतर इतनी उपमायें दी गई हैं, और सबके साथ इवका प्रयोग है। अन्तमें ऋषि कहते (२।३९।१-८)—

"हे अग्निद्वय, गृत्समदोंने तुम्हारे बधाने में मन्त्र और स्तोम बनाये। हे नरो, उनका सेवन करने (तुम्हारे) पास आओ। जिसमें सुन्दर दीप्तिवाले हो इस बहुत कहे॥८॥"

---

१ देखो, अध्याय (७।७) पृष्ठ ६९–८

२ देखो अध्याय (५।२८) पृष्ठ ८९–९०

वाजम्भर-पुत्र सप्तिने क्रियाकी उपमा इवके साथ दी है" (१०।७९)—

"हे सुनहले अग्नि, क्या देवोंके ऊपर तुमने क्रोध किया, अनजान होनेसे मैं तुमसे पूछता हू। खेलते न खेलते तुम वैसे ही छिन्न-भिन्न कर डालते हो, जैसे गायको तलवार पोर-पोर करके काटती है ॥६॥"

विश्वामित्रने अपने सुन्दर काव्य नदी-सूक्त[1] (३।३५) में व्यास और सतुलजकी उपमायें इवके साथ निम्न वस्तुओंसे दी है—अश्व, गौ, रथी, वत्स, योषा (मा), मर्य (पति),

न के साथ उपमा भी ऋग्वेदमें आती है, जिसका प्रयोग पीछे नही होता। न नहीके अर्थमे भी आता है, इसीलिये सदिग्ध होनेके कारण उपमार्थ न के प्रयोगको छोड दिया गया। भरद्वाज कहते है"(६।२)—

"हे अग्नि, तुम दीप्तिमान् हो, तुम्हारा उज्वल धूम विस्तृत द्योलोक-में फैला है। हे पावक, कृपालु हो अपनी द्युतिसे सूर्यकी तरह (सूरो न) प्रकाशमान होते हो ॥६॥

"प्रजाओमें तुम पूज्य हमारे प्रिय अतिथि हो, पुरमें हितकी तरह आश्रय लेने लायक, सूनुकी तरह (सूनुर्न) पालनीय हो ॥७॥

"हे अग्नि, तुम घर्षण करके द्रोणमें प्रकाशित होते हो, अश्वकी तरह वाजी न कार्यकारी हो। सर्वत्रगामी वायुकी तरह स्वय जानेवाले हो, घोडेकी तरह (अत्यो न) कुटिलगामी शिशु हो ॥८॥

अगले सूक्त[1] (६।३।४-८)में भरद्वाजने न-वाली उपमा अश्व, द्रवि (दर्वी), परशु, अयस्, पक्षी, रेभ (शब्दकारक), द्यौ, घृणा, विद्युत् और ऋभुसे दी है।

§५. कवि

१ वशिष्ठ के ऋग्वेदके कुछ काव्यमय सूक्तोका परिचय हम दे चुके है। वसिष्ठने एक सूक्त" (७।७५) में उषाका वडा सुन्दर वर्णन किया है—

"दिविजा उषाने प्रकाश किया। (वह) सत्यसे अपनी महिमाका

---

१ देखो पृष्ठ ६७–८

आविष्कार करती आई। उसने तमको दूर किया, प्राणियोंके श्रेष्ठतम पथको आलोकित किया ॥१॥

"उषाकी यह दर्शनीय विचित्र अमृत किरणें आईं। (वह) दिव्य व्रतोंको उत्पन्न करती अन्तरिक्षको भरती अवस्थित हुई ॥२॥

"वह वह उषा द्योकी दुहिता, भुवनकी रक्षिका, जनोंके ज्ञानको अवलोकन करती तुरन्त पाचो जनोंके चारो ओर पहुचती है ॥४॥

"अन्नवाली विचित्र धन-युक्त सूर्यकी पत्नी (उषा) धनके लिये वसुओं के धनपर शासन करती है। जीर्ण करती ऋषियोंसे प्रशंसित धनिक यजमानों द्वारा स्तुति की जाती उषा प्रकाशित होती है ॥५॥

"प्रकाशमान उषाको वहन करने विचित्र अश्व दिखाई दे रहे हैं। शुभ्र नाना रूपोंवाली वह रथमें जाती है, सेवक जनोंको रत्न देती है ॥६॥

"वह सत्या सत्योंके साथ, महती महान् देवोंके साथ, यजनीया यजनकर्त्ताके साथ दृढ अन्धकारको भेदन करती, गौओंको चरा देती है। गायें उषाकी कामना करती हैं ॥७॥

"हे उषा, हमें तुम गो-युक्त, वीरों-युक्त रत्न-अश्व-युक्त बहुत भोज दो। पुरोंके सामने हमारे यज्ञकी निन्दा न करो। तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥८॥"

२. विश्वामित्र—विश्वामित्रने भी कई सूक्त उषाकी प्रशंसामें रचे हैं, जिनमें एक" (३।६१)की कुछ ऋचायें निम्न प्रकार हैं—

"उसने अन्नवाली, ज्ञानवाली मनोनी है उषा, स्तुति-कर्त्ताके स्तोत्र (स्तुति) को ग्रहण करो। यह स्तोत्रवाली सबके लिये वरणीय है प्राचीन युवती देवि, व्रतके लिये अनुगमन करो ॥१॥

"हे उषा देवि, सुनाके रथ-युक्त मिठासोंसे मधुर भाषण करती प्रकाशित हो, सुदर्शनों तुम्हें वे बहुत बलवाली सुशिक्षित अश्व ले जावें ॥२॥

"हे उषा, तुम अन्नकी ध्वजा हो, भुवनोंके ऊपर स्थान पाई अवस्थित

हो। हे नवीना, एकसे रथपर विचरण करती चक्रकी तरह तुम पुन-पुन· घूमो ॥३॥"

३ वामदेव—सभी प्रधान ऋषियोने उषाकी महिमा गाई है। फिर वामदेव कैसे पीछे रह सकते है ? वह कहते है[१८] (४।५१)—

"अन्धकारके बीचसे यह वह अतिविशाल ज्योति सामने उठी। जनोंके लिये निश्चय गमन क्रिया करती द्योकी दुहितायें उषायें प्रकाशित हो रही है ॥१॥

"यज्ञोमें यूपोकी तरह पूर्वमें विचित्र उषायें उठकर अवस्थित हुई। बाधक अवकारके द्वारको खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ॥२॥

"मघोनी (धनवती), तमनाशिका उषायें भोजनदानके लिये अन्नदानके लिये भोजोको चेताती है। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें न जाग बेहोश हो सोयें ॥३॥

"हे देवियो, सत्यमें जुडे अश्वोंके साथ तुम तुरन्त भुवनोमें चारो ओर जाती हो। उषायें जीवन विचरणके लिये सोये दोपायो-चौपायोको जगाती तुरन्त भुवनोंके चारो ओर जाती है ॥५॥

"जिसके लिये ऋभुओने विवान बनाये, वह उषा कहा, कितनी पुरानी है ? जब शुभ्र उषायें शुभ विचरण करती है, तो (वह कभी) न पुरानी होनेवाली एकसी पहचानी नही जाती ॥६॥"

फिर दूसरे सूक्त[१९] (४।५२) में वामदेव सर्वप्रिय गायत्री छन्दमें उषाका गान करते है—

"अन्धकारनाशिनी बहिन (रात्रि)को हटानेवाली वह प्रशसित सुनायिका रमणी, द्योकी दुहिता दिखाई पडी ॥१॥

"अश्वकी तरह विचित्र चमकीली, गायोंकी माता, यज्ञवाली उषा अश्वि-द्वयकी सखी हुई ॥२॥

"चाहे अश्विद्वयकी तू सखी है, चाहे गायो (किरणो) की माता है उषा तुम धनकी ईश्वरी हो ॥३॥

"मधुरभाषिणी (तुम) शत्रुओंको हटाओ, ज्ञान दो। हम स्तोमों (स्तुतियों) द्वारा तुम्हें प्रबोधित करते हैं ॥४॥

"वर्षाकी धाराकी तरह उसकी भद्र किरणें दिखाई पड़ी। उषाने अपने विस्तृत तेजसे (विश्वको) भर दिया ॥५॥

"हे पूरयित्री विभावरि प्रकाशवती, अपनी ज्योतिसे तमको दूर करो। हे उषा, अन्नकी रक्षा करो ॥६॥

"हे उषा, (तुम) अपनी किरणोंसे द्यौको, विशाल प्रिय अन्तरिक्षको व्याप्त करती हो, अपनी शुक्र (उज्ज्वल) किरणोंसे व्याप्त करती हो ॥७॥"

उर्वशी-पुरूरवाका लघु सुन्दर खण्डकाव्य ऋग्वेद "(१०।९५)का एक सूक्त है। उसको हम पीछे उद्धृत कर चुके हैं।

ऋषि अपनी कृतियोंको काव्य कहते थे, यह वामदेव के एक सूक्त "(१०।५५) से मालूम होता है। सूक्तका ऋषि यद्यपि वामदेव-पुत्र बृहदुक्थ बतलाया गया है, पर सम्भव है वह बृहद् उक्थ (महान् गान) वामदेवकी मानस सन्तान हो। वह इन्द्रकी प्रशंसा करते कहते हैं—

"बहुतोंके युद्धमें युवा होनेपर भी जिनके भयसे भागते हैं, वह श्वेतकेश हो गया। देखो महत्वपूर्ण काव्यको देखो, जो कल जीवित था, वह आज मर गया ॥५॥

४ भौम—अग्निकी सन्तान भौम पर्जन्य (मेघ) की स्तुति "(५।८३) भी बहुत सुन्दर है—

"हे इन वाणियोंसे पर्जन्यकी बराबर प्रशंसा करो, नमस्कार करते पर्जन्यकी स्तुति करो। जलवर्षक दानशील गरजता पर्जन्य ओषधियोंमें गर्भ धारण करता है ॥१॥

"वह वृक्षोंको नष्ट करता है, राक्षसोंको नष्ट करता है, महावेगसे सारे भुवनको डराता है। उस वृष्टिवाले से विश्वमात्र भी भागते हैं, क्योंकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टोंको मारते हैं ॥२॥

---

१ देखो पृष्ठ ८०–९०

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८॥
१।३५ (त्रिष्टुव्)

२. ऋग्वेद मण्डल ६, ७, ३ और ४ क्रमश भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वामित्र और वामदेवके मण्डल कहे जाते हैं।

३. अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विज। होतार रत्नधातम ॥१॥
—१।१ (गायत्री)

४. वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
४।२२ (त्रिष्टुव्)

५. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यष्वनुषु पूरुषु स्थ ।
अत परि वृषणा वा हि यातमया सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥
१।१०८ (त्रिष्टुव्)

६. वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
—४।२२

७. अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमति नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ ॥१२॥
—३।३३ (त्रिष्टुव्)

परिशिष्ट १

अध्याय १

सप्तसिन्धु

१. उसने पृथिवीकी आठो दिशायें, तीनो मरुस्थल और सातो नदिया प्रकाशित कीं। सुनहली आखोंवाला सविता देव (यजमान) दानियोंके लिये उत्तम रत्न लिये आये ॥८॥

—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३५

२ ऋग्वेदके ६, ७, ३ और ४ मडल भरद्वाज, वसिष्ठ, विश्वमित्र और वामदेवके हैं।

३ यज्ञके देव, होता, ऋत्विज, पुरोहित अति रत्नधारक अग्निकी मैं स्तुति करता हू ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।१

४ वृष्टि-धारक, कामवर्षी, दोनो बाहोंमे चार कोरवाले वज्र को फेंकनेवाले, उग्र, महानतम नेता शची-युक्त वृषभ (इन्द्र) ने ऊनकी तरह परुष्णी (रावी) को, श्री के लिये सेवन करते उसके पोरोंको मैत्रीके लिये दान दिया ॥२॥

—वामदेव गौतम-पुत्र, ४।२२

५ हे इन्द्र-अग्नि, जब तुम यदुओं, तुर्वशोंमें, जब द्रह्युओं, अनुओं, पुरुओंमें रहो, तो भी हे कामनावर्षकों, तुम आओ, और सुत (छाने) सोमको पियो ॥८॥

—कुत्स आगिरस, १।१०८

६ देखो १।४

७. गो-कामी भरत पार हो गये, जिसने नदियोंकी सुमति प्राप्त की। (हे व्याघ्र-सदृश,) उग्रकारिणी, सुन्दर धनयुक्त, फूली तटोंको पूरा करती, तुम शीघ्र जाओ ॥१२॥

—विश्वामित्र कौशिक, ३।३३

८. उत न प्रिया प्रियासु सप्त स्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्।१०।
—६।६१ (गायत्री)

९ नि त्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्नाम्।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्या रेवदग्ने दिदीहि॥४॥
—४।२३

१० इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥५॥
तृष्टामया प्रथमं यातवे सजूः सुसर्त्वा रसया श्वेत्या त्या।
त्वं सिन्धो कुभया गोमतीं क्रुमुं मेहत्नूं सरथं याभिरीयसे॥६॥
—१०।७५

११ सप्तापो देवीः सुरणा अमृक्ता याभिः सिन्धुमतरद्इन्द्र पूर्भित्।
नवतिं स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातुं मनुषे च विन्द॥८॥
—१०।१०४

१२ सरस्वती सरयूं सिन्धुरूर्मिभिर्महो महीरवसा यन्तु वक्षणीः।
देवीरापो मातरः सूदयित्नवो घृतवत् पयो मधुमन्नो अर्चत॥९॥
—१०।६४

१३. मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्माव सिन्धुर्नि रीरमत्।
मा व परिष्ठात् सरयूः पुरीषिण्यस्मे इत् सुम्नमस्तु वः॥९॥
—५।५३

८. और प्रियाओंमें प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारी स्तुति योग्य हो ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।६१

९ हे अग्नि, दिनोंके सुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थानमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥१५॥

—देवश्रवा, देववात, भारत, ३।२३

१० हे गंगा, यमुना, सरस्वती, परुष्णी (रावी) सहित शुतुद्रि, मेरे इस स्तोमको स्वीकार करो। हे असिक्नी (चेनाब)-सहित मरुद्वृधा, वितस्ता सुषोमा-सहित आर्जीकीया, सुनो ॥५॥

त्रिष्टामा, सुसर्तु, रसा, उस श्वेत्याके साथ पहले जाती, हे सिन्धु, कुभा (काबुल नदी)-सहित गोमती, मेहत्नू को लिये क्रुमु, तुम बहनें हो ॥६॥

—सिन्धुक्षित् प्रियमेध-पुत्र १०।७५

११ सुरम्य अंगिन गतिवाली दिव्य सातों नदियां (हैं), जिनके साथ, हे गढ़ोंको तोड़नेवाले इन्द्र, तुम सिन्धु पार हुए। देवों और मनुष्योंके उपकारके लिए तुमने निम्नगामी बहती नदियों को प्राप्त किया ॥८॥

—अष्टक विश्वामित्र-पुत्र, १०।१०४

१२ सरस्वती, सरयू, सिन्धु (अपने) तरंगोंसे महती, महान् रक्षाके लिए बहती आवें। प्रेरिका दिव्य जलमाताएँ घृत, दुग्ध, मधु-सहित हमें तृप्त करें ॥९॥

—गयप्लात, १०।६४

१३. (हे मरुतो,) तुम्हें रसा, अनिटभा, कुभा (काबुल), क्रुमु (कुर्रम) न (रोके), न तुम्हें सिन्धु रोके। जलवती, सरयू तुम्हें न बाधा डाले, और तुम्हारा दिया सुख हमारे लिए हो ॥९॥

—दमोवाह्य आत्रेय, ५।५३

१४ यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥
—१०।१२१

१५ न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळव ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥३॥
—८।७७

१६ त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्यो ।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे,
भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥
—६।३१

१७ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपच सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

१८ इन्द्र समत्सु यजमानमार्य प्रावद्विश्वेषु
शतमूतिराजिषु स्वर्मीहळेष्वाजिषु ।
मनवे शासदव्रतान् त्वच कृष्णामरन्धयत् ।
दक्षन्नविश्व ततृपाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
—१।१३०

१९ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्र वातेजा इरिणे ववृतानाः ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥
—१०।३४

१४. जिसकी महिमा से यह हिमवन्त (है) और रसा-सहित समुद्र (जिसका) कहा गया, जिसकी (भुजाएँ) यह दिशाएँ हैं, उस क देव के लिए हम हविसे पूजा करें ॥४॥

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य, १०।१२१

१५ हे इन्द्र, वृहत् और दृढ पर्वत भी तुम्हें नही रोक सकते। मेरे जैसे स्तुतिकर्ताको जब तुम धन देना चाहते हो, तो तुम्हें कोई नही रोक सकता ॥३॥

—नोधा गौतम-पुत्र, ८।७७

१६ (हे इन्द्र,) तुमने दस्यु शम्बरके नौ अजेय पुरोको नष्ट किया। हे शचीवान् (प्राज्ञ), तुमने सोम-सेवन-कर्ता, सोमप्रेता दिवोदासको प्रज्ञा-सहित धन दिया, स्तुति करनेवाले भरद्वाजको वसु प्रदान किया ॥४॥

—बृहोत्र भारद्वाज, ६।२१

१७. उस पुरनाशक वृत्रहन्ता इन्द्रने जन्मसे काले दासोंको नष्ट किया। उसने मनुष्यके लिए पृथिवी और जलको बनाया। वह यजमानकी आकाक्षा पूरी करता है ॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

१८ इन्द्रने सारे युद्धोमें आर्य यजमानकी रक्षा की। वह सारे युद्धोमें सैकडो रक्षावाला सुखकारी है। उसने मनुके लिए अधनियोको दण्ड दिया, काले चमडे (वालों) को नष्ट किया। (वह) सबको जलाता, हिंसकोको, निष्ठुरोको जलाता है ॥८॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

१९ पट पर घूमते, चलते, कापते पाये मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। जैसे मौजवान् पर्वतके सोमरस भरे, वैसे बहेरेके पाटयाले पाये मेरे लिए उत्साह देते हैं ॥१॥

—[illegible], १०३८

२०. दिवस्पृथिव्योरव आवृणीमहे मातृन्त्सिन्धून् पर्वतान्छर्यणावत'।
अनागास्त्वं सूर्यमुपासमीमहे भद्र सोम सुवानो अद्या कृणोतु न ॥२॥
—१०।३५

२१. अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधिं पणीना परम गुहाहित।
ते विद्वास. प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविशन् ॥६॥
—२।२४

२२. यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृतश्रव इच्छमान ॥३॥
—६।५८

अध्याय २

आर्यजन

१. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भ ।
अभि य. पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥
—७।८

पुरु सरस्वतीके तटपर भी थे। १५।७१।२

२. वि सद्यो विश्वा दृहितान्येषामिन्द्र पुर सहसा सप्त दर्द ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरु विदथे मृध्रवाचः ॥१३॥
—७।१८

३. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे
नृतो वज्रेण दाशुषे नृत ।
अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत् ।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥
—१।१३०

२० हम द्यौ और पृथिवीसे, नदी माताओंसे, शर्यणावान् पर्वतों से रक्षाकी प्रार्थना करते हैं, सूर्य और उषासे निष्पाप होनेकी कामना करते हैं। सेवन किया जाता (यह) सोम आज हमारा मंगल करे॥२॥

—नृमेध आंगिरस, १०।३५

२१ चारों ओर खोजते (जिन्होंने) गुहामें छिपाई पणियोंकी परमनिधि को प्राप्त कर लिया, वे विद्वान ऋषि देवोंको देखकर जहाँसे आये थे, वहीं चले गये॥६॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२४

२२ हे पूषन्, जो तुम्हारी सुनहली नावें समुद्रके भीतर और आकाशमें चलती हैं, उनके द्वारा तुम सूर्यके दूत-कार्यके लिए, कामनासे चाहते हुये जाते हो॥३॥

—भरद्वाज, ६।५८

अध्याय २

आर्यजन

१ जब सूर्यका बृहद्-ज्योति यह अग्नि प्रकाशित होता है, तो भरतको सुनता है। जिसने युद्धोंमें पुरुका दमन किया, वह दिव्य अतिथि द्योतित हो प्रज्वलित हुआ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८

२ इन्द्रने इन वस्युओंकी सारी सात दृढ़ पुरियों (गढ़ियों)को तुरन्त बलपूर्वक विदीर्ण कर दिया। आनव (अनुओं)के ज्ञानको तूस्रुके लिए दिया। छठे पुरुको हम युद्धमें जीतें॥१३॥

—वसिष्ठ ७।१८

३. हे इन्द्र, वे सारी तुमने महान् भयंकर पुर (वज्रों) दिवोदासके लिए यज्ञके सत्रे गढ़ियोंको छिन्न-भिन्न किया, । अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शत्रुका उर (हृदय) गिरिमें सोने गिराया, (अपने) सोनेसे महान् धन दिए, सारे धन जीतने(दिये)॥३॥

—प्रस्कण्व दिवोदास-पुत्र, १।१३०

४. त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वशं यदु स्वस्ति ॥९॥
—१।१७४

५. त्वमाविथ नर्यं तुर्वश यदुं त्व तुर्वीतिं वय्यं शतक्रतो ।
त्वं रथमेतशं कृत्व्ये धने त्व पुरो नवतिं दम्भयो नव ॥६॥
—१।५४

६ येनाव तुर्वशं यदु येन कण्व धनस्पृतत । राये सु तस्य धीमहि ॥१८॥
८।७—

७. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजं ॥६॥
मा ते अस्या सहसावन् परिष्टावधाय भूम हरिव परादै ।
त्रायस्व नो वृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियास सूरिषु स्याम ॥७॥
प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय ।
नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतियिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥
—७।१९

८ त्वमपो यदवे तुर्वशायारमय सुदुघा पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं स ह यद्वामुशना रन्तदेवा ॥८॥
—५।३१

गावावरषा सूयवस्यू अन्तरश्वे चरतो रेरिहाणा ।
तुर्वशं परादाद्भीतो देवघाताय शिक्षन् ॥७॥
—६।२७

४. हे इन्द्र, घुननेवाले तुमने नदियोंकी तरह घुननेवाले जलोंको बहाया। हे शूर, जब तुम समुद्रमें बाट करते हो, तब तुर्वश और यदुको कल्याण सहित पार करो ॥९॥

—अगस्त्य, १।१७४

५. हे शतक्रतु (इन्द्र), तुमने नर्य, तुर्वश, यदुकी रक्षा की, तुमने वय्य, तुर्वीतिकी रक्षा की। तुमने धनके लिए संग्राममें एतशके रथकी रक्षा की, तुमने निम्नानवे गढ़ियोंको नष्ट किया ॥६॥

—वत्स आगिरस, १।५४

६ जिसमें तुर्वश-यदुकी रक्षा की, जिसमें तुमने धनाभिलाषी कण्वकी (रक्षा की), उस (रक्षा) को धनके लिए हम चाहते हैं ॥१८॥

—वत्स कण्व-पुत्र, ७।८

७ हे इन्द्र, भरत रातहव्य (हविदाता) सुदासके के लिए यह तुम्हारे भोजन सनातन हैं। हे कामवर्षक, तुम्हारे लिए दोनों घोड़ोंको मैं जोतता हूँ। हे महाशक्ति, हमारे स्तोत्र (और) अन्न तुम्हारे पास पहुँचें ॥६॥ हे बलवान् और अश्ववान्, तुम्हारे इस यज्ञमें हम अपके भागी न हों। हमें निरापद अपनी रक्षाओं द्वारा बचाओ, ताकि हम सूरियों (राजकुमारों) में तुम्हारे प्रिय होवें ॥७॥

हे मघवा (धनवान्), तुम्हारी दृष्टि (यज्ञ) में हम नर (लोग) प्रिय सखा हो घरमें मौज करें। अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाई की इच्छासे (तुम) तुर्वश यदुको मारो ॥८॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. हे इन्द्र, तुमने यदु और तुर्वशके लिए परले पार उर्वर नदियाँ रोकीं, कुत्सके ऊपर आये उग्र (दस्यु) को तुमने मारा, जबकि तुम दोनों उशना और देवोंके साथ आये ॥८॥

अवस्यु आत्रेय, ५।३१

९ जिनकी मुदुल-इच्छुक लेलिहान लाल गोवें (जो पृथिवीके) भीतर विचरण करती हैं। उस (इन्द्र) ने सृजयके लिए दूरसे आकर तुर्वशको दिया, देवयानके लिए पृचीयानको प्रदान किया ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२७

१०. य आनयत्परावत सुनीती तुर्वश यदु।
इन्द्र स नो युवा सखा ॥१॥

—६।४५

११. यदिन्द्राग्नी यदुषु तुर्वशेषु यद् द्रुह्यप्वनुषु पूरुषु स्थ ।
अत परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिवत सुतस्य ॥८॥

—१।१०८

१२ यदा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यो वा जने यत्पुरौ कच्च वृष्ण्य।
अस्मभ्य तद्रिरीहि स नृपाह्ये मित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

—६।४६

१३. पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव।
श्रुष्टि चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विपूची ॥६॥
अध श्रुत कवष वृद्धमप्स्वनु द्रुह्यु नि वृणक् वज्रबाहु ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्य त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२॥
नि गव्यवो नवो द्रुह्यवश्च षष्टि शता सुषुपु षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षट् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

—७।१८

१४ अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन् त्वष्टा वज्र पुरुहूत द्युमन्त।
ब्रह्माण इन्द्र महयन्तो अर्केरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

—५॥३१

१५ यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभि ।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१॥

—८।४

१६. य ईं राजानावृतुया विदवेद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत्।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९॥

—६।६२

१० सुन्दर आनयनमें जो तुर्वश, यदुको पश्चिममें ले आया, वह युवा इन्द्र हमारा सखा है ॥१॥

—शयु बार्हस्पत्य, ६।४५

११. हे इन्द्र-अग्नि, यदि तुम यदुओ, तुर्वशोमें, यदि द्रुह्युओ, अनुओं, पुरुओंमें हो, तो भी हे प्रभुओ, आओ, और सुत (छाने) सोमको पियो ॥८॥

—कुत्स आंगिरस, १।१०८

१२ हे मघवन्, तृक्षु या द्रुह्यु जनमें, पुरुमें जो बल है, उसे हमें दो, ताकि मनुष्य-पराजयके युद्धमें हम अमित्रोंको पराजित करें ॥८॥

—शयु बृहस्पति-पुत्र, ६।४६

१३ हव्यदाता यजकर्ता, तुर्वश धनके इच्छुक पानीमें मछलियोंकी तरह वर्धे थे। भृगुओं और द्रुह्युओंने सुना, दूसरों (तुर्वश-यदु) के बीच सखा (इन्द्र) ने सखा (सुदास) की रक्षा की, ॥६॥

वज्रवाहु (इन्द्र) ने प्रसिद्ध वृद्ध कवषको पानीमें डुबाया, द्रुह्युको नष्ट किया। मित्रताको स्वीकार करते यहाँ जो तुम सखाके पास आये, वे तुम्हारे पीछे आनन्दित हुये ॥१२॥

छूट-इच्छुक अनु और द्रुह्यु साठ सौ छ हजार और छियानठ वीर सो गये (भालोंके लिए) यह सब पराक्रम इन्द्रने किये ॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१४ हे पुरुहूत (इन्द्र), अनुओंने तुम्हारे घोड़ोंके लिए रथ तैयार किया, अहि (राक्षस) को मारनेके लिए त्वष्टाने प्रकाशमान वज्रको, ब्राह्मणने स्तुतियोंसे तुम्हें बढ़ाया ॥४॥

—अयस्यु आत्रेय, ५।३१

१५ हे इन्द्र, यद्यपि तुम पूर्व, उत्तर या दक्षिणमें आदमियों द्वारा बुलाये जाते हो, तो भी वीर अनुके और तुर्वशके साथ रहते हो ॥१॥

—देवातिथि काण्व, ८।४

१६ जो उत्तरे अनुसार अभिषव राजाओंकी पूजा करते हैं, उसे मित्र और वरुण जानते हैं। यह गुप्त राक्षसों, छद्म बोलनेवालोंके अनयके लिए अस्त्र फेंकते हैं ॥२॥

—मेधातिथि, ६।६२

१७. याभि॰ पक्थमवथो याभिरभ्रिगुं याभिर्वभ्रुं विजोषस।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुरं॥१०।
—८।२२

१८. आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः।
आ यो नयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नृन्॥१॥
दुराध्यो अदितिं स्रवयन्तो चेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीं।
महूना विव्यक् पृथिवी पत्यमान॰ पशुष्कविरशयच्चायमानः॥८॥
इयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्व जगाम।
सुदास इन्द्र सुतुका अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः॥९॥
—७।१८

१९. इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु न॥१॥
—७।४६

२०. उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो वोळ्यविथ्री मरुत्सखा चोद राधो मघोना॥२॥
—७।५६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. स हि ष्मा धन्वाक्षित दाता न दात्या पशु।
हरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषि.॥७॥
—५।७

१७. हे अश्विद्वय, जिन चिकित्साओंसे तुमने पक्थकी रक्षा की, जिनसे अध्रिगुकी, जिनसे असहाय वध्रिकी रक्षा की, उनके साथ जल्दी आकर आतुर (बीमार) की चिकित्सा करो ॥१०॥

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।२२

१८. पक्थ, भलान, अलिन, विषाणी, शिव आये। जो (इन्द्र) आर्यकी गायें तृत्सुओंके लिए लाया, युद्धमें लोगोंको जीता ॥७॥

दुर्विचार, अविचारी (शत्रु) के अदिति (पृथिवी) को खोदते परुष्णी (रावी) पर अधिकार कर लिया। (इन्द्रकी) महिमासे चायमान कवि पशुकी तरह पृथिवीपर गिरते मारा गया ॥८॥

अर्यकी तरह अनर्यके लिए परुष्णीके पास वह पहुँचे। ठीक हो वह (जल) अपने स्थानपर चला गया। सुदासके लिए इन्द्रने मनुष्योंमें वकवादी, बहु-सन्तानी शत्रुओंको मारा ॥९॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१९ भरतो, स्थिर धनुषवाले, क्षिप्र बाण फेंकनेवाले, अस्त्रवान्, अपराजित, विजेता, विधाता, तीक्ष्णायुध रुद्र के लिये यह मेरी स्तुति सुनो ॥१॥ —७।४६

२० हे शुभे, तेरी महिमा है, जो कि पूरु लोग दोनों तटों पर बसते हैं। सो तुम रक्षिका हमें योग्य दो, मरुतों की सखी होकर धनवानों के धन को भेजो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।९६

अध्याय ३

वर्ण, वर्ग

१. मुखोंके मूछ-दाढ़ी वाले, नखोंके दाँतवाले अग्निहोत्र-शक्ति यह महान् अग्नि दराती से जैसे पशु, (काटते हैं), वैसे उजाड़ मरुके प्रजाको है ॥७॥

२ हरिश्मशारुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिषद्धरी ॥८॥
—१०।९६

३. ऋतावान यज्ञिय विप्रमुक्थ्यमाय दधे मातरिश्वा दिविक्षय।
त चित्रयाम हरिकेशमीमहे सुदीतिमग्नि सुविताय नव्यसे ॥१३॥
—३२

४ हिरण्यकेशो रजसो विसारे हिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।
शुचिभ्राजा उषसो न वेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्या ॥१॥
—१।७९

५ एवेदिन्द्र सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हरिशिप्रः स त्वा।
एवा हि जातो असमात्योजा पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥
—६।२९

६ श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु।
उत्तिष्ठन्वोचे परि वर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठा. ॥१॥
—७।३३

७ इहेह व स्वतवस कवय. सूर्यत्वच।
यज्ञ मरुत आ वृणे ॥११॥
—७।५९

८ खे रयस्य खे नम खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणो सूर्यत्वचं ॥७॥
—८।८०

२ सुनहले (पीले) मूछ-दाढ़ीवाले-पीले केशवाले पत्थर से दृढ़, सोमपायी अश्व जो पेय में तुरन्त बढ़ते हैं। जो द्रुतगामी घोड़ों द्वारा यज्ञ में आते हैं। दोनों घोड़ों पर चढ़े सारी बाधाओं को पार करते हैं॥८॥

—वर आंगिरस, १०।९६

३ शक्तिमान् यज्ञ-योग्य विप्र, स्तुति-योग्य, द्यौ निवासी जिसे वायु ने स्थापित किया। उस विचित्र गतिवाले सुनहले केश-युक्त सुदीप्त अग्नि की स्तुति नई सम्पत्ति के लिये हम करते हैं॥१३॥

—विश्वामित्र, ३।२

४ लोकों के फैलाव में सुनहले केश-युक्त, कपमान सर्पना द्रुतगामी वायु सा शुद्ध प्रकाश द्वारा सच्ची यशोवती उषाओं की तरह, कर्मियों सा जानता है॥१॥

—गोतम रहूगण-पुत्र, १।७९

५ सुनहले मुकुट वाले, सुआहूत, सहायक-बिना सहायक इन्द्र धन देते हैं। इस प्रकार प्रकट अत्यन्त ओजस्वी इन्द्र बहुत से शत्रु दस्युओं को मारते हैं॥६॥

—भरद्वाज, ६।२९

६ गोरे, दाहिनी और जूआ रखनेवाले सुबुद्धि वे वासिष्ठ मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञ उठते में आदमियों को कहता हूं, "वसिष्ठ-सन्तान मुझसे दूर न जायें"॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३३

७ स्वयं शक्तिमान् सूर्य के जैसे वर्णवाले हे कवि मरुतो, यज्ञ यज्ञ में मैं तुम्हें वरण करता हूं॥१९॥

—वसिष्ठ, ७।५०

८ हे शतक्रतु (इन्द्र), रथ के छिद्र, घोड़े के छिद्र में तीन बार पवित्र करते तुमने अपाला को सूर्य के सर्म जैसे चर्मवाली बना दिया॥७॥

—अत्रि आत्रेयी, ८।८०

९. तुविग्रीवो वपोदर सुवाहुरन्धसो मदे। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८।१७

१०. क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानत । ब्रह्मा कस्त सपर्यति ॥७॥
—८।५३

११. पिशंगरूपः सुभरो वयोधा श्रुष्टी वीरो जायते देवकाम ।
प्रजा त्वष्टा विष्यतु नाभिमस्मे अथा देवानामप्येतु पाथ ॥९॥
—२।३

१२ अदेदिष्ट वृत्रहा गोपतिर्गा अन्त कृष्णां अरुषैर्द्धामभिर्गात् ।
प्र सूनृता दिशमाननृतेन दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वा ॥२१॥
—३।३१

१३ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि ।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

१४ शत मे गर्दभाना शतमूर्णावतीना । शत दासा अतिसृज ॥३॥
—(वालखिल्य) ८।८

१५ शुभ्र नु ते शुष्म वर्धयन्त शुभ्र वज्र बाह्वोर्दधाना ।
शुभ्रस्त्वमिन्द्र वावृधानो अस्मे दासीर्विश सूर्येण सह्या ॥४॥
—२।११

९ विस्तृत-ग्रीव स्थूल-उदर सुन्दर-बाहु वाले इन्द्र सोम के मद में शत्रुओं को मारते हैं ॥८॥

—इरिम्बिठ काण्व, ८।१७

१० वह वृषभ (पहलवान), युवा, विशाल-ग्रीव न झुकनेवाला (इन्द्र) कहा है? कौन ब्राह्मण उनकी स्तुति करता है ॥८॥

—प्रगाथ काण्व, ८।५३

११ हमारे पिशंग-रूप (सुवर्ण-वर्ण), सुघर, आयुष्मान, क्षिप्रकारी देवभक्त वीर (पुत्र) जन्में। त्वष्टा (हमें) नाभि-सन्तान देवें, वह देवों के स्थान को जायें ॥९॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।३

१२ शत्रुनाशक गोस्वामी (इन्द्र), गायें प्रदान करें। अरुण तेज द्वारा कालों के भीतर पहुचा। उसने अनृत सुन्दर वचन निगलाने वाले अपने सारे दरवाजों को खोल दिया ॥२१॥

—विश्वामित्र, ३।३१

आर्यों की नाक अधिक लम्बी ऊँची होती थी, जब कि उनके विरोधी छोटी नाकवाले इसीलिये उन्हें वह अन्नास कहते थे। ऋक्५।२९।१०।

१३ उस वृत्रहा पुरन्दर (पुरनाशक) इन्द्र ने जन्मसे काले दासों को नष्ट किया। उसने मनुष्य के लिये पृथिवी और जल को जन्माया। वह यजमानकी आकांक्षा को पूरा करता है ॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।२०

१४. मुझे सौ गदहे, सौ भेड़ें, सौ दास उस (पूतक्रतु-पुत्र) ने दिये ॥३॥

—पृषध्र, वालखिल्य, ८।८

१५ हे इन्द्र, (हम) तुम्हारे शुभ वज्र को बढ़ाते तुम्हारी दोनों बाहों में शुभ वज्र को धारण करते हैं। तुम सूर्य के साथ शुभ बढ़ते हुये दासीय प्रजाओं को हमारे लिये पराजित करो ॥९॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र २।११

१६ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधर गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
—२।१२

१७ विश्वस्मात् सीमधमा इन्द्र दस्यून्विशो दासीरकृणोरप्रशस्ता ।
अवावेथाममृणत नि शत्रूनविन्देथामपचितिं वधत्रै ॥४॥
—४।२८

१८ क अदान्मे पौरुकुत्स्यः पचाशत नाम त्रसदस्युर्वधूना ।
महिष्टो अर्य सत्पति ॥३६॥
उत मे प्रयियोर्वयियो सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणा सप्ततीना श्याव प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति ॥३७॥
—८।१९

१८ ख. दास (उपमा १५।६३)

१९. शर्यणावति सोममिन्द्र पिवतु वृत्रहा ।
वल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महद् इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥
आ पवस्व दिशा पत आर्जीकात् सोम मीढ्व ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत ॥२॥
पर्जन्यवृद्ध महिष त सूर्यस्य दुहिता भरत् ।
त गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्त सोमे रसमादधु ॥३॥
ऋत वदन्नृतद्युम्न सत्य वदन्त्यसत्यकर्मन् ।
श्रद्धा वदन्त्सोम राजन्धात्रा सोम परिष्कृत ॥४॥
—९।११३

२० ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य. कृत ।
ऊरू तदस्य यद् वैश्य पद्भ्या शूद्रो अजायत ॥१२॥
—१०।९०

१६ जिसने इस सारे नश्वर (विश्व) को बनाया, जिस गुह्य (इन्द्र) ने दास वर्ण को नीच गुहा-निवासी बनाया । जिस स्वामी ने शिकारी की तरह लक्ष्य को जीत कर धन को ग्रहण किया । हे लोगो, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१२

१७ हे इन्द्र, तुमने दस्युओं को सभी से अधम बनाया, दासीय प्रजाओं को अप्रशस्त किया। (इन्द्र और सोम ने) शत्रुओं को बाधा दी, वध के हथियारों से बदला लिया ॥४॥

—वामदेव गोतम-पुत्र, ४।२८

१८ पुरुकुत्सा-पुत्र त्रसदस्यु ने जो कि अतिमहान् अर्य (स्वामी) सत्पति है, मुझे पचास दासियाँ दीं, ॥३६॥

दान-पति धनी सुनेता श्यावने भी मुझे सुवास्तु के तट पर मजबूत घोड़ा और तीन-सत्तर गायें दीं ॥३७॥

—सोभरि कण्व-पुत्र, ८।१९

१९ वृत्र-हन्ता इन्द्र ने शर्यणावत में सोम पिया । अपने में बल धारण करने महान् विक्रम करने को तैयार हो हे इन्दु (सोम), इन्द्र के लिये बहो ॥१॥

दिशाओं के पति, सिक्त हे सोम, आर्जीक में बहो । ऋत वचन, सत्य, श्रद्धा और तप द्वारा चुवाये, हे सोम इन्द्र के लिये बहो ॥२॥

उस पर्जन्य से बड़े महिष (महान्) गोमती सूर्य की दुहिता ले आई । उसे गन्धर्वों ने ग्रहण किया, सोममें रस स्थापित किया ॥३॥

ऋतवादी ऋत-प्रकाशक सत्यवादी सत्यकर्मा, श्रद्धावादी हे सोम-राजा विधाता द्वारा परिष्कृत ० ॥४॥

—नृमेध मर्गेचि-पुत्र, ९।११३

२०. इस (पुरुष) का मुख ब्राह्मण हुआ, दोनों बाहु ने राजन्य (क्षत्रिय) बना। जो इसकी दोनों जांघें हुईं, जो कि वैश्य (और) दोनों पैरों से शूद्र जनमा ॥१२॥

—नारायण, १०।९०

३. आदिद्धनेम इन्द्रियं यजन्त आदित्पवित्र पुरोळाश रिरिच्यात्।
आदित् सोमो विपपृच्यादसुष्वीनादिज्जुजोष वृषभ यजध्यै ॥५॥
—४।२४

वृषभ पकाना १५।३९, ९७–१००
इन्द्र का ३५ बैल खाना १६।३।(१४)

४. त्व नो वायवेपामपूर्व्य सोमाना प्रथम पीतिमर्हसि सुताना पीतिमर्हसि।
उतो विहुत्मतीना विशा ववर्जुषीणा।
विश्वा इत्ते धेनवो दुह आशिर घृत दुहत आशिर ॥६॥
—१।१३४

५. किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिर दुहे न तपन्ति घर्म्मं।
आ नो भर प्र मगन्दस्य वेदो नैचाशाख मघवन्नन्धया न ॥१४॥
—३।५३

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतास । शुक्रा आशिरं याचन्ते।१९।
ता आशिर पूरोळाशमिन्द्रेम सोम श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥११॥
—८।२

परि सोम प्र धन्वा स्वस्तये नृभि पुनानो अभि वासयाशिर।
ये ते मदा आहनसो विहायसस्तेभिरिन्द्र चोदय दातवे मघ ॥५॥
—९।७५

अय पुनान उपसो विरोचयदय सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।
अयं त्रि सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सर ॥२१॥
—९।८६

३. तब कोई इन्द्र के पराक्रम की पूजा करते, कोई पकाते, पुरोडाशको तैयार करके देते, अदानियों को सोम सतावे, हम यजन के लिये वृषभ प्रस्तुत करते हैं॥५॥

—वामदेव, ४।२४

४ हे सर्वपुरातन वायु, (तुम) इन सोमों के प्रथम पान करने योग्य हो, छाने हुओं के प्रथम पान के योग्य हो। हवन करनेवाली निर्दोष प्रजाओं की आहुतियों को (तुम स्वीकार करते हो)। सारी धेनुयें तुम्हारे लिये दूध-घी दुहाती, दूध दुहाती हैं[1] ॥६॥

—गरुत्मान् दिवोदास-पुत्र १।१३४

५ हे मघवन् (इन्द्र), फोक्टों (अनार्यों के देश) में तुम्हारी गायें क्या करती हैं? न आशिर (दूध) दुहाती हैं, न घर्म (दूध) तपाती हैं। नैवाशागर (नगर) को नष्ट करो, प्रमगंद के धन को हमारे लिये लाओ॥१४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह हमारे छाने श्वेत तीव्र सोम हैं, यह आशिर (दूध) चाहते हैं॥१०॥

हे इन्द्र, उन (सोमों) को आशिर, पुरोडाश से मिलाओ। मैं तुम्हें धनवान् सुनता हूं॥११॥

—प्रियमेध आंगिरस, ८।२

हे सोम, स्वस्ति के लिये तुम चारों ओर बहो। मनुष्यों द्वारा पूत हुये तुम दूध से मिलो। जो तुम्हारे पैनिल तीव्र मद हैं, उनके द्वारा इन्द्रको धन देने के लिये प्रेरित करो॥५॥

—रवि भार्गव, ९।७५

यह पुना (सोम) जाता उषाओंको प्रकाशमान करता है। यह सिन्धुओं (नदियों) के लिये स्नान बनाता है। यह २१ धार दुहाता, मदकर सोम द्रुत में सुस्थित होता है॥२१॥

—पृश्नि, जात, ९।८६

अह तदासु धारय यदासु न देवश्च न त्वष्टा धारयद्रुशत्।
स्पार्हं गवामूध सु वक्षणास्वा मधोर्मधु श्वात्र्य सोममाशिरं॥१०॥
—१०।४९

इन्द्रो वल रक्षितार दुघाना करेणेव विचकर्त्ता रवेण।
स्वेदाजिभिराशिरमिच्छमानो रोदयत् पणिमाग अमुष्णात्॥६॥
—१०।६७

६ उप न सुतमागहि सोममिन्द्र गवाशिर। हरिम्या यस्ते अस्मयु॥१॥
इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव। आगत्या वृषभि सुत॥७॥
—३।४२

७ सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिर।
निम्न नयन्ति सिन्ववोभि प्रय॥७॥
—५।५१

८ विश्वेत्ता विष्णुरामरदुरुक्रमस्त्वेपित।
शत महिपान् क्षीरपाकमोदन वराहमिन्द्र एमुष॥१०
—८।६६

१ अश्वमेघ—

मा नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुत परिख्यन्।
यद्वाजिनो देवजातस्य सप्ते प्रवक्ष्यामो विदथे वीर्याणि॥१॥

यन्निर्णिजा रेक्णसा प्रावृत स्य राति गृभीता मुखतो नयन्ति।
सुप्राङजो मेम्यद्विश्वरूप इन्द्रापूष्ण प्रियमप्येति पाथ॥२॥

मैंने इन (गायों) में उसे स्थापित किया, जिसे इनमें न किसी देवता ने न त्वष्टा ने स्थापित किया। गायों के दोनेवाले स्तनों में मधुक्त भी मधु स्पृहणीय नक्षेद सोम आशिर (दूध) है ॥१०॥

—इन्द्र, १०।४९

धेनुओं के रक्षिक बल को इन्द्र ने हुंकार के साथ हाथ से ही चीर डाला। मस्तों के साथ आशिर (दूध) को चाहते गायोंको छीन लिया, पणि को रुलाया ॥६॥

—अयास्य आंगिरस १०।६७

६ हे इन्द्र, हम पर कृपा कर अपने दोनों घोड़ों (के रथ) द्वारा हमारे गोदुग्धवाले छाने सोम के पास आओ ॥१॥

हे वाहन-युक्त इन्द्र, आकर हमारे छाने इस गवाशिर और यवाशिर को पियो ॥७॥

—विश्वामित्र, ३।४२

७. इन्द्र के लिये वायु के लिये, दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम छाने है। जैसे सिन्धु (नदियां) निम्न (उपत्यकाओं) की ओर जाती हैं, वैसे (तुम) आओ ॥७॥

—वसिष्ठ, ५।५१

८. हे इन्द्र, तुमसे प्रेरित वज्रगामी वृत्र उन सबको लाया—सो महिषों, क्षीरपाक, ओदन, वराह, सोर ॥१०॥

—कुत्सपुत्र, ८।६९

१ अश्वमेध

जब देव-कल्प सोमगामी घोड़े के पगतल को विश्व (सब-सभा) में हम बजायें, तो वरुण, मित्र, अर्यमा, वायु, इन्द्र, मरुद्गण सब हमारी निन्दा न करें ॥१॥

जब स्नान जल में डूबे उसे मूल पाद वाले कहते हैं, तो इसी-लोग इन्द्र-सूनृत के लिए स्नान को निमित्तता करते लगते हैं ॥२॥

एपच्छाग पुरो अश्वेन वाजिना पूष्णो भागो नीयते विश्वदेव्य ।
अभिप्रिय यत्पुरोळाशमर्वता त्वष्टेदेन सौश्रवसाय जिन्वति ॥३॥

यद्वविष्यमृतुशो देवयान त्रिर्मानुपा पर्यश्व नयन्ति ।
अत्रा पूष्ण प्रथमो भाग एति यज्ञ देवेम्य प्रतिवेदयन्नज ॥४॥

होताध्वर्युरावया अग्निमिन्धो ग्रावग्राम उत शस्ता सुविप्र ।
तेन यज्ञेन स्वरकृतेन स्विष्टेन वक्षणा आपृणध्व ॥५॥

यूपव्रस्का उत ये यूपवाहाश्चपाल ये अस्य यूपाय तक्षति ।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥

यद्वाजिनो दामसन्दानमर्वतो या शीर्षण्या रशना रज्जुरस्य ।
यद्वाघास्य प्रभृतमास्ये तृण सवाताते अपि देवेष्वस्तु ॥८॥

यदश्वस्य क्रविपा मक्षिकाश यद्वा स्वरौ स्वधितौ रिप्तमस्ति ।
यद्वस्तयो शमितुर्यन्नखेषु सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ॥९॥

यद्गवघ्यमुदरस्यापवाति य आमस्य क्रविपो गन्धो अस्ति ।
सुकृतातच्छमितार कृण्वतूत मेध श्रृतपाक पचन्तु ॥१०॥

यत्ते गात्रादग्निना पच्यमानादभिशूल निहतस्याव धावति ।
मातद्भूम्यामाश्रिपन्मा तृणेषु देवेम्यस्तु दशद्म्यो रातमस्तु ॥११॥

ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निर्हरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

बलशाली अश्व द्वारा आगे आगे यह बकरा ले जाया जाता है, जो सारे देवों वाला तथा पूषन् का भाग है। जब त्वष्टा सुयश के लिये घोड़े के साथ इसे अतिप्रिय पुरोडाश के तौर पर भेजता है ॥३॥

जब प्रमानुसार देवताओं की ओर जानेवाले हविष् या घोड़े को मनुष्य तीन बार ले जाते हैं। तो पूषन् का प्रथम भाग बकरा देवताओं को सूचना देते यहाँ यज्ञ में प्राप्त होता है ॥४॥

होता, अध्वर्यु, आवय (शोषक), अग्नीध्र, सिलबट्टा पकड़नेवाला, प्रशस्ति गानेवाला, सुदीप्र—ये सारे ऋत्विक् अच्छी प्रकार किये गये उस यज्ञ द्वारा वाहिकाओं नदियों को पूर्ण करें ॥५॥

जो यज्ञस्तम्भ (यूप) काटनेवाले, और जो यूप ढोनेवाले जो इस यूप के लिये पलाश काठ का तक्षण करते हैं, और जो घोड़े के लिये पचनपात्र को लाते हैं। उनकी सहायता हमारे काम को ऐसे पूरा करे ॥६॥

शीघ्रगामी घोड़े के बाँधने की जो रस्सी है, जो नितल बाँधने की और इसके लगामकी रस्सी है, जो इसके मुह में रखा तृण है, वह सब सभी देवों के विषय में होवे ॥८॥

मक्खियों द्वारा खाया गया अथवा जो काष्ठ में और रस्सी में लिपटा हुआ घोड़े का मांस है। काटने वाले के दोनों हाथों में या नखों में जो लगा है। सो सभी देवों के विषय में होवे ॥९॥

जो पेट का न पचा भोजन बाहर आता है, जो कच्चे मांस का गंध है। उसे काटनेवाला सुन्दर बनाये और बलि को सुन्दर पाक से पकावें ॥१०॥

हे अश्व, आगे पहाये जाते वास के मुख पर रक्खे तेरे शरीर से बहता है। वह न भूमि पर पड़े, न तृणों पर, बल्कि वह देवताओं के लिये दान होवे ॥११॥

जो घोड़े को पका देखते हैं, जो कहते हैं "उतारो, रोका है"। जो घोड़े का मांस भिक्षा (मांस-भोजन) के लिये बैठे हैं, उनकी सहायता हमारे कामको पूरा करे ॥१२॥

यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्रणि यूष्ण आसेचनानि ।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ॥१३॥

निक्रमण निपदन विवर्तन यच्च पड्वीशमर्वत ।
यच्च पपौ यच्च घासि जघास सर्वा ताते अपि देवेष्वस्तु ॥१४॥

मा तवाग्निर्ध्वनयीद्ध मा गन्धिर्मोखा भ्राजत्यभिविक्त जघ्रि ।
इष्ट वीतमभिगूर्तं वपट्कृत त देवास प्रतिगृभ्णन्त्यश्व ॥१५॥

यदश्वाय वास उपस्तृणत्यधीवास या हिरण्यान्यस्मै ।
सदानमर्वत पड्वीश प्रिया यामयन्ति ॥१६॥

यत्ते सादे महसा शूकृतस्य पार्ष्ण्या वा कशया वा तुतोद ।
स्रुचेव ता हविषो अध्वरेषु सर्वा ताते ब्रह्मणा सूदयामि ॥१७॥

चतुस्त्रिंशद्वाजिनो देववन्धोर्वङ्क्रीरश्वस्य स्वधिति समेति ।
अच्छिद्रा गावा वयुना कृणीत परुष्परनुघुष्या विशस्त ॥१८॥

एकस्त्वष्टुरश्वस्या विशस्ता द्वा यन्तारा भवतस्तथ ऋतु ।
या ते गात्राणामृतुथा कृणोमि ताता पिण्डाना प्रजुहोम्यग्नौ ॥१९॥

मा त्वा तपत् प्रिय आत्मापि यन्त मा स्वधितिस्तन्व आतिष्ठपत्ते ।
मा ते गृध्नुरविशस्तातिहाय छिद्रागात्राण्यसिना मिथूक ॥२०॥

न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेपि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृषती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥

मांस पकाने की हड्डियां का जो परखना है, जो पात्रों में जूसका डालना है, चरुओं का उच्छणि (ढक्कन), अकुश, काटने का पीढा अश्व को परिभूषित करते हैं ॥१३॥

जाने का स्थान, पड़ने का स्थान, घूमने का स्थान और जो घोड़े की पैर की रस्सी है, एव जो उनने पिया, जो उनने खाया सो सभी देवों के विषय में होवे ॥१४॥

धूम की गधवाला अग्नि तुझे शब्दायमान न करे, न पक्की हड्डिया गध दे या टूटे। प्रिय, अपेक्षित, वषट्कार द्वारा बलि दिये उस अश्व को देवता ग्रहण करते हैं ॥१५॥

जो अश्व के लिये वस्त्र फैलाते हैं, जो ऊनी वस्त्र और सोना उसके लिये फैलाते हैं, घोड़े को बाधने की रस्सी, पैर की रस्सी सो प्रिय वस्तुयें देवों के पास प्रदान करते हैं ॥१६॥

हे अश्व, अधिक उतावलेपन से जो तुझे एड़ी से या चाबुक से मारा गया है, उसे हवि-चरुओं में घृत की तरह मन्त्र के साथ मैं फैलता हूं ॥१७॥

देव-प्रिय बलशाली अश्व को चौतीस पसलियों में यज्ञ समाता है। चतुराई से गात्रों को छिद्र-रहित काटो, पोर-पोर को सहते काटो ॥१८॥

त्वष्टा के घोड़े का एक भाग काटनेवाले का, दो सभालने वाले का होता है, यह वैसा (विधान) है। व्रत के अनुसार तेरे गात्रों को जो मैं काटता हूं, उन-उनके पिण्डों को अग्नि में हवन करता हूं ॥१९॥

बाहर निकलते तेरे प्रिय शरीर को आग न तपाये, यज्ञ तेरे शरीर में न पका रहे। तीखी अविगल्भा (काटनेवाला) तलवार द्वारा छिन्न गात्र जोड़ को छोड़ कर न बनाये ॥२०॥

यह तू मरता नहीं है, न पापवश होता है। तू सुगम मार्गों से देवों के पास जाता है। इन्द्र के दोनों घोड़े (हरी) सप्ता के सुमार्ग (रथ में) जुतते। (अश्विनों के वाहन) राससभ (गदहे) के सुने में दो घोड़े (रथ-सचालक) तनित (जुतते) ॥२१॥

सुगव्य नो वाजी स्वश्व्य पुस पुत्रा उत विश्वापुष रयि।
अनागास्त्व नो अदिति कृणोतु क्षत्र नो अश्वो वनता हविष्मान् ॥२२॥
—१।१६२

९ यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
उष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना. परिभूषन्त्यश्व ॥१३॥
—१।१६२

२. अन्न

१० आजनगर्धिं सुरभि वहवन्नामकृषीवला।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिप ॥६॥
—१०।१४६

११. असौ य एपि वीरको गृह गृह विचाकशत्।
इम जभसुत पिव धानावन्त करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिन ॥२॥
—८।८०

१२ धानावन्त करभिणमपूपवन्तमुक्थिन। इन्द्र प्रातर्जुषस्व न ॥१॥
पूपण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय धानाः।
अपूपमद्धि सगणो मरद्भि सोम पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
—३।५२

१३ य एनमादिदेशति करम्मादिति पूपण। न तेन देव आदिशे ॥१॥
—६।५६

सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वो सुत। करम्भमन्य इच्छति ॥२॥
—६।५७

यह अन्न हमें सुन्दर गायोंवाला, सुन्दर अश्वोंवाला, पुरुषों पुत्रों और सारी स्त्रियों वाला धनवाला करे। अदिति, तुम हमें निष्पाप करो, घृतवाला अन्न हमें क्षत्र (राजशक्ति) प्रदान करे ॥२२॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

९ जो कि मांस पकाने की उष्णा (हण्डिया) का देखना है, जो जूस डालने के पात्र है। चरुओं (बर्तनों) को गरम रखने वाले ढक्कन है, सूना (काटने के पीढे) और चिन्ह-करना (वे) अश्व को तैयार करते हैं ॥१३॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

१० सुगन्धवाली (गोधी) बिना बिनानों के बहुत अन्नोंवाली, मृगों की माता अरण्यानी (वन) की मैंने स्तुति की ॥६॥

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

११ यह जो तुम प्रकाशमान और घर-घर में जाते हो। (सो) इस धानायुक्त सतू-सहित अपूपवान् स्तुति-सहित सोम को पियो ॥२॥

—अपाला आत्रेयी, ८।८०

१२. हे इन्द्र, धानावान् सतू-युक्त अपूपवान् स्तुति-समन्वित हमारे सोम को प्रेम स्वीकार करो ॥१॥

पूषन्सहित, हरे घोड़ेवाले सुनहरे इन्द्र के लिये हमने सतू और धाना बनाया है। हे शूर, विद्वान्, वृत्रहन्ता, गण-सहित मरुतों के साथ अपूप (रोटी) खाओ, सोम पियो ॥३॥

—विश्वामित्र ३।५२

१३ जो इस सतूभक्षी पूषन् का स्मरण करता है, उसे (दूसरे) देव को स्मरण करना नहीं पड़ता ॥१॥

—भरद्वाज, ६।५६

पीने के लिये दो चमुओं (पात्रों) में छाने सोमके पास एक बैठता है, एक पुरन्ध्र (सतू) चाहता है ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५७

१४. सवतुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखाय सख्यानि जानते भद्रैषा लक्ष्मीर्निहिताधि वाच ॥२॥

—१०।७१

१५ यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुल ॥१॥

—१।२८

१६ यूपव्रस्त्रा उत ये यूपवाहाश्चषाल ये अश्वयूपाय तक्षति।
ये चार्वते पचन स भरन्त्युतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥६॥

—१।१६२

आजनगधि सुरभि बृहवन्नामकृषीवलं।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशसिष ॥६॥

—१०।१४६

बेर का फल भी खाया जाता था (१५।८५)

१४. जैसे लोग छलनी द्वारा सत्तूको छानते, वैसे जब धीरों ने मन द्वारा छानी वाणी बनाई। यहा (इस समय) सखा मित्रता को जानते हैं, उनकी वाणी में भद्रा लक्ष्मी निहित होती है॥२॥

—बृहस्पति, १०।७१

१५ जहा मोटे आकारवाले पत्थर सोम चुआने के लिये उठाये जाते हैं, वहा हे इन्द्र, लालसा के साथ ओखल में निचोड़े (सोम) को पिओ॥१॥

—शुन शेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२८

१६ जो यूप (स्तम्भ-काष्ठ) काटते और जो यूप छीलते, जो अश्व यूप के लिये चमास (कुशी) गढ़ते हैं, और जो घोड़े के पकाने का पात्र तैयार करते हैं, उनकी अनुमति हमें प्राप्त हो॥६॥

—दीर्घतमा ऊचथ्य-पुत्र, १।१६२

हे इन्द्र, जब तुमने तीन सौ भैंसों का मास खाया सोम के तीन सवनों को पिया। सारे देवों ने चिल्लाते हुये इन्द्र के लिये पुकारा, जब उसने अहि (वृत्र) को मारा॥८॥

—गौरीवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

हे इन्द्र, तुम्हारे लिये ऋत्विक् शीघ्र मस्त करने वाले सोमों को पत्थर से तैयार करते हैं, तुम उन्हें पीते हो। वह तुम्हारे लिये साठों (वृषभों) को पकाते हैं, भोजनार्थ पकाये गये उन्हें हे मघवन्, तुम खाते हो॥३॥

—वसुश्रुत, १०।२९

अपने खानेकी ही चीजें आर्य अपने देवताओंको अर्पित करते थे। अश्व, गौ, मेष ये बलिपशु थे। इनके उल्लेखके बारेमें देखो—

अश्व—१।१६२।१-२१, १।१६३।१२

गौ—२।७।५, १०९।१४, १०।२८।३, १०।८६।१३, १०।९१।१४

मेष (भेड़ा)—१०।९१।१४

आर्य दूध देनेवाली गायों 'धेनु' को अघ्न्या (न मारने लायक) मानते थे, लेकिन, बहिला गायें (बेहद्) बलिपशु थीं २।७।५, १०।९१।१४

यज्ञके कुछ पात्र थे १।१६२।९, १४

३ खेती

१७ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥
—६।६१

१८ हिमेव पर्णा मुषिता वनानि बृहस्पतिनाकृपयद् वलो गा।
अनानुकृत्यमपुनश्चकार यात् सूर्यामासा मिथ उच्चरात ॥१०॥
—१०।६८

१९. उतोस मह्यमिन्दुभि षड्युक्ता अनुसेषिधत्।
गोभिर्यव न चकृषत् ॥१५॥
—१।२३

२० महान्त कोशमुदचा नि षिंच स्यन्दन्ता कुल्या विषिता पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥
—५।८३

२१ शुन वाहा शुन नर शुन कृषतु लागल।
शुन वरत्रा वध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥
—४।५७

२२. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगाससि यथा न. सुफलाससि ॥६॥
इन्द्र सीता नि गृहणातु ता पूषानु यच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
—४।५७

सविता ने जिसे प्रदान किया, वह सूर्या की बरात के आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रों में बैल मारे गये, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा उत्तरा) में वह ब्याही गई ॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

१७. हे सरस्वती, हमें धन के लिये ले जाओ, हमें न अपने जल से वंचित करो, न हमें दूर करो, हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो। हम तुम से दूर के क्षेत्र-अरण्य में न जावें ॥१४॥

—भरद्वाज, ६।६१

१८ जैसे हिम द्वारा अपहृत पत्तेवाले वन, वैसे ही बृहस्पति द्वारा अपहृत गायों के लिये बल रोया। यह न अनुकरणीय, न दोहराया जाने-वाला काम किया, जिसने सूर्य और चद्रमा परस्पर (बारी-बारी से) उगने लगे ॥१०॥

—अयास्य आगिरस, १०।६८

१९. जैसे बैलों से जौ की खेती होती है, वैसे मेरे लिये सोमों के साथ छ ऋतुओं (ऋतुओं) को लाये ॥१५॥

—शुन शेप विश्वामित्र-पुत्र, १।२३

२०. हे पर्जन्य, बड़े कोशों को उठाओ, सींचो, वेग-युक्त कुल्यायें सामने की ओर बहें। जल से द्यौ और पृथिवी को गीला कर दो, गौओं के (पीनेके) लिये सुन्दर पान होवे ॥८॥

—भौम आत्रेय, ५।८३

२१ बैल सुखी हो, नर सुखी हो, हल सुख-पूर्वक कृषि करे। रस्सी सुखमय बाधी जावें, पैना सुख से उठाये ॥४॥

—वामदेव, ४।५७

२२ हे सुभगे सीते (हलाई), पास होओ, हम तुम्हारी वदना करते हैं, जिसमें कि तुम हमारे लिये सुभगा हो, जिसमें कि तुम हमारे लिये सुफला हो ॥६॥

इन्द्र सीता को पकड़े, पूषन् उसे प्रदान करे। यह (सीता) कुल्ले के अगले-अगले साथी तक हमारे लिये दुग्धवाली हो ॥७॥

—वामदेव, ४।५७

२३ शुन न फाला वि कृषन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहै ।
शुन पर्जन्यो मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥
—४।५७

२४ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥
—१०।१४६

२५. देखो १४।२६

२६ आरगरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सूयवसात् सचेथे ॥१०॥
—१०।१०६

४. सोम

२७ स वह्निरप्सु दुष्टरो मृज्यमानो गभस्त्यो । सोमश्चमूषु सीदति ॥६॥
—९।२०

२८ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९।१

२९ अपाम सोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनस्मान् कृणवदराति किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३॥
—८।४८॥

३० सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मरिरे विवक्षणं ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥५॥
—८।२१

३१ तुविग्रीवो वपोदर सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८॥
—८।१७

२३. हमारे लिये फाल मुख से भूमि को जोतें, हलवाहे सुखपूर्वक बैलों के साथ गमन करें। पर्जन्य मधु और जल के साथ सुखमय होवे। शुना-सीर (इन्द्र-वायु देवता) हमें सुख प्रदान करें ॥८॥

—वामदेव, ५।५७

२४. अरण्यानी (वन) हत्या नहीं करती, यदि दूसरा हत्या के लिये न आ जाये। (वहां आदमी) स्वादु फल खाता, यथेच्छ पड़ रहता है ॥५॥

—देवमुनि इरम्मद-पुत्र, १०।१४६

२५. देखो १४।२६

२६. हे अश्विद्वय, जैसे भनभनानेवाली दो मक्खियां मधु जमा करती हैं, वैसे तुम गाय में मधुर (दूध संचारित करते हो)। जैसे मजूरे पसीने-पसीने हो जाता है, वैसे ही तुम पसीने-पसीने हो जाते हो, जैसे सुन्दर घास से दुर्बल (पशु) शक्ति-सम्पन्न होता है, (वैसे तुम होते हो) ॥१०॥

—भूताश कादयप, १०।१०६

२७. पानी में दुस्तर वाहक वह सोम दोनों हाथों से मीजा जाता चमुओं में अब स्थित होता है ॥६॥

—अमितदेवल, ९।२०

२८. इन्द्र के पीने के लिये छाने गये हे सोम, तुम स्वादिष्ठ और मदिष्ठ (अत्यन्त नशा-युक्त) धारा से क्षरित होओ ॥११॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ९।१

२९. हमने सोम पिया, अमर हो गये, ज्योतिको प्राप्त हुये, देवों को जाना। निश्चय ही शत्रु हमारा क्या कर सकता है। हे अमृत, हितकर मर्त्य मेरा क्या कर सकता है ॥३॥

—प्रगाथ कण्व-पुत्र, ८।४८

३० दुग्ध-मिश्रित मधुर विचक्षण मदिर सोमपान में पक्षियों की तरह बैठे तुम्हें हम हे इन्द्र, नमस्कार करते हैं ॥५॥

—गाभरि कण्व-पुत्र ८।१२

३१. देखो अप्राय ३।९

अध्याय ५

प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज—

१. नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्व ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥
—६।१

२ अभि प्रयासि सुधितानि हि ख्यो नि त्वादधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम,
ता तरेम तवावसा तरेम ॥१५॥
—६।१५

३. नू नो अग्ने वृकेभि स्वस्ति वेषि राय पथिभि पर्ष्यंह ।
ता सूरिम्यो गणते रासि सुम्न मदेम शतहिमा. सुवीरा ॥८॥
—६।४

सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिष ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमा सुवीरा ॥१०॥
—६।२४

४. हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अधुक् ॥१॥
—६।५

अध्याय ५

प्रधान ऋषि

१. भरद्वाज बार्हस्पत्य—

१. हे धनवान् (अग्नि), मनुष्यवत् हमें सदा धन दो, पुत्र-पौत्रों के लिये बहुत पशु दो। निष्पाप, बड़े उत्तम अन्न हमें दो, हमारे भद्र यज्ञ होवें ॥१२॥

—६।१

२. हे अग्नि, सुन्दर प्रकार से रक्खी हुवि को देवों, द्यौ और पृथिवी के यजन करने के लिये तुम्हें स्थापित किया है। हे मघवन् (धनवान्), संग्राम में हमारी रक्षा करो, सारी बाधाओं से हम तरें, तुम्हारी रक्षा से हम उन्हें तरें, तरें ॥१५॥

—६।१५

३. हे अग्नि, धनके निरावाध मार्गों द्वारा स्वस्ति से हमारे समीप आओ, हमारे दुर्यों को हटाओ। स्तुति-कर्ता (हम) सूरियों को सुत दो, हम सुन्दर वीर (सन्तानों) सहित सौ जाड़े (वर्ष) आनन्द करें ॥८॥

—६।८

हे इन्द्र, संग्राम में (भक्त की) रक्षा के लिये सहायक हो, उन को यहां शत्रुओं से रक्षा करो। घर में और अरण्य में शत्रु से इनकी रक्षा करो। हम सुवीर (सन्तानों) सहित सौ जाड़े आनन्द करें ॥१०॥

—६।२८

४. अग्निष्वात्तभागी, सहस के पुत्र (अग्नि), युवातम तुम्हें हम स्तुति से आह्वान करते हैं, जो बहु-स्तुति द्रोह-रहित प्रभावान् सर्वश्रेष्ठ धनों को देता है ॥१॥

—६।५

५ ऋजीते परि वृङ्ग्धि नो श्मा भवतु नस्तनू ।
सोमो अधि ब्रवीतु नो' दिति शर्म यच्छतु ॥१२॥

—६।७५

६ सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा पस्फरी पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

७. त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते ।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

—६।१६

८ उत न प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा । सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०॥

—६।६१

९ इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत्सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वती मा विवासेम धीतिभि ॥२॥

—६।६१

१० सनेम ते वसा नव्य इद्र प्र पूरव स्तवन्त एना यज्ञै ।
सप्त यत्पुर· शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासो पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

—६।२०

२ वसिष्ठ—

११. यथा व· स्वाहाग्नये दाशेम परोळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यै ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभि शत पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७॥

—७।३

१२ दण्डा इवेद् गो अजनाम आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास. ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥

—७।३३

५. हे सीधे जा वालेते (वाण), हमें बचाओ, हमारा तन पत्थर सा होवे, सोम हमसे बात करे, अदिति हमें शरण प्रदान करे ॥१२॥

—६।७५

६. देखो ४।१७

७. हे अग्नि, सोम सवन करनेवाले दिवोदास के लिये उन श्रेष्ठ बहुत धनों को दो, सेवक भरद्वाज के लिये (भी दो) ॥५॥

—६।१६

८. और प्रियाओं में प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसन्ना सरस्वती हमारे लिये स्तुतियोग्य हो ॥१०॥

९. यह सरस्वती भिन्न खोदनेवाली की तरह अपने बलों, वेगवती तरंगों द्वारा गिरियों के पादभागको भग्न करती है। तटों को ध्वस्त करनेवाली सरस्वती को रक्षा के लिये हम स्तुतियों और गीतों द्वारा बुलायें ॥२॥

—६।६१

१०. हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा से नये धन पाये, इसलिये यज्ञ द्वारा पूरु लोग तुम्हारी स्तुति करते हैं। क्योंकि पुरुकुत्सको सहायता करते तुमने दासों की शरदवाली सात गढ़ियों को नष्ट किया ॥१०॥

—६।२०

२. वसिष्ठ मंत्रावरुण—

११. हे अग्नि, जो कि तुम्हारे ये लिए हम घृत-युक्त परिपूजित स्वाहा (सुन्दर हव्य) दान करते हैं, तुम भी (वैसे ही अपने) अनिन्द्य तेजों से सौ पत्थर की पुरियों की तरह हमारी रक्षा करो ॥७॥

—७।३

१२. हमारे जैसे गौवें, वैसे ही भक्त जन-गौवें सिन्धुओं की तरह छिन्न-भिन्न थे। वसिष्ठ इनका अनुज (पुरोहित) हुआ, तो सिन्धुओं की प्रजायें बढ़ने लगीं ॥६॥

—७।३३

१३ प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते वृहद्भा ।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि शुशोच ॥४॥
—७।८

१४ धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्र सुमतिं गन्त्वच्छ ॥४॥
—७।१८

१५. आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेद सर्वताता सुषा यत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च वलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥
—७।१८

१६. न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि ।
स शर्धदर्यो विपुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋतं न ॥५॥
—७।२१

१७. एवेन्नु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु क भेदमेभिर्ज्जघान ।
एवेन्नु क दाशराज्ञे सुदास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठा ॥३॥
—७।३३

१८. उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधिजात ।
द्रप्स स्कन्न ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवा पुष्करे त्वाददन्त ॥११॥
—७।३३

१९. स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदा न ।
यमेन तत परिधिं वयिष्यन्नप्सरस परि जज्ञे वसिष्ठ ॥१२॥

१३. जब यह भरतकी अग्नि अति प्रसिद्ध, सूर्यकी तरह अति प्रकाशवान् हो चमका, जिसने युद्धमें पुरुओंको जीता, वह दीप्तिमान् दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ॥८॥

—७।८

१४. दूहनेकी इच्छासे जैसे धेनुको सुन्दर थान (देवें), वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिए मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति बतलाते हैं, हे इन्द्र, सुमतिके साथ हमारे पास आओ ॥४॥

— ७।१८

१५. यमुनाने और तृत्सुओंने इन्द्रकी सहायता की, जो कि (उसने) भेदका सर्वस्व छीन लिया। अज, शिग्रु और यक्षु घोड़ोंने निरकी बलि लाये ॥१९॥

—७।१८

१६. हे इन्द्र, जादूगर हमें न सतायें। न राक्षस हे वसिष्ठ, (अपनी) चालोंसे। स्वामी (इन्द्र), दुष्ट जन्तुओंको मारे। शिश्न-पूजक हमारे ऋतमें न दखल दें ॥५॥

—७।२१

१७. इस प्रकार ही इनके साथ वह सिन्धुको पार हुआ, इस प्रकार ही इनके साथ भेदको मारा। इस प्रकार ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (रूना) द्वारा इन्द्रने दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की ॥२॥

वसिष्ठ ७।३३

१८. हे ब्राह्मण वसिष्ठ, तुम मित्रावरुण-पुत्र हो, और उर्वशीके मन से उत्पन्न हो। गिरे बूंदको तरह दिव्य मन्त्र द्वारा सारे देवोंने तुम्हें कमलमें धारण किया ॥११॥

—७।३३

१९. दोनों (लोकों) के प्रकृष्ट विद्वान्, महत्त्वज्ञानवाले और ज्ञानसहित, यज्ञके बुने मन्त्रको पहिननेवाले वसिष्ठ अप्सराने पैदा हुए ॥१२॥

—७।३३

२०. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य।
अधा स वीरैर्दशभिर्वियूया यो मा मोघ यातुधानेत्याह ॥१५॥
—७।१०४

२१. यदि वाहमनृतदेव आस मोघ वा देवा अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्य जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथ सचन्ता ॥१४॥
—७।१०४

२२. विद्युतो ज्योति परि सजिहान मित्रावरुणा यदपश्यता त्वा।
तत्ते जन्मोतैक वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥
—७।३३

२३. दश राजान समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु:।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥
दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत इन्द्रावरुणावशिक्षत।
शिवत्यचो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सव ॥८॥
—७।८३

३—विश्वामित्र—

२४ एभिरग्ने सरथ याह्यर्वाङ्ङ नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा।
पत्नीवतस्त्रिंशत त्रींश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
—३।६

विश्वामित्र-जमदग्नि एक साथ—

२५. प्रसूतो भक्षमकर चरावपि स्तोम चेम प्रथम सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागम वा प्रति विश्वामित्रयमदग्नी दमे ॥४॥
—१०—१६७

२० यदि मैं जादूगर हू, या यदि मैंने पुरुषकी आयु नष्ट की, तो आज ही मैं मर जाऊँ। नहीं तो जिसने मुझे व्यर्थ ही यातुधान कहा, वह अपने दस वीर (पुत्रों) से वञ्चित हो ॥१५॥

—७।१०४

२१. हे अग्नि, यदि मैं झूठे देवतावाला हू, या व्यर्थ देवोंको आह्वान करता हू, (तो भले ही, अन्यथा) हे जातवेद, क्यों हमसे रुष्ट हो। तुम्हारे श्रोताको मिथ्याभाषी पावें ॥१४॥

—७।१०४

२२ जब कि मित्र-वरुणने विद्युत्की ज्योतिमें उठने तुम्हें देखा था, वह तुम्हारा एक जन्म था, और हे वसिष्ठ, (दूसरा जन्म वह) जब कि तुम्हें अगस्त्य प्रजाओंके पास लाये ॥१०॥

—७।३३

२३ हे इन्द्र-वरुण, युद्धमें यज्ञ-विमुख दस राजा सुदाससे नहीं लड सके। भोजमें बैठे इन आदमियोंकी स्तुति सत्य हुई, इनके देव-निमन्त्रणमें देवगण उपस्थित हुए ॥७॥

हे इन्द्र और वरुण, दाशराज्ञ युद्धमें घिरे हुए सुदासकी (तुमने) सहायता की। जिस दाशराज्ञ (युद्ध) में स्तुति करते श्वेत (गौर) जुझारू तृत्सु लोग स्तोत्रसे तुम्हारी पूजा करते थे ॥८॥

—७।८३

३ विश्वामित्र कौशिक—

२४. हे अग्नि, इन (देवों) के साथ एक रथपर अथवा नाना रथोंपर (चढ) पास आओ, तुम्हारे अश्व सभी हैं। पत्नियों-सहित नवीन देवताओंको स्वर्गके अनुसार लाओ, और (सोम पीकर) मस्त होओ ॥९॥

—३।६

२५ अग्नि हो मैंने घरमें भोजन किया, और प्रथम सूरि मैंने इस स्तुतिसे कहा। हे विश्वामित्र, सोम तैयार होने पर यमदग्नि घरके सामने पर से तुम दोनोंके पास आये ॥४॥

—विश्वामित्र-यमदग्नि, १०।१६३

२६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्य स्वर्विद।
सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भीरण्व कुशिकासो हवामहे ॥१॥
अश्वो न क्रन्द जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्यं स्व्यश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥
—३।२६

अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु।
द्युम्नवद ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ॥१५॥
—३।२९

इम काम मन्दया गोभिरश्वैश्चन्द्रवता राधसा पप्रथश्च।
स्वर्यवो मतिभिस्तुभ्य विप्रा इन्द्राय वाह कुशिकासो अक्रन् ॥२०॥
—३।३०

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै ।
प्र सिन्धुमच्छा वृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु ॥५॥
—३।३३

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यव ॥९॥
—३।४२

महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तभ्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुदास ।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥
—३।५३

२६ मनसे आदर करते हवि-युक्त हम कुशिक लोग सत्य-अनुसारी स्वर्ग-ज्ञाता सुदानी, दिव्य-रथी, फलदाता वैश्वानर (अग्निका) धनकी कामनासे स्तुतियोंसे आह्वान करते हैं ॥१॥

घोड़ोंकी तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) कुशिकों द्वारा युग-युगमें (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। वह अमृतोंमें जागरूक अग्नि हमें सुन्दर अश्व-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे ॥३॥

—३।२६

मरुतोंकी तरह अभियोंसे लड़नेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह मन्त्रोंका सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रस्तुत करते हैं, (उनमें) एक-एक (अपने) घरमें अग्निका समिधान करते हैं ॥१५॥

—३।२९

(हमारी) इन कामनाओं गौवों, अश्वों (और) चमत्कारिक धन द्वारा पूरा, और प्रसिद्ध करो। (हे इन्द्र), स्वर्ग कामनावाले सनातन विप्रोंने स्तुतियों द्वारा तुम्हारा सम्मान किया है।

—३।३०।२०।३।५०।८

हे पवित्राओ, मेरे सौम्य वचन (सुनने) के लिये मुहूर्त भर अपनी यात्राको रोक जाओ। कृपाकांक्षी मैं कुशिक-सुत बड़ी लालसासे नदीकी प्रार्थना करता हूं ॥५॥

—३।३३

हे पुरातन इन्द्र, तुम को रक्षा-प्रार्थी कुशिक लोग छाने सोमको पीनेके लिए हम बुलाते हैं ॥९॥

—३।४२

देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने गिरिपुत्रको स्तम्भित किया, जब सुदासको (नदी) पार कराया तो इन्द्रने कुशिकों द्वारा (सुदासके साथ) प्रिय बर्ताव किया ॥९॥

हे कुशिको, पास आओ, देखो, सब (जीतने) के लिए सुदासके घोड़ेको दौड़ो। राजा (सुदास) ने पूर्व, पश्चिम और उत्तरके शत्रु मारे, फिर पृथिवीके परलोकमें यज्ञ करे ॥११॥

—३।५३

२७ अर्णांसि चित् पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा।
शर्द्धन्त शिम्युमुचथस्य नव्य शाप सिन्धूनामकृणोदशस्ती ॥५॥
—७।१८

२८. प्र पर्वतानामुशती उपस्थादश्वे इव विषिते हासमाने।
गावेव शुभ्रे मातरा रिहाणे विपाट्छुतुद्री पयसा जवेते ॥१॥

"इन्द्रेषिते प्रसव भिक्षमाणे अच्छा समुद्र रथ्येव याथ।
समाराणे ऊर्मिभि पिन्वमाने अन्या वामन्यामप्येति शुभ्रे ॥२॥

रमध्व मे वचसे सोम्याय ऋतावरीरुप मुहूर्तमेवै।
प्र सिन्धुमच्छा बृहती मनीषावस्युरह्वे कुशिकस्य सूनु" ॥५॥

"इन्द्रो अस्मा अरदद्वज्रबाहुरपाहन् वृत्र परिधिं नदीना।
देवो नयत सविता सुपाणिस्तस्य वय प्रसवे याम उर्वी" ॥६॥

"ओषु स्वसार कारवे शृणोत ययौ वो दूरादनसा रथेन।
निषू नमध्व भवता सुपारा अधो अक्षा सिन्धव स्रोत्याभि" ॥९॥

"आ ते कारो शृणवामा वचांसि ययाथ दूरादनसा रथेन।
नि ते नंसै पीप्यानेव योषा मय येव कन्या शश्वचै ते" ॥१०॥

"यदग त्वा भरता सतरेयुर्गव्यन् ग्राम इषित इन्द्रजूत।
अर्षादह प्रसव सर्गतक्त आ वो वृणे सुमतिं यजियाना" ॥११॥

अतारिषुर्भरता गव्यव समभक्त विप्र सुमतिं नदीना।
प्र पिन्वध्वमिषयन्ती. सुराधा आ वक्षणा पृणध्व यात शीभ ॥१२॥
—३।३३

२७ स्तुत्य इन्द्रने सुदासके लिए फूली नदियोंको गाध और सुपारा बनाया (उस) भयानक नमस्करणीयने स्तुति-शत्रु शिम्युमें स्निग्धुओं शापको अ-प्रशस्त किया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।१

२८ पर्वतोंकी गोदमें दो मुक्त घोड़ियोंकी तरह अभिलाषवती हर्षित चाटती गाय-माताओंकी तरह, शुभ्र विपाश् और शुतुद्रि जलके सा बह रही हैं ॥१॥

(विश्वामित्र—) "इन्द्र द्वारा प्रेरित आज्ञा सुनती दो रथियोंकी तर तुम समुद्रको जाती हो। हे शुभ्रे, एक साथ प्रवाहित, लहरोंसे फूली, ए दूसरेको (साथ) लिये तुम जाती हो ॥२॥

"हे पवित्राओ, मेरा सौम्य वचन (सुननेके) लिये मुहूर्त भर अपन यात्रामें रुक जाओ। कृपाकांक्षी मैं कुशिक-सूनु बड़ी लालसासे नदीं प्रार्थना कर रहा हूं" ॥५॥

(नदिया—) "वज्रबाहु इन्द्रने नदियोंके रोकनेवाले वृत्रको मार हमें खोदा। सुषाणि सवितादेव हमें लाया, उसकी आज्ञामें हम फैली हुई जा रही हैं" ॥६॥

(विश्वामित्र—) "हे बहिनो, ठहरो, कविकी सुनो। यह दूरसे तुम्हारे पास शकट-रथ द्वारा आया है। घोड़ा नीची हो सुपारा हो जाओ। हे स्निग्धुओ अपनी धाराओंमें हमारे घुरेसे नीची हो जाओ" ॥९॥

(नदिया—) "हे कवि, तेरे वचनोंको हम सुनती हैं, तू जो शकट-रथ द्वारा दूरसे आया है। हम पिलानेवाली माताकी तरह, पतिको आलिंगन करनेवाली तरुणीकी तरह तेरे लिये नीची हो जाती हैं" ॥१०॥

—३।३३

हे प्रियाओ, इन्द्र-प्रेरित योग्य-समूह भरत तुम्हें जब पार हो जायें, तो (तुम्हारी) धारा वेगसे बहे। मैं यज्ञ-योग्य तुम्हारी सुमति चाहता हूं" ॥११॥

तरनेवाले भरत पार हो गये, विपने नदियोंकी सुमति प्राप्त की। पय-सुखा लहरोंसे परिपूर्ण होओ, दूसरी धाराको भरती शीघ्र जाओ ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।३३

२९. महा ऋषिर्देवजा देवजूतोस्तम्नात् सिन्धुमर्णव नृचक्षा ।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
—३।५३

३० इळामग्ने पुरुदस सनिं गो शश्वत्तम हवमानाय साध।
स्यान्न सूनुस्तनयो विजावाग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे ॥२३॥
—३।१।२३, ३।७।११, ३।१५।७, ३।२२।५, ३।२३।५

३१. शुन हुवेम मघवानमिन्द्रमस्मिन् भरे नृतम वाजसातौ।
शृण्वन्तमुग्रमूतये समत्सु घ्नन्त वृत्राणि सजित धनाना ॥२२॥
—३।३०।२२, ३।३१।२२, ३।३२।१७, ३।३४।११, ३।३६।११, ३।३८।११ ३।४८।५, ३।४९।५ ३।५०।५

३२ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जन ॥१२॥
—३।५३

४ वामदेव—

३३. महो रजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमादन्वियाय।
त्व नो अस्य वसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठ सुक्रतो दमूना. ॥११॥
—४।४

३४ ये पायवो मामतेयन्ते अग्ने पश्यन्तो अन्ध दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्त्सुकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इद्रिपवो नाह देभु ॥१३॥
—४।४

३५. अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकम्नवती शम्बरस्य।
शततम वैश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥
—४।२६

२९. देवज देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तम्भित किया, जब इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा सुदासमें प्रिय वर्ताव किया ॥९॥

—३।५३

३०. हे अग्नि, सदाके स्तुतिकर्त्ता, मुझे अन्न प्रदान करो। हमारे पुत्र-पौत्र सन्तानवाले हों। हमारे लिये वह तुम्हारी सुमति हो ॥२३॥

—३।१

३१. इस युद्धमें श्रेष्ठतम नेता मघवान् उग्र इन्द्रको रक्षाके लिए हम पुकारते हैं, जो कि युद्धोंमें वृत्रों (शत्रुओं) को मारता, धनोंको जीतता, स्तुतियोंको सुनता है ॥२२॥

—३।५३

३२ जो यह दोनों द्यौ-पृथिवी हैं, (उनके धारक) इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रका यह ब्रह्म (ऋचा) भक्त जनकी रक्षा करता है ॥१२॥

—३।५३

४. वामदेव गौतम—

३३. हे अतिथिप्रेष्ण, सुदक्षिणावान् गृहमेध होता, वाणियों और वस्त्रोंवाले, जो मेरे पास पिता गोतमसे आई, तुम हमारे इन वचनको जानो मैं महान् (शत्रुओं)को नष्ट करता हूँ। ॥११॥

—४।४

३४ हे अग्नि, तुम्हारी जिन रक्षिका किन्नोंने आपदाओंसे मामतेय अत्रिकी रक्षा की, सारे धनोंके गुरुओं तुमने उन्हें रक्षित किया, नाश करनेकी इच्छावाले रिपु उन्हें हानि नहीं पहुँचा सके ॥१३॥

—४।४

३५ मैंने सोमसे मत्त हो शम्बरकी नौ-सहित सत्त्वे पुरियों (गढ़ियों)को ध्वस्त किया। जब यज्ञ (युद्ध) में अतिथिग्वके दिवोदासकी मैंने रक्षा की, तो गौरीको उसके प्रवेश-योग्य बनाया ॥३॥

—४।२६

३६. गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमह देवाना जनिमानि विश्वा।
शत मा पुर आयसीररक्षन्नधस्थेनो जवसा निरदीय ॥१॥
—४।२७

३७. शतमश्मन्मयीना पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥२॥
—४।३०

३८. वृषा वृषन्धि चतुरश्रिमस्यङ्घ्रो बाहुभ्या नृतम. शचीवान्।
श्रिये परुष्णीमुपमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥
—४।२२

३९ बोधद्यन्मा हरिभ्या कुमारः साहदेव्य'। अच्छा न हूत उदर ॥७॥
उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात्। प्रयता सद्य आददे ॥८॥
एप वा देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः। दीर्घायुरस्तु सोमक ॥९॥
—४।१५

४०. त्व पिप्रू मृगय शूशुवासमुजिश्वनं वैदथिनाय रन्धी।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द' ॥१३॥
—४।१६

४१ अय चक्रमिषणात् सूर्यस्य न्येतश रीरमत् ससृमाण।
आकृष्ण ई जुह्वराणो जिघर्ति त्वचो वुध्ने रजसो अस्य योनौ ॥१४॥
असिक्न्यां यजमानो न होता ॥१५॥
—४।१७

३६. मैंने इन सारे देवोंकी सतानोंको गर्भमें रहते जाना। सौ आयसी (दृढ़) पुरियोंने मुझे बन्द रक्खा। तब बाजकी तरह वेगसे मैं निकल गया ॥१॥

—४।२७

३७ इन्द्रने अश्मन्मयी (पत्थरवाली) नौ पुरियोंको यजमान दिवोदासके लिये नष्ट किया ॥२०॥

—४।३०

३८. श्रेष्ठतम नेता शचीवान् बुद्धिमान् उग्र पराक्रमी इन्द्रने दोनों बाहुओंसे वृष्टिकारी चार धारोंवाले वज्रको फेंकते हानेवाली परुष्णी (रावी) का सेवन करते जिसके भागोंको मित्रताके लिये डाका ॥२॥

—४।२२

३९ सहदेव-पुत्र कुमारने मुझे दो घोटकों देना चाहा। पुकारने पर मैं पीछे नहीं हटा ॥७॥
सहदेव-पुत्र कुमारसे दो बढ़िया तेज घोटोंको तुरन्त मैंने पाया ॥८॥
हे अश्विनो, तुम्हारी (कृपासे) यह सहदेव-पुत्र कुमार सोमक दीर्घायु हो ॥९॥

—४।१५

४०. हे इन्द्र, तुमने पिप्रु, मोटे मृगयको विदथी-पुत्र ऋजिश्वाके लिए मारा, पचास हजार पापोंको मारा, जीर्ण योगकी तरह पुरोंको नष्ट किया ॥१३॥

—४।१६

४१. इस इन्द्रने सूर्यके चक्रको प्रेरित किया, (युद्धके लिये) जाते एतशको रोका। कुटिलगति वाले (मेघ) में आकाशके गर्भमें इसके आधारमें चमड़ेसे सिक्त किया ॥१४॥
मैंने अश्विनों (चनाव) में यजमान होता ॥१५॥

—४।१७

४२ एतदस्या अन शये सुसम्पिष्ट विपाश्या। ससार सी परावत ॥११॥

उत दास कौलितर वृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शम्बर ॥१४॥
उत दासस्य वर्चिन सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधीरिव ॥१५॥
—।३०

४३. शुन वाहाः शन नर शुन कृपतु लागलं।
शुन वरत्रा वध्यन्ता शुनमष्ट्रामुदिगय ॥४॥
—४।५७

४४. अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा न सुभगाससि यथा न सुफलाससि ॥६॥

इन्द्र सीता नि गृह्णातु ता पूषानुयच्छतु।
सा न पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरा समा ॥७॥
—४।५७

४५ शुन न फाला वि कृपन्तु भूमिं शुन कीनाशा अभि यन्तु वाहैं ।
शुन पर्जन्या मधुना पयोभि शुनासीरा शुनमस्मासु धत्त ॥८॥
—४।५७

४६ अभि प्रवन्त समनेव योषा. कल्याण्य स्मयमानासो अग्नि।
घृतस्य धारा समिधो नसन्त ता जुषाणो हर्यति जातवेदा ॥८॥
—४।५८

५ गृत्समद—

४७. असर्जि स्कम्भो दिव उद्यतो मद परि त्रिधातुर्भुवनान्यर्पति।
अशु रिहन्ति मतय. पनिप्नत गिरा यदि निर्णिजमृग्मिणो ययु ॥४६॥

४२. (इन्द्र द्वारा) अतिवृणित उपाका शकट विपाश् (व्यास) के किनारे गिरा। वह (उषा) पश्चिम देशको चली गई॥११॥

हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दासको बृहत् पर्वत (हिमालय) के ऊपर मारा॥१४॥

और चवालीसी अरोकी तरह दान वर्चीके १५०० (भट) मारे॥१५॥

—४।३०

४३. बैल सुखी हो, नर सुखी हो, हल सुखपूर्वक कृषि करें, रस्सी सुखमय बाधी जाये, पैना सुखसे उठाये॥४॥

—४।५७

४४ हे सुभगे, पास होओ, हम तुम्हारी वन्दना करते हैं, जिसमें कि तुम हमारे लिए सुफला हो॥६॥

इन्द्र सीताको पकड़े, पूषन् उसे प्रदान करें, वह सीता दूहनेके अगले-अगले साल हमारे लिये दुग्धवाली हो॥७॥

—४।५७

४५. हमारे लिये फालसे भूमिको जोतें, हलवाहे सुखपूर्वक बैलोंके साथ गमन करें। पर्जन्य मधु और जलके साथ सुखमय होवे, शुनासीर (इन्द्र-वायु देवता) हमें सुख प्रदान करें॥८॥

—४।५७

४६ जैसे सुरुचिवाली कन्याएँ स्त्रियां मेलेमें, (जाती) वैसे ही घृतकी धारा अग्निका अभिगमन करती है। घृतकी धारा ईषत् बनती, उन्हें अग्नि प्रसन्न हो सेवन करता है॥८॥

—४।५८

५. गृत्समद शौनहोत्र—

४७ सोता सम्पा उषत-मद होता द्वारा गये सुखोंमें विचरण करता है। जब सूक्तिवा प्रशंसनीय सोमको स्तुति है तो शब्द करने सूक्तिवा सोमके सोमोंके पास जाते हैं॥४६॥

प्र ते धारा अत्यण्वानि मेष्य. पुनानस्य सयतो यन्ति रह्य ।
यद् गोभिरिन्दो चम्वोःसमज्यस आ सुवान सोम कलशेषुसीदसि। ४७।

पवस्व सोम ऋतुविन्न उक्थ्यो व्यो वारे परि धाव मधु प्रिय ।
जहि विश्वान्रक्षस इन्दो अत्रिणो वृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥४८॥
—९।८६

४८ अत्रिमनु स्वराज्यमग्निमुक्थानि वावृधु । विश्वा अधिश्रियो दधे।
॥५॥
—२।८

४९. स रन्वयत् सदिव सारथये शुष्णमशुष कुयव कुत्साय।
दिवोदासाय नवतिं च नवेन्द्र पुरो व्यैरच्छवरस्य ॥६॥
—२।१९

५० अध्वर्यवो य शत शवरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी ।
यो वर्चिन. शतमिन्द्र सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥६॥

अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भूम्या उपस्थे वपज्जघन्वान् ।
कुत्सस्यायोरतिथिग्वस्य वीरान्यावृणग्भरत. सोममस्मै ॥७॥
—२।१४

५१ स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी. पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपञ्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

५२ अध्वर्यवो य स्वश्न जघान य शुष्णमशुष यो व्यस।
य पिप्रु नर्मुचि यो रुधिक्रां तस्मा इन्द्रायान्धसो जुहोत ॥५॥
—२।१४

छाने जाते (समय) तुम्हारी धारायें भेड़के ऊनका सूक्ष्म वेगसे पार होती है। हे सोम, जब तुम दोनों चमुओंमें गौओंसे मिलाये जाते, तो हे सोम, तुम कलशोंमें बैठते हो ॥४७॥

ऋतुके जानकार, हमारी प्रशंसाके योग्य हे सोम, भेड़के लोमों (वाले ऊनों) में प्रिय और मधुर रसके साथ तुम दौड़ो, सारे राक्षसोंको मारो। हे सोम, सुवीर सन्तानोंवाले हम अत्रि लोग यज्ञमें तुम्हारी महिमा गायेंगे ॥४८॥

—९।८६

४८ स्वयंप्रकाश्य भक्षक अग्निके लिये उक्थ (मन्त्र) बढ़े। (उनने) सारी शोभा धारण की ॥५॥

—२।८

४९. उस दिव्य इन्द्रने सारथी कुत्सके लिये शुष्ण, अशुष, कुयवको मारा। और दिवोदासके लिये शम्बरकी निन्नानवे पुरियां ध्वस्त कीं ॥६॥

—२।१९

५० हे अध्वर्युओ, जिसने शम्बरकी पत्थर की सौ प्राचीन पुरियोंको नष्ट किया। जिसने वर्चीके सौ-हजारों (भटों) को मारा, उसके लिये सोम ले आओ ॥६॥

—२।१८

५१ उस वृत्रनाशक, पुर-दर्दरक इन्द्रने काले दासोंका विनाश किया। मनुके लिये पृथिवी और जलको पैदा किया। वह यजमानकी अभिलाषा पूरी करता है ॥७॥

—२।२०

५२ हे अध्वर्युओ, जिसने स्वनको मारा, जिसने शुष्ण, अशुषको, जिसने ध्वसको मारा। जिसने पिप्रु, नवचिको जिसने रुधिरको मारा, उस इन्द्रके लिए सोम पकाओ ॥५॥

—२।१८

५३ स्वप्नेनाभ्युप्या चुमुरिं धुनिं च जघन्थ दस्युं प्र दभीतिमाव ।
रम्भी चिदत्र विविदे हिरण्य सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार ॥९॥
—२।१५

५४ देखो इसी अध्यायमें ४९ ।

५५. य शम्बर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु शयान स जनास इन्द्र ॥११॥
—२।१२

५६ देखो यही ४७ ।

६ कक्षीवान्—

५७. परावत नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्न चक्रथुर्जिह्मबार ।
क्षरन्नापो न पानाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥१॥
—१।११६

५८ चरित्र हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्याया ।
सद्यो जघामायसी विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्त ॥१५॥

शत मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्व त पितान्ध चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्त दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥

यदयात दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वा वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८॥
—१।११६

५३ जिसने स्वप्न द्वारा निद्रा-अभिभूत कर चुमुरि और धुनि दस्युको मारा, तथा दभीतिकी तुमने रक्षा की। यहा अनुचरने भी हिरण्य प्राप्त किया। यह सब इन्द्रने सोमके मदमें मस्त हो किया ॥९॥

—२।१५

५४ देखो यही ४९

५५ जिसने पर्वतमें रहने शम्बरको चालीसवी शरदमें जा धरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुए दानव अहि[1]को मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—२।१२

५६ देखो ४७

६. कक्षीवान् दैर्घतमस—

५७ नासत्य (अश्विद्वय), तुमने ऊपर पेंदी तिरछी बारीवाले पश्चिमके कुएको उठाया। उसने प्यासे गोतमके सहस्र (गुण) धन और पानके लिये जल निकला ॥९॥

—१।११६

५८. खेलकी स्त्रीका एक पैर युद्धमें पहीके परकी तरह कट गया। तुमने तुरन्त उसे चलने तथा धनके लिये आयसी (लोहेकी) जघा प्रदान की ॥१५॥

बूढ़ोंके लिये काट कर नौ नेत्र देनेवाले इन ऋज्राश्वको पिताने अन्धा कर दिया। उसे दोनो श्रेष्ठ भिषज नासत्योंने चक्षुस् देनेवाली रिक्षण आखें प्रदान की ॥१६॥

जब पुकारे गये दोनो अश्वि हरिके लिये दिवोदासके पास, भरद्वाज (अन्न-प्रशासक या ऋषि) के पास गये, तो वृषण और शील चुला तुम्हारा रथ अन्न-धनको बोझ ले गया ॥१८॥

—१।११६

---

[1]सर्प, मनुचि, वृत्र, शबर के लिए यह नाम।

५९. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्त शतारित्रां नावमातस्थिवांसं ॥५॥
—१।११६

६०. युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाज विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना स विश्पला नासत्यारिणीत ॥११॥
—१।११७

६१. अमन्दान् स्तोमान् प्रभरे मनीषा सिन्धावधिक्षियतो भाव्यस्य।
यो मे सहस्रममिमीत सवानतूर्तो राजा श्रव इच्छमान. ॥१॥

शत राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान् प्रयतान्त सद्य आद।
शतं कक्षीवा असुरस्य गोना दिवि श्रवो जरमाततान ॥२॥

उप मा श्यावा स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रयासो अस्यु।
षष्टिं सहस्रमनुगव्यमागात् सनत् कक्षीवा अभिषित्वे अह्ना ॥३॥

चत्वारिंशद्दशरथस्य शोणा सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति।
मदच्युत कृशनावतो अत्यान् कक्षीवन्त उदमृक्षन्त पज्रा ॥४॥

उपोप मे परामृश मा मे दभ्राणि मन्यथा।
सर्वाहमस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका ॥७॥
—१।१२६

५९ हे अश्विद्वय, तुमने आश्रय-रहित, शरणस्थान-रहित पकड़नेकी वस्तुसे रहित समुद्रमें वह पराक्रम किया, जब कि सौ पतवारोंवाली नावमें बैठा भुज्युको उठा लाये ॥५॥

—१।११६

६० हे दोनों नेताओ, तुमने स्तुतिकर्त्ता कृष्ण-पुत्र विश्वकके लिये (उनके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पितासे घर बैठी भुरानी घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥

हे शीघ्रगामी अश्विनो, तुमने पुत्रके माननेसे स्तुत सन्तुष्ट हो विप्रके लिये अन्न प्रदान किया। मन्त्रोंसे बढ़ाये जाते हे नासत्यो, तुमने विश्पलाको अगस्त्यके लिये पुन प्रदान किया ॥११॥

—१।११७

६१ सिन्धु तटवासी भाव्य (स्वनय) के वास्ते मैं बुद्धि-युक्त अभ्यर्थ स्तोत्र लाता हूं। जिन अजेय राजाने यशकी कामनासे मेरे लिये हजार नवन किये ॥१॥

मैं कक्षीवान्‌ने याचना करनेपर राजाने सौ निष्क (सुवर्ण-माला), दानके सौ घोड़े तुरन्त पाये, और अत्यन्त सौ गायें (भी)। उनका जर्जर यश दशों में फैला ॥२॥

और स्वनय द्वारा दस काले घोड़ों वाले बधुओं (शमियों) चढ़े दस रथ मेरे पास रहे। पीछे एक हजार साठ गायें भी लाई। कक्षीवान्‌ने दिनोंकी समाप्तिके समय उन्हें पाया ॥३॥

दशरथके चालीस लाल घोड़े हजार (गायों) को पानी बहन करते थे। कक्षीवान् (लोगों) और पक्थोंने मुक्तावाले वे सब घोड़े पाये ॥४॥

समीप-समीप मेरा रथ करो। मुझे छोटा न मानो। गन्धारकी भेड़ोंकी तरह मैं (स्वनय-दत्त) रोमश सम्पूर्ण (अंगवाली) हूं ॥७॥

—१।१२६

७ अगस्त्य —

६२ नदस्य मा रुधत काम आगन्नित आजातो अमुत कुतश्चित् ।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धयति श्वसन्त ॥४॥
—१।१७९

६३ अभूविद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्पला वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥
—१।१८२

६४ त्व धुनिरिन्द्र धुनिमतीर्ऋणोरप सीरा न स्रवन्ती ।
प्रयत् समुद्रमतिशूर पर्षि पारया तुर्वश यदु स्वस्ति ॥९॥
—१।१७४

६५. करम्भ ओषधे भव पीवो वृक्क उदारथि ।
वातापे पीव इद् भव ॥१०॥
—१।१८७

शरास कुशरासो दर्भास सैर्या उत ।
मौंजा अदृष्टा वैरिण सर्वे साक न्यलिप्सत ॥३॥
—१।१९१

६६ यस्य विश्वानि हस्तयो पञ्चक्षितीना वसु ।
स्पाशयस्व यो अस्मध्रुग्दिव्येवाशनिर्जहि ॥३॥
—१।१७६

७. अगस्त्य मैत्रावरुणि—

६२ रोकते हुए भी मुझे यहा-वहा या कहींसे काम-भाव आ गया। अधीर लोपामुद्रा पतिको चाहती है। वह अधीरा स्वामी धीर (पति) को चुम्बन करती है ॥४॥

—१।१७९

६३ हे मनीषियो, यह था, कि (अश्विनीकुमारोंका) दृढ (घोडों) का रथ मौजूद है। आगे होओ, प्रसन्न रहो। स्तुति करो, स्तुति-योग्य है। चौके नाती शुचिव्रत, घिष्ण्य विश्पला-सहायक अश्विन युवकों (लोगों) का भला करें॥

—१।१८२

६४. हे इन्द्र, घुननेवाले तुमने नदियोंको तरह घुननेवाले जलोंको बहाया, कपनेवाली सीरा की तरह नदियोंको गिराया। हे शूर, जब तुम समुद्रमें बाढ करो, तब तुर्वश और यदुको कल्याण-सहित पार करो ॥९॥

६५. हे ओषधि (रूप) सतू, तुम स्थूल, दृढ पोषक बनो। और हे वायुमित्र (वातापि), तुम भी स्थूल बनो ॥१०॥

—१।१८७

सर, कुशर (कुश), शर्म, वर्म, मूज, बीरण (सरा) (में रहने) वाली अदृष्ट घेरी (जन्तु) मुझे खाती है ॥३॥

—१।१९१

६९ जिनके दोनो हाथोंमें पाचो जनोंके सारे धन हैं। (उन) सोलहों, जो हमारी ओर बढता है, सिर बिखेरी हुई स्त्री उसे नष्ट करे ॥३॥

—१।१।९

८. दीर्घतमा—

६७. को वा दाशत्सुमतये चिदस्यै वसू यद्धेये नमसा पदे गो ।
जिगृतमस्मे रैवती पुरन्धी कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥

उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मामामिमे पतत्रिणी विदुग्धा ।
मामा मेधो दशतयश्चितो धाक् प्रयद्वा वद्धस्त्मनि खादति क्षा ॥४॥

—१।१५८

६८ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यत नो वृषणावभिष्टौ ।
दस्रा ह यद्रेक्ण औचथ्यो वा प्रयत्सस्राये अकवाभिरूती ॥१॥

—१।१५८

६९. न मा गरन्नद्यो मातृतमा दासा यदी सुसमुब्धमवाधु ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत स्वय दास उरो असावपिग्ध ॥५॥

—१।१५८

७०. रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रा पद्वती रास्यग्ने ।
अस्माक वीरा उप नो मघोनो जनाश्च या पारयाच्छर्म या च ॥१२॥

—१।१४०

७१. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिर्निहरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

—१।१६२

८. दीर्घतमा मामतेय—

६७. हे दोनो वसु (अश्विनीकुमारो), (तुम्हारी) सुमतिके लिये तुम दोनोंको हव्य प्रदान कौन करे, जिसे कि तुम नमस्कार (सुन कर) गौके स्थानमें देते हो। हमारे लिये जागो, धनवाली, इच्छापूरक, कामना प्रेरक (गायें) मनके साथ (लिये मानो) तुम विचरण करते हो ॥२॥ (यह) स्तुति उचथ्य-पुत्रकी रक्षा करे। यह उठनेवाले (दोनो) हमारी हानि न करें। दस गुनी चिनी हुई जलती आग मुझे न जलाये, जब कि (वह) तुम्हारे लिये शरीरमें बद्ध पृथिवीको खाता है, लेटता है ॥४॥

—१।१५८

६८ रुलानेवाले, बहुत ज्ञानी, वर्धनशील, कामनावर्षी हे दोनो वसु, हमें अभीष्ट प्रदान करो, जिसे कि उचथ्य-पुत्र (दीर्घतमा) तुमसे चाहता है। तुम अ-कृपण (हो) रक्षा प्रदान करते हो ॥१॥

—१।१५८

६९ (तुम) अत्यन्त माता (रूपी) नदिया मुझे नहीं निगल गई, जब कि दासोंने नीचे मुह करके फेंक दिया। जब प्रेतनने इसका सिर काटा, दासने स्वय (अपने) उर और कन्धेपर चोट सा लिया ॥५॥

—१।१५८

७०. हे अग्नि, रथके लिये, गृहके लिये सदा हमें पतवारवाली पदवाली नाव प्रदान करो। जो कि हमारे वीरो और धनवाले जनोंको पार करे, और जो दारुण हो ॥१२॥

—१।१४०

७१. जो एक घोड़ेको देखते, जो बोलते "हमारा सोमा है" और जो घीके साथ-भोजनको सेवन करते हैं, उनका सखा हमारे रास्तेको पूरा करे ॥१२॥

—१।१६२

७२ न वा उ एतन्म्रियसे न रिष्यसि देवा इदेपि पथिभि सुगेभि ।
हरी ते युजा पृपती अभूतामुपास्थाद्वाजी धुरि रासभस्य ॥२१॥
—१।१६२

९ गोतम रहूगण-पुत्र—

७३. अवोचाम रहगणा अग्नये मधुमद्वच । द्युम्नैरभि प्रणोनुम ॥५॥
—१।७८

७४ यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमतन्वत ।
तस्मिन् ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्य ॥१६॥
—१।८०

७५ आदगिरा प्रथम दधिरे वय इद्वाग्नय शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्व पणे समविन्दन्त भोजनमश्वावन्त गोमन्तमा पशु नर ॥४॥

यज्ञैरथर्वा प्रथम पथस्तते तत सूर्यो व्रतपा वेन आजनि ।
आगा आजदुशना काव्य सचा यमस्य जातममृत यजामहे ॥५॥
—१।८३

७२. हे अश्व, यहा न तुम मरता है न आहत होता है, (बल्कि) सुगम मार्गोंसे देवोंके पास जाता है। इन्द्रके दोनो घोडे मरुतोंके चितकबरे हरित तुम्हारे (रथमें) जुतेंगे, (अग्नि-वाहन) रातभके घुरेमें दो घोडे (जुडेंगे) ॥२१॥

—१।१६२

९ गोतम रहूगण-पुत्र—

७३ हम रहूगण (लोग) अग्निके लिये सुपुर वाणी बोलते है। उज्वल (स्तुतियों) से बहुत नमस्कार करते है ॥५॥

—१।७८

७४ हे इन्द्र, अथर्वा, (हमारे) पिता मनु, दधीचिने जिस यज्ञको किया। उसमें अपना स्वराज्य प्रकट करते पूर्व जैसे मन्त्र, उक्थ तुम्हें प्राप्त हुए ॥१६॥

—१।८०

७५ क्रतुने महान् स्वधाके पीछे बलसे भयकर बडे, सुन्दर शिप्रवाले हरित अश्वोंयुक्त इन्द्रने लक्ष्मीके लिये अपने बलिष्ठ दोनो हाथोंमें आयस (कठोर) वज्र (गदा) धारण किया ॥४॥

(तुमने) पृथिवी-लोकको परिपूर्ण किया, द्यौमें तारोंको स्थापित किया। हे इन्द्र, तुम्हारे जैसा न कोई जन्मा, न जन्मेगा। तुम विश्वको अत्यन्त ओरसे धारण करते हो ॥५॥

पहले अगिराओंने अन्न प्राप्त किया, फिर जनता अग्नि सुकृत्य (यज्ञ) द्वारा प्रज्वलित हुआ। नरोंने पणिके अश्व-युक्त, गो-युक्त सभी पशु, भोजन (छीन) लिये ॥८॥

अथर्वाने पहले यज्ञो द्वारा पथ विस्तृत किया, तब यज्ञमानका प्रकाशमान सूर्य (इन्द्र) प्रकट हुआ। (जो) ऋषि-पुत्र उशनाके साथ गायें लाया। यमके जनक पुत्र (इन्द्र) का हम यजन (पूजा) करते है ॥५॥

—१।८३

७६ इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुत । जघान नवतीर्नव ॥१३॥
इच्छन्नश्वस्य यच्छिर. पर्वतेष्वपश्रित । तद्विदच्छर्यणावति ॥१४॥
—१।८४

७७. गयस्फानो अमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धन । सुमित्र सोम नो भव॥१२
—१।९१

७८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणिं गा ।
अवातिरत वृसयस्य शेपो विन्दत ज्योतिरेक बहुभ्य ॥४॥
—१।९३

१० मेधातिथि कण्व-पुत्र—

७९. आ त्वा कण्वा अहूपत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥
ईळते त्वामवस्यव कण्वासो वृक्तबर्हिष । हविष्मन्तो अरङ्कृत ॥५॥
—१।१४

८० कण्वा इव भृगव सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥
—८।३

८१ प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्य पुरन्दर ।
याभि काण्वस्योपबर्हिरासद यासद्वज्री भिनत् पुर ॥८॥

यत्तुदत् सूर एतश वह्ड कूवातस्य पणिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेय शतक्रतुस्सरद्गन्धर्वमस्तृत ॥११॥

७६. दुर्धर्ष इन्द्रने दधीचिकी हड्डियोंसे वृत्रको नौ नब्बे बार मारा ॥१३॥ पर्वतमें छिपे अदरके सिरको कूटते, उसे शयनावत्ने प्राप्त किया ॥१४॥

—१।८४

७७. हे सोम, तुम हमारे गृहवर्धन, रोगहन्ता, धनदाता, पुष्टिवर्धन और सुमित्र बनो ॥१२॥

—१।९१

७८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है, जिससे कि तुमने पणिसे भोजन और गायें छीनी, जिससे वृत्रवधे पुत्रको मार गिराया, और बहुतोंके लिये एक ज्योतिको प्राप्त किया ॥४॥

—१।९३

१०. मेधातिथि कण्व-पुत्र—

७९ कण्व (लोग) तुम्हें पुकारते हैं, हे विप्र, तुम्हारी प्रशंसा गाते हैं। हे अग्नि, देवोंके साथ तुम आओ ॥२॥

रक्षा-अभिलाषी पुत्र-विहीन हवि-युक्त अन्नवान् कण्व (लोग) तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥५॥

—१।१४

८० भृगु कण्वोंकी तरह नृमेधोंकी तरह हैं, (अपनी) सारी कामनायुक्त आयुवाले उन प्रियमेधोंने स्तुतियाँ गाते पूजा की ।१६॥

—८।३

८१. इस (इन्द्र) के लिये अच्छी तरह गायत्र (गान) द्वारा यज्ञ करो, जो पुरोहित नायक है, पूजनीय (है)। जिस प्रशंसा द्वारा वह कण्व-पुत्रके यज्ञमें बैठा, (जिसके द्वारा) यज्ञधारीने पुरोहितको तुष्ट किया ॥८॥

जब सूर्यने एकाएक आक्रमण किया, (तब) इन्द्रने आगे बढ़ते रथ द्वारा अर्जुनी-पुत्र पुरुमीढको प्राप्त किया, और अन्धेर करनेवाले (सूर्य)पर विजय (आक्रमण) किया ॥११॥

त्व पुर चरिष्ण्व वधै शुष्णस्य सम्पिणक् ।
त्व भा अनुचरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुव ॥२८॥

स्तुहि स्तुहीदेते घाते महिष्टासो मघोना ।
निन्विताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिये ॥३०॥

आ यदश्वान्वनन्वत श्रद्धयाह रथे रुह ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्व पशु ॥३१॥

य ऋज्रा मह्य मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासगस्य स्वनद्रथ ॥३२॥

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासगो अग्ने दशभि सहस्रै ।
अधोक्षणो दश मह्य रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥३३॥

—८।१

तत्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९॥

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिपासत ।
शग्धि यया रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णर ॥१२॥

कण्वा इव भृगव. सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशु ।
इन्द्र स्तोमेभिर्महयन्त आयव प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६॥

य मे दुरिन्द्रो मरुत पाकस्यामा कौरयाण ।
विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्यामा सुधुर कक्ष्यप्रा ।
अदाद्रायो विवोधन ॥२२॥

तुमने वज्रसे शुष्णके गमनशील दुर्ग (पुर) को ध्वस्त किया। हे इन्द्र, तुम पुकारने योग्य हो, क्योंकि तुम प्रभाका अनुसरण करते हो ॥२८॥

स्तुति करो, स्तुति करो, धनवानोंमें (वह) अतिमहान् है। हे मेध्यातिथि, मेरा अश्व बहुत चलनेवाला धन (छीनने) के लिये मेरा परमआयुध है ॥३०॥

जब कि श्रद्धाके साथ मैं अश्वोंको जोड रथपर चढता हू। (यदु-पुत्र) सुन्दर धनको जानता है, और (उसे) जो कि यदुओंका पशु है ॥३१॥

जिस (आसग) ने सुनहले जोहान्के साथ मुझे भूरे (घोडे) दिये, वह यह आसग स्वनद्रथ सारे (धन) सौभाग्यको पाये ॥३२॥

हे अग्नि, प्लयोग-पुत्र आसग दस हजार गायोंके (दान) द्वारा दूसरोंसे (आगे) बढ गया। फिर सरोवरसे निकले नाले की तरह दीप्तिमान् दस बैल मेरे लिये आये ॥३३॥

—८।१

(हे इन्द्र), प्रार्थनापर प्रथम ध्यान देनेके लिये तुमसे उस सुशोभनाको मागता हू, जिसके द्वारा तुमने धनके लिये पक्थियों, भृगुओंकी, जिसके द्वारा प्रकण्वकी रक्षा की ॥९॥

हे इन्द्र, हमें (वह रक्षा) दो, जिससे तुमने स्तुति द्वारा चाहने पुरु-पुत्रकी रक्षा की। जैसे हे इन्द्र, दशम, श्यावक स्वर्णर और कृपकी रक्षा की ॥१२॥

भृगु बच्चोंकी तरह सूर्य-किरणोंकी तरह है। उन्होंने (अग्नी) सारी पावना पा ली। आयु पाने प्रियमेधोंने स्तुति सुक्त द्वारा मजन किया ॥१६॥

जो मुझे इन्द्र और मरुतोंने दिया, उस सारे को, स्वय अश्विनोंने दोनोंने (सानो) दोनोंको कुरुश्रवण-पुत्र पायस्यामानें दिया ॥२१॥

पायस्यामानें मुझे धन-दायक स्वर्ण सुन्दर पुरोडाश समर्थ इन्द्रका घोडा प्रदान किया ॥२२॥

यस्मा अन्ये दश प्रति धुर वहन्ति वह्नय ।
अस्त वयो न तुग्र्य ॥२३॥
आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन ।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्यामान भोज दातारमब्रव ॥२४॥

—८।३

११ श्यावाश्व अत्रि-पुत्र—

८२ अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामि शवस ।
प्र यज्ञ यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्य ॥५॥

—५।५२

८३. सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददु ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्य मृजे नि राधो अश्व्य मृजे ॥१७॥

—५।५२

८४ एतान्रथेषु तस्थुष क शुश्राव कथा ययु ।
कस्मै सस्रु सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टय सह ॥२॥

—५।५३

१२ कुत्स आगिरस—

८५. इन्द्र कुत्सो वृत्रहण शचीपति काटेनिवाहळ ऋषिरह्वदूतये ।
रथ न दुर्गाद्वसव सुदानवो विश्वस्मान्नो अहसो निष्पिपर्तन ॥६॥

—१।१०६

याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत ।
याभि कुत्स श्रुतर्य नर्यमावत ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गत ॥९॥

—१।११२

८६. शुष्ण पिप्रु कुयव वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुर शवरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदिति सिन्धु पृथिवी उप द्यौ ॥८॥

—१।१०३

जिसके (जैसे) दूसरे दस घोडे धुरेको वहन करते हैं, वह पक्षियोंकी तरह तुग्र-पुत्रको (उडा ले गये) ॥२३॥

वह पिताका शरीर आत्मा, वस्त्र, और बलप्रद भोजन है। एव चौथे लाल घोडेके दाता भोजकर्ता पाकस्थामाको मै कहता हू ॥२४॥

—८।३

११. श्यावाश्व अत्रि-पुत्र—

८२ जो अर्हन्त (पूजनीय), सुदाता बलिष्ट नेता है, उन सबके पूजनीय मरुतों का (हम) यज्ञमे यजन करेंगे ॥५॥

—५।५२

८३. उन्नाम शक्तिमान् मरुतोने एक-एक (करके) हमें सौ दिये। यमुना तीर पर प्रसिद्ध गो-धन हमने पाया, अश्व-धन हमने पाया ॥१७॥

—५।५२

८४ रथपर बैठे इन (मरुतो) को किसने सुना, कहा गये ? किस सुदाता के लिये (यज्ञके) अन्नोंके साथ अनुरूप वृष्टिया पडी ॥२॥

—५।५३

१२. कुत्स आंगिरस—

८५ कूएमें गिरे कुत्सने शक्तिपति बृहस्पतिको रक्षाके लिये पुकारा। जैसे दुर्गम पथमे रथ, वैसे (हे) सुदानो वसु सोम सारे कष्टोंसे हमारा उद्धार करें ॥६॥

—१।१०९

हे अश्विनो, जिन (उपायों) के द्वारा मधुमान् मित्रयुको तुमने प्रवाहित किया, जिनके द्वारा तुम अजाश्वने पणिष्टुकी रक्षा की जिनके द्वारा कुत्स, श्रुतर्य, नर्यकी रक्षा की, उन रक्षाओंके साथ तुम आओ ॥९॥

—१।११२

८९. हे रुद्र, जिसे तुमने शुष्ण, पिप्रु, कुयव, बुध्नको (और) शम्बरके पुरोंको नष्ट किया। उस (सखा हो) हमारे (अभीष्ट) मित्र, वरुण अदिति, सिन्धु, पृथिवी और द्यौ प्रसन्न करें ॥८॥

—१।१०३

८७ अव त्मना भरते केतवेदा अव त्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योषे हते ते स्याता प्रवणे शिफाया ॥३॥
—१।१०४

१३ मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र—

८८ नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणवामहे। त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥
—१।८

८९ स्वादिष्ठया मदिष्ठया पवस्व सोम धारया। इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥
—९।१

१४ प्रष्कण्व कण्व-पुत्र—

९० अरित्र वा दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूना रथ । धिया युयुज्र इन्दव ॥८॥
—१।४६

९१ सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्त पुरुस्पृह ॥६॥
—१।४७

९२ कुविच्छकत् कुवित् करत् कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित् पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सगमामहै ॥१४॥
—८।८०

९३ सप्तापो देवी सुरणा अमृक्ता याभि सिन्धुमतर इन्द्र पूर्भित्।
नवंति स्रोत्या नव च स्रवन्तीर्देवेभ्यो गातु मनुषे च विन्द ॥८॥
—१०।१०४

८७ वह केवल कामनाका धन फेंकता है, केवल जलमें फेन फेंकता है। कुयवकी दोनों स्त्रियां क्षीर से नहाई हैं। वह शिफाकी धारमें मर जायें ॥३॥

—१।१०४

१३ मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र—

८८ (हे इन्द्र), तुम्हारी रक्षासे युक्त हम घोड़े द्वारा, मुष्टि-युद्ध द्वारा शत्रुओंको रोक देवें ॥२॥

—१।८

८९. इन्द्रके पीनेके लिये छाने गये हे सोम, स्वादिष्ठ, मदिष्ठ धाराके साथ (तुम) क्षरित होओ ॥१॥ —९।१

१४. प्रस्कण्व· कण्व-पुत्र—

९० हे अश्विनीकुमारो, घीसे नाव तुम्हारी है, स्निग्धोंके घाटपर रथ (तैयार) है। स्तुतिके साथ सोम तैयार है ॥८॥

—१।४६

९१ हे अश्विनीकुमारो, तुमने सुदासको बहुत अन्न दिया, (इसलिये) रथपर धन भरकर लाये। समुद्रसे और द्यौसे बहुत सा वाछनीय धन हमें प्रदान करो ॥६॥

—१।४७

९२ क्या वह हमें शक्ति नहीं देगा, क्या बहुत धनवान् नहीं करेगा ? क्या हम स्वामीके द्वेषपात्र (बने) जाकर इन्द्रसे नहीं मिलेंगे ॥४॥

—८।८०

९३ हे पुरुषशत्रु इन्द्र, देवों-मनुष्योंके सुख के लिये तुमने अमित सार सूक्ष्म दिव्य नदियोंको बनाया, जिनसे स्निग्धों तेर गये और निश्चयसे सभी नदियोंके पार हुए ॥८॥

—१०।९४

अध्याय ६

दस्यु (अनार्य)

१. पणि—

१ हे सत्पति अग्नि, तुम (अपने) बलसे वृत्रको मारते हो। विप्र (तुम) पणिके धनको (छीन) लेते हो। जानकार ऋत-उत्पन्न हे अन्नके नाती, जिसे तुम धनके लिये प्रेरित करते हो (वह पाता है) ॥३॥

—६।१३

२ हे इन्द्र, यहां युद्धमें कवि दशोणि ने अपने सैकड़ों (सैनिकों) के साथ पणि भाग गये। शुष्ण-अशुषकी मायाके सामने कुछ भी अग्र बच न रहा ॥४॥

—६।२०

३. हे पूषन्, (तुम) न देनेकी इच्छावालेको दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मनको कोमल बनाओ। ॥३॥

४ हे ऋषि पूषन्, पणियोंके हथियारको आगमें फेंक दो, और उन्हें हमारे वशमें कर दो ॥५॥

—६।५३

५ यह सुकर्मा है, जो पणियोंके धनको लाकर हमारे लिये बहुत भोजन देनेवाले सूर्यके लाया। वह प्रसन्न होता प्रजाओंका मित्र, धन्य, सारे भोगोंमें निवास देता है ॥८॥

—३१९

६ कर्मशील सत्यवादी, बहुभागी, उत्पन्न, पुरुषोंमें, स्तुति पणियों-दस्युओं को अग्निने पूर्व में भगाया, उन्होंको सत्य पश्चिम से भगाया ॥३॥

—३१६

७ रेवद्वयो दधाये रेवदाशाथे नरा मायाभिरित ऊतिमाहिन।
न वा द्यावोहभिर्नोत सिन्धवो न देवत्वम्पणयो नानशुर्मघ ॥९॥
—१।१५१

८ अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वा यदमुष्णीतमवस पणि गा।
अवातिरत वृसयस्य शेपो विन्दत ज्योतिरेक बहुभ्य ॥४॥
—१।९३

९ अभिनक्षन्तो अभि ये तमानशुर्निधि पणीना परम गुहाहित।
ते विद्वासा प्रतिचक्ष्यानृता पुनर्यत उ आयन्तदुदीयुराविश ॥६॥
—२।२४

१० नि सर्वसेन इषुधी रसक्त समर्यो गा अजति यस्य वष्टि।
चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वाम मा पणिभूरस्मदधि प्रवृद्ध ॥३॥
—१।३३

११ प्रवोचयोप घृणातो मघोन्यवुध्यमाना पणय ससन्तु।
रेवदुच्छ मघयो मघोनि रेवत् स्तोत्रे सूनृते जारयन्ती ॥१०॥
—१।१२४

१२ समीम्पणेरजति भोजन मुपे वि दाशुपे भजति सूनर वसु।
दुर्गे चन घ्रियते विश्व आ पुर जनो यो अस्य तविषीमचुक्रधत् ॥७॥
—५।३४

७ हे मित्रावरुण, तुम धन-युक्त आयु-युक्त हो, धन-युक्त (करना) चाहते हो। हे नरो, (तुम्हारे द्वारा), मायाओंने भारी रक्षा पाई है। तुम्हारे देवत्वको न दिन और रातने पाया, और न सिन्धुओंने। न पणियोंने (तुम्हारे) धनको प्राप्त किया ॥९॥

—१।१५१

८ हे अग्नि और सोम, वह तुम्हारा पराक्रम प्रसिद्ध है, जिसमें तुमने पणिसे गायें और भोजन छीने, जिससे वृत्रयके पुत्रको मार गिराया, और बहुतोंके लिये एक ज्योतिको प्राप्त किया ॥४॥

—१।९३

९ खोजते हुए चारों ओर जिन अंगिराओंने परम गुहानिहित पणियों की निधिको प्राप्त किया। वे विद्वान् भृगुओं प्रत्याख्यात करने जहाँसे आये थे, फिर वहीं चले गये ॥६॥

—१।२४

१० सारी सेनायें तर्जन लगाता (वह) सम्यक् स्वामी इन्द्र जिसको चाहता, उसकी गायें (छीन) ले जाता। बहुत सा धन जमा करने हे प्रभूत इन्द्र, हमारे लिये तुम बनिया (कृपण) न बनना ॥३॥

—१।३३

११ हे धनकी इच्छा, दानशीलोंको जगाओ, (पर) पणि बिना दाने सोये रहें। हे सम्पत्तिमती, धनवानोंको तुम धनवान बनाओ। हे मधुरभाषिणी (मधुरभाषिणी), सबसे छीन करके स्तोताओंको सम्पत्ति प्रदान करो ॥१०॥

—१।१२४

१२ (वह) बनिये (पणि) का भोजन छीननेके लिये गमन करते हैं, सोमा पहाड़ोंमें पड़ी सोमाओंमें बाहते हैं। वह इन्द्र उनको युद्ध करता है, वह सारा धन सत्य विद्वान् करता है ॥३॥

—१।१३८

१९. "किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानट् दूरे ह्यध्वा जगुरि पराचैं ।
कास्मे हिति का परितक्म्यासीत् कथ रसाया अतर पयासि" ॥१॥

"इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् व ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतर पयासि" ॥२॥

"कीदृङ्ङिन्द्र सरमे का दृशीका यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
आ च गच्छान्मित्रमेना दधामाथा गवा गोपतिर्नो भवाति" ॥३॥

"नाहं त वेद दभ्य दभत् स यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
न त गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे" ॥४॥

"इमा गाव सरमे या ऐच्छ परि दिवो अन्तान्त्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अवसृजादयुध्व्युतास्माकमायुधा सन्ति तिग्मा" ॥५॥

"असेन्या व पणयो वचास्यनिषव्यास्तन्व सन्तु पापी ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात्" ॥६॥

"अय निधि सरमे अद्रिवुघ्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्ट ।
रक्षन्ति त पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ" ॥७॥

"एह गमन्नृषय सोमशिता अयास्यो अगिरसो नवग्वा ।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वच पणयो वमन्निद्" ॥८॥

१९ (पणिगण)—सरमा, क्या इच्छा करके तुम आई ? नाना स्थानोंको जानेवाला बहुत दूरका रास्ता है। हमने क्या चाहती हो ? क्यों घूमी ? कैसे तुमने रसा (नदी) के[1] जलको पार किया ॥१॥

(सरमा—) हे पणियो, मैं इन्द्रकी दूती होकर तुम्हारी भारी निधियोंको ढूंढने आई हू। उनके भारी भयने मुझे बचाया, ऐसे मैं रसाके जलको पार हुई ॥२॥

(पणि—) सरमा, कैसा इन्द्र है, कैसी (उनकी) आकृति (है), जिनकी दूती होकर तुम दूरसे आई ? वह इन्द्र आवे, हम उसे मित्र मानेंगे। वह हमारी गायोंका चरवाहा बनेगा ॥३॥

(सरमा—) मैं उनको (किसीसे) हारने योग्य नहीं जानती, वह हरा सकता है, जिस (इन्द्र) की दूती बन कर मैं आई हू। गहरी नदियां भी उनको नहीं छिपा सकती। हे पणियो, उस इन्द्र द्वारा निहत तुम सो जाओगे ॥४॥

(पणि—) हे सुभगे सरमा, आकाशके अन्तिम भाग तक उठती यह गायें हैं, जिनकी इच्छा करके आई हो। उन (गायों) को युद्धके बिना कौन छीन सकता है ? हमारे आयुध तीक्ष्ण हैं ॥५॥

(सरमा—) पणियो, तुम्हारे वचन पोचाशय नहीं हैं, तुम्हारे पास शरीर बाणसे अभेद्य नहीं है। आनेका मार्ग यदि अप्रचलित हो, तो भी बृहस्पति तुम्हें संकटापन्न किये बिना नहीं रहेगा ॥६॥

(पणि—) सरमा, पर्वत कोटरोंमें, (हमारे) सात निधि पोले, अच्छी, गायों और मनुष्यों (धनों) से पूर्ण हैं। सुरक्षार्थ पणि उनको रक्षा करते हैं। हमारे एकान्त स्थानमें तुम स्वयं ही आई ॥७॥

(सरमा—) यह सोमसे मत्त अयास्य आंगिरस मरुत् (इन्द्र) यहां आवेंगे। यह इस गायोंके समूहको बाड़े में लावेंगे, किन्तु पणियों यह तुम्हारा बान्धव सरमा नहीं है ॥८॥

---

[1] नदी का नाम, जो सिंध के अदूर पूर्व में थी।

"एवा च त्व सरम आजगन्थ प्रवाधिता सहसा दैव्येन।
स्वसार त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवा सुभगे भजाम" ॥९॥

"नाह वेद भ्रातृत्व नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरगिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीय" ॥१०॥

"दूरमित पणयो वरीय उद्गावो यन्तु मिनती ऋतेन।
वृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूहळा सोमो ग्रावाण ऋषयश्च विप्रा" ॥११॥
—१०।१०८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१ मनु—

१ एता धिय कृणवाम सखायो'प यामातां ऋणुत व्रज गो ।
यया मनुर्विशिशिप्र जिगाय यया वणिग्वकुरापा पुरीष ॥६॥
—५।४५

२. आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धिय । देवेभिरग्न आ गहि ॥२॥
—१।१४

(पणिगण—) हे सरमे, ऐसे ही देवताओंने बाधित हो कर तुम यहा आई। हम तुम्हें (अपनी) बहिन बनाते हैं, तुम लौटके मत जाओ। हे सुभागी, हम तुम्हें गायें देंगे ॥९॥

(सरमा—)न मैं भ्रातृत्व जानती, न स्वसृत्व। इन्द्र और घोर अंगिरावंशी (उन्हें) जानते हैं, जो गायके इच्छुक हैं। अब मैं चली। पणियो, यहा से दूर भाग जाओ ॥१०॥

पणियो, यहासे बहुत दूर भाग जाओ। (वह) गायें ऋतकी आज्ञासे वापस करती जायें, जिन निगूढ (गौओ) को बृहस्पति, सोम, (सोम पीननेके) पत्थरो और विप्रो (ऋषियोंने) प्राप्त किया।

—१०।१०८

अध्याय ७

आदिम आर्य राजा

१. मनु—

१ हे मरुतो, आओ, इस अनुष्ठानको बनायें, जिस मानने गायोंका यज्ञ सोम दिया था, जिसके द्वारा मनुने विशिष्टताको जीता, जिसके द्वारा बहुत भटकने वालेने जल प्राप्त किया था ॥६॥

—तृशिरा त्रासदस्यव, ५।५१

२. हे अग्नि, तुम्हें मनु पुकारते हैं, विश (मानव) तुम्हारे कामोंकी प्रशंसा करते हैं, देवताओंके साथ तुम आओ ॥७॥

—वैखानसऋषि मनु-पुत्र, १।१४

३. या वो भेषजा मरुत शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु।
यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता श च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥१३॥
—२।३३

४ नू म आ वाचमुप याहि विद्वान्विश्वेभि सूनो सहसो यजत्र ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनु चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥

५. तन्नु सत्य पवमानस्यास्तु यत्र विश्वे कारव सन्नसन्त।
ज्योतिर्यदह्ने अकृणोदु लोक प्रावन्मनु दस्यवे करभीक ॥५॥
—९।९२

प्रश्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रवन्नमी साप्य सत पणग् रायासमिपास स्वस्ति ॥६॥
—भरद्वाज, ६।२०

२. पुरूरवा—

६. त्वमग्ने मनवे द्यामवाशय पुरूरवसे सुकृते सुकृत्तर।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्यसे पर्या त्वा पूर्वमनयन्नापर पुन. ॥४॥
—१।३१

७ "ह्ये जाये मनसा तिष्ठ घोरे वचासि मिश्रा कृणवावहै नु।
न नौ मन्त्रा अनुदितास एते मयस्करन् परतरे चनाहन्" ॥१॥

३ हे समर्थ मरुतो, जो तुम्हारी शुचि औषधियां हैं, सो तुम्हारी अतिकल्याणकारी सुखदायक (औषधियां) हैं। तुम्हारी जिन औषधिको हमारे पिता मनुने चुना था। मैं (उनके द्वारा) रुद्रसे मंगल और हित चाहता हूं ॥१३॥

—गृत्समद, २।३३

४ हे विद्वान् सहस्र-शृंगु (अग्नि), मेरी वचनसे सारे यजन-योग्य देवताओंके साथ मेरे पास आओ। जो (देवता कि) अग्निरूपी जीभवाले, जो यज्ञके जाननेवाले हैं। जिन्होंने मनुको दासोंके ऊपर (विजयी) किया ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२१

५ वह पवमानका सत्य हो, जहां सारे कवि एकत्रित होते हैं। जिसने दिनमें ज्योति और लोक बनाया, जिसने दस्युका हनन किया, मनुकी रक्षा की ॥४॥

—सप्तर्षि मरीचि-पुत्र, ९।९२

इन्द्रने उत्तीदक दास नमुचिके सिरको काटा, जैसे बाज मछिरनाल सोमको। उसने सोते सप्त-पुत्र नमीकी रक्षा की, अन्न, सम्पत्ति, संपत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

२. पुरूरवा ऐल—

६. हे अग्नि, तुमने मुहूर्तभर मनुके लिये, पुरु (पुरुषों) पुरूरवाके लिये दौरा बनाया। दोनों (अरणीरूपी) माता-पिताके अङ्क तुम शोभनका भक्षण होते हो, तो तुम (त्रिविष्) पूर्वकी ओर फिर पश्चिमकी ओर से जाते हो ॥ ८॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस-पुत्र, १।३१

७. (पुरूरवा—) हे जाया, हे घोरे (निष्ठुर), मन इधर लगा कर इधर। इस आसन में बात तो करें। हमारी न कही ये बातें हमारे लिए पहिले मुहूर्त नहीं हुई ॥१॥

"किमेता वाचा कृणवा तवाहं प्राक्रमिषमुषसामग्रियेव।
पुरूरवः पुनरस्त परेहि दुरापना वात इवाहमस्मि" ॥२॥

इषुर्न श्रिय इषुधेरसना गोषा शतसा न रंहि।
अवीरे क्रतौ वि दविद्युतन्नोरा न मायु चितयन्त धुनय ॥३॥

सा वसु दधती श्वशुराय वय उषो यदि वष्ट्यन्ति गृहात्।
अस्त ननक्षे यस्मिन् चाकन्दिवा नक्त श्नथिता वैतसेन ॥४॥

"त्रि. स्म माह्न. श्नथयो वैतसेनोत स्म मे व्यत्यै पृणासि।
पुरूरवो नु ते केतमाय राजा मे वीर तन्वस्तदासी ॥५॥

सचा यदासु जहतीष्वत्कममानुषीषु मानुषो निषेवे।
अप स्म मत्तरसन्ती न भुज्युस्ता अत्रसन् रथस्पृशो नाश्वा ॥८॥

यदासु मर्तो अमृतासु निस्पृक् स क्षोणीभि क्रतुभिर्न पृङ्क्ते।
ता अन्तयो न तन्व शुम्भत स्वा अश्वासो न क्रीळयो दन्दशाना ॥९॥

विद्युन्न या पतन्ती दविद्योद् भरन्ती मे अप्या काम्यानि।
जनिष्टो अपो नर्यं सुजात प्रोर्वशी तिरत दीर्घमायु ॥१०॥

जज्ञिष इत्या गोपीथ्याय हि दधाथ तत् पुरूरवो म ओज।
अशास त्वा विदुषी सस्मिन्नहन्न म आशृणोः किमभुग्वदासि" ॥११॥

"कदा सूनुः पितर जात इच्छाच्चक्रं नाथुं वर्तयद्विजानन्।
को दम्पती समनसा वि यूयोदघ यदग्नि श्वशुरेषु दीदयत् ॥१२॥

(उर्वशी—)तेरी इन बातों को मैं क्या करूँ? प्रथम उषा सी मैं तेरे पास चली आई। हे पुरूरवा, अपने घर लौट जा, मैं वायुकी तरह दुर्लभ हूँ ॥२॥

(पुरूरवा—)स्त्रीके लिए जैसे तूणीरसे फेंका बाण, जैसे सैकड़ों गायोंको जीतनेवाला तेज घोड़ा, अश्वीरवाले कार्य में जैसे बिजली चमके, जैसे आपत्तमें गाय मेमनेकी तरह चिल्लाये, वैसे मैं विलाप करता हूँ ॥३॥

(उर्वशी—)हे उषा, जब (पति ने) चाहा, वह (उर्वशी) पतिके घरले, श्वसुरको जीवन-धन देती। उसने घर चाहा, जिसमें दिन-रात पतिसे आलिंगिता हो सुख पाया ॥४॥

दिनमें तीन बार अपनी प्रियाको आलिंगित करता, यद्यपि वह मुझे पसन्द नहीं था। हे पुरूरवा, (तो भी) तेरी इच्छा पूरा करती, तब हे वीर, तुम मेरे शरीरके राजा थे ॥५॥

(पुरूरवा—) जब मानुष (पुरूरवा) मैं चक्षुहीना अमानुषियोंको सेवन करने चला, तो भयभीत होकर हरिणीकी तरह या रथके अश्वोंकी तरह भागी ॥८॥

जब मरणधर्माने अमृताओंकी अनुमति पा उनसे बात की, तो हंसोंकी तरह उन्होंने शरीर-शोभा दिखाई, दौड़ते अश्वोंकी तरह वह गईं ॥९॥

जो गिरती बिजलीकी तरह चमकी, वह (उर्वशी) मेरे लिए अपनी रमणीय भेंट लाई, जिसने मेरे लिए सुजात, नेता, पुत्र जना, वह उर्वशी दीर्घायु हो ॥१०॥

(उर्वशी—)हे पुरूरवा, ऐसे पार्थिव यूप पीनेके लिए पुत्र पैदा किया, मेरेमें यह ओज रखा। मैं जानती थी, मैंने तुझे बता दिया था। इस समय मेरी बात तूने नहीं सुनी, (अब) क्यों व्यर्थ बोलता है ॥१॥

(पुरूरवा—)जब पुत्र पैदा हो पिताके (जन्मदेनी) इच्छा करेगा, ब्राह्मणोंपर कृपा कर क्या आयु लिखेगा? (परन्तु) प्रेमी (पति-पत्नी) को दोष रिक्त करेगा, अप्सरा स्वप्नमें (दीखती) अति उग्र रही है ॥१२॥

प्रति ब्रवाणि वर्तयते अश्रु चक्र नक्र ददाघ्ये शिवायै।
प्र तत्ते हिनवा यत्ते अस्मे अपरेह्यस्त नहि मूर भाप ॥१३॥

सुदेवो अद्य प्रपतेदनावृत् परावत परमा गन्तवा उ।
अधा शयीत निऋतेरुपस्थेधैन वृका रभसासो अद्यु" ॥१४॥

"पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणा हृदयान्येता ॥१५॥

यद्विरूपाचर मर्त्येष्ववस रात्रि शरदश्चतस्र।
घृतस्य स्तोक सकृदह्न आश्ना ता देवेदन्तातृपाणा चरामि" ॥१६॥

"अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तम्यते मे" ॥१७॥

"इति त्वा देवा इम आहुरैळ यथेमेतद् भवसि मृत्युबन्धु।
प्रजा ते देवान् हविषा यजाति स्वर्ग उ त्वमपि मादयासे" ॥१८॥
—१०।९५॥

३. नहुष—

८ यो देह्यो अनमयद्वघश्नेनैर्यो अर्यपत्नीरुपसश्चकार।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृत सहोभि ॥५॥
—७।६

(उर्वशी—)आयुचक्र गिराते समय उनसे मैं सान्त्वना वचन कहूँगी, (वह) स्नेहके लिए नहीं रोयेगा। हमारे बीच जो नेग (पुत्र) है, उसे मैं तेरे पास भेज दूगी। तू घर लौट जा, मूर्ख, तू मुझे नहीं पा सकता ॥१३॥

(पुरूरवा—) सुदेव (पुरूरवा) आज गिरेगा, अत्यन्त दूर जाके फिर नहीं लौटेगा। (फिर) तो वह आपदाओंकी गोदमें सोये, उसे गृध्रगण भेंटिये खा जायें ॥१४॥

(उर्वशी—)नहीं, हे पुरूरवा, तू मत मर, मत गिर, न अशिव भेंटिये तुझे खायें। स्त्रियोंकी मित्रता (स्थायी) नहीं होती, उनके ये हृदय भेड़ियोंके (नकटबच्चों) के (हृदय) हैं ॥१५॥

नाना रूपमें घूमती मैंने मनुष्योंमें चार शरदों (सालों) की रातें बिताई। घीका सा घी मैंने एक बार चखा, उससे तृप्त (हो)अब भी विचरण करती रही ॥१६॥

(पुरूरवा—)मैं उसका महानतम प्रेमी (हूँ), आकाशको पूरनेवाली लोकोंको नापनेवाली उर्वशी से मैं प्रार्थना करता हूँ। तेरे पास मेरा मुखड़ा दान पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय काष्ठ हो रहा है ॥१७॥

(उर्वशी—)हे ऐल (इलापुत्र), यह देवता तुझसे कह रहे हैं, कि तू मृत्युका बँधुआ होगा, तेरी सन्तान हविसे देवोंकी पूजा करेगी और तू भी स्वर्गमें सुखी होगा ॥१८॥

—१०।९५

२. नहुष—

८. जिसने भयंकर अनुयोनि (अनुचरों) भीतोंको छोड़ दिया, जिसने उनकी अर्धांगिनी बनाया। उस नहुषने अपनेसे नहुषकी प्रजाओंको बली होने दिया और उन्हें पत्नियाँ (भृत्य) बनाया ॥५॥

—परिशिष्ट, ७।९

९ त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पति।
इळामकृण्वन्मनुषस्य शासनी पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते ॥११॥
—१।३१

४ ययाति नहुष-पुत्र—

१०. परावतो ये दिधिषन्त आप्य मनुप्रीतासो जनिमा विवस्वत ।
ययातेर्य नहुष्यस्य बर्हिषि देवा आसते ते अधिब्रुवन्तु न ॥१॥

११. मनुष्वदग्ने अंगिरस्वदंगिरो ययातिवत् सदने पूर्ववच्छुचे ।
अच्छ याह्या वहा दैव्य जनमासादय बर्हिषि यक्षि च प्रिय ॥१७॥
—१।३१

५. मन्धाता—

१२ यो अग्नि सप्त मानुष श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु।
तमागन्म त्रिपस्त्य मन्धातुर्दस्युहन्तममंगिरं यज्ञेषु पूर्व्यं,
नमन्तामन्यके समे ॥८॥
—८।३९

अध्याय ८

शंबर

§१ दस्यु

१. स वृत्रहेन्द्र कृष्णयोनी पुरन्दरो दासीरैरयद्वि।
अजनयन्मनवे क्षामपश्च सत्रा शस यजमानस्य तूतोत् ॥७॥
—२।२०

हे अग्नि, देवोंने नहुषके प्रजा-पति, प्रथम आयुवाले तुमको आयु वाले (मनुष्य) के लिए इला (अन्न) को मनुष्यकी उपदेशिका बनाया। (कैसा था समय) जब मेरे पिताके (यहाँ) पुत्र जनमा ॥११॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३१

. ययाति नहुष-पुत्र—

०. मनुने प्रसन्न विवस्वान्‌की सन्तानें जो पश्चिमसे आ बन्धु बनती हैं, जो देवता नहुष-पुत्र ययातिके यज्ञमें बैठते हैं, वे हमसे मंगलालाप करें ॥१॥

—नाभ्य प्रगति-सूक्त, १०।६३

१ शुचि अग्नि, हे अंगिरा, अंगिराकी तरह, ययातिकी तरह (हमारे) पूर्वजोंकी तरह (हमारे) सदनमें आओ। यज्ञमें लाओ, दिव्य जनोंको लाओ, (उन्हें) यज्ञमें बैठाओ, और प्रिय (वस्तु) प्रदान करो ॥१७॥

—हिरण्यस्तूप आंगिरस, १।३१

. मन्थाता—

१२ सारी सात सिन्धुओं (नदियों) में बसने जातिके मानुषोंके स्वामी त्रिधातु (द्यौ-पृथिवी-अन्तरिक्ष)-निवासी मन्थाताके लिए अन्नसहित धन्वुओंके इला, यज्ञमें प्रथम अग्निको हम चाहते हैं। अन्य सारे मर जायें ॥८॥

—नाभानेदिष्ठ सूक्त, ८।३९

अध्याय ८

शंबर

§१. धन्व

१ [illegible] पुरन्दर (पुरुहूत) (इन्द्र) ने सातों ओरसे सात [illegible] नष्ट कर दिया। उसने मनुके लिए पृथिवी और अन्न पैदा किये। उसने [illegible] सदा पूर्ण की ॥७॥

—[illegible] सूक्त, २।२०

२ इन्द्र समत्सु यजमानमार्य प्रावद्विश्वेषु शतमूतिराजिषु
स्वर्मीळ्हेष्वाजिषु।

मनवे शासदव्रतान् त्वच कृष्णामरन्धयत्
दक्षन्नविश्व ततृपाणमोषति न्यर्शसानमोषति ॥८॥
—१।१३०

३ न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभि ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपिगुर्ऋतं न ॥५॥
—७।२१

४. स वाज यातापदुष्पदा यन्त्स्वर्षाता परिषदत् सनिष्यन्।
अनर्वा यच्छतदुरस्य वेदो घ्नन्छिश्नदेवा अभि वर्पसा भूत् ॥३॥
—१०।९९

५ प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठ ।
न ते भोजस्य सख्य मृषन्तावा सूरिभ्य सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥
—७।१८

६ अरोरवीद्वृष्णो अस्य वज्रो मानुष यन्मानुषो निजूर्वात्।
नि मायिनो दानवस्य माया अपादयत्पपिवान्त्सुतस्य ॥१०॥

सनेम येत ऊतिभिस्तरन्तो विश्वा स्पृध आर्येण दस्यून्।
अस्मभ्य तत्त्वाष्ट्र विश्वरूपमरन्धय सख्यस्य त्रिताय ॥१९॥
—२।११

७ अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुष ।
त्व तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥८॥
—१०।२२

२ युद्धमें इन्द्रने आर्य यजमानकी रक्षा की, युद्धोंमें जिनकी नारी सैकड़ों रक्षायें स्वर्गदायक (है)। उसने मनुके लिए व्रतहीन काली चमड़ीवालोंको दण्ड दिया, नाश किया। जलाते हुए सारे हिंसकोंको जला डाला, निष्ठुरोंको जला डाला ॥८॥

—पैप्पलाद दिवोदास-सूक्त, १।१३

३ हे इन्द्र, जादू (पिशाच) हमें न मारें, हे वसिष्ठ, न दुष्ट अपनी चालोंसे (मारे)। वह स्वामी विषम जन्तुको मारे, शिश्नपूजक हमारे ऋतके पास न आयें ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।२१

४ वह अच्छे रास्ते युद्धमें गये, वह स्वर्ग इच्छुक श्रम करते, वह सौ रखवालोंवाले नगरकी निधियोंको लाये, अविचलित हो उन्होंने शिश्न-पूजकोंको (अपने) तेजसे अभिभूत किया ॥३॥

—वभ्रु वैखानस, १०।९९

५ हे इन्द्र, जिसने तुम्हें प्रसन्न किया, (वे हैं) पराशर शौर सौ जादू-वाले वसिष्ठ। तुम (जैसे) भोजकी मित्रतासे जो नहीं भूलेगा, उन सूरियों[1] लिए सुन्दर दिन होंगे ॥२१॥

—वसिष्ठ, ७।१८

६ मनुष्य-हितकारी (इन्द्र) ने जब शत्रुओं ललकारा, तो पराक्रमी (इन्द्र) का वज्र बार-बार गरजने लगा। खाते (सोम) को पीकर इन्द्रने सारी जनवती सामग्री गिरा दिया ॥१०॥

तुम्हारी स्तुतियोंसे युक्त हों, आर्य ब्रह्म हम शत्रु-स्तुतियोंसे रक्षायें। हमारे लिये जो कि त्वष्टा-पुत्र विश्वरूपको तुमने किसके लिए मारा ॥१९॥

—गृत्समद शौनहोत्र-सूक्त, २।११

---

[1] सूरि, राजकुमार, विद्वान्।

७ हमारे चारो ओर कर्महीन, मन्त्रहीन, व्रतहीन, अमानुष दस्यु हैं।
हे अमित्रहन्ता (इन्द्र), उस दस्यु दासका वध करते नाश करो ॥८॥
—विमद, १०।२२

८ येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधर गुहाक ।
श्वघ्नीव यो जिगीवालक्षमाददर्य पुष्टानि, स जनास इन्द्र ॥४॥
—२।१२

९ वधीर्हि दस्यु धनिन घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वान सनका प्रेतिमीयु ॥४॥
—१।३३

१० त्वमग्ने राजा वरुणो धृतव्रतस्त्व मित्रो भवसि दस्म ईळ्य ।
त्वमर्यमा सत्पतिर्यस्य सम्भुज त्वमशो विदथे देवमाजयु ॥४॥
—२।१

११ अग्ना तुर्वश यदुं परावत उग्रादेव हवामहे ।
अग्निर्नय नववास्त्व बृहद्रथ तुर्वीति दस्यवे सह ॥१८॥
—१।३६

१२ त्व पिप्रु मृगयं शूशुवासमृजिश्वने वेदयिनाय रन्धी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रा' त्क न पुरो जरिमा विदर्द ॥१३॥
—४।१६

१३ तस्मै तवस्यमनुदायि सत्रेन्द्राय देवेभिरर्णसातौ ।
प्रति यदस्य वज्र बाहू वोर्धुर्हत्वी दस्यून् पुर आयसीर्नितारीत् ॥८॥
—२।२०

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेना ।
अन्तर्ह्यस्यदुभे अस्य घेने अयोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्र ॥९॥
—५।३०

८ जिसने इस सारे नश्वर (मसार) का निर्माण किया, जिस गुह्य (देवता) ने दास वर्णको नीच बनाया, जो शिकारीकी तरह लक्ष्य जीतकर पुष्ट धन लेता है। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥४॥

—गृत्समद, २।१२

९ हे इन्द्र शक्तिशाली (मरुतो) के साथ जा अकेले तुमने धनी दस्युको घन (वज्र) से मारा। पुरातन यज्ञहीन चारो ओरसे आये (दस्यु) धीके नीचे मृत्यु प्राप्त हुए ॥४॥

—हिरण्यस्तूप, १।३३

१०. हे अग्नि, तुम व्रतधारी राजा वरुण हो, तुम स्तुति-योग्य अद्भुत मित्र हो। तुम अर्यमा सच्चे स्वामी, जिनका सम्यक् भोज है। हे देव, तुम अंश (सूर्य) यज्ञमें भोजदायक हो ॥४॥

—गृत्समद, २।१

११ अग्निके द्वारा पश्चिम (देश) से उग्र-पूजक (उग्रादेव) तुर्वश-यदुको हम बुलाते हैं। अग्नि (देवता) नवग्वास्त्व बृहद्रथ और तुर्वीतिको दस्युओंको हरानेके लिए लावे ॥१८॥

—कण्व घोर-पुत्र, १।३६

१२. हे इन्द्र, तुमने विदथि-पुत्र ऋजिश्वाके लिए पिप्रु, (और) कृष्ण मृगयको मारा। तुमने पचास हजार कालोंको नष्ट किया, जिस तरह जरा कचुकको उसी तरह तुमने पुरोंको ध्वस्त किया ॥१३॥

१३ उस इन्द्रकी देवताओंने रणमें सदा प्रभुता मानी। जब उनके दोनों बाहोंमें वज्र रहता, तो उसने दस्युओंको मारा, सारी पुरियोंको नष्ट किया ॥८॥

—गृत्समद, २।२०

१४ दास (शवर) ने स्त्रियोंको सायुध (सैनिक) बनाया, इनकी सेना मेरा क्या करेगी? उसके दो स्वर प्रसिद्ध हुए। तब दस्युने लड़नेके लिए आगे बढ़ा ॥९॥

१५. त्व जघन्थ नमुचि मखस्यु दास कृष्वान ऋंपये विमाय।
त्व चकर्थ मनवे स्योनान् पथो देवत्राजसेव यानान् ॥७॥
—१०।७३

१६. प्र श्येनो न मदिरमशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन्।
प्रावन्नमी साप्य ससन्त पृणग्राया समिषा स स्वस्ति ॥६॥
—६।२०

१७. विषूमृधो ननुषा दानमिन्वन्नहन् गर्वां मधवन्त्सचकान ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मान चित्स्वर्यं वर्तमान प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्य ॥८॥
—५।३०

१८ अस्वापयद्भीतये सहस्रा त्रिंशत हर्यं । दासानामिन्द्रो मायया ॥२१॥
—४।३०

१९. स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तु नामा चुमुरि धुनिं च।
वृणक्पिप्रु शम्बर शुष्णमिन्द्र पुरा च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥
—६।१८

२० उरु यज्ञाय चक्रथुरु लोक जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निं।
दासस्य चिद्वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४॥
—७।९९

१५. हे इन्द्र, तुमने लडाकू नमुचिको मारा, ऋषिके लिए दासको माया-रहित बनाया। तुमने मनुके लिए सुखमय पथ बनाया, जो कि देवोके पास शीघ्र ले जाता है ॥७॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, १०।७३

१६. इन्द्रने उत्पीडक दास नमुचिके सिरको तोडा, जैसे वाज मदिर नाल (सोम) को। उसने सोते सय-पुत्र नमीकी रक्षा की, अन्न, सफलता, सम्पत्तिके साथ स्वस्ति प्रदान किया ॥६॥

—भरद्वाज, ६।२०

१७. हे मघवा, जन्मसे ही तुमने शत्रुओका नाश किया। मनुकेलिए सुखकी इच्छासे यहा तुमने दास-नमुचिके सिरको काटा॥७॥

हे इन्द्र, शब्द करते घूमते बादलकी तरह दास नमुचिके सिरको चूर्ण करते मुझे सहायक बनाया। तब स्वर्गीय पत्थरको पृथिवी और द्यौ चक्रकी तरह घूमती मरुतोके पास लाये ॥८॥

—वभ्रु, ५।३०

१८. इन्द्रने दभीतिके लिए अपनी माया (शक्ति) और हथियारोसे तीस हजार दासोको मार कर सुला दिया ॥२१॥

—वामदेव, ४।३०

१९. जो इन्द्र, सग्राममें कभी नही विमूढ हुआ, जिसने वृथा काम नही किया, जो प्रसिद्ध नामवाला है, उस तुम इन्द्रने, चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शम्बर, शुष्ण को मारा, पुरोको नष्ट होनेको छोड दिया ॥८॥

—भरद्वाज, ६।१८

२० इन्द्र और विष्णुने विस्तृत यशके लिए सूर्य, उषा, अग्निको उत्पन्न करने विशाल लोकको बनाया। हे नेताओ, तुमने वृषशिप्र दासकी मायाको सग्राममें नष्ट कर दिया ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।९९

२७ मायाभिरिन्द्र मायिन त्व शुष्णमवातिर ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषा श्रवास्युत्तिर ॥७॥
—१।११

२८ स तुर्व्वणिर्महा अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शव ।
येन शुष्ण मायिनमायसो मदे दुघ्र आभूषु रामयन्नि दामनि ॥३॥
—१।५६

२९ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥
—४।३

३०. त्व ह त्यदिन्द्र कुत्समाव. शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दास यच्छुष्णं कुयव न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥
—७।१९

३१. वृषा जजान वृषण तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरघ नृम्यो अस्तीन सत्त्वा गवेषण स घृष्णु ॥५॥
—७।२०

३२ मा कस्य यक्ष सदमिद्धुरो गा मा वेशस्य प्रमिनतो मापे ।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋण वेर्मा सख्युर्दक्ष रिपोर्भुजेम ॥१३॥
—४।३

३३. त्व कवि चोदयोऽर्कसातौ त्व कुत्साय शुष्ण दाशुषे वर्क् ।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतियिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥३॥
—६।२६

२७. हे इन्द्र, तुमने मायावी शुष्णको मायाओं द्वारा पछाड़ा। वैसे (ही) तुम्हें मेधावी जानते हैं, उन्हें यश (गान) में उतारो ॥७॥

—जेता मधुच्छन्दा-पुत्र, १।१११

२८ वह (इन्द्र) विजयी और महान् है। (वह) निर्मल, निर्दोष, पौरुष-मय, संग्राममें पर्वतके शिखरकी तरह दमकता है। जिसने मस्त हो बलपूर्वक मायावी शुष्णको आयस (तांबेकी) शृंखला से पकड़कर बन्द किया ॥३॥

—सव्य आंगिरस, १।५६

२९ हे अग्नि, हमारे किसी प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मत जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पड़ोसीके पास, मत बन्धुके पास। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विक्रमको हम भोगें ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

३० हे इन्द्र, जब तुमने अर्जुन-पुत्रका भला चाहते उनके लिए शुष्ण, कुयव दासको मारा, तब तुमने शरीरसे शुश्रूषा करते युद्धमें कुत्सकी रक्षा की ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।१९

३१. रणके लिए वृष (पराक्रमी) ने वृष (इन्द्र) को पैदा किया। नारीने उस नर्य (महानर) को जना, जो मनुष्योंके लिए सेनानी, दृढ़, वीर, (धन) ढूंढनेवाले और (शत्रु-) पराजेता है ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।२०

३२. हे अग्नि, हमारे किसी प्रतिहिंसकके भोजमें तुम मत जाना, मत मत दुष्ट विचारवाले पड़ोसीके पास, मत बन्धुके पास। मत अयोग्य भाईका ऋण भोगना। मित्र और शत्रुके विक्रम को हम भोगें[1] ॥१३॥

—वामदेव, ४।३

---

[1] मिलाओ यही २९

३३ (हे इन्द्र), तुमने सूर्य-प्राप्तिके लिए कविको प्रेरित किया, भक्त कुत्सके लिए तुमने शुष्णको मारा। तुमने अतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे मर्महीन (शम्बर) का सिरका काटा ॥३॥

—भरद्वाज, ६।२६

३४. त्व सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्य्यस्त्व पाट्।
त्व शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥३॥

—१।६३

३५ त्व कुत्स शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शंबर।
महान्त चिदर्बुदं नि क्रमी पदा सनादेव दस्युहत्याय यज्ञिये ॥६॥

—१।५१

३६. भुपाय सूर्यं कवे चक्रमीशान ओजसा।
वह शुष्णाय वध कुत्स वातस्याश्वै ॥४॥

—१।१७५

३७. कुत्साय शुष्णमशुष निवर्ही प्रपित्वे अह्न कुयवं सहस्रा।
सद्यो दस्यून् प्रमृण कुत्स्येन प्र सूरश्चक्र वृहतादभीके ॥१२॥

—४।१६

३८ देखो ३५

३९ अव त्मना भरते केतवेदा अवत्मना भरते फेनमुदन्।
क्षीरेण स्नात कुयवस्य योपे हते ते स्याता प्रवणे शिफायाः ॥३॥

—१।१०४

४०. सो अप्रतीनि मनवे पुरुणीन्द्रो दाशद्दाशुषे हन्ति वृत्र।
सद्यो यो नृम्यो अतसाय्योभूत् पस्पृधानेभ्य सूर्यस्य सातौ ॥४॥

—२।१९

३४ हे इन्द्र, तुम इनके सच्चे धर्षणकर्ता हो। तुम ऋभुक्षा (ऋभुओंके स्वामी), श्रेष्ठ नर, तुम विजेता हो। तुमने युद्धमें द्युतिमान् तरुण कुत्सके लिए शुष्णको घोडे (चढकर) के रथ पर मारा ॥३॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

३५ शुष्णके युद्धमें तुमने कुत्सकी रक्षा की, अतिथिग्व (दिवोदास) के लिए शम्बरको मारा। बडे अर्बुद (विघ्न) को भी पादाक्रान्त किया, मदासे ही तुम दस्युओंकी हत्याके लिए जनमे हो ॥६॥

—नव्य आंगिरस, १।५१

३६. हे कवि, ईशान (इन्द्र), तुमने अपने ओजसे सूर्यके एक चक्केको छीन लिया। शुष्णके वधके रूपमें कुत्सको वायुवेगवाले घोडो द्वारा लाओ ॥४॥

अगस्त्य, १।१७५

३७. (हे इन्द्र,) कुत्सके लिए तुमने शुष्ण, अशुषको मारा, प्रात कुयव और सहस्रोंको मारा। कुत्सीयोके साथ हो तुरन्त दस्युओंको तुमने नष्ट किया। सूर्यके चक्केको (हमारे) पास लाओ ॥१२॥

—वामदेव, ४।१६

३८. देखो ३५।

३९ वह केवल कामनाका धन फेंकता है, जलमें फेन फेंकता है, कुयवकी दोनो स्त्रियां धीरसे नहाई हैं। वह शिफाकी धारमें मर जायें[1] ॥३॥

—१।१०४

४० उस (इन्द्र) ने भक्त मनुके लिए अमित बहुत (धन) दिया, वृत्र (शत्रु) का नाश किया। जो (इन्द्र) सूर्य की (प्रकाश) प्राप्तिमें मनुष्योंका स्पर्धा करते तुरन्त सहायक हुआ ॥४॥

—गृत्समद, २।१९

---

१ मिलाओ ५।८७

४१ उशना यत्सहस्यैरयात गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वै ।
वन्वानो अत्र सरथ ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्ण ॥९॥
—५।२९

२. पिप्रु—

४२ त्व पिप्रुं मृगयं शूशुवासमृजिश्वने वैदथिनाय रन्वी ।
पचाशत् कृष्णा निवप सहस्रात्क न पुरो जरिमा विदर्द ॥१३॥
—४।१६

४३. अस्य स्तोमेभिरौशिज ऋजिश्वा व्रज दरयद्वृपभेण पिप्रो ।
सुत्वा यद्यजतो दीदयद् गा पुर इयानो अभि वर्पसा भूत् ॥१०॥
—१०।९९

४४ स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरधयो वैदथिनाय पिप्रु ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिव सोममस्य ॥११॥
—५।२९

४५ त्व मायाभिरप मायिनो धम स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत ।
त्व पिप्रोर्नृमण प्रारुज पुर प्र ऋजिश्वान दस्युहत्येष्वाविथा ॥१॥
—१।५१

३. वंगृद, ४. करज, ५. पर्णय—

४६ त्व करजमुत पर्णय वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्व शता वंगृदस्या भिनत् पुरो नानुद परिपूता ऋजिश्वना ॥८॥[1]
—१।५३

---

[1] देखो ८।३९।८ भी

४१ हे इन्द्र, हे उशन, तुम जब शक्तिशाली शीघ्रगामी अश्वों द्वारा (कुत्स) के गृहमें आये, तो रथ द्वारा यहाँ से (शत्रुओंको) नाश करने गये, कुत्स और देवताओंके साथ (जा) शुष्णको मारा ॥९॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

२. पिप्रु—

४२ देखो १२

४३ उशिज-पुत्र ऋजिश्वा ने इस इन्द्र की स्तुतियों द्वारा, वृषभ (पराक्रमी इन्द्र) द्वारा पिप्रुके गोष्ठ को विदीर्ण किया। जब याजकों ने सोम सवन करके स्तुति की, तो(इन्द्र ने)आकर शत्रुकी पुरियोंको बलात् ध्वस्त किया ॥११॥

—वभ्रु वैज्ञानन, १०।९९

४४ हे इन्द्र, गौरिवीति के स्तोम तुम्हें बढ़ायें। तुमने विदथि-पुत्र (ऋजिश्वा) के लिये पिप्रु को मारा। ऋजिश्वा ने तुम्हारी मित्रता के लिये पुरोडाश पका कर तैयार किया। तुमने उनके सोमको पिया ॥११॥

—गौरिवीति शक्ति-पुत्र, ५।२९

४५ (हे इन्द्र) तुमने मायाओं द्वारा मायावियोंको उड़ा दिया, जो कि अग्नों द्वारा मुख में हवन करते हैं। मनुष्यों के लिये तुमने पिप्रुके पुरों को नष्ट किया, दस्यु-युद्धों में ऋजिश्वा की सुरक्षा की ॥५॥

—भव्य आगिरस, १।५१

३. वगृद, ४. फरज, ५. पर्णय—

४६ हे इन्द्र, तुमने फरज और पर्णय को मारा, अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाई के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण (हथियारों) से मारा। निरायुध तुमने ऋजिश्वा द्वारा घेरी गई वगृद की सौ पुरियोंको ध्वस्त किया ॥८॥

—भव्य आगिरस, १।५२

४७. प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो य कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना।
अवस्यवो वृषण वज्रदक्षिण मरुत्वन्त सख्याय हवामहे ॥१॥
—१।१०१

४८ वि सूर्यो मध्ये अमुचद्रथं दिवो विदद्दासाय प्रतिमानमार्यं ।
दृहळानि पिप्रोरसुरस्य मायिन इन्द्रो व्यास्यच्चकृवां ऋजिश्वना ॥३॥
—१०।१३८

६. वर्चो—

४९ इन्द्राविष्णू दृहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्ट।
शत वर्चिन. सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥
—७।९९

५०. अध्यवर्यवो य शत शंबरस्य पुरो विभेदाश्मनेव पूर्वी ।
यो वर्चिनः शतमिन्द्र· सहस्रमपावपद् भरता सोममस्मै ॥६॥

अर्ध्वयवो य शतमासहस्र भृम्या उपस्थे वपज्जघन्वान्।
कुत्सस्यायो रतिथिग्वस्य वीराभ्यावृणग्भरता सोममस्मै ॥७॥
—२।१४

५१ उत दासस्य वर्चिन. सहस्राणि शता वधी । अधि पच प्रधीरिव ॥१५॥
—४।३०

५२ य सुन्वन्तमवति य पचन्त य शसन्त य शसमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धन यस्य सोमो यस्येद राध, स जनास इन्द्र ॥१४॥
—२।१२

४७ जिस (इन्द्र) ने ऋजिश्वा के साथ हो कृष्णगर्भों (कालो) को मारा। उस आनदी (इन्द्र) की हवि-युक्त वाणीसे अर्चना करो। रक्षाकी कामनासे मरुत्तोवाले दाहिने हाथमें वज्र धारे पराक्रमी इन्द्रको हम मित्रताके लिये पुकारते है॥१॥

—कुत्स अगिरा-पुत्र, १।१०१

४८ द्यौके मध्यमें सूर्य ने अपने रथ को छोड दिया। दानके लिये आर्यने प्रतिद्वद्वी पाया। इन्द्रने ऋजिश्वासे मित्रता करके मायावी पिप्रु, असुरके दृढ (दुर्गो) को नष्ट किया॥३॥

—अग उरु-पुत्र, १०।१३८

६. वर्चो—

४९ हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शम्बरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको ध्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्चो असुरके सौ हजार अप्रतिम वीरोको नष्ट किया।

—वसिष्ठ, ७।९९

५० हे अध्वर्युओ (पुरोहितो), जिस इन्द्र ने शम्बरकी पत्थर सी सौ प्राचीन पुरियोको छिन्न-भिन्न किया, जिस इन्द्रने वर्चिके सौ हजार (वीर) मारे, उसके लिये सोम प्रदान करो॥६॥

हे अध्वर्युओ, जिस (इन्द्र) ने सौ हजार असुरो को मार भूमिको गोद में फेंक दिया, जिसने कुत्स, आयु, अतिथिग्वके शत्रुवीरोको वध किया, उनके लिये सोम प्रदान करो॥७॥

——गृत्समद शुनहोत्रपुत्र, २।१४

५१ और दास वर्चिके सौहजार पाच (भटो) को चक्रोंके अरोंकी तरह मारा॥१५॥

—वामदेव, ४।३०

५२ जो (इन्द्र) सोम-सवनकर्त्ताकी जो पकानेवालेकी रक्षा करता है, जो रक्षा की स्तुति करता की, जो प्रशसा करने की रक्षा करता है,। मन्त्र जिसका वर्धक है, जिसका सोम है, जिसका यह अन्न है हे लोगो, यह इन्द्र है॥१८॥

—गृत्समद, २।१२

७. गुंगु, ८. वृत्रतुर—देखो (६।३६) भी

५३ अह गुगुम्यो अतियिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विक्षु धारय।
यत् पर्णयघ्न उत वा करजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥
—१०।४८

§ शंवर

५४ न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उपसो न नूत्ना ।
देवकं चिन्मान्यमान जघन्याव त्मना वृहत शम्वर भेत् ॥२०॥
—७।१८

५५ यस्य त्यच्छम्वर मदे दिवोदासाय रन्धय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव ॥१॥
—६।४३

५६. उत दास कौलितर वृहत पर्वतादधि। अवाहन्निन्द्र शम्बरं ॥१४॥
—४।३०

५७. यो नन्त्वान्यमभ्योजसो ता दर्दर्मन्युना शम्वराणि वि ।
प्राच्यावयदच्युता ब्रह्मणस्पतिराविशद्वसुमन्त वि पर्वत ॥२॥
—२।२४

५८ य शम्वर पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत् ।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु शयान, स जनास इन्द्र । ११॥
—२।१२

५९. त्व तदुक्थमिन्द्र वर्हणा क प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्वर हन् प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥
—६।२६

७. गुंगु, ८. वृत्रतुर—

५३. मैंने गुंगोओंके विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदास) को बलवान् किया। लोगोंमें वृत्र-नाशक की तरह मैंने स्थापित किया। जब मै पर्णय-हत्या अथवा फरज-हत्या, महान् वृत्र-हत्यामें बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

—१०।४८

§३ शंबर

५४ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उपाकी तरह तुम्हारी सुमतिया और न धन, कहनेके हैं। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मार, स्वय बडे (पर्वत) से शम्बर को छिन्न-भिन्न किया ॥२०॥

—वसिष्ठ, ७।१८

५५ जिसके मद में तुमने दिवोदासके लिये शम्बरको मारा। हे इन्द्र, वह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४३

५६ और हे इन्द्र, तुमने कुलितर-पुत्र शम्बर दासको वृहन् पर्वतके ऊपर मारा ॥४॥

—वामदेव, ४।३०

५७. हे ब्रह्मणस्पति, ओजसे तुमने झुकाने योग्योंको झुकाया, क्रोधमें शबरके पुरोंको नष्ट किया। न च्युत होनेवालो को च्युत किया। धनवाले पर्वतमें प्रवेश किया ॥२॥

—गृत्समद, २।२४

५८. जिसने पर्वतमें रहते शम्बरको चालीसवें शरदमें जा धरा। जिसने ओजायमान हो सोते हुये दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—गृत्समद, २।१२

५९ हे इन्द्र तुम शत्रुहन्ता हो। उन स्तुतियो अच्छा किया, हे शूर, जब तुमने दास महत्नोंको दर्दराया। तुमने पहाडो दास शम्बरको मारा, विविध सहायता से दियोदास की रक्षा की ॥५॥

—भरद्वाज, ६।२६

६०. इन्द्राविष्णू दृंहिता शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्ट।
शत वर्चिनः सहस्र च साक हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

—७।९९

६१. अह् पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३।

—४।२६

६२. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो,
वज्रेण दाशुषे नृतो।

अतिथिग्वाय शम्बर गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

६३. त्व शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्था प्रतीनि दस्यो'।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय।
सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

—६।३१

६४. दिवे दिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जा।
अहन्दासा वृषभोव वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिना शम्बर च ॥२१॥

प्रस्तोक इन्नु रावसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध शम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

—६।४७

६० हे इन्द्र और विष्णु, तुमने शवरकी निन्नानवे दृढ पुरियोको ध्वस्त किया। साथ ही तुमने वर्ची असुरके नौ हजार अप्रतिम वीरोको नष्ट किया ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।९९

६१. मैंने सोम से मस्त हो शवरकी नौ-सहित नव्वे गढियोको ध्वस्त किया। जब युद्धमें अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की तो सौवीको (उसके) प्रवेश योग्य बनाया।

—वामदेव, ४।२६

६२. हे नृत्य करनेवाले (इन्द्र) तुमने सग्राम में भक्त पुरु दिवोदासके लिये वज्रसे निन्नानवे पुरिया नष्ट की। अतिथिग्वके लिये तुम उग्रने शवरको गिरि से नीचे पटका। बडी निधिको बाटते, अपने पराक्रममे सारी निधि बाटते ॥७॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र,१।१३०

६३ (हे इन्द्र) जहा शचिमान् (बुद्धिमान्), तुमने शक्ति के साथ सोमक्रेता, सवनकर्ता दियोदासके लिये शवर दस्युके नौ पुरोको नष्ट किया। स्तुति करनेवाले भरद्वाज को धन दिये ॥४॥

—गृहोत्र, ६।३१

६४ दिन-प्रतिदिन समान प्रकारसे (उगते) उसने दूसरे आधेमें कालेको दूर करते सद्गमे उत्पन्न कृष्णा (रात्रि)को दूर किया। वृषभ (पराक्रमी) इन्द्रने धन-लोभी वर्ची और शवर को उदवजमें मारा ॥२१॥

हे इन्द्र, प्रस्तोताने दस और दस घोडे दिये। दिवोदास अतिथिग्वके शम्बरवाला धन हमने पाया ॥२२॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

अध्याय ६

दिवोदास

§१. पूर्वकाल के आर्य नेता

१. दध्यङ्—

१. दध्यङ् ह मे जनुष पूर्वो अंगिरा प्रियमेध. कण्वो
अत्रिर्मनुर्विदुस्ते मे पुर्वे, मनुर्विदु ।

तेषा देवेष्वायतिरस्माक तेषु नाभय ।
तेषा पदेन मह्यानमे गिरेन्द्राग्नी, आनमे गिरा ॥९॥

—१।१३९

२. सम, ३. रुशम, ४. श्यावक, ५. कृप—

२. शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविय धिय इन्द्र सिषासत ।
शग्धि यथा रुशम श्यावक कृपमिन्द्र प्राव स्वर्णरं ॥१२॥

—८।३

३. यद्धा रुमे रुशमे श्यावके कृत इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभि स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्यागहि ॥२॥

—८।४

६. बध्र्यश्व—

४. भद्रा अग्नेर्बध्र्यश्वस्य सदृशो वामी प्रणीति सुरणा उपेतय ।
यदी सुमित्रा विशो अग्र इन्धते घृतेनाहुतो जरते दविद्युतत् ॥१॥

अध्याय ६

दिवोदास

§१ आर्य नेता

१. दधीचि—

१. वे पूर्वज दधीचि, अंगिरा, प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु मेरे जन्मको जानते हैं, वे मेरे पूर्वज (और) मनु जानते हैं। उनका देवोंमें विस्तार है, उनमें हमारे सम्बन्धी है। हे इन्द्राग्नि, उनकी गीत द्वारा पूजता हूँ, वाणीसे नमस्कार करता हू, वाणीसे नमस्कार करता हू ॥९॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३९

२. रुम, ३. रुशम, ४. श्यावाक, ५. कृप—

२. हे इन्द्र, हमारी स्तुतिसे इस यजमान को वही (सहायता) दो। जैसे तुमने पुरु-पुत्र की रक्षा की, जैसे रुशम, श्यावक, कृपकी तुमने रक्षा की, वैसे (ही) हविवाले यजमान की रक्षा करो ॥१२॥

——मेध्यातिथि कण्व-पुत्र, ८।३

३. हे इन्द्र, जब कि तुम रुम, रुशम, श्यावाक, कृपके साथ होते हो। स्तोम वहन करनेवाले कण्व लोग मन्त्रों द्वारा तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, आओ ॥२॥

—देवातिथि कण्व-पुत्र, ८।४

६. वध्र्यश्व—

४ वध्र्यश्व-का अग्नि दर्शनीय है। उनका नेतृत्व भद्र है, उनका आगमन रमणीय है। जब सुमित्र प्रजायें उसे पहिले प्रज्वलित करती हैं, तो पूर्वसे दूसरा किया दीप्तिमान् होता है, जलता है ॥१॥

१३. प्रस्तोक—

९ प्रस्तोक इन्नु राधसन्त इन्द्र दशकोशयीर्दश वाजिनो दात्।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राध शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥
—६।४७

भरद्वाज

१० अग्निरत्रि भरद्वाज गविष्ठिर प्रावन्न कण्वं त्रसदस्युमाहवे।
अग्नि वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहित ॥५॥
—१०।१५०

१४. कुत्स आर्जुनेय—

११ महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्ण।
उरु ष सरथ सारथये करिन्द्र कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥५॥
—६।२०

१२ प्र ते अस्या उषस प्रापरस्या नृतौ स्याम नृतमस्य नृणा।
अनु त्रिशोक शतमावहन्नुन्दन् कुत्सेन रथो यो असत् ससवान् ॥२॥
—१०।२९

१५. श्रुतर्य, १६. तुर्वीति, १७. दभीति, १८. ध्वसति १९. पुरुषन्ति

१३ याभि सिन्धु मधुमन्तमसश्चत वसिष्ठ याभिरजरावजिन्वत।
याभि कुत्स श्रुतर्यं नर्यमावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत ॥९॥

याभि कुत्समार्जुनेय शतक्रतु प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावत।
याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत ॥२३॥
—१।११२

१३. प्रस्तोक—

९. हे इन्द्र, प्रस्तोक ने तुम्हारे स्तोताओंको युद्धधनमेंसे दस कोश और दस घोडे दिये। अतिथिग्व दिवोदाससे हमने शवरवाला धन पाया ॥२२॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

भरद्वाज—

१० युद्धमें अग्निने हमारे अत्रि, भरद्वाज, गविष्ठिर, कण्व, प्रसदस्युकी रक्षा की। वसिष्ठ पुरोहित अग्निको पुकारता है, सुखके लिये पुरोहित (पुकारता है) ॥५॥

—मृळीक वसिष्ठ-पुत्र १०।१५०

१४. कुत्स अर्जुन-पुत्र—

११ जब वज्रके गिरने पर शुष्ण गिर गया, तो महान् द्रोहीकी सारी आयु (प्राण) विनिष्ट हो गई। सूर्यके (प्रकाश के) पानेपर सारथि कुत्सके लिये इन्द्रने रथको विस्तृत किया ॥५॥

—भरद्वाज, ६।२०

१२ (हे इन्द्र) इस उषाकाल में नेताओं में महानतम नेताके दूसरे नृत्यमें हम अच्छे सेवक बनें। त्रिशोक सौ आदमियोंको लायें, जो कुत्सके साथ एक रथपर बैठा था ॥२॥

—वसुरुचि, १०।२९

१५ श्रुतर्य, १६ तुर्वीति, १७ दभीति, १८ ध्यम्ति, १९ पुरुध्यन्ति—

१३ हे अजर अश्विद्वय, जिन उपायोंसे तुमने मधुमयी सिन्धुको बहाया। जिन उपायोंसे तुमने वसिष्ठको सुखी किया, जिनसे तुमने कुत्स, श्रुतर्य, नर्यकी सहायता की, उन सहायता के साथ आओ ॥९॥

जिनसे हे शतक्रतु (इन्द्र) तुमने कुत्स आर्जुनेय, तुर्वीति और दभीतिकी सुरक्षा की, जिनसे ध्यम्ति, पुरुध्यन्तिकी रक्षा की, उन रक्षाओंके साथ हे अश्विद्वय, आओ ॥२३॥

—कुत्स आर्जुनि, १।११२

१४. प्रतत्ते अद्या करण कृत भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षमुत्तुर्वयाणं धृषता निनेथ ॥१३॥
—६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५. न त इन्द्र सुमतयो न राय सचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्ना ।
देवक चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहत. शम्बर भेत् ॥२०॥
—७।१८

२१. सुश्रवा—

१६. त्वमेतान् जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुष ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥
—१।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ त्वमावितथ सुश्रवस तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाण।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनाय ॥१०॥
—१।५३

२३. ऋणचय—

१८. भद्रमिद रुशमा अग्ने अक्रन् गवा चत्वारि ददत सहस्रा।
ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या या ऋणचये राजनि रुशमाना।
अत्यो न वाजीरघुरज्यमानो वभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥
—५।३०

१४ (हे इन्द्र) वह तुम्हारा काम आज भी प्रसिद्ध है। तुमने जो पुत्र आयु, अतिथिग्व और बहुत हजार (दूसरे) दवाये। तुमने पिटते, तुर्वयाणको बचाया ॥१३॥

—भरद्वाज, ६।१८

२०. देवक मान्यमान—

१५ हे इन्द्र पुरानी और नूतन उषाकी तरह न तुम्हारी सुमतिया और न धन, कहनेके है। तुमने मन्यमान-पुत्र देवकको मारा, स्वय बडे (पर्वत पर) शबरको नष्ट किया ॥२०॥(८।५४)

—वसिष्ठ ७।१८

२१. सुश्रवा—

१६ हे प्रसिद्ध इन्द्र, वधु-हीन सुश्रवा पर चढ आये बीस राजाओ और (उनके) साठ हजार निम्नानवे अनुचरोको दुर्लंघ्य रथचक्र द्वारा तुमने पराजित किया ॥९॥

—नव्य आगिरस, १।५३

२२. तुर्वयाण—

१७ हे इन्द्र, तुमने अपनी रक्षाओंसे सुश्रवाकी रक्षा की, तुम्हारी शक्तियोंने तुर्वयाण की रक्षा की। तुमने पुत्र, अतिथिग्व, आयुको इन तरुण महान् राजा (तुर्वयाण) के लिये अहानिकर किया ॥१०॥

—नव्य आगिरस, १।५३

२३ ऋणचय—

१८. हे अग्नि दशमोने चार हजार गायें मुझे देते भला किया। नेताओंमें महानतम नेता ऋणचयके धनको हमने तत्परतासे ग्रहण किया ॥१२॥ दशमोके राजा ऋणचयके पास वह सर्वगामिनी रात दौड गई। शक्तिशाली घोडेकी तरह आगे वह यभुने चार हजार (गायें) पाई ॥१४॥

—यभु, ५।३०

२४. पाकस्थामा कौरयाण—

१९ य मे दुरिन्द्रो मरुत पाकस्थामा कौरयाण.।
विश्वेषा त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमान ॥२१॥

रोहित मे पाकस्थामा सुधुर कक्ष्यप्रा।
अदाद्रायो विवोधन ॥२२॥

आत्मा पितुस्तनुर्वास ओजोदा अभ्यजन।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामान भोज दातारमब्रव ॥२४॥

—८।

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० अमन्थिष्टा भारता रेवदग्नि देवश्रवा देववात. सुदक्ष।
अग्ने वि पश्य वृहताभि रायेषा नो नेता भवतादनुद्यून् ॥२॥

दशक्षिप पूर्व्यं सीमजीजनन्त्सुजात मातृषु प्रिय।
अग्नि स्तुहि दैववात देवश्रवो यो जनानामसद्वशी ॥३॥

—३।२

२७. सृजय दैववात, २८. वृचीवान्—

२१ यस्य गावावरुपा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृजयाय तुर्वश परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥

—६।२

२२ अय य सृ जये पुरो दैववाते समिध्यते। द्युमा अमित्रदम्भन ॥४॥

—४।१

२४. पाकस्यामा कौरयाण—

१९ घोके पास दौडनेवाला मा स्वय सबमें अत्यन्त शोभनीय (घोडा) है जिसे मुझे इन्द्र और मरुतो ने कुरयाण-पुत्र पाकस्यामाने दिया। ॥२१॥

पाकास्यामा ने मुझे धनप्राप्त करानेवाला रस्सी-सहित सुधुर[1] लाल (घोडा) दिया ॥२२॥

वह पिता का शरीर है, आत्मा वस्त्र और बलप्रद भोजन। चौथा लाल घोटेके दाता भोजनकर्त्ता पाकस्यामाको मैं कहता हू ॥२४॥ (५।८१)

—मेध्यातिथि कण्व-पुत्र ८।३

२५. देवश्रवा, २६. देववात—

२० भरत-सन्तान देवश्रवा और देववातने सुदक्ष, धनवान् अग्निको मथित किया। हे अग्नि, तुम बडे धनके साथ हमारी ओर देखो। प्रतिदिन हमारे नेता बनो ॥२॥

(अरणी) माताओ में प्रिय पूर्वतन सुजात अग्निको दस अगुलियो ने उत्पन्न किया। हे देवश्रवा देववात-कृत अग्निकी स्तुति करो, जो कि जनोको बसमें करनेवाला है ॥३॥

—देवश्रवा, देववात, ३।२३

२७. सृजय देववात-पुत्र, २८ यूचीवान्—

२१ जिसके दो सुन्दर घास चरनेवाले लालसा भरे लाल (घोडे) (द्यौ-पृथिवी के) मध्यमें विचरते हैं। उस (इन्द्र) ने सृंजयको पास तुर्वशको समर्पित किया, देववात-पुत्रके लिये यूचीवान् को ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२७

२२ यह अभिघ्नताशक स्तुतिमान अग्नि है, जो कि देववात-पुत्र सृजय के यहा प्रज्वलित होता है ॥४॥

—वामदेव, ४।१५

---

[1] रथमें जुतने लायक।

२९. साञ्जय महिराध —

२३ महिराधो विश्वजन्य दधानान्भरद्वाजान्त्साञ्जयो अम्ययष्ट ॥२५॥
—६।४७

३०. पुरुकुत्स —

२४. सनेम ते वसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यजै ।
सप्त यत्पुर शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥
—६।२०

२५. दनो विश इन्द्र मृध्रवाच सप्त यत् पुर शर्म शारदीर्दत् ।
ऋणोरपो अनवद्यार्ण यूने पुरुकुत्साय रन्धी ॥२॥
—१।१७४

२६ त्व ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन् पुरो वज्रिन् पुरुकुत्साय दर्द ।
बर्हिर्न यत् सुदासे वृथा वर्गहो राजन् वरिव पूरवे क ॥७॥
—१।६३

२७ याभि शुचन्ति धनसा सुपसद तप्त घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभि पृश्निगुं पुरुकुत्समावत ताभिरु षु ऊतिभिरश्विना गत ॥७॥
—१।११२

३१. त्रसदस्यु पौरुकुत्स —

२८ त्व घृष्णो घृपता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदास ।
प्र पौरुकुत्सि त्रसदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुष ॥३॥
—७।१९

२९. सृजय-पुत्र—

२३. सभी जनोंके हितार्थ महान् धनको तपानेवाले भरद्वाजोंका सम्मान सृजय-पुत्रने किया ॥२५॥

३०. पुरुकुत्स—

२४ हे इन्द्र, तुम्हारी रक्षा द्वारा हम नवीन धन चाहते हैं। (अपने) यज्ञों द्वारा पुरु लोग ये स्तुतियां करते हैं। जब पुरुकुत्सकी सहायता करते तुमने दासोंकी सात शरद-कालीन शरणस्थानीय गढ़ियोंको नष्ट किया ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।२०

२५ हे वृत्र इन्द्र, जब तुमने वर्चस्वी दानव प्रजाओंकी शरणस्थानीय सात शरदकालीन पुरियोंको नष्ट किया। हे निर्दोष, तुमने बाढ़के जलको चलाया। तुमने तरुण पुरुकुत्सके लिये शत्रु को मारा ॥२॥

—अगस्त्य, १।१७४

२६ हे वज्रधारी इन्द्र, तुमने लड़ते हुये पुरुकुत्सके लिये जो सात पुरियोंको ध्वस्त किया। हे राजन्, सुदासके लिये जो कुशकी तरह तुमने व्यर्थके पापी (शत्रु) को मारा, पुरुको धन और मंगल दिया ॥७॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६३

२७ जिन रक्षाओं द्वारा तुमने शुचन्तिको धन और सुन्दर नयन दिया, अत्रिके लिये रक्षावाला तपने घामको बनाया। तिन (रक्षाओं) से पृश्निगु, पुरुकुत्स की तुमने रक्षा की। हे अश्विद्वय, उन रक्षाओंके साथ आओ ॥७॥

—कुत्स आंगिरस, १।११२

३१. त्रसदस्यु पुरुकुत्स-पुत्र—

२८ हे (इन्द्र) शत्रुओं का दमन करने वाली मारी रक्षाओं द्वारा वीर-हव्य सुदास की रक्षा करो। क्षेत्र पाने के लिये वृत्र-युद्धमें पुरुकी पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युकी रक्षा करो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।१९

२९ अस्माकमत्र पितरस्त आसन्त्सप्त ऋषयो दीर्घहे वध्यमाने।
त आयजन्त त्रसदस्युमस्या इन्द्रं न वृत्रतुरमर्घदेव ॥८॥

३०. पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्भव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभि ।
अथा राजान त्रसदस्युमस्या वृत्रहण ददथुरर्घदेव ॥९॥

—४।४२

३१ उप त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योहिरणिनो रराणा
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य ऋतुभिर्नु सश्चे ॥८॥

—५।३३

३२ उतो हि वा दात्रा सन्ति पूर्वा या पुरुभ्यस्त्रसदस्युर्नितोशे।
क्षेत्रासा ददथुर्वरासा धन दस्युभ्यो अभिभूतिमुग्र ॥१॥

—४।३८

३३ अदान्मे पौरुकुत्स्य पचाशत त्रसदस्युर्वधूना।
महिष्ठो अर्य सत्पति ॥३६॥

उत मे प्रयियोर्वयियो सुवास्त्वा अधि तुग्वनि।
तिसृणा सप्ततीना श्याव. प्रणेता भुवद्वसुर्दियाना पति ॥३७॥

—८।१९

३२. कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र—

३४ तमागन्म सोभरय सहस्रमुष्क स्वभिष्टिमवसे।
सम्राज त्रासदस्यव ॥३२॥

—८।१९

३५ एतानि भद्रा कलय क्रियाम कुरुश्रवण ददतो मघानि।
दान इद्धो मघवा न स अस्त्वय च सोमो हृदि य विभर्मि ॥९॥

—१०।३२

२९ यहा हमारे वे सात पितर ऋषि थे, दुर्गह-पुत्रके वदी होने के समय उन्होने इन्द्र जैसे अर्धदेव शत्रुनाशक त्रसदस्युको पाया ॥८॥

३०. हे इन्द्र-वरुण, नमस्कारो के साथ पुरुकुत्सानीने तुम्हें हवि प्रदान किया। फिर तुमने उसे शत्रु-नाशक राजा त्रसदस्युको प्रदान किया ॥९॥

—वामदेव, ४।४२

३१ सुवर्णवाले सूरि पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युके वे दस श्वेत रमणीय घोडे मुझे वहन करते है। उस गिरिक्षित-पुत्रके यज्ञोंसे हम शीघ्र आये ॥८॥

—सवर्ण प्रजापति-पुत्र, ५।३३

३२. (हे द्यौ-पृथिवी) तुम्हारे पास से पहले धन पाकर दाता त्रसदस्युने पुरुओंको प्रदान किया। तुमने उसे उर्वर क्षेत्र दिया, दस्युओंको पराजित करनेके लिये कठोर अस्त्र दिया ॥१॥

—वामदेव ४।३८

३३ अतिमहान् स्वामी सत्पति पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युने मुझे पचास वधूयें (दासिया) दी ॥३६॥

और प्रणेता दानपति श्यावने सुवास्तुके तट पर शीघ्र जानेवाला मुझे मजबूत घोडा, दो सौ दस बैल दिये ॥३७॥

—सोमरि काण्व, ८।१९

३२. कुरुश्रवण त्रसदस्यु-पुत्र—

३४. रक्षाके लिये हम सोमरि सम्राट् त्रसदस्युके उस बहुत तेजस्वी सुरूप (अग्नि) के पास आये ॥३२॥

—सोमरि काण्व, ८।१९

३५. हे मरुत, हम ये मगल करते है, हे धनोंके दाता कुरुश्रवण तुम्हें मघवा (इन्द्र) पसन्द है और सोम भी, जिसे कि मैं हृदयमें धारण करता हू ॥९॥

—कण्व ऐलूष, १०।३२

कुरुश्रवणमावृणि राजान त्रासदस्यव। महिष्ठ वाघतामृषि ॥४॥
—१०।३३

३३. अभ्यावर्ती चायमान—

द्वया अग्ने रथिनो विंशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्यवानाम् ॥८॥
—६।२७

३४. (चित्र) सरस्वती-तट—देखो १६।४३।

३५. कशु चैद्य

ता मे अश्विना सनीना विद्यात नवाना।
यथा चिच्चैद्य. कशु शतमुष्ट्राणा ददत्सहस्रा दश गोना ॥३॥

यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमहत।
अघस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मन्मा अभितो जना ॥३८॥

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदय.।
अन्यो नेत् सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जन ॥३९॥
—८।५

§२ दिवोदास के कार्य

१. दिवोदास—

३६ प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखाय।
नि तुर्वश नि याद्व शिशीह्यतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥८॥
—७।१९

३७ पुर सद्य इत्था धिये दिवोदासाय शम्बर। अध त्य तुर्वश यदु ॥२॥
—९।६१

मैं (कवष) ऋषि दानाओं में महानतम त्रसदस्यु-पुत्र राजा कुरुश्रवण को पसंद करता हूं ॥४॥

—कवष, १०।३३

३३. अन्यावर्ती चायमान—

३५ हे अग्नि, धनवान् पार्यवोंके सम्राट् चायमान-पुत्र अन्यावर्तीने मुझे वधुओं (दासियों) सहित दो रथके घोड़े और बीस गायें प्रदान की ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३४. चित्र (सरस्वती तट)—

देखो १६।४३

दिवोदास-सुदासके समय आर्योंके भिन्न-भिन्न जनोंमें अनेक प्रतापी राजा थे, जिनका उल्लेख ऋषियों ने अपनी ऋचाओंमें किया है—यश अदेय (८।४६।३३) जिनके लिये सुवर्ण आभूषित अच्छी सुन्दरी लाई गई थी।

३५ कण्व चैद्य—चेदी जन सप्तसिन्धु के गुमनाम से जनों में एक था, जिसका राजा कण्व अपने दानके लिये बहुत मशहूर था। अत्रातिथि काण्वने इनकी प्रशंसा में लिखा है ८।३।३७।३९—

३५ हे अश्विनो, मुझे मिले नये दानोंको जानो। कण्व चैद्यने सौ ऊंट और दस हजार गायें दीं ॥३७॥

जिसने मुझे सुवर्ण समान दस राजाओं को प्रदान किया। डालों लिये आदमी जन घेरकर चैद्य (कण्वके) पैरोंमें पड़े हुये ॥३८॥

जिस रास्ते से यह चेदि लोग जाते हैं, दूसरा नहीं जाता। उनसे अधिक देने वाला राजा सूरि नहीं है ॥३९॥

§२. दिवोदासके कार्य

१. दिवोदास—

३६ हे मघवन्, तुम्हारी शरण में हम मित्रता कर पापसे मोक्ष पाते हैं। अतिथिग्व (दिवोदास) की भलाई करते तुर्वश और यादवों परा-जित करो ॥८॥

—गोतम, १।३०

३८ त्व करंजमुत पर्णय वधीस्तेजिष्ठयातिथिग्वस्य वर्तनी।
त्व शता वंगृदस्याभिनत् पुरो नानुद परिपूता ऋजिश्विना ॥८॥
—१।५

३९ अभीदमेकमेको अस्मि निष्पाळभी द्वा किमु त्रय करन्ति।
खले न पर्षान् प्रति हन्मि भूरि किं मा निन्दन्ति शत्रवोऽनिन्द्रा ॥७

अह गुगुम्यो अतिथिग्वमिष्करमिष न वृत्रतुर विक्षु धारय।
यत् पर्णयघ्न उत वा करंजहे प्राह महे वृत्रहत्ये अशुश्रवि ॥८॥
—१०।४

४०. यदयात दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह स वनो रथो वा वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥१८॥
—१।११

४१ याभिर्महामतिथग्व कशोजुव दिवोदासं शम्बरहत्य आवत।
याभि पूर्भिद्ये ग्रसदस्युमावत ताभिरूषु ऊतिभिरश्विना गत ॥१४॥
—१।११

४२ युव भुज्यु भुरमाण विभिर्गत स्वयुक्तिभिर्नवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्ट वर्तिर्वृषणा विजेन्य दिवोदासाय महि चेति वामव ॥४॥
—१।११

३७ (सोमने) इस प्रकार तुरन्त ही शवरकी पुरियोंको और उस तुर्वश यदुको दिवोदास लिये नष्ट किया ॥२॥

—अमहीयु आंगिरस, ९।६१

३८. हे इन्द्र, तुमने करंज और पर्णयको मारा, अतिथिग्व दिवोदासकी भलाई के लिये अत्यन्त तीक्ष्ण हथियारोंसे मारा। तुमने निरावाय ऋजिश्वा द्वारा घेरी गई वगृदकी सौ पुरियोंको ध्वस्त किया ॥८॥ (८।४६)

—सव्य आंगिरस १।५३

३९. आये, एक (शत्रु) को मैं अकेला पराजित करनेवाला हूं। दो या तीन मेरी क्या कर सकते हैं। खलिहानमें धान्यकी तरह मैं खूब मारूंगा। इन्द्रहीन शत्रु मेरी क्या निन्दा करेंगे ॥७॥

मैंने गुगुओंके विरुद्ध अतिथिग्व (दिवोदास) को दृढ़ किया, और प्रजाओंमें अग्निकी तरह शत्रुनाशक हो धारण किया। पर्णय-हत्या अथवा करंज-हत्या या महान् वृत्र-हत्यामें मैं बहुत प्रसिद्ध हुआ ॥८॥

—इन्द्र, १०।४८

४०. हे अश्विद्वय, पुकारे जाने पर जब तुम दिवोदासके पास, भरद्वाज के पास आये। तो उन समय तुम्हारे उपयोगका रथ धन लेकर आया था, (उसमें) वृषभ और शिशुमार जुते हुये थे ॥१८॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

४१. हे अश्विद्वय, तुमने जिन रक्षाओंसे शवरयुद्धमें कशाधारी अतिथिग्व दिवोदासकी रक्षा की। जिनसे पुरोंके तोड़ने के समय तुमने प्रवन्यु की रक्षा की, उन (रक्षाओं) के साथ आओ ॥१४॥

—गृत्स आंगिरस, १।११२

४२. हे अश्विद्वय, तुम पक्षियोंके साथ जलमें डूबने भुज्युको अपनी युक्ति-योंसे निकाल पिताओंके पास ले गये। परात्मिषो, तुम दूर गये। दिवोदासको तुम्हारी रक्षाका महत्व है। ४॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११९

२. शम्बर-हत्या—

४३. त्व कवि चोदयोऽर्कसातो त्व कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क्।
त्व शिरो अमर्मण पराहन्नतिथिग्वाय शस्य करिष्यन् ॥३॥

—६।२६

४४. भिनत् पुरो नवतिमिन्द्र पूरवे दिवोदासाय महि दाशुषे नृतो,
वज्रेण दाशुषे नृतो।

अतिथिग्वाय शम्बरं गिरेरुग्रो अवाभरत्।
महो धनानि दयमान ओजसा, विश्वा धनान्योजसा ॥७॥

—१।१३०

४५. त्वमिभा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते।
भरद्वाजाय दाशुषे ॥५॥

—६।१६

४६ आग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतन ।
दिवोदासस्य सत्पति ॥१९॥

—६।१६

४७ यस्य त्यच्छम्बर मदे दिवोदासाय रन्धय ।
अय स सोम इन्द्र ते सुत पिव ॥१॥

—६।४३

४८ अह पुरो मन्दसाना व्यैर नव साकन्नवती. शम्बरस्य।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

§३. हथियार

१. इषु, २ निषंग—

४९ सक्रन्दनेनानिमिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत् सहध्व युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ॥२॥

२. शवर-युद्ध—

४३. (हे इन्द्र) तुमने प्रकाश-प्राप्तिके लिये कविको प्रेरित किया, भक्त कुत्सके लिये तुमने शुष्णको मारा। तुमने अतिथिग्वकी भलाई करनेकी इच्छासे मर्महीन (शवर) के सिरको काटा ॥३॥

—भरद्वाज ६।२६

४४. हे नृत्य करनेवाले इन्द्र, तुमने सग्राममें भक्त पुरु दिवोदासके लिये वज्रसे निन्नानवे पुरिया नष्ट की। अतिथिग्वके लिये तुम उगते शवरको गिरिसे नीचे पटका। बडी निधिको अपने पराक्रमसे बाटते, अपने पराक्रमसे सारी निधिको बाटते ॥७॥ (८।६२)

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३०

४५ हे अग्नि, तुमने सोम सवन करनेवाले पुरु दिवोदासके लिये इन श्रेष्ठ (धनों) को दिया, और भक्त भरद्वाज के लिये (भी) ॥५॥

—भरद्वाज, ६।१६

४६ बहुत चेतनावाला शत्रुनाशक भरतोंवाला दिवोदासका सत्पति अग्नि आया ॥१९॥

—भरद्वाज, ६।१६

४७ जिनके मदमें मस्त हो हे इन्द्र, तुमने दिवोदासके लिये शंवरको मारा। सो यह सोम तुम्हारे लिये छना हुआ है, पियो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४३

४८ मैंने मस्त हो शम्बरकी निन्नानवे पुरियोंको ध्वस्त किया, सबीको प्रवेश करनेके लिये (रक्खा), जब (युद्धमें) दिवोदास अतिथिग्व की मैंने रक्षा की थी ॥३॥

—वामदेव, ४।२६

९३. हथियार

१. बाण, २. तर्कश—

४९. कोलाहल करनेवाले बराबर देखने, जय करनेवाले, तोडनेवाले, चिन्न होनेवाले, उपर्वाले, बाजाहन्न, पराक्रमी इन्द्रके साथ हो युद्धमें हे नरो, (शत्रुरो) पराजित विताडित, करो ॥२॥

स इषुहस्तैः स निषगिभिर्वशी सस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
ससृष्टजित् सोमपा वाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ॥३॥
—१०।१०३

३. धनुष, ४. ज्या, ५. वर्म—

५० जीमूतस्येव भवति प्रतीक यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्व स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्रा समदो जयेम।
धनुः शत्रोरपकाम कृणोति धन्वना सर्वा प्रदिशो जयेम ॥२॥

वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रिय सखाय परिषस्वजाना।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वन् ज्या इय समने पारयन्ती ॥३॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्र विभृतामुपस्थे।
अप शत्रून्विध्यता सविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥
—६।७५

५१. प्रोष्वस्मै पुरोरथमिन्द्राय शूषमर्चत।
अभीके चिदु लोककृत् सगे समत्सु वृत्रहास्माक बोधि चोदिता।
नभन्तामन्यकेषा ज्याका अधि धन्वसु ॥१॥
—१०।१३३

६. कुलिश—

५२ वैश्वानराय धिषणामृतावृधे घृत न पूतमग्नये जनामसि।
द्विता होतार मनुषश्च वाघतो धिया रथ न कुलिशः समृण्वति ॥१॥
—३।२

वह बाण-हस्तो, तुणीर वालो, के साथ, गुणसे युक्त युद्धमें भिडन्त करनेवाले, भीड जीतनेवाले सोम-पायी, बाहुबल-युक्त उग्र धनुर्धर उन इन्द्रने फेंके बाणोंसे शत्रुओंको गिराया ॥३॥

—अप्रतिरथ इन्द्र-सूक्त १०।१०३

३. धनुष, ४. प्रत्यचा, ५. कवच—

५०. कवचधारी (वीर) जब युद्धके बीच जाता है, तो मानो मेघका प्रतीक होता है। तुम घावरहित शरीर वाले होओ, कवचकी वह महिमा तुम्हारी रक्षा करे ॥११॥

हम धनुषसे गायोंको जीतें, धनुषसे युद्धको जीतें, धनुषसे तीव्र सेनाओंको जीतें। धनुष शत्रुमें भगदड मचाता है, धनुषसे हम सारी दिशाओंको जीतें ॥२॥

कानतक खिची युद्धमें पार कराती धनुषके ऊपर फैली यह प्रत्यचा प्रिय सखा को आलिंगन करती स्त्री की तरह बोलती है ॥३॥

ये (दोनों धनुषके कोर) प्रेमीमें स्त्रीकी तरह लडाईके उपस्थित होनेपर पुत्रमें माताकी तरह आचरण करती गोदमें लेती है। यह कोर मिलकर हिलते शत्रुओं अमित्रोंको वेधें ॥४॥

—वायु भरद्वाज-सूक्त, ६।७५

५१. जो रथके समान रक्षेगा उस इन्द्रके लिये बलको पूजो। युद्धमें समीप आ जानेपर लोककर्त्ता प्रेरक शत्रुनाशक (इन्द्र) हमें जतलायें। दूसरोंकी प्रत्यचायें धनुषोंमें टूट जायें ॥१॥

—सुदास पिजवन-सूक्त, १०।१३३

६. कुल्हाडा—

५२. हम ऋतवर्धक वैश्वानर अग्निके लिये सुतकी तरह पवित्र स्तुति करते हैं। जैसे रथको कुल्हाडा (बनाता) ठीक गढता है, वैसे ही दो प्रकारके होता (अग्नि) को मनुष्योंके स्तुतिने गढा है ॥१॥

—विश्वामित्र, ३।२

७. परशु—

५३. परशु चिद्वितपति शिम्वल चिद्विवृश्चति।
उखा चिदिन्द्र येषन्ती प्रयस्ता फेनमस्यति ॥२२॥

—३।५३

देखो १८।१५ (५) भी।

८. वाशी, ९. ऋष्टि (छुरा) —

५४ वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिण सुधन्वान इषुमन्तो निषगिण।
स्वस्वा स्थ सुरथा पृश्निमातर स्वायुधा मरुतो यायमाशुभ ॥२॥

—५।५७

५५ वाशीमेको विभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुवि ॥३॥

—८।२९

१०. वज्र—

५६. वज्रमेको विभर्ति हस्त आहित तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥४॥

—८।२९

११. अत्क—

५७ त्व त इन्द्रोभया अमित्रान्वासा वृत्राण्यार्या च शूर।
वर्धीवनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणा नृत ॥३॥

—६।३

७. फरसा—

५३ हे इन्द्र, फरसा जैसे तपाता, सेमल जैसे काटता, (जैसे) पकाई जाती हड़िया खौलती फेन छोड़ती है ॥२२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

८. बसूला, ९. छुरा—

५४ बसूलेवाले, छुरेवाले, मनीषी सुधनुष-युक्त बाणवान्, तूणीरधारी, सुन्दर घोड़ेवाले, सुन्दर रथवाले, सुन्दर आयुधवाले हो पृश्नि-माता के पुत्र हे मरुतो, हमारे विजयके लिये आओ ॥२॥

—स्यावाश्व, ५।५७

५५ देवोंके बीच निश्चल स्थानमें स्थित एक पुरुष हाथमें लोहेकी (तांबेके) बसूलेको धारण करता है ॥३॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

१०. वज्र—

५६ एक हाथमें वज्र धारे, उससे शत्रुओंको मारता है ॥४॥

—कश्यप मरीचि-पुत्र, ८।२९

११. अंकुश—

५७ हे शूर इन्द्र, तुम दास और आर्य दोनों अनिष्टों (शत्रुओं) को, हे नेताओंमें श्रेष्ठतम नेता, तीक्ष्ण धारवाले अंकुशों (कुन्तादों) द्वारा जैसे गजको, वैसे युद्धमें मारते हो ॥३॥

—[illegible] ६।३३

१२. नाव—

१८. अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्त शतारित्रा नावमातस्थिवास ॥५॥
—१।११६

१३ अष्ट्रा (आरा)—
देखो १५।५२

१४. स्वधिति (छुरा), १५. क्षणोत्र (शान)
देखो १८।१२ (७)।

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतहव्य

१. वसिष्ट पुरोहित—

१ दण्डा इवेद्गो अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकास ।
अभवच्च पुर एता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥
—७।३३

२ इद्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवत नीचीः।
दुर्मित्रास प्रकलविन् विमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥
—७।३३

१२. नाव[1]—

५८. हे अश्विद्वय, तुमने निरालम्ब, ठहरनेके स्थानसे रहित समुद्रमें वीरता दिखलाई, जब कि भुज्युको सौ पतवारोंवाली नावमें बैठा कर घर ले गये ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११६

अध्याय १०

सुदास

§१ सुदास वीतहव्य

१. वसिष्ठ पुरोहित—

१. दण्डसे जैसे गौवें, वैसे ही भरत जनहीन शिगुओंको तरह छिन्न-भिन्न थे। वसिष्ठ इनका अगुआ (पुरोहित) हुआ, तो तृत्सुओंकी प्रजायें बढ़ने लगी ॥६॥ (५।१२)

—वसिष्ठ, ७।३३

२. इन्द्र द्वारा प्रताड़ित ये तृत्सु छोड़े हुए जलकी तरह नीचेकी ओर भागे। दुष्ट शिरोवाले विकृत-बुद्धि उन्होंने बाधित हो सारे भोजन सुदासके लिये फेंक दिये ॥१५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

---

[1] घरके उपयोगके हथियारोंका उल्लेख निम्न प्रकार है—
आरा—६।५३।५
क्षुर (अस्तुरा)—८।४।१६, १०।२९।८
परशु, कुठार, स्वधिति—१।१६२।९, १८, २०; १०।२८।८ (परशु)
पाशी (बसूला)—२८।२९।३
सूची (सूई)—१।१९१।७, २।३३।४
घर मृण्मय (मिट्टीके) होने थे ७।८९।१

३ श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१ ॥

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमतिपान्तमुग्र ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात् सुतादिन्द्रो वृणीता वसिष्ठान् ॥२॥
एवेष्वु क सिन्धुमेभिस्ततारेवेष्वु क भेदमेभिर्जघान ।
एवेष्वु क दाशराज्ञे सुदास प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥१३॥
—७।३३

२. सुदास—

४ द्वे नप्तुर्देवयतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दान होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥

५ चत्वारो मा पैजवनस्य दाना स्मद्दिष्टय कृशनिनो निरेके ।
अज्रासो मा पृथिविष्ठा सुदासस्तोक तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥
—७।१८

६ इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदासं न पितर सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु ॥२५॥
—७।१८

७ त्व घृष्णो धृषता वीतहव्य प्रावो विश्वाभिरूतिभि सुदास ।
प्र प्रोरुकुत्सि श्रसदस्युमाव क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुं ॥३॥
—७।१९

३. गोरे दाहिनी ओर जूडा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यशसे उठने मैं आदमियोंको कहता हू "वसिष्ठ-सतान मुझसे दूर न जायें" ॥१॥ (३।६)

वयत-पुत्र पाशद्युम्नके छाने सोमसे इन्द्रने वसिष्ठोंके (सोमको) पसन्द किया। छाने हुए सोमके साथ पात्रमें स्थित सोमको बहुत पीनेसे उग्र इन्द्रको वसिष्ठ वंशन्तसे लाये ॥२॥

ऐसे ही इनके द्वारा (वह) सिन्धुको पार हुआ, ऐसे ही इनके द्वारा (उसने) भेदको मारा। ऐसे ही हे वसिष्ठो, तुम्हारे ब्रह्म (ऋचा) द्वारा इन्द्रने दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।३३

२. सुदास पैजवन—

४. हे अग्नि, अर्हत्, देववान्के नाती पैजवन सुदासकी दो नौ गायें और वधुओं-सहित दो रथोंको दानके तौरपर पा होताकी तरह गान करते मैं घर जाता हूँ ॥२२॥

५. पैजवनके दिये सोनेके अलकारोंवाले हमारे शिक्षित सरलगामी, मोती-मडित पृथिवीपर स्थित चार घोडे मुझे और पुत्र-पौत्रोंको यशपूर्वक वहन करते हैं। ॥२३॥

—वसिष्ठ, ७।१८

६. हे नेता मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो, पैजवनकी इच्छाकी पूर्ति करो, उसके स्थिर, अजर राज्यकी रक्षा करो ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

७. हे घर्षक इन्द्र, तुमने शत्रुओंका घर्षण करने वीनाज्य सुदासकी सदा रक्षाओंसे रक्षा की। युद्ध-युद्धमें क्षेत्र जीतने लिए पुरुकुत्स-पुत्र त्रसदस्युकी रक्षा की ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।१९

८. सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाज ॥६॥
—७।१९

९. हन्ता वृत्रमिन्द्र. शूशुवान प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोक दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥
—७।२०

१० शत ते शिप्रिन्नूतय सुदासे सहस्र शसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुपो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च धेहि ॥३॥
—७।२५

११. नकि' सुदासो रथ पर्यास न रीरमत्।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत् स गोमति वज्रे ॥१०॥
—७।३२

१२ युवा नरा पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त पृयुपर्शवो ययु।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥११॥
—७।३।८

§२. दाशराज्ञ युद्ध

१. शत्रु—

१३ युवा हवन्त उभयास आजिष्विन्द्र च वस्वो वरुण च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधित प्र सुदासमावत तृत्सुभि' सह ॥६॥

दस राजान' समिता अयज्यव सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु।
नत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥
—७।८३

८. हे इन्द्र, रातहव्य (हविदाता) सुदासके लिये तुम्हारे भोजन (सम्पत्ति) सदासे है। हे पराक्रमी, तुम्हारे दोनो मजबूत घोडे रथमें जोडता हू। तुम बडे शक्तिशाली हो, तुम्हारे पास हमारे पद (ब्रह्म) शक्ति के लिये जायें ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।१९

९. सुपुष्ट शत्रुको मारता वह वीर इन्द्र स्तोताकी शीघ्र रक्षा करता है। सुदासके लिये उसने लोकको बनाया, भक्तको उसने बार-बार धन दिया ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।२०

१०. हे उष्णीषधारी इन्द्र, सुदासके लिये तुम्हारे सहस्रो उपकार और होवें, घातक मर्त्यको नष्ट करो। हमें तेज और रथ प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ ७।२५

११ सुदासके रथको कोई नही दूर फेंक सका, न रोक सका, जिसका रक्षक इन्द्र, जिसके (रक्षक) मरुत् है, वह गौवोंवाले गोष्ठमें जाता है ॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।३३

१२ हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रताको देखते हुए गौ लूटनेवाले पृथु और पर्शु पूर्वकी ओर गये। तुमने (उसके) आयें और दास शत्रुओंको मारा, और सुदासको (अपनी) रक्षासे बचाया ॥१॥

—वसिष्ठ, ७।८३

२ दाशराज्ञ युद्ध

१. शत्रु—

१३ दोनो सग्रामोमें मनके इच्छा करते दोनो (पक्षो) ने तुम इन्द्र और वरुणको सहायताके लिये बुलाया। जहा दस राजाओंने तृत्सुओंके साथ सरदार सुदासको तुमने रक्षा की ॥६॥

हे इन्द्र-वरुण, यदु-तुर्वश दस राजा युद्धमें सुदाससे नहीं पार पा सके। सप्तमें बैठे हुए इन नरोकी स्तुति सफल हुई, देव लोग इनके देव-निमन्त्रणमें उपस्थित हुए ॥७॥

—वसिष्ठ, ७।८३

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यव च षष्टि शता सुपुपु षट् सहस्रा।
षष्टिर्वीरासो अधि षड्दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
—७।१८

१८ शश्वन्तो हि शत्रवो रारघुष्टे भेदस्य चिच्छर्द्धतो विन्द रन्धि।
मर्ता एन स्तुवतो य कृणोति तिग्म तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥
—७।१८

१९ यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णे शीर्ष्णे विवभाजा विभक्ता।
सप्तेदिन्द्र न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

इम नरो मरुत सश्चतानु दिवोदास न पितर सुदासः।
अविष्टना पैजवनस्य केत दूणाश क्षत्रमजर दुवोयु ॥२५॥
—७।१८

२. युद्ध—

२० यवा नरो पश्यमानास आप्य प्राचा गव्यन्त पृथुपर्शवो ययु।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावत ॥१॥

यत्रा नर समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किंचन प्रिय।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचत ॥२॥

सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवि घोष आरुहत्।
अस्युर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गत ॥३॥

गो लूट के इच्छुक साठ सौ, छ हजार, और छियासठ अनु और द्रुह्यु (वीर) (मरकर) सो गये। (भक्तोंके लिये) यह सब इन्द्रके पराक्रमके काम हैं॥१४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१८ हे इन्द्र, तुम्हारे प्राय सभी शत्रु पराजित होवें, सूनखार भेदको भी पराजित किया। स्तुतिकर्त्ता मनुष्योंकी जो हानि करता है, उसके ऊपर तीक्ष्ण वज्र मारो॥१८॥

—वसिष्ठ, ७।१८

१९ जिन (सुदास) की कीर्ति द्यौ और पृथिवीके बीचमें फैली मौजूद है, जो प्रति दिन पर बाट कर धन देता है, इन्द्रकी तरह सात नदियां जिसकी प्रशंसा करती हैं। युद्धमें युधामधि का जिसने विनाश किया था॥२४॥

हे नेता मरुतो, पिता दिवोदासकी तरह सुदासकी सहायता करो। पंजवन (सुदास) के घरकी रक्षा करो, उसके क्षत्र (राज्य) को दुर्धर्ष और अजर बनाओ॥२५॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२. युद्ध—

२० हे इन्द्र-वरुण नेताओ, तुम्हें और तुम्हारी मित्रताको देखते हुए गो लूटने वाले पृथु और पर्शु पूर्व की ओर गये। तुमने आर्य और दास शत्रुओंको मारा, और सुदासको (अपनी) रक्षासे बचाया॥११॥ (यही १२)

जिस (युद्ध) में ध्वजा पहनते लादमी लड़ते हैं, जिसमें कुछ भी प्रिय नहीं होता। जहां सुख दिलानेवाली (चीजें) सब देती हैं, वहां हे इन्द्र और वरुण, तुम हमारी बात करना॥२॥

भूमिकी सीमायें सब ध्वस्त होती दिखाई दीं, हे इन्द्र और वरुण, कोलाहल द्यौ तक पहुंचा। हमारे उनके शत्रु पास आ गये। हे पुकार सुनने-वाले इन्द्र-वरुण, रक्षाके साथ हमारे पास आओ॥३॥

इन्द्रावरुणा यधनाभिरप्रति भेवं यन्यन्ता प्र सुवासमावतं।
ब्रह्माण्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहित ॥४॥

इन्द्रावरुणाभ्या तपन्ति माधान्यर्यो वनुषामरातयः।
युवं हि यस्य उभयस्य राजथो ध स्मा नोवत पार्ये दिवि ॥५॥

युवा हवन्त उभयासु आजिष्विन्द्रं च वस्यो वरुण च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुवासमावत तृत्सुभि. सह ॥६॥

दश राजान' समिता अयज्यव. सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधु'।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७॥

वाशराज्ञे परियत्ताय विश्वत. सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतं।
दिवत्यनो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥८॥

पृक्षाण्यन्य' समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतं ॥९॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्न यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्र ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोक सवितुर्मनामहे ॥१०॥
—७।८३

२१. आवदिन्द्र यमुना तृत्सवश्च प्राव्र भेवं सर्वताता सुपायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥
—७।१८

हे इन्द्र-वरुण, तुमने आयुधों द्वारा अप्रतिम भेदको मारते हुए सुदासकी रक्षा की। इनकी स्तुतियोंको सुनो, तृत्सुओंकी पुरोहिताई युद्धमें सत्य सिद्ध हो॥४॥

हे इन्द्र-वरुण, चारों ओरसे शत्रुके हथियार मुझे सतप्त कर रहे हैं। यह बाधा दे रहे हैं। तुम दोनों दिव्य और पार्थिव उभय प्रकारके धनोंके राजा हो, इसलिए द्यौके पार हमारी रक्षा करो॥५॥

दोनों सग्रामोंमें धनकी इच्छा करते दोनों (पक्षों) ने तुम इन्द्र और वरुणको सहायताके लिये बुलाया जहा दश राजाओंसे तृत्सुओंके साथ तुमने सकटग्रस्त सुदासकी रक्षा की॥१६॥ (१३।६)

हे इन्द्र वरुण, यज्ञ-विमुख दस राजा युद्धमें सुदाससे नहीं लड़ सके। यज्ञमें बैठे हुए इन नरोंकी स्तुति सत्य हुई, देव लोग इनके देव-निमन्त्रणमें उपस्थित हुए॥७॥ (१३।७)

दाशराज्ञ (युद्ध) में घिरे हुए सुदासकी इन्द्र व औरुणने सहायता की। जिस (दाशराज्ञ युद्ध) में श्वेत (गौर) जूटधारी स्तुति पाठी तृत्सु लोग नमस्कार और स्तोत्रसे तुम्हारी पूजा करते थे॥८॥ (१३।१५)

एक (इन्द्र) युद्धमें शत्रुओंको मारता है, दूसरा (वरुण) सदा व्रतोंकी रक्षा करता है हम कामनावर्षक तुम दोनों परात्रमियोंको सुन्दर स्तुतियोंसे पुकारते है। हे इन्द्र-वरुण, हमें शरण प्रदान करो॥९॥

इन्द्र, वरुण, मित्र, अर्यमा हमें यश देवें, विस्तृत महान् पर देवें। अदितिकी ऋतवर्षक ज्योति सहानिकर हो, हम सविता देवके दर्शनको गाते हैं॥१०॥

—वसिष्ठ, ७।८३

१. यमुनाने और तृत्सुओंने इन्द्रकी सहायता की। युद्धमें यदा भेदको बिल्कुल लूट लिया। अज, शिप्रु और यक्षु पोढ़ोंके सिरकी बलि लेकर आये॥१९॥

—वसिष्ठ, ७।१८

२२. प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वियत्सूर्यो न रोचते वृहद्भा.।
अभि य पूरु पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथि. शुशोच ॥४॥
—७।८

३. सुदेवी रानी—

२३. याभि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षत।
याभि. सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गत ॥१९॥
—१।११२

§३. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारतं जन ॥१२॥
—३।५३

२५. महा ऋषिर्देवजा देवजूतो स्तभ्नात् सिन्धुमणवं नृचक्षा।
विश्वामित्रो यदवहत् सुदासमप्रियायत कुशिकेभिरिन्द्र ॥९॥
—३।५३

२६ अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्यं स्वश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥
—३।२६

२२. यह भरतका अग्नि अति प्रसिद्ध है, जो सूर्यकी तरह बड़े प्रकाशसे चमकता है, जिसने युद्धमें पुरुओंको हराया, दीप्तिमान् वह दिव्य अतिथि प्रज्वलित हुआ ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८

३. रानी सुदेवी—

२३ हे अश्विद्वय, जिन सहायताओं द्वारा तुम विमदके लिये पत्नियां (विवाहार्थ) लाये, जिनके द्वारा लाल गायें दीं, जिनके द्वारा सुदासके लिये तुम सुदेवीको लाये, उन रक्षाओंके साथ आओ ॥१९॥

—कुत्स आंगिरस, १।११२

६३. अश्वमेध

१. विश्वामित्र पुरोहित—

२४. यह जो दोनों द्यौ-पृथिवी हैं, उनके (रक्षक) इन्द्रकी मैंने स्तुति की। विश्वामित्रका यह ब्रह्म (ऋचा) भारतजनकी रक्षा करता है ॥१२॥

—विश्वामित्र, ३।५३

२५ देवज, देव-प्रेरित मनुष्य-उपदेशक महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुनदको स्तम्भित किया, जब सुदासको (नदी) पार कराया, तो इन्द्रने कुशिकोंके द्वारा (सुदासके साथ) प्रिय वर्ताव किया ॥९॥ (५।२६।९)

—विश्वामित्र, ३।५३

२६ घोड़ोंकी तरह हिनहिनाता वैश्वानर (अग्नि) मानवों कुशिकों द्वारा युग-युगमें (हर समय) प्रज्वलित किया जाता रहा। यह जनोंमें जागरूक अग्नि हमें सुन्दर अन्न-युक्त, सुन्दर वीर्य-युक्त रत्न दे ॥३॥५।२६।६

—विश्वामित्र, ३।२६

२७. अमित्रायुधो मरुतामिव प्रया प्रथमजा ब्रह्मणो विश्वमिद्विदु ।
द्युम्नवद् ब्रह्म कुशिकास एरिर एक एको दमे अग्नि समीधिरे ॥१५॥
—३।२९

२. अश्वमेध—

२८. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति ।
ये चार्वतो मासभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥
—१।१६२

२९. उप प्रेत कुशिकाश्चेतयध्वमश्व राये प्रमुचता सुदासः ।
राजा वृत्र जघनत् प्रागपागुदगथा यजाते वर आपृथिव्या ॥११॥
—३।५३

३०. इम इन्द्र भरतस्य पुत्रा अपपित्व चिकितुर्न प्रपित्व ।
हिन्वन्त्यश्वमरण न नित्य ज्यावाज परिणयन्त्याजौ ॥२४॥
—३।५३

२७. मरुतोंकी तरह अभित्रोंसे लड़नेवाले अग्रगामी प्रथम उत्पन्न वह सब कुछ जानते हैं। कुशिक तेजस्वी ब्रह्म (स्तुति) प्रेरित करते हैं, (उनमें) एक-एक (अपने) घरमें अग्निका समिधान करते हैं ॥१५॥ (५।२६।१५)

—विश्वामित्र, ३।२९

२. अश्वमेध—

२८. जो पके घोड़ेको देखते, जो बोलते "सोमा है उतारो" और जो घोड़ेके मांस-भोजनका सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो ॥१२॥ (४।२)

दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

२९ हे कुशिको, पास आओ, चेतो, धन (जीतने) के लिए सुदासके अश्वको छोड़ो। राजा (सुदास) पूर्व, पश्चिम और उत्तरके शत्रु मारे, फिर पृथिवीके वरस्थानमें यज्ञ करे ॥११॥ (५।२६।११)

—विश्वामित्र, ३।५३

३० हे इन्द्र, भरतके ये पुत्र (सन्तानें) न अमिलन जानते, न मिलन, वह परकी तरह नित्य युद्धमें (अपना) घोड़ा भेजते हैं, धनुष झुकाते हैं ॥२४॥

—विश्वामित्र, ३।५३

अध्याय ११

राजव्यवस्था

१ ग्रामणी

१ सहस्रदा ग्रामणीर्मा रिषन्मनुः सूर्येणास्य यतमानैतु दक्षिणा।
सावर्णेर्देवा प्रतियुर्यरन्त्वास्मिन्नश्रान्ता असनाम वाज ॥११॥
—१०।६२

२. राष्ट्र

२ आचष्ट आसा पायो नदीना वरुण उग्र. सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥
—७।३४

३ हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन्।
न दूताय प्रह्ये तस्थ एषा यथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्य ॥३॥
—१०।१०९

३. विश

४ अपामुपस्थे महिषा अगभ्णत विशो राजानमुपतस्थुऋृंग्मिय।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ॥४॥
—६।८

अध्याय ११

राज-व्यवस्था

१. ग्रामणी

१ सहस्र (गौवोंके) दाता ग्रामणी मनु मत अनिष्ट करे, इसकी दक्षिणा सूर्यके समान होवे। सावर्णी (मनु) को देवता आयु प्रदान करें, जिसके पास हम अश्रान्त हो अन्न पाते हैं ॥११॥

—नाभानेदिष्ट, १०।६२

२. राष्ट्र

२. सहस्र-चक्षु उग्र वरुण इन नदियोंके जलको देखते हैं ॥१०॥ वह (वरुण) राष्ट्रोंके राजा, नदियोंके यज्ञ हैं। उनका क्षत्र (राज्य) अनुपम और सर्वत्र है ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३४

३. "इसकी देहको हाथसे ही ग्रहण करना चाहिये, यह ब्रह्म-जाया है।" यह सबने कहा। भेजे दूतकी वह नहीं बनी जिस सखा क्षत्रियका राष्ट्र रक्षित ॥३॥

—भृगु, १०।१०९

३. प्रजा

४. महान् (मरुतों) ने अन्तरिक्षमें ग्रहण किया, पूजनीय राजा मान प्रजाओंने उनका उपस्थान (सम्मान) किया। विश्वव्यापक इन वायु देवोंने वैश्वानर अग्निको यहां लाया ॥४॥

—मरद्वाज, ६।८

४. राजा

५ विद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्न।
स त्वं न ऊर्जं सन ऊर्जं धा राजेव जेर वृके क्षेष्यन्त ॥४॥
—६।४

६ आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन् त्सर्वतातेव नु द्यौ ।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥
—६।१२

७ त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळह मरुज पर्वतस्य।
राजा भवो जगतश्चर्षणीना साक सूर्यं जनयन्द्यामुषास ॥५॥
—६।३०

८ स रायस्कामुप सृजा गृणान पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्व ।
पतिर्वभूथासमो जानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥
—६।३६

९. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विपुरूप यदस्ति।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३॥
—७।२७

१० आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळ नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वत जीरदानू ॥२॥
—७।६४

११. त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुताना । त्व राजा जनाना ॥३॥
—८।५३

४. राजा

५ हे मनु (अग्नि), तुम गायक, सहभोजी है। जन्मते अपना पथ घर और अन्न तैयार करता तू हमें पुष्टि दे, पुष्टि हममें रख निरपद्रव गृहमें राजाका तरह शत्रुओंको जीतो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।४

६. हे पूज्य राजन्, जिस तुम शानी में दो पूर्णताके लिये हैं। तीनों स्थानोंमें रहने वाले हो, सूर्यकी तरह मनुष्योंके हव्य और धनको यजनके लिये जाते हो ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१२

७. (हे इन्द्र), तुमने जलको चारों ओर बहनेके लिये पर्वतको जोरसे ध्वस्त किया। तुम द्यौ, उषा और सूर्यको एक साथ उत्पन्न करने जगत्के लोगोंके राजा हो ॥५॥

—भरद्वाज ६।३०

८ हे इन्द्र, स्तुति किये जाते तुम बहुत बढ़िया चमकते धन-सम्पत्तिकी धारा बहाओ। तुम जनोंके अद्वितीय पति, अकेले सारे भुवनके राजा हो ॥४॥

—भरद्वाज, ६।३६

९ जगत्के मनुष्योंका राजा इन्द्र है, जो कुछ पृथिवीपर नाना प्रकारकी (वस्तु) है, (उसका भी)। तिसने भक्तको वह धन देना है। स्तुति किया गया वह हमारे पास धन भेजे ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२७

१० महान् ऋतके रक्षक, सिन्धु-पति, क्षत्रिय, मित्र-वरुण दोनों राजा, हमारे पास आयें। शीघ्र देनेवाले मित्र और वरुण हमें अन्न दें, सोने वृष्टि भेजें ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।६४

११. हे इन्द्र, तुम छाने न छाने (सोनों) के स्वामी हो। तुम जनोंके राजा हो ॥३॥

—वामदेव, ८।५३

(१) राजाभिषेक—

१२. आ त्वा हार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलि ।
विशस्त्वा सर्वा वाछन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत ॥१॥

इहैवैधि माप च्योष्ठा पर्वत इवा विचाचलि ।
इन्द्र इवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२॥

इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुव ध्रुवेण हविषा ।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पति ॥३॥

ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवास पर्वता इमे ।
ध्रुव विश्वमिद जगद् ध्रुवो राजा विशामय ॥४॥

ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुव देवो बृहस्पति ।
ध्रुव त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्र धारयता ध्रुव ॥५॥

ध्रुव ध्रुवेण हविषाभि सोम मृशामसि ।
अथो त इन्द्र केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥

—१०।१७३

(२) सम्राट्—

१३ मूर्द्धान दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निं ।
कवि सम्राजमतिथि जनानामासन्ना पात्र जनयन्त देवा ॥१॥

१४ अभि य देव्यदितिर्गृणाति सव देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषा ॥४॥

—७।३८

(३) शास—

१५ मरुत्वन्त वृषभ वावृधानमकवारि दिव्य शासमिन्द्र ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्र सहोदामिह त हुवेम ॥५॥

—३।४७

(१) राजाभिषेक—

१२. मैं तुम्हें लाया, (देशके) भीतर बढो, अचल ध्रुव बने रहो। सारी प्रजायें तुम्हें चाहें, तुम्हारा राष्ट्र (राज्य) भ्रष्ट न हो ॥१॥

यहीं रहो, अचल रहो, पर्वतकी तरह च्युत मत होओ। इन्द्रकी तरह यहा ध्रुव रहो, यहा राष्ट्रको धारण करो ॥२॥

ध्रुव हवि द्वारा इन्द्रने इस ध्रुव (अचल) को स्थापित किया। उनसे सोम बोले और उससे ब्रह्मणस्पति भी ॥३॥

द्यौ ध्रुवा (अचल) है, पृथिवी ध्रुवा, यह पर्वत भी ध्रुव है। यह सारा जगत् ध्रुव है। प्रजाओका यह राजा ध्रुव है ॥४॥

राजा वरुण तुम्हारे ध्रुव है, देव बृहस्पति ध्रुव, वह इन्द्र और अग्नि ध्रुव। (वे) राष्ट्रको ध्रुव धारण करें ॥५॥

ध्रुव हवि द्वारा, ध्रुव सोमको हम मिलाते है। फिर इन्द्र, तेरी प्रजाको एक-परायण और कर-प्रदाता बनाये ॥६॥

—ध्रुव आगिरस, १०।१७३

(२) सम्राट्—

१३ देवोंने वैश्वानर अग्निको द्यौका मस्तक, पृथिवीका दूत, यज्ञके लिये उत्पन्न, कवि, सम्राट्, जनोका अतिथि, मुख और रक्षक उत्पन्न किया ॥१॥

—भरद्वाज, ६७

१४ सविता देवके सवन (उत्पत्ति) का सेवन करती देवी अदिति जिसकी स्तुति करती है, वरुण सम्राट् पत्नियों-सहित अर्यमा और मित्र भी स्तुति करता है ॥४॥

—यमिष्ठ, ७।३८

(३) शास—

१५ मस्तोवाले, वृषभ (पराक्रमी), सदा बढने वीरुध वाले, दिव्य शास (राजा), सर्वज्ञेता, उग्र, वरदायक उन इन्द्रको हम नई रक्षाके लिये यहा पुकारते हैं ॥५॥

विश्वामित्र, ३।४७

(४) ईशान—

१६. अभि त्वा शूर नोनुमो दुग्धा इव धनव.
ईशानमस्य जगत. स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुष. ॥२२॥
—७।३२

(५) स्वराट्—

१७ अस्येदेव प्र रिरिचे महित्व दिवस्पृथिव्या पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराडिन्द्रो दम आ विश्वगूर्त स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥९॥
—१।६१

(६) नृपति—

१८. त्रिविष्टि धातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना।
अतीद विश्वं भुवन ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥८॥
—१।१०२

(७) पती राजा—

१९ पिवा सोम मदाय कमिन्द्र श्येनाभृत सुत।
त्व हि शश्वतीना पती राजा विशामसि ॥३॥
—८।८४

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२०. प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृह।
कस्य ध्वस्रा भवथ कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथ ।३॥
युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वा नरा।
भूत मे अह्न उत भूतमक्तवे श्वावते रथिने शक्तमवते ॥५॥
—१०।४०

४) ईशान—

१६. हे शूर, न दुही धेनुओंकी तरह हम तुम्हें जोरसे पुकारते हैं। जो कि इस जगत्का स्वर्गदर्शक हे इन्द्र, स्थावरके ईशान हो ॥२२॥

—वसिष्ठ, ७।३२

(५) स्वराट्—

१७. द्यौ, पृथिवी से परे अन्तरिक्षने भी इन्द्रकी महिमा बढ कर है। अपने गूहमें सर्वकारी निपुण इन्द्र स्वराट् (स्वय राजा) गभीर-घोष, रणके लिये बलिष्ठ है ॥९॥

—नोधा गोतम-पुत्र, १।६१

(६) नृपति—

१८ हे नृपति इन्द्र, तुम तेहरी रस्सी के समान ओजकी माप हो। तीनो भूमि (द्यौ, पृथिवी, आकाश), तीन प्रकाश (सूर्य, बिजली, अग्नि) हो। तुम इस सारे भुवनको वहन करते हो। तुम सदा जन्मसे (ही) धनु-रहित हो ॥८॥

—कुत्स आगिरस, १।१०२

(७) राजा—

१९. हे इन्द्र, श्येन (पक्षी) द्वारा लाये छाने गये सुरामय सोमको मदके लिये पियो। तुम्ही शाश्वत प्रजाओंके पतिराजा हो ॥३॥

—तिरश्ची आगिरस, ८।८४

(८) राजपुत्र, राजदुहिता—

२० हे अश्विद्वय, वृद्ध (राजाओं) की तरह सवेरे तुम स्तुति गाते हो। पूजनीयो, दिन-दिन घर जाते हो। किसके प्रेरक होते हो। हे दोनो नेताओ, किसके (सोम)-पानमें राजपुत्रकी तरह तुम जाते हो ॥३॥ हे अश्विद्वय, मैं यमती राजदुहिता घोषा तुम दोनों नेताओंके पास आई, तुमसे पूछती हू। मेरे पास दिनमें रहो, रातमें रहो, अश्ववाले रथी प्रभु (पुरुष) मुझे प्रदान करो ॥५॥

—घोषा, १०।४०

२७. समानो मन्त्र समितिः समानी समान मन सहचित्तमेषा।
समान मन्त्रमभिमन्त्रये व समानेन वो हविषा जुहोमि ॥३॥
—१०।१९१

(३) कुलप, (४) व्राजपति

२८ श्रात हविरोष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्य।
परि त्वासते निधिभि. सखाय कुलपा न व्राजपतिं चरन्त ॥२॥
—१०।१७९

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९ यस्तस्तम्भ सहसा वि ज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
त प्रत्नास ऋषयो दीध्याना पुरो विप्रा दधिरे मन्द्रजिह्व ॥१॥
—४।५०

३०. इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतं।
ब्रह्मणाप्येषा शृणुत हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत् पुरोहिति ॥४॥
—७।८३

२७. (इनका) मन्त्र समान हो, समिति समान हो, चित्त-सहित मन समान हो। तुम्हें एकसे मन्त्र अभिमन्त्रण करता हू, एक सी हविसे तुम्हारे लिये हवन करता हूं ॥३॥

—सवनन, १०।१९१

(३) कुलप, (४) प्राजपति

२८. हे इन्द्र, हवि पक गई, आओ, सूर्य मध्यकाल (दोपहर) में पहुच गया। जैसे विचरते प्राजपतिको कुलप, वैसे निधियोंके साथ सखा तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है ॥२॥

—प्रतर्दन काशिराज, १०।१७

(५) पुरोहित (प्रधान-मन्त्री)

२९. जिस बृहस्पतिने एकाएक (अपनी) शक्तिसे पृथिवीके अन्तों तक को थाम्हा। जो गडगड़ाहटसे तीनो स्थानोमें है। उस मधुर जिह्वावाले (बृहस्पति) को प्राचीन ध्यानी विप्र ऋषियोंने (अपने) सम्मुख रक्खा ॥१॥

—वामदेव, ४।५०

३०. हे इन्द्र-वरुण, तुमने दुर्धर्ष आयुधो द्वारा अग्रनिम भेदको मारते हुए सुदासकी रक्षा की। इनके मन्त्रोको युद्धमें सुनो, तृत्सुओंकी पुरोहिताई सत्य सिद्ध हुई ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।८३

अध्याय १२

शिक्षा आदि

§१ शिक्षा

१. य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्य पुरुहूत नृभ्य ।
त्व हि दृळ्हा मघवन्चिचेता अपा वृधि परिवृत न राध ॥२॥
—७।२७

२. यदेषामन्यो अन्यस्य वाच शाक्तस्येव वदति शिक्षमाण.।
सर्व तदेषा समृधेव पर्व यत् सुवासो वदथ नाध्यप्सु ॥५॥
—७।१०३

३. य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेद भारत जन ॥१२॥
—३।५३

§२ स्वास्थ्य

४. नि येन मुष्टिहत्या नि वृत्रा रुणधामहै। त्वोतासोन्यर्वता ॥२॥
—१।८

५. ससेन चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रि वावसानस्य नर्तयन् ॥३॥
—१।५१

§३ रोग

६. यदिमा वाजयन्नहमोषधीर्हस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

अध्याय १२

शिक्षा, स्वास्थ्य

§१. शिक्षा

१. हे मघवन् पुरुहूत (बहुनिमन्त्रित) इन्द्र, जो तुम्हारा बल है, उसे (हमारे) सगे नरोंको प्रदान करो। हे मघवन्, तुमने दृढ़ (पुरियों) को नष्ट किया, विज्ञ तुम (अपनी) छिपी निधिको हमारे लिए प्रकट कर दो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।२७

२. इन (मेढकों) में से एक दूसरे का वचन शिष्यको सिखाने सा बोलता है। जब जलमें तुम सुवाच बोलते हो, तो इनका सारा अन्न बट सा जाता है ॥५॥

—वसिष्ठ, ७।१०३

§२. स्वास्थ्य

४. (हे इन्द्र), जिस तुम्हारी रक्षासे त्यों द्वारा इस शत्रुलोगों मुष्टि-युद्ध द्वारा रोक दें ॥२॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।८

५. हे इन्द्र, तुमने युद्धमें पाषाण (वज्र) चलाते स्तुतिकर्ता विमदको अन्न प्रदान किया ॥३॥

—ऋज्राश्व, १।५१

§३. रोग

६. जब शचि लायी इन ओषधियोंको मैं हाथमें लेता हूँ, तो सभी रोगोंको लक्षित मानो जीभ पकड़नेसे पूर्व (ही) नष्ट हो जाती है ॥१॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथागमग परुष्परु।
ततो यक्ष्मं विवाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव ॥२१॥

—१०।९७

७. मुचामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यदि वैतदेन तस्या इन्द्राग्नी प्र मुमुक्तमेन ॥१॥

—१०।१६१

८. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरा दिव।
हृद्रोग मम सूर्य हरिमाण च नाशय ॥११॥

—१।५०

९. अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि।
यक्ष्मं शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्यो अनूक्यात्।
यक्ष्म दोषण्यमसाभ्या बाहुभ्या वि वृहामि ते ॥२॥

आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्टो हृदयादधि।
यक्ष्म मतस्नाभ्यां यवद प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३॥

ऊरुभ्या ते अष्ठीवद्भ्या पार्ष्णिभ्या[1] प्रपदाभ्या।
यक्ष्मं श्रोणिभ्या भासदाद् भससो वि वृहामि ते ॥४॥

मेहनाद्वनकरणाल्लोमभ्यस्ते नखेभ्य।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिद वि वृहामि ते ॥५॥

अगादगाल्लोम्नो लोम्नो जात पर्वणि पर्वणि।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिद वि वृहामि ते ॥६॥

—१०।१६३

---

[1] पाणिभ्या—निर्णय सागर प्रेस की पुस्तक में

जैसे उग्र (पुरुष) सघर्षमें, वैसे ही ओषधियो, तुम जिसके अग-अग पोर-पोरमें प्रविष्ट होती हो, तो (उसके) यक्ष्मा (रोग) को बाधित करती हो ॥१२॥

—भिषग् अथर्वा-सूक्त, १०।९७

७ जीनेके लिए हवि द्वारा मैं तुम्हें अज्ञात यक्ष्मा (रोग) या राजयक्ष्मासे मुक्त करता हू। यदि भूतग्रहने इसे पकडा, तो उससे इसे इन्द्र और अग्नि मुक्त करें ॥१॥

—यक्ष्मनाशन, १०।१६१

८ मित्र-प्रकाशवाले सूर्य, आज उगते उच्चतम छोपर आरोहण करते मेरे हृद्रोग, पीलियाको नष्ट करो ॥११॥

—प्रस्कण्व कण्व-सूक्त, १।५०

९ तेरी दोनो आखोंसे, दोनो नाकोंसे, दो कर्णोंसे, ठुड्डीके ऊपरसे, मस्तिष्कसे, जिह्वासे, शीर्षस्थानसे तेरे यक्ष्म (रोग) को मैं दूर करता हू ॥१॥

तेरी ग्रीवासे, धमनियोंसे, हड्डीके जोडोंसे, दोनो कन्धोंसे, दोनो बाहुओंसे, हाथसे तेरे यक्ष्मको मैं दूर करता हू ॥२॥

तेरी आतोंसे, गुदाओंसे, हृदयसे, मूत्राशयसे, यकृत्‌से, प्लीहासे तेरे यक्ष्मको दूर करता हू ॥३॥

तेरे दोनो उरुओंसे, दोनो जाघोंसे, दोनो गुल्फोंसे, दोनो पैरके पजोंसे, दोनो नितम्बोंसे तेरी कटि और मस्तिष्कसे यक्ष्मको दूर करता हू ॥४॥

तेरे मूत्रज काम-स्खल (लिंग) से, तेरे रोमोंसे, नखोंसे, तेरी सारी आत्मा (शरीर) से उस यक्ष्मको दूर करता हू ॥५॥

अग-अगसे, रोम-रोमसे, पोर-पोरमें पैठा हुआ सारी आत्मा (शरीर) से तेरे इस यक्ष्म को दूर करता हूँ ॥६॥

—विमुक्त [illegible], १०।१६१

१० युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥
—१।११७

§४ चिकित्सा

११. यत्रोषधी· समग्मत राजान समितावि व।
विप्र स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातन ॥६॥

१२. उत त्या दैव्या भिषजा श न करतो अश्विना।
युयुयातामितो रपो अप स्निध ॥८॥
—८।१८

१३. त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रि पार्थिवानि त्रिरुदत्तमद्भ्य ।
ओमान शयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म्म वहत शुभस्पती ॥६॥

क्व त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व त्रयो वन्धुरो ये सनीळा ।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञ नासत्योपयाथ ॥९॥
—१।३४

१४ सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषज ॥१७॥
—८।६१

१५ यामि पक्थमवयो याभिरद्रिग्रु याभिर्वञ्रु विजोपस।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गत भिषज्यत यदातुर ॥१०॥
—८।२२

१०. हे दोनो नेतालो, तुमने स्तुतिकर्त्ता कृष्ण-पुत्र विश्वकके लिये (उसके पुत्र) विष्णापुको दिया। तुमने पिताके घर बैठी भुरती घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥ (५।६०।७)

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

§४. चिकित्सा

११ समितिमें राजाओंकी तरह जहा औषधिया एकत्रित होती है, वह विप्र राक्षसनाशक रोग-निवारक भिषग् कहा जाता है ॥६॥

—भिषग् अथर्वा-पुत्र, १०।९७

१२ और वे दिव्य भिषग् अश्विद्वय हमारा मगल करें, यज्ञमे पाप हटायें, शत्रुओंको दूर भगायें ॥८॥

—हरिश्चिठि, ८।१८

१३ हे अश्विद्वय, हमें द्यौसे तीन बार पृथिवीसे, तीन बार आकाशसे भेषज (दवा) दो। हे शुभके स्वामियो, मेरे पुत्रके लिये सुख स्वास्थ्य दो, तीन प्रकारका शरण लाओ ॥९॥

हे नासत्यो, तुम्हारे तेहरे रथके तीन चक्र कहा है? नाभि-युक्त जो धुरे तुम्हारे वह तीनो कहां है? बलवान् रथमे जोडना कब होगा, जिसके द्वारा तुम यज्ञमें आते हो ॥९॥

—हिरण्यस्तूप, १।३४

१४ हे मित्र और वरुण, सूर्य उगने में सोम ग्रहण करता हू। वह आतुर (रोगी) का भेषज है ॥१७॥

—दुर्मद प्रागाथ-पुत्र, ८।६१

१५ जिन (औषधियो) के द्वारा तुमने पयस्वती रक्षा की, जिनसे अत्रिवु, जिनसे अनर्वाण वध्रयश्व रक्षा की, उनके साथ हे अश्विनो, तुम्हे तेजोसे आता, आतुरकी चिकित्सा करो ॥१००॥

—दीर्घतमा कक्षीवत्-पुत्र, ८।२२

अध्याय १३

वेष-भूषा

६१ वस्त्र

१. युवा सुवासाः परिवीत आगात् स उ श्रेयान् भवति जायमान ।
त धीरास कवय उन्नयन्ति स्वाध्वो मनसा देवयन्त ॥४॥

—३।८

२. अभ्रातेव पुस एति प्रतीची गर्तारुगिव सनये धनाना।
जायेव पत्य उशती सुवासा उषा हस्रेव निरिणीते अप्स ॥७॥

—१।१२४

३. उत त्व पश्यन्न ददर्श वाचमुत त्व शृण्वन्न शृणोत्येना।
उतो त्वस्मै तन्व वि सस्रे जायेव पत्य उशती सुवासा ॥४॥

—१०।७१

४. एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवति शुक्रवासाः।
विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥७॥

—१।११३

५. दिवश्चिदा पूर्व्या जायमाना वि जागृविर्विदथे शस्यमाना।
भद्रा वस्त्राण्यर्जुना वसाना सेयमस्मे सनजा पित्र्याधी. ॥२॥

—३।३९

अध्याय १३

वेष-भूषा

§१ वस्त्र

१ सुन्दर वस्त्र पहने हुआ युवा (यूप) आया, उत्पन्न हो वह श्रेयान् होता है। ज्ञानी धीर कवि मनसे देवोंकी कामना करते उस (यूप) को उठाते हैं॥४॥

—विश्वामित्र, ३।८

२ भ्राता-विहीना जैसे पुत्रोंको, रथपर चढ़ी मानो धनोंको प्राप्तिके लिए जाती है। जैसे पतिको चाहती सुवस्त्रा जाया, वैसे ही उषा हँसती हुई अपने सौंदर्यको खोलती है॥७॥

—दक्षीयान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२४

३ किसीने देखते हुए (भी) वाणीको नहीं देखा, किसीने सुनते हुए भी इसे नहीं सुना, और जैसे सुवस्त्रा स्निग्ध जाया पतिके लिये, वैसे किसीके लिये अपने शरीरको खोलती है॥४॥

—बृहस्पति, १०।७१

४. यह (अन्धकार) दूर गया, सुवस्त्रा युवती सौ-सुहिता स्वर्गी ज्योतिको दिखाई पड़ी। हे सुनृते उषा, आज यहाँ पवित्र धन हमें प्रदान कर॥७॥

—कुत्स आंगिरस, १।११३

५ (हे इन्द्र), पहले सोमे उत्पन्न हो जागरूक, विश्व (प्रजा-जना) में गाई जाती, सो यह सुवस्त्रा हमारे पितरोंकी स्तुत्य (सूना) है॥८॥

—विश्वामित्र, ३।३३

६. आधीपमाणाया पति. शुचायाश्च शुचस्य च।
वासो वायो' वीनामा वासासि मर्मृजत् ॥६॥
—१०।२६

७. मा नो अग्ने वीरते परा दा. दुर्वाससे मतये मा नो अस्यै।
मा न क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्था ॥१९॥
—७।१

१. द्रापी—

८ यो वा यज्ञेभिरावृतोऽघिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥
—८।२६

९ दिवो धर्ता भुवनस्य प्रजापति पिशग द्रापि प्रति मुचते कवि'।
विचक्षण प्रथयन्नापृणन्नुर्वजीजनत् सविता सुम्नमुक्थ्य ॥२॥
—४।५३

१० जुजुरुषो नासत्योत वन्नि प्रामुचत द्रापिमिव च्यवानात्।
प्रातिरत जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुत कनीना ॥१०॥
—१।११६

११. विभ्रद् द्रापि हिरण्यय वरुणो वस्त निर्णिज। परिस्पशो निषेदिरे ॥१३॥
—१।२५

२. अत्क—

१२ श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्घृण्वुर्वजी शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्क सुरभि दृशे क स्वर्णनृतविपिरो वभूथ ॥३॥
—६।२९

६. इच्छा करती शुचा (बकरी) और शुच (बकरे) के पति (पूषन्) भेड़के (लोमके) वस्त्र बुनते वस्त्रोंको चमकाते हैं ॥६॥

—विमद, १०।२६

७. हे अग्नि, हमारे वीर (सन्तान)-पनको न दूर करना, बुरे वस्त्र न देना, न कुबुद्धि, न हमें भृत्य देना। हे ऋत (सत्य)-वान्, हमें राक्षसको मत देना, हमें न घरमें दुखाना, न वनमें ॥१९॥

—वसिष्ठ, ७।१

८ वस्त्र पहनी वधूकी तरह, हे अश्विद्वय, जो यज्ञसे परिपूर्त हो तुम्हारी पूजा करता है, उसको तुम यशमगल देते हो ॥१३॥

—विश्वमना आगिरस, ८।२६

१. द्रापि (कचुक, तोगा)—

९ धीरा धार्मक, भुवनका प्रजापति, कवि, पीली द्रापि पहनता है। विचक्षण कविता प्रख्यात होने, परिपूर्ण करते स्तुत्य गुण उत्पन्न करता है ॥२॥

—वामदेव, ४।५३

१० हे अश्विद्वय, जैसे जीर्ण द्रापिको, वैसे ही चयनके बुढ़ापेको तुमने निकाल फेंका। हे दर्शनीय-द्वय, तुमने अमहान् चयनकी आयु बढ़ाई, उसे कन्याओंका पति बनाया ॥१०॥

—कक्षीवान् दैर्घतमा-पुत्र, १।११६

११. वरुण सुनहली द्रापिको पहने चमकीली पोशाकवाले हैं आगे और (उनके) चर गुप्तचर बैठे हैं ॥१३॥

—शुन शप आजीगर्त-पुत्र, १।२५

२. अत्क—

१२ हे पजाधारी, बन्धे शत्रु पकड़नेवाले, दानी (इन्द्र) सङ्गीतके लिये तुम्हारे पैरोंको (लोग) सेवा करते हैं। हे सेना, सुनहला कवच पहने तुम शत्रु सेनाके लिये डर देते हो ॥३॥

—भरद्वाज, ६।७५

१३. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा विभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अत्क सुरभि दृशे क स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि ॥७॥
—१०।१२३

३. शिप्र—

१४ शत ते शिप्रिन्नूतय सुदासे सहस्र शसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्न च धेहि ॥३॥
—७।२५

१५ पीवो अश्वा शुचद्रथा हि भूताय शिप्रा वाजिन सुनिष्का।
इन्द्रस्य सूनो शवसो न पातो नु वश्चेत्यग्निय मदाय ॥४॥
—४।३७

§२ भूषण

१. कर्णाभरण—

१६ उत न कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर। त्व हि शृण्विषे वसो ॥३॥
—८।६७

१७ हिरण्यकर्ण मणिग्रीवमर्णस्तन्नो विश्वे वरिवस्यन्तु देवा।
अर्यो गिर सद्य आ जग्मपीरोस्राश्चाकन्तूमयेष्वस्मे ॥१४॥
—१।१२२

१३. वह गधर्व ऊपर स्वर्गमें अवस्थित है, वह (हमारे) सामने विचित्र आयुध धारण करते, सुगन्धित सुवर्ण अलंकार पहने, देखनेमें सुन्दर प्रिय (वस्तुओं) को उत्पन्न करता है ॥७॥

—वेन भार्गव, १०।१२३

३. शिप्र (मुकुट, पगडी)—

१४. हे उष्णीषधारी (इन्द्र), मुदामाकी अपनी सैकडों सहायतायें (रक्षायें) हैं। तुम्हारे महत्ती उपकार और दान (उसे प्राप्त) होवें। (हमारे) हिंसक मर्द को मारो। हमें यश और रत्न प्रदान करो ॥३॥

—वसिष्ठ, ७।२५

१५. हे ऋभुओं, तुम्हारे अश्व पीन हैं, रथ चमकीले हैं। (तुम) सोने के शिप्रवाले निष्कधारी[1] अग्रवाले हो। इन्द्रके पुत्रो, बलके नातियो, तुम्हारी प्रसन्नता (नशा) के लिये (यह) श्रेष्ठ (मानपान) है ॥४॥

—वामदेव, ४।३७

९२. भूषण

१. कर्णभूषण—

१६. हे शतपर्वक, धन-सम्पन्न वसु (इन्द्र), तुम्हीं (सर्वत्र) सुने जाते हो, हमारे लिए बहुत सारे कर्णशोभन (मुक्तादि) लाओ ॥३॥

—नृमेधस्तुति ८।७६

१७. सारे देव और मरुद्गण हमें सुवर्ण-कर्ण, मणिग्रीव, (पुत्र) प्रदान करें। यह अर्क (उषा) तुरन्त स्तुति को चाहती आती, हम दोनों पर प्रसन्न हो ॥१४॥

—नभोनाक् काण्वेयना-सूक्त, १।१२२

---

[1] सोने का कंठा पहिननेवाला।

२. सोने का कण्ठा (निष्कग्रीव)—

१८. आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टय ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एनामच्वा न वाजयु ॥३॥
—५।१९

१९. स्वायुधास इष्मिण सुनिष्का उत स्वय तन्व शुम्भमाना ॥११॥
—७।५६

२०. देखो १७

३. रुक्मवक्ष—

२१ असेष्वा मरुत खादयो वो वक्ष सु रुक्मा उपशिश्रियाणा ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुर्धयेच्छमान ॥१३॥
—७।५६

४. खादि, ५ ऋष्टि, ६. शिप्र—

२२. असेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्ष सु रुक्मा मरुतो रथे शुभ ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्यो शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययी ॥
—५।५४

२३ त्वेष गण तवस खादिहस्त धुनिव्रत मायिन दातिवार ।
मयोभुवो ये अभिता महित्वा बदस्व विप्र तु विराघसो नृन् ॥२॥
—५।५८

२४ आ य हस्ते न खादिनं शिशु जात न बिभ्रति ।
विशामग्नि स्वध्वर ॥४०॥
—६।१६

२. सोनेका कंठा—

१८ श्वेत्रेयके नारे जन्तु, मनुष्य यज्ञके साथ बढे। निष्कग्रीव बहुदुग्ध मानो इस (सोम) द्वारा (लूट-) धन चाहता ॥३॥

—वसु आत्रेय, ५।१९

१९ सुन्दर आयुधवाले, फुर्तीले, सुन्दर निष्क पहने वह मरुद्गण स्वय (हमारे) शरीरको सजाते हैं ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।५६

२० देखो ऊपर १७

३. सुनहली माला—

२१ हे मरुतो, तुम्हारे कन्धोंपर खादियाँ, तुम्हारी छातियोंपर स्वर्ण-भूषण पडे हुए हैं। पानी देती वृष्टिमें बिजलीकी तरह चमकते आयुध तुम चलाते हो ॥१३॥

—वसिष्ठ, ७।५६

४. खादि (कंकण), ५. ऋष्टि (भाला), ६. शिप्र (शिरस्त्राण)—

२२ हे मरुतो, तुम कन्धोंपर ऋष्टि (भाले), पैरोंमें खादि (कडे), छातियोंपर सोना आभूषण, धारे रथपर अग्निकी तरह चमकने वाले बिजली तुम्हारे हाथोंमे, और सिरपर पैनी सुनहली शिप्रा (पगडी) है ॥११॥

—स्यावाश्व, ५।५४

२३ हे शिप्र, दीप्तिमान्, शक्तिशाली, हाथमें खादि (कंकण) धारे, सुरक्षाकर, मायावी, दाता, सुरक्षाकर, अमित महिमावाले, विशाल ऐश्वर्य-युक्त, नेता (मरुतों) की तुम वन्दना करो ॥२॥

—स्यावाश्व, ५।५८

२४. जिन सुन्दर अलंकारवाले अग्निको (यज्ञिक लोग) हाथमें खादिको धारे नवजात शिशुकी तरह ग्रहण करते हैं ॥४०॥

—भरद्वाज, ६।१६

७. ओपश—

२५. स्तोमा आसन् प्रतिधय. कुरीर छन्द ओपश.।
सूर्याया अश्विना वरा'ग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥
—१०।८५

§३ सज्जा

१. कपर्द

२६ रथीतम कपर्दिनमीशान राधसो महू । राय सखायमीमहे ॥२॥
—६।५५

२७. श्वित्यचो मा दक्षिणतस्कपर्दा घिय जिन्वासो अभि हि प्रमन्दु ।
उत्तिष्ठन् वोचे परि वर्हिषो नृम्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१॥
—७।३३

२८ चतुष्कपर्दा युवति सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्या सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेय ॥३॥
—१०।११४

२. क्षौर

२९ यदुद्वतो निवतो यासि वप्सत् पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना।
यदा ते वातो अनवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्रभूम ॥४॥
—१०।१४२

७. ओपश—

२५. सूर्यके लिए स्तोम (स्तोत्र) चक्रके थे, कुरीर छन्द ओपश[1] था, अश्वि-द्वय वर थे, अग्नि अगुवा था ॥८॥

—सूर्या, १०।८५

१३. सज्जा

१ कपर्द (वेणी)—

२६. सर्वश्रेष्ठ रथी, कपर्दधारी, महान् ऐश्वर्यके ईशान, (अपने) सखा पूषन्‌से हम धन मागते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

२७ गोरे, दाहिनी ओर जूटा रखनेवाले सुबुद्धि वे (वसिष्ठ) मुझे बहुत प्रसन्न करते हैं। यज्ञमें उठने में आदमियोंको कहता हूँ, "वसिष्ठ-सन्तान मुझसे दूर न जायें" ॥१॥ (३।६)

—वसिष्ठ, ७।३३

२८ चार वेणियोंवाली, सुन्दरा, सुवस्त्रा। उस (यज्ञभूमी) सुवर्णी में परात्रमी दो पक्षी बैठते हैं। जहाँ देवता लोग अपना-अपना भाग पाते हैं ॥३॥

—अग्नि वैश्वानर, १०।११४

२. और—

२९ (हे अग्नि), जब तुम अपने (पहाड़ी) निवासों (उपत्यकाओं) में जाते, तुम सूनी वनस्थली तक उषा-काल जाते हो। जब वायु तुम्हारा अनुगमन करता है। मुख-दाढ़ीके जैसे बाल वैसे तुम वनस्पती भूमिको मूड़ते हो ॥४॥

—अग्नि, १०।१४२

---

[1] मपटीका (?)

अध्याय १४

क्रीड़ा, विनोद

§१. नृत्य

१. देखो (१२।५)

—१।५१

§२ संगीत

२. मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन । गाय गायत्रमुक्थ्य ॥१४॥

—१।३८

§३. पान

१. सोम—

३ य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुत । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥७॥
यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु ददृशे । पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥८॥

—८।७१

स्वादिष्टया मदिष्टया पवस्व सोम धारया । इन्द्राय पातवे सुत ॥१॥

—९।१

४ एष देवो अमर्त्य पर्णवीरिव दीयति । अभि द्रोणान्यासदं ॥१॥

—९।३

अध्याय १४

क्रीडा-विनोद

६१. नृत्य

१ देखो १२।५, १३।१२

६२. संगीत

२ मुखमें श्लोक रचो, मेघकी तरह फैलो, उक्थ (गान)-योग्य गायत्र गाओ ॥१४॥

—कण्व घौर-पुत्र, १।३८

६३. पान

१. सोम—

३ हे इन्द्र तुम्हारे लिए जो सोम चमसोंमें (प्यालों) और चमुओं (सुराहियों) में छाना गया। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥७॥ पानीमें चन्द्रमाकी तरह जो सोम चमुओंमें दिखाई देता है। इसे तुम पियो, तुम स्वामी हो ॥८॥

—नृमेदी कण्व-पुत्र, ८।७१

हे सोम, छाने हुए स्वादिष्ट, मदिष्ट धारा-सहित इन्द्रके पीनेके लिए तुम क्षरित होओ ॥१॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, ९।१

४. यह अमर देव (सोम) यज्ञमें बैठनेके लिए पवित्रसे छनकर जाता है ॥१॥

—पवित्र सोम, ९।३

५ समिद्धो विश्वतस्पति पवमानो वि राजति। प्रीणन् वृषा कनिक्रदत् ॥१
—९।५

६ मृजन्ति त्वा दश क्षिप्रा हिन्वन्ति सप्त धीतय ।
अनु विप्रा अमादिषु ॥४॥

पुनान कलशेष्वावस्त्राण्यरुषो हरि । परि गव्यान्यव्यत ॥६॥
—९।८

७ उपास्मै गायता नर पवमानायेन्दवे। अभि देवा इयक्षते ॥१॥

स न पवस्व श गवे श जनाय शमर्वते। श राजन्नोषधीभ्य ॥३॥

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन । इन्दुमिन्द्रे दधातन ॥६॥
—९।११

८ एप धिया यात्यण्व्या शूरो रथेभिराशुभि । गच्छन्निन्द्रस्य निष्कृत ॥१॥
एप पुरू धियायते वृहते देवतातये। यत्रामृतास आसते ॥२॥

एप शृगाणि दोधुवच्छिशीते यूथ्यो वृषा। नृम्णा दधान ओजसा ।४॥
—९।१५

९ आ कलशेषु धावति पवित्रे परिषिच्यते। उक्थैर्यज्ञेषु वर्धते ॥४॥

तमु त्वा वाजिन नरो धीभिर्विप्रा अवस्यव । मृजन्ति देवतातये ॥७॥
—९।१७

५ पराक्रमी पति उद्दीप्त पवमान (सोम) शब्द करता है। प्रसन्न करता चारो ओर विराजता है ॥१॥

—अमितदेवल काश्यप,

६. (हे सोम,) दश फुर्तीली (अगुलिया) तुम्हें मीजती हैं, सात स्तोता तुम्हें प्रेरित करते हैं। फिर विप्र मस्त होते हैं ॥४॥

लाल सुनहला (सोम) कलशो में क्षरण करता दूध रूपी वस्त्र पहनता है ॥६॥

—अमितदेवल, ९।८

७. हे नरो, देवोकी उपासना करने, इस क्षरण करते सोमका गान करो ॥१॥

हे राजन् (सोम), सो तुम हमारी गौओंके लिए मगल क्षरण करो, जनके लिए मगल, घोडेके लिए मगल, ओषधियोके लिए मगल क्षरण करो ॥३॥

नमस्कारके साथ (सोमके) पास जाओ, दहीके साथ मिलाओ। इन्द्रको सोम प्रदान करो ॥६॥

—अमितदेवल, ९।११

८ यह शूर (सोम) सूक्ष्म धारासे तेज रथो द्वारा इन्द्रके (मिलने) स्थानमें जाता है ॥१॥

जहाँ अमर रहते है, उस महान् देवसभामें यह (सोम) बहुत ध्यान करता है ॥२॥

यह ओजसे पराक्रम करता, यूथपति वृषभकी तरह दोनो सीगोको हिलाता है ॥४॥

—अमितदेवल, ९।१५

९. यह (सोम) कलशोमें दौडता है, पवित्र (छने) में सींचा जाता है, उसको (गानो) द्वारा सभीमें बढता है ॥८॥

(हे सोम), उस तुम अत्यन्त रक्षा की कामनावाले विप्र पर कृपा मीजते हो ॥७॥

१० एते **सोमास** आशवो रथा इव प्र वाजिन । सर्गा सृष्टा अहेषत ॥१॥
एते वाता इवोरवपर्जन्यस्येव वृष्टय: । अग्नेरिव भ्रमा वृथा ॥२॥
एते पूता विपश्चित सोमासो **दध्याशिरः** । विपा व्यानशुर्धिय ॥३॥
त्व **सोम पणिभ्य** आ वसु गव्यानि धारय । तत तन्तुमचिक्रद ॥७॥
—९।२२

११ वीन्द्र यासि दिव्यानि रोचना वि पार्थिवानि रजसा पुरुष्टुत ।
ये त्वा वहन्ति मुहुरध्वरा उप ते सु वन्वन्तु वग्वना अराधस ॥२॥
—१०।३२

१२ स सुत पीतये वृषा सोम **पवित्रे** अर्षति । विघ्नन्रक्षासि देवयु ॥१॥
—९।३७

१३ असृग्रन् देववीतये त्यास **कृत्व्या** इव । क्षरन्त **पर्वतावृध** ॥१॥
परिष्कृतास इन्दवो **योषेव** पित्र्यावती । वायु सोमा असृक्षत ॥२॥
स पवस्व धनजय प्रयन्ता राधसो मह । अस्मभ्य सोम गातुवित् ॥५॥
—९।४६

१४ अभि त्वा योषणो दश **जारं** न कन्यानूषत ।
मृज्यसे सोम सातये ॥३॥
—९।५६

१५ पवस्व **गोजिदश्वजिद्धिरण्यजित्** सोम रण्यजित् । प्रजावद्रत्नमाभर ॥१॥
—९।५९

१६ प्र गायत्रेण गायत पवमान विचर्षणिम् । इन्दु सहस्रचक्षुस ॥१॥
—९।६०

१० ये रथोंकी तरह शीघ्रगामी सोम, छोड़े घोड़ों से हिनहिनाते हैं ॥१॥
ये विस्तृत वायु से, पर्जन्य-वृष्टि से, अग्निशिखा से, चलते हैं ॥२॥
यह विद्वान् विप्र पवित्र, दधि-मिश्रित सोम मन को प्राप्त करते हैं ॥३॥
हे सोम, तुम पणियोंसे गो-धनको (छीन) लेते हो, फैले तन्तु(यज्ञ) में शब्द करते हैं ॥७॥

—असितदेवल, ९।२२

११ हे बहुस्तुत वीर, इन्द्र, द्यौ और पृथिवी-सम्बन्धी लोकोंको प्रकाशित करने तुम जाते हो। जो तुम्हें प्राय यज्ञ में ले जाते हैं, वह अ-दानी वकवादियों को जीतें ॥२॥

—कश्यप ऐलूष, १०।३२

१२. वह राक्षसोंका नाश करता है, देवकामी, पराक्रमी सोम पीनेके लिये छाना हुआ पवित्र (चषक) में जाता है ॥१॥

—रहूगण ९।३७

१३. पत्थरोंसे बढ़े, कार्यपरायण घोड़ोंकी तरह देवपानके लिए क्षरित होते (सोम) भेजे गये हैं ॥१॥
पितावाली परिष्कृत वधू की तरह सोम (इन्दु) वायुके पास जाते हैं ॥२॥
हे धन जीतनेवाले, मार्गवेत्ता सोम, हमें धन, यश देने क्षरित होओ॥४॥

—अयास्य आंगिरस, ९।४६

१४. हे सोम, कन्या जैसे प्रियतमको, वैसे तुम्हें दस अंगुलियां बुलाती हैं, देनेके लिए तुम भीजे जाते हो ॥३॥

—अवत्सार, ९।५६

१५ हे गो-विजयी, अश्व-विजयी, वित्त-विजयी, सुत-विजयी सोम, क्षरित होओ, पुत्रों-सहित धन ले आओ ॥१॥

—अवत्सार, ९।५९

१६ सप्त-चक्षु सोम, का, बृहद्रथ पवमानका गायत्र (साम) द्वारा गान करो ॥१॥

—अवत्सार, ६०।१

१७. अया वीती परिस्रव यस्त इन्दो मदेष्वा। अवाहन् नवतीर्नव ॥१॥
पुर सद्य इत्था धिये दिवोदासाय शवरं। अध त्य तुर्वश यदुं ॥२॥
जघ्निर्वृत्रमभित्रिय सस्निर्वाजि दिवेदिवे।
गोषा उ अश्वसा असि ॥२०॥
—९।६१

१८. सुत इन्द्राय विष्णवे सोम कलशे अक्षरत्।
मधुमा अस्तु वायवे ॥३॥
एते असृग्रमाशवोति ह्वरासि बभ्रव। सोमा ऋतस्य धारया ॥४॥
इन्द्र वर्धन्तो अप्तुर कृण्वन्तो विश्वमार्यं। अपघ्नन्तो अराव्ण ॥५॥
—९।६३

१९ अभ्यर्ष सहस्रिण रयिं गोमन्तमश्विन। अभि वाजमुत श्रव ॥१२॥
सोमो देवो न सूर्योऽद्रिभि पवते सुत। दधान कलशे रस ॥१३॥
—९।६३

२० हिन्वन्ति सूरमुस्रय स्वसारो जामयस्पति। महामिन्दु महीयुव ॥१॥
यस्य वर्णं मधुश्चुत हरिं हिन्वन्त्यद्रिभि [1]। इन्दुमिन्द्राय पीतये ॥८॥
यस्ये ते मद्य रस तीव्र दुहन्त्यद्रिभि। स पवस्वाभिमाहिता ॥१५॥
—९।६५

२१ ये सोमासः परावति ये अर्वावति सुन्विरे। ये वाद शर्यणावति ॥२२॥

---

[1] यद्रिचि—निर्णय सागर प्रेस

१७ हे सोम, उस पानके साथ बहो, तुम्हारे जिस (पानके) मदमें हो (इन्द्रने) निन्नानवे (पुरियों) का संहार किया ॥१॥
इस प्रकार तुरन्त शम्बरको, पुरोंको दिवोदासके लिए (नष्ट किया), और उस तुर्वश और यदुको भी ॥२॥
हे सोम, तुमने अमित्र वृत्रको मार कर, रोज-रोज अन्न दिया, तुम गोदाता और अश्वदाता हो ॥२०॥

—अमहीयु आंगिरस, ९।६१

१८ इन्द्रके लिए, विष्णुके लिए छाना सोम कलशमें क्षरित हुआ। वह वायुके लिए मधुर होवे ॥३॥
पिंगल-वर्ण शीघ्रगामी सोम ऋत (यज्ञ) की धारा द्वारा घुमावोंमें होते बहते हैं ॥४॥
इन्द्रको बढ़ाने, जल लाते, नव आर्य (कर्म) करते कंजूसोंको विनाश करते (बहते) हैं ॥५॥

—निध्रुव काश्यप, ९।६३

१९ गाय-अश्व-सहित हजारोंवाला धन, बल, अन्न और यश हमें दो ॥१२॥
सूर्यकी तरह सोम पत्थरोंने (तैयार किया) कलशमें रस डालता क्षरित होता है ॥१३॥

—निध्रुव काश्यप, ९।६३

२० महानताकी कामना करनेवाली (अंगुली रूपी) बहिनें नूरको, स्त्रियाँ महान् पति सोमको बनाती हैं ॥१॥
(अध्वर्यु लोग) इन्द्रके पीनेके लिए पत्थरों द्वारा जिस मधुसदृश पीले वर्ण इन्दुको (सोम) बनाते हैं ॥८॥
हे सोम, तेरे तीव्र मदवालेको पत्थरोंने (सिलकर) निकाले हैं सो (तुम) दुष्टोंका नाश करते क्षरो ॥१५॥

—जमदग्नि भृगु-पुत्र, ९।६५

२१. जो सोम पश्चिम (दूर) में जो पूर्व (नजदीक) में छाने गये अथवा जो यहाँ सवनगामी में ॥२२॥

य आर्जीकेषु कृत्वसु ये मध्ये पस्त्याना। ये वा जनेषु पचसु ॥२३॥
ते नो वृष्टि दिवस्परि पवन्तामा सुवीर्यं। सुवाना देवास इन्दव ॥२४
पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना। हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥२५॥
—९।६५

२२. पवित्र ते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्येषि विश्वत।
अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते शृतास इद्वहन्तस्तत् समाशत ॥१॥
—९।८३

२३. प्र ते धारा अत्यव्यानि मेष्य पुनानस्य सयतो यन्ति रहय ॥
यद् गोभिरिन्दो चम्वो समज्यस आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि ॥४७
—९।८६

२४ शूरग्राम सर्ववीर सहावा जेता पवस्व सनिता धनानि।
तिग्मायुध क्षिप्रधन्वा समत्स्वपाहृळ साह्वान् पृतनासु शत्रून् ॥३॥
—९।९०

२५ प्र सेनानी शूरो अग्रे रथाना गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभमानि दत्ते ॥१॥
सोम पवते जनिता मतीना जनिता दिवो जनिता पृथिव्या।
जनिताग्नेर्जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णो ॥५॥
ब्रह्मा देवाना पदवी कवीनामृषिर्विप्राणा महिषो मृगाणा।
श्येनो गृध्राणा स्वधितिर्वनाना सोम पवित्रमत्येति रेभन् ॥६॥

जो आर्जीको (ऋचीको), जो कर्मनिष्ठो, जो पस्त्योके बीच अथवा जो पाँचो जनोमें छाने गये ॥२३॥

छाने जाते वे सोम हमारे लिए द्यौके ऊपरसे वृष्टि और सुवीरताको प्रदान करते क्षरण करें ॥२४॥

यमदग्नि द्वारा स्तुति किया जाता सुनहला सोम गायके चमड़ेके ऊपर तैयार होता क्षरित होता है ॥२५॥

—यमदग्नि, भृगु-पुत्र, ९।६५

२२ हे ब्रह्मणस्पति (मन्त्रपति सोम), तुम्हारा पवित्र (प्याला) फैला हुआ है, प्रभु तुम गात्रोंमे चारो ओर पहुँचे हो। अतप्त-शरीर (कच्चा व्यक्ति) उसे नही पाता। पके वहन करते उसे ठीकसे पाते है ॥१॥

—पवित्र आग्नेय, ९।८३

२३. हे सोम, छाने जाते तुम्हारी धारायें सूक्ष्म मेष-लोमको लाँघकर वेगवती हो बहती है। जब दो चमूओंमें दूधमें मिलाये जाते हो, तब छाने जाकर कलशोमें बैठते हो ॥४७॥

—गृत्समद, ९।८६

२४ हे शूर-समूहवाले, सारे वीरोवाले, पराक्रमी, विजेता धनोंके दाता तीक्ष्ण आयुधवाले, क्षिप्र धनुष चलानेवाले, युद्धमें अजेय, सेनाओंमें शत्रुओंको पराजय करनेवाले हे सोम, तुम क्षरित होओ ॥३॥

—वसिष्ठ, ९।९०

२५ लूटनेवाला सेनानी, शूर, रथोके आगे जाता है, उसकी सेना हर्षित होती है। इन्द्रके आह्वानको भला बनाता सोम सखाओंके लिए शीघ्र वस्त्र प्रदान करता है ॥१॥

बुद्धियोंका जनक (उत्पादक), सोम जनक, पृथिवी का जनक अग्निका जनक, सूर्यका जनक और विष्णुका जनक सोम क्षरित होता है ॥

देवोंका ब्रह्मा ऋषियोंका पवन, विप्रोंका ऋषि, मृगोंका सिंह, गिद्धोंका बाज धनों का पुलाता सोम शत्रु सेना पवित्र (पात्र) को पार करता है ॥६॥

त्वया हि न पितर सोम पूर्वे कर्माणि चक्रु पवमान धीरा ।
वन्वन्नवात परिधीरपोर्णु वीरेभिरश्वैर्मघवा भवा न ॥११॥

यथा पवथा मनवे वयोधा अमित्रहा वरिवोविद्धविष्मान् ।
एवा पवस्व द्रविण दधान इन्द्रे स तिष्ठ जनयायुधानि ॥१२॥

—९।९६

२६ उत न एना पवया पवस्वाधि श्रुते श्रवाय्यस्य तीर्थे ।
षष्टि सहस्रा नैगुतो वसूनि वृक्ष न पक्व धूनवद्रणाय ॥५३॥

—९।९

२७ त गायया पुराण्या पुनानमभ्यनूषत ।
उतो कृपन्त धीतयो देवाना नाम बिभ्रती ॥४॥

—९।९९

२८ अव्यो वारेभि. पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।
कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृत ॥१६॥

—९।१०१

२९ शर्यणावति सोममिन्द्र पिवतु वृत्रहा ।
वल दधान आत्मनि करिष्यन्वीर्य महदिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥१॥

आ पवस्व दिशा पत आर्जीकात् सोम मीढ्व ।
ऋतवाकेन सत्येन श्रद्धया तपसा सुत, इन्दायेन्दो परि स्रव ॥२॥

हे पवमान सोम, तुम्हारे साथ हमारे पूर्वज धीर पितरोंने कर्म किये। वीरों तथा अश्वों द्वारा तुम शत्रुओंको वेगसे मारते हो। सो तुम हमारे धनिक (मघवा) बनो ॥११॥

जैसे मनुके लिए आयुधधारी, शत्रुनाशक, धन-युक्त, हवि-युक्त हो तुम क्षरित हुए थे, वैसे ही धन धारण करते (हमारे लिए) क्षरित होओ। इन्द्रका आश्रय लो, आयुध पैदा करो ॥१२॥

—प्रतर्दन दिवोदास-पुत्र, ९।९६

२६ हे सोम, तुम हमारे लिए यशस्वी हो प्रसिद्ध तीर्थमें इस धारासे क्षरित होओ। जैसे पका फल पानेके लिए वृक्षको हिलाते हैं, वैसे ही (मारनेपर) शत्रुनाशक सोमने साठ हजार धन हमें दिये ॥५३॥

—कुत्स आंगिरस, ९।९७

२७. क्षरित होते (समय) उस सोमकी पुरानी गाथा द्वारा स्तुति करते हैं। चलनेवाली (सोम रूपी) देवोंकी अंगुलिया हवि (को) धारण करती हैं ॥४॥

—रेभ काश्यप, ९।९९

२८. सोम गोके चमड़े[1]पर भेड़के लोमों के बीच छाना जाता है। पवित्रमें गुनगुना सोम शब्द करता इन्द्रके (मिलन-)स्थानमें जाता है ॥६॥

—विश्वामित्र गाथि-पुत्र ९।१०१

२९. वृत्रहन्ता (इन्द्र) शर्यणावतमें सोमको पिये। शरीर में बलसंपन्न करने महान् पराक्रम करे। हे सोम, इन्द्रके लिए क्षरित होओ ॥१॥

ऋतवचन-सत्य-श्रद्धा-तपस्या द्वारा छाने गये हे दिशाओंके पति, सेनाके, सोम आजीकमे क्षरित होओ ॥२॥

---

[1] चमड़ेमें छाने-सोनेकी सोमोंके रखनेका उस समय बहुत रवाज था। सुरा रखनेके चमड़ेको पूती (१।१९१।१०) और सोम रखनेकी चर्म पूती (४।१५।१) का उल्लेख मिलता है।

यत्र ज्योतिरजस्त्र यस्मिन्ल्लोके स्वर्हित ।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित, इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानुकाम चरण त्रिनाके त्रिदिवे दिव ।
लोका यत्र ज्योतिष्मन्तस्तत्र माममृत कधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥९॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुद प्रमुद आसते ।
कामस्य यत्राप्ता कामास्तत्र माममृत कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥
—९।११३

२. सुरा—

३०. हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुराया ।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२॥
—८।२

३१. नस स्वो दक्षो वरुण ध्रुति सा सुरा मर्युविमीवको अचित्ति ।
अस्ति ज्यायान् कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६॥
—७।८६

३२ भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा ।
भोजा जिग्युरन्त पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ॥९॥
—१०।१०७

§४. जूआ

३३ प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे ववृताना ।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ॥१॥

न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत् ।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोध ॥२॥

जहाँ निरन्तर ज्योति है। जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थिति है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण, अमर लोकमें मुझे ले चलो, ०॥७॥
जहाँ चौके त्रि-स्वर्ग, त्रि-द्यौमें इच्छानुसार विचरण होता है, जहा लोक ज्योतिषमान् है, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥६॥
जहाँ आनन्द और मोद और मुद, प्रमुद अवस्थित है, कामकी कामनायें जहाँ प्राप्त होती है, वहाँ मुझे अमर बनाओ, ०॥११॥

—कश्यप मारीचि-पुत्र ९।११३

२. सुरा—

३०. जैसे अतरिक पिये सुरामें बदमस्तने लडते है, (गो-)स्तनकी तरह् नगे बकते है ॥१२॥

—मेधातिथि कण्व-पुत्र ८।२

३१. हे वरुण, वह दोष अपनेमे नही होता, वह सुरा, क्रोध, जुआ, अज्ञान है, (जो) बडे छोटोको पथभ्रष्ट करते है, नीद भी अनृत जोडनेवाली, होती है ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।८६

३२. भोजदाता (सबसे) पहले सुगन्धित स्थान पाते है, भोज सुरम्य वस्तुओको पाते है, भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते है, भोज उनको जीत लेते है, जो बिना बुलाये चढ़ आते है ॥९॥

—दिव्य आगिरस, १०।१०७

९४ जुआ

३३ प्रवातीय बडे (वृक्ष) की गतिशील पट्टीपर घूमने (पासे) मुझे आनन्दित करते है, जैसे मुजवान् (पर्वत) वाले सोमका भक्षण, वैसे (ही) जागरूक काटके पासे मुझे उत्तेजित करते है ॥११॥
न मुझे वह हैरान करती थी न क्रोध करती थी। मित्रो और मेरे लिये परित्यागिनी थी। केवल जूएके घरमें पडनेके कारण मैंने अनुगामिनी जायाको विकल कर दिया ॥२॥

द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितार।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाह विदामि कितवस्य भोग ॥३॥

अन्ये जाया परिमृशन्त्यस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्यक्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेत ॥४॥

यदा दीध्येनदविषाण्येभि परायद्भ्यो वहीये सखिभ्य।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषा निष्कृत जारिणीव ॥५॥

सभामेति कितवः पृच्छमानो "जेष्यामीति" तन्वा शूशुजान।
अक्षासो अस्य वितिरन्ति काम प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ॥६॥

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरत क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद् धनमिच्छमानो न्येषामस्तमुप नक्तमेति ॥१०॥

स्त्रिय दृष्ट्वाय कितव ततापान्येषा जाया सुकृत च योनि।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषल पपाद ॥११॥

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृपस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमान।
तत्र गाव कितव तत्र जाया तन्मे विचष्टे सवितायमर्य ॥१३॥

—१०।३४

७५. (समन मेला)

यक्ष, (समन मेला) देखने जाते थे वसिष्ठ, ७।६६।१६, -प्रस्कण्व, १।४८।६, कक्षीवान्, १।१२४।८, सुमित्र वाध्र्यश्व, १०।६६।११,

सात द्रेय करती है, स्त्री छोड़ देती है। माननेपर वह (जुआरी) किसीको देनेवाला नहीं पाता। जैसे मूल्यवान् बूढ़े घोड़ेको, वैसे ही जुआरीके लिए (मिलनेवाला) कोई भोग मैं नहीं जानता ॥३॥

जिसके धनका लोभ बलवान् पासा करते हैं, उसकी पत्नीको दूसरे भोगते हैं। उसके बारेमें पिता, माता, भाई कहते हैं—"हम नहीं जानते, इसे बाध कर ले जाओ" ॥४॥

जब मैं करता हूँ "इन (पासों) के साथ नहीं खेलूंगा", तो मित्र जुआरियोंसे दूर होता हूँ। पर, जब भूरे पासे फलकपर पड़े शब्द करते हैं, तो व्यभिचारिणीकी तरह उन (जुआरियों) के मिलन-स्थान में जाता हूँ ॥५॥

"मैं जीतूंगा" कह पूछता शरीर फुलाता, जुआरी सभामें जाता है। पासे इसकी कामना बढ़ाते हैं। प्रतिद्वन्द्वीके भावको पूरा करते हैं ॥६॥ जुआरीकी पत्नी हीन होकर सन्तप्त होती है, माँ भटकते की मा। (भी) महाजनीसे डरता, धनलोभी घर दूसरेके घरमें रात को जाता है ॥१०॥

पासोंसे मत खेलो, खेती करो, (इसे) बहुत मानते हुये आनंदी सन्तुष्ट रहो। हे जुआरी, वहाँ (तेरे लिए) गायें हैं, वहाँ पत्नी है, स्वामी सवितादेव मुझे यह बतलाया ॥१३॥

—ऋग्वेद, १०।३४

अध्याय १५

देवता (धर्म)

§१. देवता

१ नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारक ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥१॥

—८।३०

१. नाम, सख्या—

२ हुवे वो देवीमदिति नमोभिर्मृळीकाय वरुण मित्रमग्निं ।
अभिक्षदामर्यमण सुशेव मातृन्देवान्त्सवितार भग च ॥१॥

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवो'धृष्टा ।
यदीमर्भे महति वा हितासो वाघे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥

अभि त्य वीर गिर्वणसमर्चेन्द्र ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजा उप महो गृणान ॥६॥

ओमान्नापो मानुषीरमृक्त धात तोकाय तनयाय शं यो ।
यूय हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्री ॥७॥

उत त्या मे हवमा जग्म्यात नासत्या धीभिर्युवमग विप्रा ।
अत्रि न महस्तमसो मुमुक्त तूर्वत नरा दुरितादभीके ॥१०॥

ते नो रुद्र सरस्वती सजोषा मीहळुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायु ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्या वाता पिप्यतामिष न ॥१२॥

—६।५०

अध्याय १५

देवता, धर्म

१. देवता

१ हे देवो, तुम्हारे में न कोई शिशु है, न बच्चा। तुम सभी महान् हो ॥१॥

—ऋग्वेद ८।३०

१ नाम, संख्या—

२ हे देवो, तुमको त्रिण में नमस्कार करता हूँ—देवी, अदितिको, वरुण को, मित्र को, अग्निको बिना मांगे सदा सुख प्रदान करनेवाले अर्यमाको, सदा देवताओंका, सविता और भगको पुकारता हूँ ॥१॥

पुराने गये स्तुति-पुष्प अब नये होकर आये हैं, जब हम कष्ट में होते हैं, तो हम सदा त्वष्टाको पुकारते हैं ॥२॥

हे सोम, सर्वोत्तम मन्त्र (स्तुति) से उस और उस इन्द्र की स्तुति करो। इस प्रकार पुत्र और पुत्र हो, वह हमें सदा रक्षा करे ॥३॥

आप (सोम) देवियो, सबको हितकारिणी हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिये सुख मंगलदायिनी हो रक्षा करो। तुम सभी सबकी श्रेष्ठतम माता पैदा और जननियाँ हो ॥४॥

हे मित्र वरुणो (अग्नि-सोमो), स्तुतियों द्वारा तेजी पुकार को सुनने आओ, अदिति को सदा सबको प्रसन्न करनेवाले हो। हे सोम, सुदूरे राष्ट्र में हमें प्रदान करो ॥५॥

हे रुद्र, सन्तानों, सखा सहित विष्णु, सविता सब पूषा सब। अनुरोध, राजा (त्रिण सब) त्रिशता पराक्रमशाली सभी उनको स्तुति ॥६॥

—ऋग्वेद ६।५०

३. द्यौष्पितः पृथिवी मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता न ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्य शर्म बहुल वि यन्त ॥५॥
—६।५१

४ अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमाना ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥

विश्वदानी सुमनस स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरत ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूना देवा ओहानोऽवसागमिष्ठ ॥५॥

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठ सरस्वती सिन्धुभि. पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न औषधीभिर्मयोभुरग्नि सुशस सुवह पितेव ॥६॥
—६।५२

५. श न इन्द्राग्नी भवतामवोभि श न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय श यो श न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१॥

श नो भग शमु न शसो अस्तु श न पुरन्धिः शभु सन्तु राय ।
श न सत्यस्य सुयमस्य शस श नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२॥

श नो धाता शभु धर्ता नो अस्तु श न उरूची भवतु स्वधाभि ।
श रोदसी बृहती श नो अद्रि श नो देवाना सुहवानि सन्तु ॥३॥

३ हे पिता द्यौ, हे द्रोहहीन माता पृथिवी, हे भ्राता अग्नि, हे वसुओ, हमें सुखी करो। हे सारे आदित्यो, हे अदिति, इकट्ठे हो हमारे लिये बहुत शरण प्रदान करो ॥५॥

—ऋग्विधा, ६।५१

४ उगती उषायें मेरी रक्षा करें, फूलती हुई नदियां मेरी रक्षा करें, अचल पर्वत मेरी रक्षा करें। देवों की पुकार में पितर मेरी रक्षा करें ॥४॥

सदा हम सुमनवाले हों, उगते हुए सूर्यको हम देखें। वैसा ही वसुओंके वसुपति (धनपति) करें। देवताओंको वहन करने रथोंके साथ वह हमारे पास आवें ॥५॥

रथोंके साथ इन्द्र फूलती हुई सिन्धुओंके साथ सरस्वती हमारे अति नजदीक आवे। ओषधियोंके साथ पर्जन्य, सुप्रजननीय सुआहवनीय पिता तुल्य अग्नि सुखमय होवें ॥६॥

—ऋग्विधा, ६।५२

५ इन्द्र-अग्नि (दोनों) रथोंके साथ हमारे लिये कल्याणकारी हों। हव्य प्रदान किये गये (गतहव्य) इन्द्र-वरुण हमारे लिये कल्याणकारी हों। इन्द्र-सोम कल्याण उत्पादनके लिये हों। मरुत् इन्द्र-पूषन् हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥१॥

भग हमारे लिये कल्याणकारी हो, हमारे लिये (नरा) शस कल्याणकारी हो, पुरन्धि हमारे लिये कल्याणकारी हो, धन कल्याणकारी होवें। अर्यमा सत्यकी प्रशंसा हमारे लिये कल्याणकारी हो। बहुत बार प्रकट अर्यमा हमारे लिये कल्याणकारी होगा ॥२॥

धाता हमारे लिये कल्याणकारी हो, धर्ता हमारे लिये कल्याणकारी हो। अग्नीके साथ उर्ची (पृथिवी) हमारे लिये कल्याणकारी हो, द्यौ-पृथिवी हमारे लिये कल्याणकारी हों, अद्रि (पर्वत) हमारे लिये कल्याणकारी हो। [illegible] हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥३॥

श नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु श नो मित्रावरुणावश्विना श।
श न सुकृता सुकृतानि सन्तु श न इषिरो अभि वातु वात. ॥४॥

श नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्ष दृशये नो अस्तु।
श न ओषधीर्वनिनो भवन्तु श नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णु ॥५॥

श न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुण सुशस ।
श नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाष श नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

श न सोमो भवतु ब्रह्म श न श नो ग्रावाण शमु सन्तु यज्ञा ।
श न स्वरूणा मितयो भवन्तु श न प्रस्व श वस्तु वेदि ॥७॥

श न सूर्य उरुचक्षा उदेतु श नश्चतस्र प्रदिशो भवन्तु।
श न पर्वता ध्रुवयो भवन्तु श न सिन्धव. शमु सन्त्वाप ॥८॥

श नोऽदितिर्भवतु व्रतेभि श नो भवन्तु मरुत स्वर्का ।
श नो विष्णु शमु पूषा नो अस्तु श नो भवित्र शवस्तु वायु ॥९॥

श नो देव सविता त्रायमाण श नो भवन्तूषसो विभाती ।
श न पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्य श न क्षेत्रस्य पतिरस्तु शभु. ॥१०॥

श नो देवा विश्वदेवा भवन्तु श सरस्वती सह धीभिरस्तु।
शमभिषाच शमु रातिषाच श नो दिव्या पार्थिवा श नो अप्या ॥११॥

श न सत्यस्य पतयो भवन्तु श नो अर्वन्त शमु सन्तु गाव ।
श न ऋभव सुकृत सुहस्ता श नो भवन्तु पितरो हवेषु ॥१२॥

श नो अज एकपाद्देवो अस्तु श नोऽहिर्बुध्न्यः श समुद्र.।
श नो अपानपात् पेरुरस्तु श न पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥१३॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेद ब्रह्म क्रियमाण नवीय ।
शृण्वन्तु नो दिव्या पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियास ॥१४॥

ये देवाना यज्ञिया यज्ञियाना मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञा ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥१५॥
—७।३५

६. प्रातरग्नि प्रातरिन्द्र हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना।
प्रातर्भगं पूषण ब्रह्मणस्पतिं प्रात सोममुत रुद्र हुवेम ॥१॥

रक्षा करते हुये सविता देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, चमकने वाली उषायें हमारे लिये कल्याणकारी हो, पर्जन्य हमारी प्रजाओं (सन्तानों) के लिये कल्याणकारी हो, क्षेत्रपति शम्भु हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥१०॥

विश्वदेव (सारे देवता) देव हमारे लिये कल्याणकारी हो, बुद्धियों के साथ सरस्वती कल्याणकारी हो। मन्मुख दान देनेवाले कल्याणकारी हो, दिव्य (द्यौवाले), पार्थिव (पृथिवीवाले), अप्य (जलवाले) प्राणी हमारे लिए कल्याणकारी हों ॥११॥

सत्यके पति हमारे लिये कल्याणकारी हो, अर्वन्त (घोड़े) हमारे लिये कल्याणकारी हो, गायें हमारे लिये कल्याणकारी हों। सुहृत (सुकर्मा) सुहस्त ऋभु हमारे लिये कल्याणकारी हों। हवनोंमें हमारे लिये पितर कल्याणकारी हों ॥१२॥

एक पैरवाला अज देव हमारे लिए कल्याणकारी हो, अहिर्बुध्न्य (गम्भीर सर्प) हमारे लिए कल्याणकारी हो, समुद्र कल्याणकारी हो, आपदेवियोंका नाती पेरु हमारे लिए कल्याणकारी हो, देवकृता पृथिवि हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥१३॥

इस अतिनवीन बनाये जाते ब्रह्म (मन्त्र) को आदित्य, रुद्र, वसु लोग सेवन करें। दिव्य, पार्थिव गौओं (वाणी या गाय) के उत्पन्न और जो यज्ञीय हैं, वे (देव) हमारी स्तुति सुनें ॥१४॥

जो यज्ञीय देवोंके यज्ञीय (पूजनीय), मनु (राजा) के पूजनीय अमर ऋत (मन्त्र)-ज्ञाता हैं। वे आज हमें विस्तृत स्थान (यश) प्रदान करें, तुम सब स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥१५॥

—तैत्तिरीय, ३।१०

६ प्रातः अग्निको प्रातः इन्द्रको हम पुकारते हैं, प्रातः मित्र-वरुणको प्रातः अश्विद्वय को। प्रातः भगको पूषनको बृहस्पति (ब्रह्मणस्पति) को, प्रातः सोम और रुद्र को हम पुकारते हैं ॥१॥

प्रातर्जित भगमुग्र हुवेम वय पुत्रमदितेर्यो विवर्ता।
आध्रश्चिद्य मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्य भग भक्षीत्याह ॥२॥
—७।४१

७ अग्निरिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषस ।
आदित्या विष्णुर्मरुत स्वर्बृहत् सोमो रुद्रो अदितिर्ब्रह्मणस्पति. ॥१॥

इन्द्राग्नी वृत्रहत्येषु सत्पती मिथो हिन्वाना तन्वा समोकसा ।
अन्तरिक्ष मह्या पप्रुरोजसा सोमो घृतश्रीर्महिमानमीरयन् ॥२॥
—१०।६५

८ ऐभिरग्ने मरथ याह्यर्वाङ् नाना रथ वा विभवो ह्यश्वा ।
पत्नीवतस्त्रिंशत त्रींश्च देवाननुष्वधमावह मादयस्व ॥९॥
—३।६

९ त्रीणि शता त्रीसहस्राण्यग्नि त्रिंशच्च देवा नव चासपर्यन्।
औक्षन्घृतैरस्तृणन्बर्हिरस्मा आदिद्धोतार न्यसादयन्त ॥९॥
—३।९

२. देवोके वास स्थान—

१० नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति सहदेवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इय दक्षिणा पिन्वते सदा ॥५॥
—१।१२५

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्व विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशा।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमतिं रोदस्योः।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्विपो अहासि दुरिता।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

—६।२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

—६।३

यथा होतर्मनुषो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

—६।४

१३ हुवे व सूनु सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

—६।५

§ २. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११. हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो। हे सख्य वसु (बसानेवाले) तुम पुष्टिसे पुष्ट करते हो ॥१॥

हे अग्नि, यजकी इच्छावाले विशोंके घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशपति (प्रजाओंके स्वामी) समृद्ध करो, हे अंगिरा, हव्यका सेवन करो ॥१०॥

हे मित्र-तेजवाले अग्नि देव, रोदसी (द्यौ और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। द्यौसे स्वस्ति लाओ, मनुष्य का सुन्दर वास हो। पापवाले दुष्ट शत्रुओंसे (हम) बचे। तुम्हारी सहायता से हम तरें, हम तरें, हम तरें ॥११॥

—भरद्वाज, ६।२

१२. तीक्ष्ण मा (ज्वाला) आकार है, महान् शरीर है, अग्निकी तरह मुहसे तृण-काष्ट[1] खाता, कुठारकी तरह जिह्वासे हिलाता है, कल्पीकी तरह काष्टको जलाते भगाता है ॥४॥

—भरद्वाज, ६।३

हे सहस-पुत्र[2] होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यजमें हवि द्वारा तुमने देवों का यजन किया, उसी प्रकार चाहते आज हमारे यजमें देवोंको साथ ले आओ और यजन करो ॥१॥

—भरद्वाज, ६।४

१३. तुम अमिश्याभागी प्रसन्न सहस-सहस-पुत्र (अग्नि) को स्तुतियों द्वारा हम स्तवन करते हैं, जो कि प्राप्त प्रजाओंको बढ़ाता बहु श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।५

---

[1] सग्राम [2] शक्ति (साहस) के पुत्र।

§ २ देवों के स्वरूप

१. अग्नि—

११. त्व हि क्षैतवद्यशोग्ने मित्रो न पत्यसे।
त्व विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टि न पुष्यसि ॥१॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशां।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमंगिर ॥१०॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोच सुमतिं रोदस्यो।
वीहि स्वस्ति सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अहासि दुरिता।
तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

.—६।२

१२ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

—६।३

यथा होतर्मनुषो यज्ञेभि सूनो सहसो यजासि।
एवा नो अद्य समना सामानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

—६।४

१३ द्वे व सूनृ सहसो युवानमद्रोघवाच मतिभिर्यविष्ठ।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक् ॥१॥

—६।५

§ २. देवोंके स्वरूप

१. अग्नि—

११ हे अग्नि, मित्र की तरह राजयशवाले स्वामी हो। हे नमित्र वसु (वसानेवाले) तुम पुष्टिसे पुष्ट करते हो॥१॥

हे अग्नि, यजकी इच्छावाले विशोके घरमें होता होकर तुम प्रविष्ट होते हो। हे विशापति (प्रजाओंके स्वामी) समृद्ध करो, हे अंगिरा, हव्यका सेवन करो॥१०॥

हे मित्र-तेजवाले अग्नि देव, रोदसी (द्यौ और पृथिवी) में देवोंके लिये हमारी स्तुतिको कहो। द्यौमें स्वस्ति लाओ, मनुष्य का सुन्दर वास हो। पापवाले दुष्ट शत्रुओंसे (हम) बचें। तुम्हारी सहायता से हम तरें, हम तरें, हम तरें॥११॥

—भरद्वाज, ६।२

१२ तीक्ष्ण मा (इनका) आकार है, महान् शरीर है, अच्छी तरह सूखे तृण-काष्ठ[1] खाता, कुठारकी तरह जिह्वाको हिलाता है, बिजलीकी तरह काष्ठको जलाते भगाता है॥८॥

—भरद्वाज, ६।३

हे सहस-पुत्र[2] होता अग्नि, जैसे मनुष्य के यज्ञमें हवि द्वारा तुमने देवों का यजन किया, उसी प्रकार चारों ओर आज हमारे यज्ञमें देवोंको साथ ले आओ और यजन करो॥१॥

—भरद्वाज, ६।४

१३. तुम अभिष्यात्मा प्रसन्न तरुण सहस-पुत्र (अग्नि) को स्तुतियों द्वारा हम स्वत करते हैं, जो कि प्राज अतिशय बढ़ता बहुत श्रेष्ठ धनोंको प्रदान करता है॥१॥

—भरद्वाज, ६।५

---

[1] संग्राम [2] सहिस (साहस) के पुत्र।

१४ स जायमान परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत।
व्यन्तरिक्षमभिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुषतस्थुर्ऋग्मियं।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानर मातरिश्वा परावत ॥४॥

—६।८

१५ त्वा दूतमग्ने अमृत युगे युगे हव्यवाह दधिरे पायुमीड्य।
देवासश्च मर्तासश्च जागृवि विभु विश्पतिं नमसा निषेदिरे ॥८॥

—६।१५

१६ वैश्वानर मनसाग्नि निचाय्या हविष्मन्तो अनुषत्य स्वर्विद।
सुदानु देव रथिर वसूयवो गीर्भीरण्व कुशिकासो हवामहे ॥१॥

अश्वो न क्रन्दन् जनिभि समिध्यते वैश्वानर कुशिकेभिर्युगे युगे।
स नो अग्नि सुवीर्य स्वश्व्य दधातु रत्नममृतेषु जागृवि ॥३॥

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृत मे चक्षुरमृत म आसन्।
अर्कस्त्रिधातूरजसो विमानोऽजस्रो घर्मो हविरस्मि नाम ॥७॥

—३।२६

१७ आ वो राजानमध्वरस्य रुद्र होतार सत्ययज रोदस्यो।
अग्नि पुरास्तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्व ॥१॥

अय योनिश्चकृमा य वयन्ते जायेव पत्य उशती सुवासा ॥
अर्वाचीन परिवीतो निषीदेमा उ ते स्वपाक प्रतीची ॥२॥

—४।३

१८. नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
वृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि षद्यते ॥५॥
—१०।१४६

आजनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवला।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशंसिष ॥६॥
—१०।१४६

। महे रणाय चक्षसे ॥१॥
। उशतीरिव मातर ॥२॥
जनयथा च

१८. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनमें लिये पृथिवीके उत्तम अग्र-स्थान में तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम वृषद्वती (घग्घर) आपया (सरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ॥४। (१।९)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जंगल) नहीं मारती। (वहां) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पड़ा (रहा) जा सकता है॥५॥ आजनके गंधवाली गंधी (सुरभि) बिना किसानोंके बहुअन्नवाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मैं बहुत स्तुति करता हूं॥६॥ (४।१६।६)

—देवमुनि इन्द्रमद-पुत्र, १०।१४६

२. अश्विद्वय देखो १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमें शक्ति (रस) महान रमणीयता देनेके लिये दे॥१॥

जो तुम्हारा कल्याणतम रस है। उसे स्नेहवती माताकी तरह हमें प्रदान करो॥२॥

हे आपो, जिसके स्थान में (हमें) भेजती हो, हम प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारे पास आते हैं। हमें (प्रजा) जनन करनेको॥३॥

दिव्य आप कल्याण और आनन्द के साथ हमारे पीनेके लिये होवें। (तुम) हमारे स्वास्थ्यके लिये शक्ति होओ॥४॥

—सिन्धुद्वीप अम्बरीष-पुत्र १०।९

१८ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
दृषद्वत्या मानुष आपयायां सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥
—३।२३

२. अरण्य—

१९ न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति।
स्वादो फलस्य जग्ध्वाय यथाकाम नि पद्यते ॥५॥
—१०।१४६

आजनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलां।
प्राह मृगाणा मातरमरण्यानिमशंसिष ॥६॥
—१०।१४६

३. आप—

२०. आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे ॥१॥
यो व शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न। उशतीरिव मातर ॥२॥
तस्मा अरगमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ। आपो जनयथा च न ॥३॥
श नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शयोरभि स्रवन्तु न ॥४॥
—१०।९

१८. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनमें लिये पृथिवीके उत्तम अग्र-स्थान में तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम वृषद्वती (घग्घर) आपया (मरकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ॥४। (१।९)

—देवश्रवा-देववात भारत, ३।२३।

२. अरण्य—

१९. दूसरा यदि न आक्रमण करे, तो अरण्यानी (जंगल) नहीं मारती। (वहां) स्वादु फल खाकर यथेच्छ पड़ा (रहा) जा सकता है॥५॥ आजनके गंधवाली सोंधी (सुरभि) बिना किसानोंके बहुअन्नवाली, मृगोंकी माता अरण्यानीकी मैं बहुत स्तुति करता हूं॥६॥ (४।१६।६)

—देवमुनि इन्द्रमद-पुत्र, १०।१४६

२. अश्विद्वय देखो १७।५

३. आप (जल) देवी—

२०. हे आप, तुम सुखमय हो। वह (आप) हमें शक्ति (रस) महान् रमणीयता देखने के लिये दे॥१॥

जो तुम्हारा कल्याणतम रस है। उसे स्नेहवती माताओं जैसा हमें प्रदान करो॥२॥

हे आपो, जिनके स्थान में (हमें) भेजती हो, हम प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारे पास आते हैं। हमें (प्रजा) जनने वाली बनाओ॥३॥

दिव्य आप रक्षण और आनन्द के साथ हमारे पीनेके लिये होवें। (तुम) हमारे स्वास्थ्यके लिये प्रेरित होओ॥४॥

—सिन्धुद्वीप अम्बरीष-पुत्र १०।९,

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि.।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥
—३।४

५. इन्द्र—

२२. स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥
—६।१७

२३ त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥११॥
रूपरूप प्रनिरूपो वभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥
—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुभ्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका.।
पिवा त्वस्य सुपुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियान. ॥१॥
—७।२९

२५ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिर.।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ ॥४॥
—७।३२

४. इळा, भारती, सरस्वती—

२१. भारतीयोंके साथ भारती, देवोंके साथ इळा (दिव्य अन्न), मनुष्यों के साथ अग्नि, सरस्वती-तीरवाले (देवों) के साथ सरस्वती— तीनों देवियां आकर इस कुश (-आसन) पर बैठें ॥८।

—विश्वामित्र, ३।४

५. इन्द्र—

२२. वह सोम को पान करे, जो घातक-ऋजीषी (विजयी), जो शत्रु-रक्षक है, जो शिप्र (मुकुट) धारी, जो मतियों का वृषभ (स्वामी) है, जो पर्वत-ध्वनक, वज्रधर, जो अश्वारोही है, वह इन्द्र अद्भुत बलोंको बेधे ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१७

२३. त्राता इन्द्र, सहायक इन्द्र, हवन-हवनमें अच्छी तरह पुकारने लायक शूर इन्द्र, शक्र (शक्तिशाली) पुरुहूत (बहुतों द्वारा पुकारे गये) इन्द्रको मैं पुकारता हूं। वह मघवा (इन्द्र) हमारे लिये स्वस्ति प्रदान करे ॥११॥

जो रूप-रूपमें प्रतिरूप हुआ, वह है उनके रूपको प्रकट करनेके लिये। मायाओंसे इन्द्र बहुत रूपोंवाला (बना) दौड़ता है, उसके दस सौ घोड़े जुते हुये हैं ॥१८॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

२४. हे इन्द्र, तुम्हारे लिये यह सोम छाना गया है, हे घोड़ेवाले, उसके स्थान पर जल्दी आओ। इस अच्छे प्रकार छाने गए सोमको पियो। हे मघवन्, आकर मद (धन) दो ॥१॥

—वसिष्ठ, ७।२९

२५ यह दध्याशिर (दधि-मिश्रित) सोम इन्द्रके लिये छाने गये हैं। हे वज्रहस्त, उनके पीने, मस्त होनेके लिये दोनों घोड़ोंके साथ (हमारे) घर आओ ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।३२

४. इळा, भारती, सरस्वती—

१. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि.।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥
—३।४

५. इन्द्र—

२. स इं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो य शिप्रवान्वृषभो यो मतीना।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठा स इन्द्र चित्रा अभितृन्धि वाजान् ॥२॥
—६।१७

३. त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्र हवे हवे सुहव शूरमिन्द्र।
ह्वयामि शक्र पुरुहूतमिन्द्र स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्र ॥११॥
रूपरूप प्रनिरूपो वभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।
इन्द्रो मायाभि पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरय शता दश ॥१८॥
—६।४७

२४. अय सोम इन्द्र तुभ्य सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोका।
पिवा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियान ॥१॥
—७।२९

२५ इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिर.।
ता आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्या याह्योक आ ॥४॥
—७।३२

२६ इन्द्र जहि पुमास यातुधानमुत स्त्रिय मायया शाशदाना।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्तू सूर्यमुच्चरत ॥२४॥
—७।१०४

२७. गवाशिर मन्थिनमिन्द्र शुक्र पिबा सोम ररिमा ते मदाय।
ब्रह्मकृता मारुतेना गणेन सजोषा रुद्रैस्तृपदा वृषस्व ॥२॥

ये ते शुष्म ये तविषीमवर्धन्नर्चन्तु इन्द्र मरुतस्त ओज।
माध्यन्दिने सवने वज्रहस्त पिबा रुद्रेभि सगण सुशिप्र. ॥३॥
—३।३२

२८. आमन्द्रैरिन्द्र हरिभिर्याहि मयूररोमभिः।
मा त्वा केचिन्नियमन्वि न पा शिनोति धन्वेवता इहि ॥१॥
—३।४५

०

२९ सूर उपाके तन्वं दधानो वियत्ते चेत्यमृतस्य वर्प।
मृगो न हस्ती तविषीमुपाण सिंहो न भीम आयुधानि विभ्रत् ॥१४॥

तिग्मा यदन्तरशनि पतति कस्मिंचिच्छूरमुहुके जनाना।
घोरा यदर्य समृतिर्भवात्यधस्मानस्तन्वो बोधि गोपा ॥१७॥

भुवोविता वामदेवस्य धीना भुव सखा वृको वाजसातौ।
त्वामनु प्रमतिमाजगन्मोरुशसो जरित्रे विश्वधस्या ॥१८॥
—४।१६

६ हे इन्द्र, पुरुष यातुधान (राक्षस) को और माया द्वारा हानि पहुँचाती स्त्री यातुधानको मारो। सूर (मारक या सूर्य) देव (राक्षस) बिना गर्दनके हो नष्ट होवें, वह उगते सूर्य को न देख पावे ॥२४॥

—वसिष्ठ, ७।१०४

७ हे इन्द्र मयें गवाशिर (गोरस-मिश्रित) शुक्र (श्वेत) सोमको पियो, तुम्हारे मद के लिये हम उसे देते हैं। (उसे) ब्रह्म (ऋचा)-कृत्, मरुतों, रुद्रोंके साथ तृप्ति होने तक पियो ॥२॥

हे इन्द्र, जिन्होंने तुम्हारे बलको, जिन्होंने तेजको बढाया, वे मरुत तुम्हारे ओजको पूजें। हे वज्रहस्त, सुशिप्र (सुमुकुट) रुद्रों-सहित, गणयुक्त माध्यदिन सवन (मध्यान्हके पान) में सोम पियो ॥३॥

—विश्वामित्र ३।३२

८. हे इन्द्र, मादक मयूर रोमवाले मस्त घोटोंके साथ आओ। पक्षी फसानेवाले की तरह कोई तुम्हें न रोकें। मरुभूमि की तरह उन्हें पार करके आओ ॥१॥

—विश्वामित्र, ३।४५

९. हे इन्द्र, सूर्यके पास बैठने जब तुम्हारा शरीर तुम्हारा अक्षर रूप विस्तृत होता है, तब मृगतृष्णीकी तरह तेजसे शत्रुओंको जलाते, भयंकर सिंह की तरह आयुधों को धारण कर भयंकर दीखते हो ॥१४॥

हे शूर इन्द्र, जब हमारे किसी जनोंके युद्ध बीच सीधा जमीं गिरे, हे स्वामी, जब घोर युद्ध होवे, तो तुम हमारे शरीरोंके रक्षक होना जानो ॥१७॥

वामदेवके विचारोंसे तुम रक्षक होना, तुम युद्ध में अकुटिल सखा होना। रक्षक तुम्हारे पास हम आते हैं। सदा तुम सौभाग्य लिये बहु-प्रशंसित सदा स्वैर स्थिर हो ॥१८॥

—वामदेव, ४।१६

३०. त्व महा इन्द्र तुभ्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

तव त्विषो जनिमन्रेजत द्यौरेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्यो ।
ऋघायन्त सुम्व पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥

—४।१७

३१ वृषा वृषन्वि चतुरश्रिमस्यन्नुग्रो बाहुभ्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुषमाण ऊर्णां यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै ।
दधानो वज्र बाह्वोरुशन्त द्याममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥

—४।२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यृजेंह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकन्नवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रयास ।
य सूर्य य उषस जजान य अपा नेता स जनास इन्द्र ॥७॥

३०. त्व महा इन्द्र तुभ्य ह क्षा अनुक्षत्र महना मन्यत द्यौ ।
त्व वृत्र शवसा जघन्वान्त्सृज. सिन्धुरहिना जग्रसानान् ॥१॥

तव त्विषो जनिमन्नेजत द्यौरेजद् भूमिर्भियसा स्वस्य मन्यो. ।
ऋघायन्त सुम्व पर्वतास आर्दन्धन्वानि सरयन्त आप ॥२॥

—४।१७

३१. वृपा वृपन्धि चतुरश्रिमस्यत्नुग्रो वाहुभ्या नृतम शचीवान् ।
श्रिये परुष्णीमुपमाण ऊर्णा यस्या पर्वाणि सख्याय विव्ये ॥२॥

यो देवो देवतमो जायमानो महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मै. ।
दधानो वज्र वाह्वोरुशन्त धाममेन रेजयत् प्रभूम ॥३॥

—४।२२

३२. अह मनुरभव सूर्यश्चाह कक्षीवा ऋषिरस्मि विप्र ।
अह कुत्समार्जुनेयन्यृजेऽह कविरुशना पश्यता मा ॥१॥

अह भूमिमददामार्यायाह वृष्टि दाशुषे मर्त्याय ।
अहमपो अनय वावशाना मम देवासो अनु केतमायन् ॥२॥

अह पुरो मन्दसानो व्यैर नव साकम्नवती शम्बरस्य ।
शततम वेश्य सर्वताता दिवोदासमतिथिग्व यदाव ॥३॥

—४।२६

३३. यस्याश्वास प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथास ।
य सूर्य य उपस जजान य अपां नेता स जनास इन्द्र. ॥७॥

जिसने पर्वतमें रहने शवरको चालीसवीं शरद (वर्ष) में जा घेरा। जिसने ओजायमान हो मोते दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—गृत्समद, २।१२

३४. हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुममे ही सारे धन प्राप्त किये, तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुमसे अश्व प्राप्त किये। देवों के भक्तों केलिये अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश दो। गौवो और अश्वो द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो। अपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतिया तुम्हारे पास जाती है। तुम्हारा पथ धन के लिये हमारे पास आये, तुम्हारी सुमतिमें हम शरण पावें ॥३॥

दुहनेकी इच्छासे धेनुको जैसे सुन्दर धारा, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिये मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति कहते है, इन्द्र हमारी सुमति (स्तुति) सुनने पास आये ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५ वज्रधारी इन्द्रके लिये गायें मीठा दूध (जाशिर) दुहती है। जब वह उन्हें पास पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, स्तव पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रो, पूजा करो, वृद्ध पुर की तरह पूजा करो ॥८॥

गर्गर (पटा-बाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये ब्रह्म (मन्त्र) उद्योग हुआ। गोधा (चर्मवाद्य) चारो ओर शब्द कर रहा है। पिंगा (तंतु-वाद्य) चारो ओर बज रही है ॥९॥

जिसे तुमारी तरह नये स्तवन का इन्द्र बैठा है। उसे विश्व-भारते लिये वसिष्ठ महिष मुगको स्तवन ॥१५॥

य. शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्त चत्वारिंश्या शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमान यो अहिं जघान दानु शयान स जनास इन्द्र: ॥११॥
—६।१२

अत्यासो न ये मरुतः स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिन पयोधा. ॥१६॥
—७।५६

३४ त्वे ह यत् पितरश्चित्र इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन्।
त्वे गाव सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्व वसु देवयते वनिष्ठ: ॥१॥

राजेव हि जनिभि क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कवि सन्।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायत शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥

इमा उ त्वा पस्पृधानासोत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुपस्थु:।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३॥

धेनु न त्वा सुयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठ.।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्र: सुमति गन्त्वच्छ ॥४॥
—७।१८

३५. इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत् सीमुपहूरे विदत् ॥६॥

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुर न धृष्ण्वर्चत ॥८॥

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिंगा परि च निष्कददिन्द्राय ब्रह्मणोद्यत ॥९॥

अर्भको न कुमारको'धि तिष्ठन्नव रथ।
स पक्षन्महिष मृगं पित्रे मात्रे विभुत्रतु ॥१५॥

जिसने पर्वतमें रहते शवरको चालीसवी शरद (वर्ष) में जा घेरा। जिसने ओजायमान हो मोने दानव अहिको मारा। हे लोगो, वह इन्द्र है ॥११॥

—गृत्समद, २।१२

३४ हे इन्द्र, जो कि हमारे स्तोता पितरोंने तुमसे ही सारे धन प्राप्त किये, तुमने सुन्दर दुहानेवाली गायें, तुमने अश्व प्राप्त किये। देवों के भक्तों केलिये अत्यन्त दाता तुम धन जीतते हो ॥१॥

स्त्रियोंके साथ जैसे राजा, वैसे तुम रहते हो। विद्वान् कवि हमें यश दो। गौवों और अश्वों द्वारा हे मघवन्, (हमारी) वाणी को मानो। अपने (भक्त) हमें धन प्रदान करो ॥२॥

हे इन्द्र, स्पर्धा करती हर्षप्रद, देवोंकी कामना करती ये हमारी स्तुतियां तुम्हारे पास जाती है। तुम्हारा पथ धन के लिये हमारे पास आये, तुम्हारी सुमतिमें हम शरण पावें ॥३॥

दुहनेकी इच्छासे धेनुको जैसे सुन्दर घास, वैसे ही वसिष्ठने तुम्हारे लिये मन्त्र रचे। सभी मुझसे तुमको ही गोपति कहते हैं, इन्द्र हमारी सुमति (स्तुति) सुनने पास आये ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१८

३५. वज्रधारी इन्द्रके लिये गावें मीठा इक्षु (आखिर) कुलाती है। जब वह उन्हें पास पाये ॥६॥

हे प्रियमेधो, पूजा करो, खूब पूजा करो, पूजा करो, हे पुत्रो, पूजा करो, वृद्ध पुर की तरह पूजा करो ॥८॥

गर्गर (घण्टा-बाजा) आवाज दे रहा है। इन्द्रके लिये यज्ञ (स्तव) उद्योग हुआ। गोधा (धर्मबाण) चारों ओर शब्द कर रहा है। पिंगा (तनु-त्राण) चारों ओर बज रही है ॥९॥

[illegible] नये स्थान पर इन्द्र बैठा है। उसने [illegible]

इद सु मे जरितरा चिकिद्धि प्रतीप शाप नद्यो वहन्ति।
लोपाश सिंह प्रत्यचमत्सा क्रोष्टा वराह निरतक्त कक्षात् ॥४॥

शश क्षुर प्रत्यच जगाराद्रि लोगेन व्यभेदमारात्।
वृहन्त चिदृहते रन्धयानि वयद्वत्सो वृषभ शूशुवान. ॥९॥

सुपर्ण इत्था नखमासिषायावरुद्ध परिपद न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिपस्तर्प्यावान् गोधा तस्मा अयथ कर्पदेतत् ॥१०॥
—१०।२

४०. सो अस्य वज्रो हरितो य आयसो हरिर्निकामो हरिरा गभस्त्यो।
द्युम्नी सुशिप्रो हरिमन्युसायक इन्द्रे नि रूपा हरिता मिमिक्षिरे ॥३॥

हरिश्माशरुर्हरिकेश आयसस्तुरस्पेये यो हरिपा अवर्धत।
अर्वद्भिर्यो हरिभिर्वाजिनीवसुरति विश्वा दुरिता पारिपद्धरी ॥८॥
—१०।९६

६. ऋभु—

४१. आगन्नृभूणामिह रत्नधेयमभूत् सोमस्य सुपुतस्य पीति।
सुकृत्यया यत् स्वपस्यया च एक विचक्र चमसं चतुर्धा ॥२॥

कि मयस्विच्चमस एप आस य काव्येन चतुरो विचक्र।
अथा सुनुध्व सवन मदाय पात ऋभवो मधन सोम्यस्य ॥४॥

हे स्तोता, मेरी यह (पहेली) बतलाओ —(इन्द्रकी इच्छा होनेपर) नदिया (अपनी) बाढ उलटी बहायें, लोमडी आते सिंहको ले जाये, स्यार वराहको वनसे भगा दे ॥४॥

इन्द्रकी इच्छा होनेपर नरगोश तीक्ष्ण विरोधीको निगल जाये, एक डलेने दूरके पत्थर (पहाड) को मै तोड दू। छोटेके बलमें मैं बडेको कर सकू, बछडा भी फूलकर वृषभ (साढ) को खा जाये ॥९॥

यहा सुपर्ण (गरुड) नागको छोड दे, जैसे कि पकडा सिंह पिंजरेको। प्यासा महिष पकडा जाये, चमडेकी रस्सी उसके उलझे पैरोंको पकडे रहे ॥१०॥

—यनुक, १०।२८

४०. सो जो बहुत आकर्षक, सुनहला आयस तेजोमय वज्र उसके हाथोंमें है। वह द्युतिमान्, सुशिप्र,[1] सहारक, क्रोधस्वी बाणवाले इन्द्रके लिये पीले रूपवाले सोम (मिश्रित) करते हैं ॥३॥

जो सुनहले मूछ-दाढी, सुनहले केशवाला, पत्थरसे दृढ, जो अश्व-स्वामी बलता है। अश्वधनिक, घोडोंके स्वामी अपने द्रुतगामी घोडोंको सारे कष्टोंसे पार कराता है ॥८॥

—वर आत्रेय, १०।९६

६. ऋभु—

४१. यहा (तृतीय सवनमें) ऋभुओं का रत्न-दान है। अच्छी तरह छाने सोमका पान हुआ। सुन्दर कर्म द्वारा और सुन्दर कौशल द्वारा जब एक चमसको चार किया ॥२॥

किस चीजका यह चमस था, जिसे तुमने काव्य (कौशल) द्वारा चार किया? हे ऋभुओ, मदके लिये फिर सोम छानो, हे ऋभुओ, तुम मधुर सोमको पियो ॥४॥

---

[1] सुशिप्र—शिरस्त्राण (शिरिंप)

यत्तृतीय सवन रत्नधेयमकृणुष्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तदृभव परिषिक्त व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥
—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥१॥
—४।३६

७. क (प्रजापति)—

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवा. ॥
यस्य छाया'मृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहुः ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृह्ळा येन स्व. स्तभित येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥
—१०।१२१

हे सुहस्त ऋभुओ, तृतीय सवन (सायकालीन सोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल से अजित रत्न दान करते हो, सो मस्त इन्द्रियोंसे परिपिक्त (सोम) को पियो ॥९॥

—वामदेव ४।३५

४२ हे ऋभुओ, तुम्हारा काम स्तुत्य है। लोगोंका अविद्वत्वको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके आकाशमें चारों ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्वका बड़ा व्यापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवीका पोषण करते हो ॥१॥

—वामदेव, ४।३६

७ क (देवता)—

४३ पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न भूतोंका एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और इन द्यौको धारण किया। उस क (देवता) के लिये हम हवि से (पूजा) करते हैं॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करते हैं। देवगण जिसकी प्रशंसा करते हैं। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ॥२॥

जो सांस लेनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्का एकमात्र राजा अपने हुआ। जो इस दो पाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है, उस क (देवता)० ॥३॥

जिसकी महिमा से यह हिमवान्, पृथिवी सहित समुद्र जिसका बतलाते हैं, जिसकी ये दिशायें हैं, जिसकी (यह) बाहु है, उस क (देवता)० ॥४॥

जिसके द्वारा द्यौ उग्र है, और पृथिवी दृढ़ है। जिसने स्वर्गको, जिसने नाक को थामा है। जिसने अन्तरिक्षमें लोकों को नापा, उस क (देवता)० ॥५॥

—हिरण्यगर्भ प्राजापत्य-सूक्त, १०।१२१

यत्तृतीय सवन रत्नधेयमकृणुध्व स्वपस्या सुहस्ता ।
तदृभव परिपिक्तं व एतत् स मदेभिरिन्द्रियेभि पिवध्व ॥९॥
—४।३५

४२. अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्र परिवर्तते रज ।
महत्तद्वो देवस्य प्रवाचन द्यामृभव पृथिवी यच्च पुप्यथ ॥१॥
—४।३६

७. क (प्रजापति)—

४३ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जात पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवी द्यामुतेमा कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥१॥

य आत्मदा वलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिष यस्य देवाः ॥
यस्य छाया'मृत यस्य मृत्यु कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२॥

य प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो वभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥३॥

यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्र रसया सहाहु ।
यस्येमा प्रदिशो यस्य वाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृह्ळा येन स्व. स्तभित येन नाक. ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥५॥

प्रजापते न त्वदेतान्यान्यो विश्वा जातानि परिता वभूव ।
यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वय स्याम पतयो रयीणा ॥१०॥
—१०।१२१

हे सुहस्त ऋभुओ, तृतीय सवन (सायंकालीन सोमपान) में जो तुम सुन्दर कौशल से अर्जित रत्न दान करते हो, सो मस्त इन्द्रियोंसे परिपिक्त (सोम) को पियो॥९॥

—वामदेव ४।३५

४२. हे ऋभुओ, तुम्हारा काम स्तुत्य है। लोगोंका अविद्वेषको दिया त्रिचक्र रथ, बिना अश्वके, बिना लगामके आकाशमें चारों ओर घूमता है। हे ऋभुओ, वह तुम्हारे दिव्यत्वका बड़ा स्थापन है, जो कि तुम द्यौ और पृथिवीका पोषण करते हो॥१॥

—वामदेव, ४।३६

७. क (देवता)—

४३. पहले हिरण्यगर्भ (सुनहले गर्भवाला) मौजूद था। (वह) उत्पन्न भूतोंका एकमात्र पति था। उसने पृथिवी और द्यु लोकको धारण किया। उस क (देवता) के लिये हम हवि से (पूजा) करते हैं॥१॥

जो आत्मदायक, बलदायक है, जिसकी सभी उपासना करते हैं। देवगण जिसकी प्रशंसा करते हैं। जिसकी छाया अमृत है, जिसकी (छाया-हीनता) मृत्यु, उस क (देवता) ॥२॥

जो सांस लेनेवाले, पलक मारनेवाले जगत्का एकमात्र राजा बना हुआ। जो इस दो पाये-चौपाये प्राणियोंका स्वामी है, उस क (देवता)० ॥३॥

जिसकी महिमा से यह हिमवान्, पृथिवी सहित समुद्र जिसका बताया है, जिसकी ये दिशायें हैं, जिसकी (यह) बाहु है, उस क (देवता)० ॥४॥

जिसके द्वारा द्यौ उग्र है, और पृथिवी दृढ़ है। जिसने स्वर्गको, जिसने नाक को थामा है। जिसने अन्तरिक्षमें लोकों को नापा, उस क (देवता)० ॥५॥

११. पूषन्

४७. वयमु त्वा पथस्पते रथ न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥
अदित्सन्त चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मन ॥३॥
—६।५३

४८ पूषन्विदुषा नय यो अजसानुसासित। य एवेदमिति ब्रवत् ॥१॥
माकिर्नेशन् माकी रिषन् माकी सशारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि।७।
परि पूषा परस्ताद्धस्त दधातु दक्षिण। पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥
—६।५४

४९. रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। राय सखायमीमहे ॥२॥
—६।५५

५०. य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणं। न तेन देव आदिशे ॥१॥

उत घा स रथीतम सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

उताद परुषे गवि सूरश्चक्र हिरण्यय । न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥
—६।५६

५१ सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुत। करम्भमन्य इच्छति ॥५
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता।
ताभ्या वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥
—६।७

११. पूषन्—

४७. हे मार्गोंके पति पूषन्, अन्न लाभ के लिये हमने तुम्हें रथकी तरह जोत दिया ॥१॥
हे पूषन्, अ-दाता को दानके लिये प्रेरित करो, पणिके मन को कोमल करो ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५३

४८ हे पूषन्, हमें तुम ऐसे विद्वान् के पास ले चलो, जो हमारा ठीक अनुशासन करे, जो (हमसे) "यही है" कहे ॥१॥
(हमारे गौ-अश्व) नष्ट न हों, उन्हें कोई न मारे, कूपें-गढ़ेमें न गिरें, तुम (उन्हें लिये) अरिष्टों (मंगलों) के साथ आओ ॥७॥
पूषन् दूरसे दाहिने हाथको पसारे, हमारा खोया पशु फिर आवे ॥१०॥

—भरद्वाज, ६।५४

४९ (जो) महानतम रथी कपर्द(जूटा)-धारी महान् वैभवका स्वामी है, (उस) पूषन् सखासे हम धन मांगते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।५५

५० जो इस पूषन्को "करम्भ (सत्तू) भक्षी" कह स्तुति करता है, उसे (दूसरे) देवताकी स्तुति नहीं करनी पड़ती॥ १॥
(वह) महानतम रथी, सत्पति है। इन्द्र अपने सखा (पूषन्) के साथ मिलकर शत्रुओंको मारता है ॥२॥
महानतम रथी पूषा सूर्यके रथके नुनहले चक्रोंको इस मेघ में चलाता है।

—भरद्वाज, ६।५६

५१ (हे इन्द्र-पूषन्, तुममेंसे) एक (इन्द्र) दो वनुओंमें छाने सोमको पीने जाता है, दूसरा पूषन् करम्भ (सत्तू) खाता है ॥२॥
एक (पूषन्) के खाद्य भाग है, दूसरे (इन्द्र) को ले जानेवाले दो घोड़े। इनके द्वारा शत्रुओंका मारते हैं ॥३॥

—भरद्वाज, ६।५७

५२. अजाश्व पशुपा वाजपास्त्यो धिय जिन्वो भुवने विश्वे अर्पित ।
अष्टा पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् सचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२॥

यास्ते पूषन्नावो अन्त समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्या सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमान ॥३॥

पूषा सुवन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चा ।
य देवासो अददु सूर्यायै कामेन कृत तवस स्वच ॥४॥

—६।५८

१२. प्रजापति—

५३. नासदासीन्नो सदासीत्तदानी नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।
किमावरीव कुह कस्य शर्मन्नम्भ किमासीद् गहन गभीर ॥१॥

न मृत्युरासीदमृत न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेत ।
आनीदवात स्वधया तदेक तस्माद्धान्यद्ध पर किंचनास ॥२॥

तम आसीत्तमसा गूह्ळमग्रे प्रकेत सलिल सर्वमा इद ।
तुच्छ्येनाभ्वपिहित यदासीत्तपसस्तन्महिना जायतैक ॥३॥

कामस्तदग्रे समवर्ततधिमनसो रेत प्रथम यदासीत् ।
सतो वन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषामध स्विदासीदुपरि स्विदासीत् ।
रेतोधा आसन् महिमान आसन्त्स्वधा अवस्तात् प्रयति परस्तात् ॥५॥

५२ जो अजवाहन, पशुपालक, शक्तियुक्त भवनवाला, स्तुति-प्रेरक, सारे भुवन में व्याप्त है। वह पूषन् देव सारे भुवनको प्रकाशित करते हाथमें तीक्ष्ण आग धारे जाता है।२॥

हे पूषन्, समुद्र के मध्यमें अन्तरिक्षमें जो तुम्हारी सोनेकी नौकायें चलती है, उनके साथ तुम सूर्यकी दूतता के लिये प्रेमपात्र, श्रेय (यश, धन) की इच्छा से जाते हो,॥३॥

पूषन् यो और पृथिवीका सु-बन्धु, अन्नपति, मघ (धन) वान्, दर्शनीय तेजवाला है। जिन सुगामी, शक्तिशाली प्रेमपरवशको देवोंने सर्वदा लिये प्रदान किया॥४॥

—भरद्वाज, ६।५८

१२. प्रजापति—

५३ उस समय न असत् था न सत् था, न रज (लोक) था, न जो व्योमसे परे है (वह था)। क्या आवरण था? किसका (किस) आश्रय था? जल क्या गहन-गम्भीर था॥१॥

उस समय न मृत्यु थी, न अमरता न रात-दिनका भेद था। बिना वायुका वह अपनी प्रकृति से साँस ले रहा था। इसके दूसरा कुछ भी नहीं था।२॥

तम था, पूर्वकालमें तम से ढका यह सब अज्ञात सलिल था। जब एकने सब ओरसे घेरा था, तपस्याकी महिमा द्वारा वह एक उत्पन्न हुआ॥३॥

सब पहले काम (कामना) सोनेमें था, जो कि मन में प्रथम बीज (तोर्ज) था। कवियोंने बुद्धि द्वारा हृदयमें विचार करके असत्में सत्को प्राप्त किया॥४॥

इनकी किरण तिरछी फैली थी या ऊपर थी। बीजशक्ति थे, महिमायें थी, यहाँ स्वधायें (स्वतन्त्र क्रियायें) थी, और प्रकृति, नीचे थी॥५॥

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टि'।
अर्वाग्देवा अस्य विसजर्नेनाथा को वेद यत आवभूव ॥६॥

इय विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
—१०।१२९

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशत देवकर्मेभिरायत ।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वया'प वयेत्यासते तते ॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्।
छन्द. किमासीत् प्रउग किमुक्थ यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या ॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषयः सप्त दैव्या ।
पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥
—१०।१३०

१३. मन्यु—

५५. यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे? कहा से पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई ॥६॥

यह सृष्टि जहासे आई (किसने) बनाया या (किसने) नही बनाया। जो इसका अध्यक्ष परम व्योममें है, सो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता ॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओंसे चारो ओर ताना, एक सौ देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है ॥१॥

जब सारे देवोने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या थी, निदान (सकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था ॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता सम्मिलित हुआ। अनुष्टुब्से सोम, उक्थोंमे तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीकी बृहतीने सहायता की ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी आश्रित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुब् हुआ। सारे देवताओको जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया ॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे सात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगामको वैसे धीरोने पूर्वजोंके पथको देखकर पकडा ।७॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

१३. मन्यु (क्रोध)—

५५ हे वज्र, बाण, मन्यु, जिसने तुम्हें पूजा, वह सर्व-विजयी ओजका पोषण करता है। साहसकारी बल-पुत्र बल (-रूप) तुम्हारे साथ

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत आजाता कुत इय विसृष्टि.।
अर्वाग्देवा अस्य विसजर्नेनाथा को वेद यत आवभूव ॥६॥

इय विसृष्टिर्यत आवभूव यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्ष परमे व्योमन्त्सो अग वेद यदि वा न वेद ॥७॥
—१०।१२९

५४ यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशत देवकर्मेभिरायत ।
इमे वयन्ति पितरो य आययु प्र वया'प वयेत्यासते तते ॥१॥

कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्
छन्द· किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स बभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थर्मदस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराण्मित्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुविह भागो अह्न ।
विश्वान् देवान् जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्या ॥५॥

सहस्तोमा सह छन्दस आवृत सहप्रमा ऋषय सप्त दैव्या·।
पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे रथ्यो न रश्मीन् ॥७॥
—१०।१३

१३. मन्यु—

५५ यस्ते मन्यो विधद्वज्रसायक सह ओज पुष्यति विश्वमानुषक्।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

ठीक कौन जानता है। कौन यहा उसको कहे? कहा से पैदा हुई, कहा से यह सृष्टि आई? देवलोक इसके सृजनके पीछे पैदा हुये। कौन जानता है, जहासे वह आई ॥६॥

यह सृष्टि जहासे आई (किसने) बनाया या (किसने) नही बनाया। जो इसका अध्यक्ष परम व्योममें है, सो हे दोस्त, जानता है अथवा नही जानता ॥७॥

—प्रजापति, १०।१२९

५४ जो यज्ञ तन्तुओंसे चारो ओर ताना, एक सौ देवकर्मों द्वारा लम्बा बना। उसे, जो यह पितर आये है, वह बुनते है। लम्बा बुनो, चौडा बुनो, यह कहते तने (वस्त्र) पर लगे है ॥१॥

जब सारे देवोने देव (प्रजापति) का यजन किया, तब यज्ञका नाप (प्रतिकृति) क्या थी, निदान (सकल्प) क्या था, घी क्या था, परिधि (पलाश आदिका माप) क्या था, छन्द क्या था, प्रउग और उक्थ (स्तोत्र) क्या था ॥३॥

अग्नि की जोडीदार गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता सम्मिलित हुआ। अनुष्टुप्से सोम, उक्थोंने तेजस्वी बृहस्पतिकी वाणीकी बृहतीने सहायता की ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणकी आश्रित हुई, दिनको इन्द्र का भाग यहा त्रिष्टुप् हुआ। सारे देवताओंको जगती व्याप्त हुई, इस प्रकार ऋषियो और मनुष्यो ने यज्ञ किया ॥५॥

स्तोम, छन्द, माप के साथ घिरे सात दिव्य ऋषि थे। जैसे सारथी लगामको वैसे धीरोने पूर्वजोंके पथको देखकर पकडा ।७॥

—यज्ञ प्रजापति-पुत्र, १०।१३०

१३. मन्यु (क्रोध)—

५५ हे वज्र, बाण, मन्यु, जिसने तुम्हें पूजा, वह सर्व-विजयी ओजका पोषण करता है। साहसकारी बल-युक्त बल (-रूप) तुम्हारे साथ मिलकर हम दास और आर्योंको पराजित करेंगे ॥१॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदा ।
मन्यु विश ईळते मानुषोर्या पाहि नो मन्यो तपसा सजोषा ॥२॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्व न ॥३॥
—१०।८३

५६ त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्व ।
तिग्मेषव आयुधा सशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपा ॥१॥

अग्निरिव मन्यो त्विषित सहस्व सेनानीर्न सहुरे हूत एधि ।
हत्वाय शत्रून् विभजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व ॥२॥
—१०।८४

१४. मित्र—

५७. मित्रो जनान् यातयति ब्रुवाणो मित्रो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
मित्र कृष्टीरनिमिषाभिचष्टे मित्राय हव्य घृतवज्जुहोत ॥१॥

प्र स मित्र मर्तो अस्तु प्रयस्वान् यस्त आदित्य शिक्षति व्रतेन ।
न हन्यते न जीयते त्वोतो नैनमहो अश्नोत्यन्तितो न दूरात् ॥२॥

महा आदित्यो नमसोपसद्यो यात यज्जनो गृणते सुशेव ।
तस्मा एतत् पन्यतमाय जुष्टमग्नौ मित्राय हविराजुहोत ॥५॥

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता, वरुण, अग्नि है।' मानुषी प्रजायें मन्यु की स्तुति करती है। हे मन्यु, तपसे युक्त हो तुम हमारी रक्षा करो ॥२॥

हे बलवानोमें अत्यन्त बलवान् मन्यु, तपके साथ आओ, और शत्रुओको मारो। अमित्रहन्ता, वृत्र-हन्ता और दस्यु-हन्ता तुम हमारे लिये सारे धनोको लाओ ॥३॥

—मन्यु तपस्-सुक्त, १०।८३

५६ हे मन्यु, तुम पर आरूढ हो प्रहार करते, हर्षित होते, घर्षण करते मरुतवाले, तीक्ष्ण बाणवाले, आयुधोको तेज करते, अग्निरूप नेता आक्रमण करने के लिये जायें ॥१॥

हे मन्यु, अग्निकी तरह दीप्तिमान् हो, युद्धमें पुकारे जाकर, हमारे सेनानी हो, बढो। शत्रुओको मारकर धनको बाटो, ओजको बढाते दुश्मनो को दबाओ ॥

—मन्यु तपस्-सुक्त, १०।८४

मित्र—

मित्र बोलता हुआ लोकोको प्रेरित करता है, मित्रने पृथिवी और द्यौको धारण किया, मित्र आदमियोको अनिमिष दृष्टिसे देखता है, मित्रके लिए घृत-युक्त हवि हवन करो ॥१॥

हे मित्र आदित्य, जो व्रत (यज्ञ) द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह मनुष्य सर्व प्रथम होवे। तुम्हारे द्वारा निंदित आदमी न मारा जाता है, न जीता जाता है, न उसे नजदीक या दूरसे संकट पाता ॥२॥

महान् आदित्य नमस्कार से सेवनीय है। जन-प्रेरक पर स्तुतियां पर कृपालु है। उन अत्यन्त स्तुत्य मित्रके लिये इस प्रिय हविको आगमें हवन करो ॥३॥

पुरोहित

मित्राय पच येमिरे जना अभिष्टिशवसे। स देवान्विश्वान्बिर्भति ॥८॥
—३।५९

१५. यम—

देखो १५।७८, ७९

१६. रुद्र—

५८. इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिर क्षिप्रेषवे देवाय स्वधावे।
अषाह्ळाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु न ॥१॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरित परि सा वृणक्तु न ॥
सहस्रन्ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिष ॥३॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य।
आ नो भज बर्हिषि जीवशसे यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥४॥
—७।४६

५९. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मती।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्व पुष्ट ग्रामे अस्मिन्ननातुरं ॥१॥

त्वेष वय रुद्र यज्ञसाघ वकु कविमवसे नि वयामहे।
आरे अस्मद् दैव्य हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥४॥

दिवो वराहमरुष कपर्दिन त्वेष रूप नमसा नि हवयामहे।
हस्ते बिभ्रद् भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्य यसत् ॥५॥
—१।११४

बहुत बली मित्रके लियें पाचो जन नियम करते हैं, वह सारे देवो का पालन करता है ॥८॥

—विश्वामित्र,३।५९

यम—

देखो यही (१५,७८, ७९)

१५. रुद्र—

५८ हे भरतो, स्थिरधनुष, क्षिप्र-बाण, स्वधा-युक्त, अजेय, जेता, विधाता, तीक्ष्ण-आयुध रुद्र के लिये यह हमारी स्तुतिया है, इन्हें सुनो ॥१॥

हे रुद्र, द्यौके ऊपरसे छोडी जो तुम्हारी विजली पृथ्वीपर विचरण करती है, वह हमें छोड दे। हे स्वपिवात (कृपामय), तुम्हारी हजारो औषधिया है। हमारे पुत्र-पौत्रो को हानि न पहुंचाओ ॥३॥

हे रुद्र, हमें न मारो, न दूर करो। क्रुद्ध हुये तुम्हारे बन्धन में हम न होवें। हमारे प्राणि-हितकर यज्ञमें आओ। तुम हमेशा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।४६

५९ शक्तिशाली, जूडाधारी, वीर, पति रुद्रके लिये हम यह स्तुतिया लाते है, जिसमें कि इस ग्राम में दो-पायो-चौपायोका कल्याण हो, सभी पुष्ट और निरोग हो ॥१॥

हम दीप्तिमान्, यज्ञसाधक, वक्ष, कवि रुद्रको पुकारते हैं। वह (अपने) दिव्य क्रोधको हमसे दूर फेंके। हम उनकी सुमति (कृपा) की प्रार्थना करते है ॥४॥

हम द्यौ के लाल वराह वपर्दधारी दीप्तिमान् रूप (रुद्र) को पुकारते है। हाथमें श्रेष्ठ औषधियो को धारण किये वह हमें सुख, रक्षा, गृह प्रदान करें ॥५॥

—कुत्स आगिरस,१।११

१७. वरुण—

६० आचष्ट आसा पाथो नदीना वरुण उग्र सहस्रचक्षा ॥१०॥
राजा राष्ट्राणा पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्र विश्वायु ॥११॥
—७।३४

६१ ता नो रासन्नातिपाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु।
वरुत्रीभि सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो विदधातु राय ॥२२॥
—७।३४

६२ यदद्य सूर्य ब्रवो नागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्य।
वय देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्त ॥१॥
—७।६०

६३. धीरा त्वस्य महिना जनूपि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्व नुनुदे बृहन्त द्विता नक्षत्र पप्रथच्च भूम ॥१॥

पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षुपो एमि चिकितुषो विपृच्छ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरय तुम्य वरुणो हृणीते ॥३॥

किमाग आस वरुण ज्येष्ठ यत् स्तोतार जिघाससि सखाय।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोव त्वानेना नमसा तुर इया ॥४॥

अर दासो न मीळ्हुषे कराण्यह देवाय भूर्णये नागा।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्स राये कवितरो जुनाति ॥७॥
—७।८६

१६. वरुण—

६० सहस्र-नेत्र, उग्र, वरुण इन नदियों के पाय को जानता है ॥१०॥ वह राष्ट्रोंके राजा नदियोंका गौरव है, उसका क्षत्र (राज्य) विश्वव्यापी और अनुपम है ॥११॥

—वसिष्ठ, ७।३४

६१ वे दान-निपुण (देवपत्नियां) हमें धन दें। द्यौ-पृथिवी, वरुणानी हमारी प्रार्थना सुनें। सुदानी, सुशरण, त्वष्टा रक्षिका देवियों के साथ हमारे लिये धन प्रदान करें ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।३४

६२ हे सूर्य, जो कि उगते हुये (हमें) पाप-रहित करो, मित्र-वरुणको सत्य कहो। हे अदिति, हम देवोंके प्रिय हों। हे अर्यमा, स्तुति करते हम (तुम्हारे) प्रिय हों ॥१॥

—वसिष्ठ, ७।६०

६३. इस (वरुण) की महिमासे लोग धीमान् होवें, जिसने विशाल द्यौ-पृथिवीको थामा, जिसने दोनों उच्च नाफ (स्वर्ग) और वृहत् नक्षत्रको प्रेरित किया, और भूमिको विस्तृत किया ॥१॥

हे वरुण, देखनेकी इच्छासे मैं (अपने) उस पापके बारेमें तुमसे पूछता हूं। पूछते हुए मैं विद्वानोंके पास जाकर पूछता हूं। कवियोंने एक सी ही (बात) मुझे कही, "यह वरुण तुम पर क्रुद्ध है" ॥३॥

हे वरुण, मेरा कौन सा पाप है, जो कि तुम अपने ज्येष्ठ सखा स्तोताको मारना चाहते हो। हे दुर्धर्ष शक्तिशाली, उसे मुझे बतलाओ, (कि) मैं इस नमस्कारके साथ तुरन्त तुम्हारे पास आऊं ॥४॥

निष्पाप हो दासकी तरह सेवक वरुणदेवकी सेवा करूं। हम लक्ष-निधियोंके स्वामी (वरुण) देव चेताये, अत्यन्त कवि वरुण स्तुति-कर्ताको धन दिलवाये ॥७॥

—वसिष्ठ, ७।८६

६४. अयमु वा पुरुतमो रयीयन् छेश्वत्तममवसे जोहवीति।
सजोषाविन्द्रावरुणा मरुद्भिर्दिवा पृथिव्या शृणुत हव मे ॥२॥

आ नो मित्रावरुणा घृतैर्गव्यूतिमुक्षत। मध्वा रजांसि सुक्रतू ॥१६॥
—३।६२

६५. (देखो ६१)

१८. वायु—

६६. वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृता । तेषा पाहि श्रुधी हव ॥१॥
वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितार । सुतसोमा अहर्विद ॥२॥
—१।२

१९. वास्तोष्पति—

६७ अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन्।
सखा सुशेव एधि न ॥१॥

यदर्जुन सारमेय दत पिशग यच्छसे।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु वप्सतो नि षु स्वप ॥२॥
—७।५५

२०. विश्वकर्मा—

६८. य इमा विश्वा भुवनानि जुहवदृषिर्होता न्यसीदत् पिता न ।
स आशिषा द्रविणमिच्छमान प्रथमच्छदवरा आ विवेश ॥१॥

किं स्विदासीदधिष्ठानमारम्भण कतमत् स्वित् कथासीत्।
यतो भूमि जनयन् विश्वकर्मा वि द्यामौर्णोन्महिना विश्वचक्षा. ॥२॥

६४. हे इन्द्र-वरुण, धन-इच्छुक यह महान् (यजमान) तुम दोनोंको रक्षाके लिये सदा पुकारता है। मस्तो, द्यौ-पृथिवीके साथ मेरी पुकार (स्तुति) सुनो ॥२॥

सुकर्मा मित्र-वरुण, हमारे गोठोंको घृतसे पूर्ण करे, हमारे आवासोंको मधुसे (पूर्ण करे) ॥१६॥

—विश्वामित्र, ३।६२

१७. वायु—

६६ हे दर्शनीय वायु, यह सोम सजाये हैं, उन्हें पियो और पुकार सुनो ॥१॥ हे वायु, सोम छाने दिन-भर स्तोता उक्थों (गानों) द्वारा तुम्हारी खूब स्तुति करते हैं ॥२॥

—मधुच्छन्दा विश्वामित्र-पुत्र, १।२

१८. वास्तुपति (गृहोंका अधिष्ठाता देवता)—

६७. हे वास्तुपति, तुम रोगनाशक हो, सारे रूपोंको धारे हमारे सखा और सुखकारी बनो ॥१॥

हे श्वेत, पिंगल, सरमा-पुत्र, जब तुम दांत दिखलाते हो, उस समय (वह) ओष्ठके पास ऋष्टियों (छुरों) की तरह निकले शोभा देते हैं। तुम सो जाओ ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।५५

१९. विश्वकर्मा—

६८ जो इस सारे भुवनोंको हवन करता होता, ऋषि हमारा पिता (विश्वकर्मा) बैठा है। वह आशीर्वाद द्वारा धनकी इच्छा करते प्रथम भक्तोंमें प्रविष्ट हुआ ॥१॥

उस समय कौन सा अधिष्ठान था ? कौन सा आलम्ब और कैसे था, जिससे कि विश्वदर्शी विश्वकर्माने भूमिको उत्पन्न कर अपनी महिमासे द्यौको खोला ॥२॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्।
स बाहुभ्या धमति स पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एक ॥३॥

किं स्विद्वन क उ स वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी निष्टतक्षु ।
मनीषिणो मनसा पृच्छतेदुतद्यदध्यतिष्ठद् भुवनानि धारयन् ॥४॥
—१०।८१

२१. विष्णु—

६९. त्रिर्देव पृथिवीमेप एता विचक्रमे शतर्चस महित्वा।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेप ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३॥

विचक्रमे पृथिवीमेप एता क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षिति सुजनिमा चकार ॥४॥
—७।१००

२२. सरस्वती—

७०. प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पू ।
प्रवावधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्या ॥१॥

एका चेतत् सरस्वती नदीना शुचिर्यती गिरिभ्य आसमुद्रात्।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृत पयोदुदुहे नाहुषाय ॥२॥

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारा वृतस्य सुभगे व्याव ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूय पात स्वस्तिभि. सदा न ॥६॥

सब ओर चक्षु, सब ओर मुख, सब ओर बाहु, और सब ओर पैरवाला वह अकेला देव, द्यौ-भूमिको उत्पन्न करके दोनों बाहु रूपी पखोंसे धौंकता है ॥३॥

कौन सा वन और कौन सा वह वृक्ष था, जिससे (उसने) द्यौ-पृथिवी-को गढ़ा। हे मनीषियो, (अपने) मनसे यह पूछो, भुवनोंको धारण करते जिसपर वह खड़ा रहा ॥४॥

—विश्वकर्मा भुवन-पुत्र, १०।८१

२०. विष्णु—

६९. सो तेजोंसे युक्त इस (विष्णु देव) ने अपनी महिमासे पृथिवीका चक्रमण किया। विष्णु बलियोंमें अत्यन्त बलवान् होवें, इस स्थायीका नाम दीप्तिमान् हो ॥३॥

इस विष्णुने मनुको क्षेत्र देनेकी इच्छासे इस पृथिवीका चक्रमण किया। इसके स्तोता जन अक्षत होते हैं। (इसने) विस्तृत क्षितिको सुन्दर जनों-युक्त बनाया ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।१००

२१. सरस्वती—

७० आयसी (पत्थरवाली) पुरीकी तरह यह धारा-धारिणी सरस्वती जलके साथ बहती है। यह सिन्धु रथीकी तरह (दूसरी) सभी नदियोंको अपनी महिमासे बाधित करती जाती है ॥१॥

गिरियोंसे समुद्र तक जाती नदियोंमें शुचि यह सरस्वती अद्वितीय है। भुवनके भूरि-भूरि धनको चेताती मनुष्योंके लिये घृत और दूध दुहाती है ॥२॥

हे सरस्वती, सुभगे, यह वसिष्ठ तुम्हारे लिये हवके द्वारको खोलता है। हे सुभगे, बढ़ो और स्तुति करनेवालेको अन्न प्रदान करो, तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥६॥

—वसिष्ठ, ७।९५

—७।९५

७१. वृहदु गायिषे वचोसुर्या नदीना।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभि स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

उभे यत्ते महिमा शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोना ॥२॥

—७।९६

७२. आ भारती भारतीभि सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्नि ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेद सदन्तु ॥८॥

—३।४

७३ नित्वा दधे वर आपृथिव्या इळायास्पदे सुदिनत्वे अह्ना।
दृषद्वत्या मानुष आपयाया सरस्वत्यां रेवदग्ने दिदीहि ॥४॥

—३।२३

७४. इयमदाद्रभसमृणच्युत दिवोदास वध्र्यश्वाय दाशुषे।

या शश्वन्तमाचखादावस पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥
इय शुष्मेभिर्विसखा इवारुजत् सानु गिरीणा तविषेभिरूर्मिभि ॥

पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभि सरस्वतीमा विवासेम धीतिभि ॥२॥
उत न प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा। सरस्वती स्तोम्या भूत्॥१०॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मा प स्फरी पयसा मा न आ धक्।
जुषस्व न सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यारणानि गन्म ॥१४॥

—६।६१

७१ नदियोंमें शक्तिशालिनी सरस्वतीके लिये वृहद् वाणी (गीत) गाता है। वसिष्ठ, द्यौ-पृथिवी तक सुरचित स्तोमों (गानों) द्वारा सरस्वतीकी ही पूजा करो ॥१॥

हे शुभ्रे, तेरी महिमा है, जो कि पुरु लोग दोनों तटोंपर बसते हैं। सो तुम रक्षिका हमें बोध दो। मरुतोंकी सखी होकर धनवानोंके धनको भेजो ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।९६

७२ भारतीयोंके साथ भारती, देवोंके साथ इळा (अन्न), मनुष्योंके साथ अग्नि, सारस्वती (सरस्वती-तीरके देवों) के साथ सरस्वती—तीनों देवियां (हमारे) सामने इस कुशपर बैठें ॥८॥

—विश्वामित्र, ३।४

७३. हे अग्नि, दिनोंके सुदिनके लिये पृथिवीके उत्तम अन्न-स्थानमें मैं तुम्हें स्थापित करता हूं। तुम दृषद्वती (घग्घर) आपया (मरुकण्डा), सरस्वती पर आदमियोंके लिये धन-युक्त दीप्तिमान् होओ ॥४॥ (१।९)

—देवश्रवा-देववान भारत, ३।२३

७४ इस (सरस्वती) ने मुझ वध्र्यश्वको ऋणमोचक भयंकर दिवोदास (पुत्र) प्रदान किया। जिस (तू) ने दानहीन पणिको बराबर खाया, हे सरस्वती, तेरे वे दान बलिष्ठ हैं ॥१॥ (९।५)

यह सरस्वती भिन्न खोदनेवालोंकी तरह अपने बलों, वेगवती तरंगों द्वारा गिरियोंके पाद-भागको भग्न करती है। रक्षाके लिये नदीको ध्वस्त करनेवाली सरस्वतीको हम स्तुतियों और गीतों द्वारा बुलावें ॥२॥

और प्रियाओंमें प्रिया सात बहिनोंवाली सुप्रसवा सरस्वती हमारी स्तुति-योग्य हो ॥१०॥ (५।८)

हे सरस्वती, हमें धनके लिये ले जाओ, हमें न अपने जलसे वंचित करो, न हमें दूर करो। हमारी मित्रता और भक्ति स्वीकार करो। हम तुमसे दूर क्षेत्र अरण्यमें न जावें ॥१४॥ (५।९)

—भरद्वाज, ६।६१

२३. सविता—

७५. तत् सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात् ॥१०॥
—३।६२

७६. उदुष्य देव सविता हिरण्यया बाहू अयस्त सवनाय सुक्रतु ।
घृतेन पाणी अभिप्रण्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

अदब्धेभि सवित पायुभिष्ट्व शिवेभिरद्य परि पाहि नो गय ।
हिरण्यजिह्व सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशस ईशत ॥३॥

उदु ष्य देव सविता दमूना हिरण्यपाणि. प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वाम ॥४॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्य सावी ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाज स्याम ॥६॥
—६।७१

२४. सोम—

७७. स्वादुष्किलाय मधुमा उताय तीव्र किलाय रसवा उताय।
उतो न्वस्य पपिवासमिन्द्र न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

अय स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद।
पुरूणि यश्च्योला शम्बरस्य वि नवति नव च वेह्यो हन् ॥२॥

अय स यो वरिमाण पृथिव्या वर्ष्माण दिवो अकृणोदय स ।
अय पीयूष तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्ष ॥४॥
—६।४७

७५ सवितादेवके उस अतिश्रेष्ठ तेजको हम पावें, जो (सविता) हमारी बुद्धियोंको प्रेरित करे ॥१०॥

—विश्वामित्र, ३।६२

२२. सविता—

७६ वह सुकर्मा सवितादेव (जीवन) देनेके लिये अपनी सुनहली बाहोंको ऊपर उठाता है। महान् युवा, सुदक्ष सविता लोकोंकी रक्षाके लिये घृत (जल) से युक्त (अपने) हाथोंको चुपड़ता है ॥१॥

हे सविता, हिंसा-रहित कल्याणकारी रक्षाओं द्वारा आज हमारे गये (निवास) की चारों ओरसे रक्षा करो। तुम हिरण्यजिह्व हो। नवीन सुखके लिये रक्षा करो, हमारे ऊपर बुराई चाहनेवाला शासन न करे ॥३॥

और यशस्वी, गृह-स्वामी, लोहेके जबड़ेवाले, सुवर्णपाणि, वह सविता देव प्रदोषमें उठे, और वह मनोहर वचनवाला भक्त यजमानके लिये बहुत सा धन पठाये ॥४॥

हे सविता, आज हमें धन, कल धन, दिन-दिन धन प्रदान करो। हे देव, तुम बहुत धन, गृह के स्वामी हो। इस स्तुति द्वारा हम धनके भागी हों ॥६॥

—भरद्वाज, ६।७१

२३. सोम—

७७. यह सोम स्वादु है, और मधुर है, यह तीव्र भी, और रसवान् है। इसे पी लिये इन्द्रको युद्धमें कोई दबा नहीं सकता ॥१॥

यहां यह स्वादु है, अत्यन्त मदयक्ता है, जिसने इन्द्र वृत्र-युद्धमें मन्त्र हुआ। जिसने शत्रुके बहुतेरे (सैनिकों) को हराया, निन्नानवे पुरियों (देहियों) को नष्ट किया ॥२॥

यह वह है, जो पृथिवीकी वरिमा, है। (जिसने) द्यौको ज्वालासे बनाया, यह वह है। तीनों वर्तियोंमें यह पीयूष (अन्न) है। सोमने विस्तृत अन्तरिक्षको धारण किया है ॥४॥

—गर्ग भरद्वाज-पुत्र, ६।४७

§३. अन्य पूज्य

१ पितर—

७८. यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा न पूर्वे पितरः परेयुरेना जज्ञानाः पथ्या अनु स्वा ॥२॥

मातली कव्यैर्यमो अंगिरोभिर्बृहस्पतिर्ऋक्वभिर्वावृधान।
याश्च देवा वावृधुर्ये च देवान्त्स्वाहान्ये स्वधयान्ये मदन्ति ॥३॥

इम यम प्रस्तरमा हि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदानः।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषा मादयस्व ॥४॥

प्रेहि प्रेहि पथिभिः पूर्व्येभिर्यत्रा नः पूर्वे पितरः परेयुः।
उभा राजाना स्वधया मदन्ता यम पश्यासि वरुणं च देवं ॥७॥

यौ ते श्वानौ यम रक्षितारौ चतुरक्षौ पथिरक्षी नृचक्षसौ।
ताभ्यामेनं परि देहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि ॥११॥

उरूणसावसुतृपा उदुम्बलौ यमस्य दूतौ चरतो जनाँ अनु
तावस्मभ्यं दृशये सूर्याय पुनर्दातामसुमद्येह भद्रं ॥१२॥

मायय सोम सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यम ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरंकृतः ॥१३॥

यमाय मधुमत्तमं राज्ञे हव्यं जुहोतन।
इदं नमऋषिभ्यः पूर्वजेभ्यः पूर्वेभ्यः पथिकृद्भ्यः ॥१५॥

—१०।१४

उदीरतामवर उत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नो' वन्तु पितरो हवेषु ॥१॥

§३ अन्य (पितर आदि)

१. पितर—

७८ सबमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरागाह (हमसे) नहीं छीनी जा सकती। जहा हमारे पूर्वज पितर गये, वहा (जगमें) उत्पन्न (जन) अपने मार्गसे जायेंगे ॥२॥

कव्य (पितरोंकी हवि) के साथ मातली, अगिरोंके साथ यम, ऋक्वोंके साथ बृहस्पति बढे—जिन्हें देवोंने बढाया, और जिन्होंने देवोंको। कोई (देवता) स्वाहासे, कोई (पितर) स्वधासे प्रसन्न होते है ॥३॥

अगिरा पितरोंके साथ हे यम, इस प्रस्तरपर आकर बैठो। कवियो द्वारा प्रशस्त मत्र तुम्हें लायें। हे राजन्, इस हविसे तुम सुख होओ ॥४॥

(उन) पूर्ववाले पथोंसे (वहा) जाओ, जहा हमारे पूर्वज पितर गये, स्वधासे यम और वरुण दोनों राजाओं को आनन्दित देखोगे ॥७॥

हे यम, रक्षक, मार्गरक्षी मनुष्यों की देखभाल करनेवाले, चारआखों वाले जो तुम्हारे दोनों श्वान (कुत्ते) है, हे राजन्, इसे उनकी रक्षामें दो, इसे स्वस्ति और निरोग करो ॥११॥

विस्तृत नाकवाले, प्राणभोजी, काले, दोनों यम-दूत जनोंके पीछे-पीछे चलते है। वे सूर्यके दर्शनके लिये यहा हमें भद्र प्राण प्रदान करें ॥१२॥

यमके लिये सोम छानो, यमके लिये हवि हवन करो, अग्नि-दूतवाला अलकृत यज्ञ यमके पास जाता है ॥१३॥

राजा यमके लिये अत्यन्त मधुर हविका हवन करो। पूर्वज ऋषियोंके लिये, पूर्वके मार्गकर्त्ताओंके लिये यह नमस्कार है ॥१५॥

—यम वैवस्वत, १०।१४

७९. निचले, ऊपरले और बीचवाले सोमपायी पितर उठ खड़े हों। जो अकुटिल सुकृत (सत्कर्ता) पितर (परलोकमें) प्राणको प्राप्त हुए, वे पुकारनेपर हमारी रक्षा करें ॥१॥

इद पितृभ्यो नमो अस्त्वद्य ये पूर्वासो य उपरास ईयु ।
ये पार्थिवे रजस्या निषत्ता ये वा नून सुवृजनासु विक्षु ॥२॥

आसीनासो अरुणीनामुपस्थे रयि धत्त दाशुषे मर्त्याय ।
पुत्रेभ्य पितरस्तस्य वस्व प्रयच्छत त इहोर्ज दधात ॥७॥

ये न पूर्वे पितर सोम्यासो नूहिरे सोमपीथ वसिष्ठा. ।
तेभिर्यम सरराणो हवींष्युशन्नुशद्भि प्रतिकाममत्तु ॥८॥

ये अग्निदग्धा ये अनग्निदग्धा मध्ये दिव स्वधया मादयन्ते ।
तेभि स्वराळसुनीतिमेता यथावशं तन्व कल्पयस्व ॥१४॥

—१०।१५

§ ४. सकाम कर्म

८०. आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्यस्तरुत्र ।
वृहद्भिर्वाजै स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितर वि भाहि ॥११॥

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्व ।
पूर्वीरिषो वृहतीरारे अघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन् वसुता ते अश्या ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सत्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥

—६।१

आज यह पितरोंके लिये नमस्कार है, जो कि पहले या पीछे मरे, जो पार्थिव लोकोमें या जो वही प्रजाओंके बीचमें बैठे है ॥२॥

लाल (किरणो) के पास बैठे तुम भक्त पुरुषको धन प्रदान करो। हे पितरो, उसके पुत्रोको धन प्रदान करो, वे यहा शक्ति प्रदान करें ॥७॥

जो हमारे पूर्वके सोमपायी वसिष्ठ (श्रेष्ठ) पितर सोम-पानमें बुलाये गये। उनके साथ खुश हो यम भी रुचिसे हविको यथेच्छ भोजन करें ॥८॥

जो अग्निमें जले, जो अग्निमें न जले[1] (हमारे) पितर द्यौमें स्वधासे प्रसन्न है। उनको हे स्वराज् (स्वय प्रकाशित अग्नि), यथाशक्ति प्राणवाला शरीर प्रदान करो ॥१४॥

—शाख यम-सूक्त, १०।१५

§ ४ सकाम कर्म

८० हे अग्नि, अपनी प्रभा द्वारा तुमने द्यौ-पृथिवीको ढाक दिया, और (तुम) यशोंसे यशस्वी और विजयी हो। बहुत शक्ति-युक्त स्थायी धन प्रदान करते प्रकाशित होओ ॥११॥

हे वसु (धनी), हमें तुम मनुष्यो जैसा धन दो, हमारे पुत्र-पौत्रोंके लिए बहुत पशु दो। पाप-रहित दूर बहुत-सा पहलेका अन्न भट, सुन्दर यशवाले हमारे लिए होवें ॥१२॥

हे दीप्तिमान् राजा अग्नि, हम तुम्हारे पासमे बहुत सा धन पावें, हम तुम्हारी वसुता (धन) को प्राप्त करें। हे सर्वप्रिय, अग्नि, तुम राजामें बहुत धन निहित है ॥१३॥

—भरद्वाज, ६।१

---

[1] शवोंको दफनानेका भी आर्योंमें रिवाज था। केवल जलानेकी प्रथा पीछे अपनाई गई (१०।१५।१४)। दफनानेका उल्लेख (१०।१८।९, १०) हुआ है।

८८. अनुद्वा जहिता नयोव श्रोण च वृत्रहन्। न तत्ते सुम्नमष्टवे ॥१९॥
—४।३०

८९. पिशगभृष्टिमम्भृण पिशाचिमिन्द्र समृण[1]। सर्वं रक्षो निवर्हय ॥५॥
—१।१३३

९०. इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥
—१०।८५

§५. अर्चनाकी सामग्री

१. हवि—

९१ अग्ने जुषस्व नो हवि पुरोळाश जातवेद। प्रात सावे धियावसो ॥१॥
पुरोळा अग्ने पचतस्तुभ्य वाघा परिष्कृत। त जुषस्व यविष्ठ्य ॥२॥

अग्ने वीहि पुरोळाशमाहुत तिरो अहन्य। सहस सूनुरस्यध्वरे हित ।३।
माध्यन्दिने सवने जातवेद पुरोळाशमिह कवे जुषस्व।

अग्ने हवस्य तव भागधेय न प्रमिनन्ति विदथेषु धीरा ॥४॥
अग्ने तृतीये सवने हि कानिष पुरोळाश सहस सूनवाहुत।

अया देवेष्वध्वर विपन्यया धा रत्नवन्तममृतेषु जागृवि ॥५॥
अग्ने वृधान आहुति पुरोळाश जातवेद। जुषस्व तिरो अहन्य ॥६॥
—३।२८

---

[1] संभृण—निर्णयसागर प्रेस-पुस्तकें

८८. हे वृत्रहन्ता, तुमने परित्यक्त अन्धे और पंगु पर कृपा की। वह तुम्हारा (दिया) सुख पाया नहीं जा सकता ॥१९॥

—वामदेव, ४।३०

८९ हे इन्द्र, पीले दांतवाले भयंकर पिशाचको नष्ट करो, सब राक्षसोंको खतम करो ॥५॥

—परुच्छेप दिवोदास-पुत्र, १।१३३

९०. (हे पति-पत्नी), तुम दोनों यहीं रहो, वियुक्त मत होओ, सारी आयुको प्राप्त करो, पुत्र-नातियोंके साथ खेलते-आनन्द करते अपने घरमें रहो ॥४२॥

—सूर्या, १०।८५

§५ अर्चनकी सामग्री

१. हवि—

९१. हे स्तुतिके धनी, सर्वज्ञ अग्नि, हमारे प्रात सवनमें हवि (पुरोडाश)को स्वीकार करो ॥१॥

हे अग्नि, पकाया और परिष्कृत पुरोडाश तैयार है। हे तरणतम, उसे स्वीकारो ॥२॥

हे सहस्-पुत्र, तुम यज्ञमें स्थित हो। हे अग्नि, दिनके अन्तमें हवन किये गए पुरोडाशका आहार करो ॥३॥

हे कवि जातवेदा (सर्वज्ञ), माध्यन्दिन सवन (दोपहर पूजा) में यहां पुरोडाशको सेवन करो। हे बलिष्ट अग्नि, तुम्हारे भागको यज्ञमें धीर लोग नष्ट नहीं करते ॥४॥

हे सहस्-पुत्र अग्नि, तृतीय सवन (सायं पूजा) में हवन किये गये पुरोडाशको पसन्द करो। फिर अविनाशी, रत्न-युक्त जागरूक सोमको स्तुतिके साथ अमर देवोंके पास ले जाओ ॥५॥

हे वर्धमान जातवेद अग्नि, दिनके अन्तमें आहुति दिये पुरोडाशका सेवन करो ॥६॥

—विश्वामित्र, ३।२८

९२. इममिन्द्र गवाशिर यवाशिर च न पिव। आगत्या वृषपि सुत ॥७॥

तुभ्येदिन्द्र स्व ओक्ये सोम चोदामि पीतये। एप रारन्तु ते हृदि ॥८॥

त्वा सुतस्य पीतये प्रत्नमिन्द्र हवामहे। कुशिकासो अवस्यव ॥९९॥
—३।४२

९३ धानावन्त करभिणमपूपवन्तमुक्थिनं। इन्द्र प्रातर्जुपस्व न ॥१॥

पुरोळाश पचत्य जुपस्वेन्द्रा गुरस्व च। तुभ्य हव्यानि सिस्रते ॥२॥

पुरोळाश च नो घसो जोषयासे गिरश्च न। वधूयुरिव योषणा ॥३॥

पुरोळश सनश्रुत प्रात सावे जुपस्व न। इन्द्र क्रतुर्हि ते वृहन् ॥४॥

माध्यन्दिनस्य सवनस्य धाना पुरोळाशमिन्द्र कृष्वेह चारु।
प्र यत् स्तोता जरिता तूर्णयर्थ्यो वृषायमाण उप गीर्भिरीट्टे ॥५॥

तृतीये धाना सवने पुरुष्टुत पुरोळाशमाहुत मामहस्व न।
ऋभुमन्त वाजवन्त त्वा कवे प्रयस्वन्त. उपशिक्षम धीतिभि ॥६॥

पूषण्वते ते चकृमा करम्भ हरिवते हर्यश्वाय धाना।
अपूपमद्धि समणो मरुद्भि सोम पिव वृत्रहा शूर विद्वान् ॥७॥
—३।५२

९२ हे इन्द्र, हमारे इस यवाशिर (जौ-दूध मिले) गवाशिर (दूध-दही मिले) छने सोमको पराक्रमियोंके साथ आकर पियो ॥७॥

हे इन्द्र, अपने घरमे तुम्हारे पीनेके लिये सोमको मै प्रस्तुत करता हू, यह तुम्हारे हृदयको प्रसन्न करे ॥८॥

हे इन्द्र, सहायतेच्छुक हम कुशिक तुम पुरातनको छाना सोम पीनेके लिए पुकारते है ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।४२

९३ हे इन्द्र, प्रात काल हमारे धाना (भुने अन्न)-युक्त करम्भ (सत्तू)-युक्त, अपूप (रोटी)-युक्त उक्थ (गीत)-सहित सोमको स्वीकार करो ॥१॥

हे इन्द्र, पके पुरोडाशका सेवन करो, और खाओ। (यह) हव्य तुम्हारे लिये परोसी गई है ॥२॥

हमारे पुरोडाशको खाओ, और जैसे वधूको वर वैसे हमारे गीतोंको स्वीकार करो ॥३॥

हे सनातनसे प्रसिद्ध इन्द्र, प्रात सवनमें हमारे पुरोडाशका सेवन करो। तुम्हारी क्षमता महान् है ॥४॥

हे इन्द्र, यहा माध्यन्दिन सवन (दोपहरकी पूजा) के धाना (भुने दाना) और चार पुरोडाश तुम्हें रुचिकर हो। जब जल्दी करने गायक स्तोता वृषभोकी तरह वचनो द्वारा तुम्हारी स्तुति करते है ॥५॥

बहुस्तुत, तृतीय सवनमें हमारे धाना और आहुति दिये पुरोडाशको भक्षण करो। हे ऋषि, वाजवान् ऋभुवान् रयिके लिये तुम्हारी हम स्तुतियोंसे सेवा करते है ॥६॥

पूपन्-वान् हरिवान् (हरे अश्वोंवाले) तुम्हारे लिये हम करम्भ और धाना तैयार करते है। मन्त्रों-सहित गव्य-घृत अपूप (रोटी) खाओ। हे विद्वान् शूर वृषभना तुम, सोमको पियो ॥७॥

—विश्वामित्र ३।५२

९४. अपा सोममस्तमिन्द्र प्रयाहि कल्याणीर्जाया सुरण गृहे ते।
—३।५३

यत्रा रथस्य बृहतो विधान विमोचन वाजिना दक्षिणावत् ॥६॥

पुरोळाश च नो घसो जोषमासे गिरश्च न । वधूयूरिव योषणा॥१६॥

९५. सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे। शत सोमस्य खार्य. ॥१७॥
—४।३२

९६. त हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देव घृतश्चुता। अग्नि हव्याय वोह्ळवे ॥३॥
—५।१४

२. पशु-बलि—

९७. यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मति जनये चारुमग्नये ॥१४॥

अहाव्यग्ने हविरास्ये ते स्रुचीव घृत चम्वीव सोमः।
वाजसनि रयिमस्मे सुवीर प्रशस्त धेहि यशस बृहन्त ॥१५॥
—१०।९१

९८. असत् सु मे जरित साभिवेगो यत् सुन्वते यजमानाय शिक्ष।
अनाशीर्दामहमस्मि प्रहन्ता सत्यध्वृत वृजिनायन्तमाभु ॥१॥

यदीदह युधये सनयान्यदेवयून् तन्वा शूशुजानान्।
अमा ते तुम्र वृषभ पचानि तीव्र सुत पचदश निर्पिच ॥२॥
—१०।२७

९९. पीवान मेषमपचन्त वीरा न्युप्ता अक्षा अनु दीव आसन्।
द्वा धनु बृहतीमप्वन्त पवित्रवन्ता चरत पुनन्ता ॥१७॥
—१०।२७

९४ हे इन्द्र, जल्दी सोम पी चुके, (अब) जाओ। तुम्हारी पत्नी कल्याणी है, सुरमणीय तुम्हारा गृह है। जहा तुम्हारे वृहत् रथका अवस्थान है, घोडोका दक्षिणा-युक्त विमोचन है ॥६॥

—विश्वामित्र, ३।५३

९५ हम इन्द्रसे जुतनेवाले हजार घोड और सोमकी सात खारियां मागते है ॥१७॥

—वामदेव, ४।३२

९६. हव्य वहन करनेके लिये उस अग्निदेवकी मदा घृत चुवानेवाली श्रुवाओंसे पूजा करते है ॥३॥

—गृत्समद, ५।१४

२. पशुबलि—

९७ जिसमें अश्व, वृषभ (साड), उक्षा (तरुण बैल), वशा (बहिला गाय), भेड दिये और हवन किये गए, उस रसपायी, सोम छिडके विधाता अग्निके लिये मै हृदयसे सुन्दर स्तुति बनाता हू ॥१४॥ हे अग्नि, जैसे घृत श्रुवामें, जैसे सोम चमूमें, वैसे तुम्हारे मुखमें हवि हवन की गई। तुम हमारे लिये अन्न-युक्त धनको, सुवीर-सन्तान-युक्त बडे प्रशस्त यशको प्रदान करो ॥१५॥

—अरुण वीतहव्य-पुत्र, १०।९१

९८ हे स्तोता (भक्त), मेरा यह स्वभाव है कि सोम-यज्ञ करनेवाले यजमानको (फल) देता हू। बिना यजवाले, कुटिल, सत्यनाशक, आशीष न देनेवालेको (मै) नाश करता हू ॥१॥
शरीरसे फूले अदेव-भक्तोंके विरुद्ध जब मै लडनेके लिये अभियान करता हू, तो तुम्हारे लिये पन्द्रह गुने तक छाने गये तीव्र सोमको पिलाते मोटे वृषभ (साड) को पकाता हू ॥२॥

—वसुक्र इन्द्र-पुत्र, १०।२७

९९ वीरोने मोटे भेडको पकाया। दावपर पात्रे फेके गये। दो बडे मटके पास पानीके भीतर शुद्ध पवित्र हुए विचरण करते थे ॥१७॥

—वसुक्र, १०।२७

१००. ये वाजिन परिपश्यन्ति पक्व य ईमाहु सुरभिनिर्हरेति।
ये चार्वतो मांसभिक्षामुपासत उतो तेषामभिगूर्तिर्न इन्वतु ॥१२॥

यन्नीक्षण मास्पचन्या उखाया या पात्राणि यूष्ण आसेचनानि।
ऊष्मण्यापिधाना चरूणामका सूना परिभूषयन्त्यश्व ॥१३॥

—१।१६२

§ ६. मन्त्र-तन्त्र

१०१. इमा खनाम्योषधि वीरुध वलवत्तमा।
यया सपत्नी बाधते यया सविन्दते पतिं ॥१॥

उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति।
सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवल कुरु ॥२॥

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्ताराभ्य।
अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्य ॥३॥

नह्यस्या नाम गृभ्णाभि नो अस्मिन्नमते जने।
परामेव परावत सपत्नीं गमयामसि ॥४॥

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहि।
उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥५॥

—१०।१४५

§ ७. परलोक

१ यमलोक—

१०२ यमो नो गातु प्रथमो विवेद नैषा गव्यूतिरपभर्तवा उ।
यत्रा न पूर्वे पितर परेयुरेना जज्ञाना पथ्या अनु स्वा ॥२॥

—१०।१४

१०० जो पके घोडेको देखते, जो बोलते "सोमा है /उतारो" और जो घोडेके मास भोजनका सेवन करते हैं, उनका सकल्प हमारा सहायक हो ॥१२॥
जो कि मास पकानेकी उखा (हडिया) का देखना है, जो जूस डालनेके पात्र हैं। चरुओ (बर्तनो) को गरम रखनेवाले ढक्कन हैं, सूना (पशु काटनेके पीढे) और चिन्ह-करना (ये) अश्वको तैयार करते हैं ॥१३॥ (४।९)

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१६२

§ ६ मन्त्र-तन्त्र

१०१ इस अत्यन्त बलवान् लता औषधिको मैं खोदता हू, जिसके द्वारा (पत्नी) अपनी सपत्नीको बाधित करती है, जिसके द्वारा वह पतिको प्राप्त करती है। देवप्रिया, बलवती सुभगा हे उत्तानपर्णी, मेरी सौतको दूर भगा, पतिको केवल मेरी (ही) बना ॥२॥
हे उत्तरा (उत्तम), मैं उत्तरा (प्रधाना) होऊ, उत्तराओंसे भी मैं उत्तरा होऊ, और जो मेरी सौत है, वह अधरा (हठी) से भी अधरा होवे ॥३॥
उस सौत का नाम मैं नही लेती, उस जनमें मन नही रमता। मैं सौतको दूरसे दूर भेजती हू ॥४॥
हे औषधि, मैं पराक्रमी हू, तुम भी अत्यन्त पराक्रमी हो। दोनों बलवती हो मेरी सौतको दबायें ॥५॥

—इन्द्राणी, १०।१४५

§ ७ परलोक

१. यमलोक—

१०२ सबमें प्रथम यमने हमारे मार्गको जाना। यह चरागाह (हमसे) नही छीनी जा सकती। जहां हमारे पूर्वज गिरे गये, उत्पन्न (जन) वहा अपने मार्गसे जायेंगे ॥२॥ (५।७८।२

—यम वैवस्वत, १०।१४

२. स्वर्ग—

१०३. नाकस्य पृष्ठे अधितिष्ठति श्रितो य पृणाति सहदेवेषु गच्छति।
तस्मा आपो घृतमर्षन्ति सिन्धवस्तस्मा इयं दक्षिणा पिन्वते सदा।५।
—१।१२५

१०४. यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिन्ल्लोके स्वर्हितं।
तस्मिन् मा धेहि पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥७॥

यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते।
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधीन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥११॥
—९।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

§१ कृषि

१. हल, फाल—

१. पूर्वीरुषसः शरदश्च गूर्ता वृत्रं जघन्वाँ असृजद्वि सिन्धून्।
परिष्ठिता अतृणद्बद्बधानाः सीरा इन्द्रः स्रवितवे पृथिव्या ॥८॥
—४।१९

२ युनक्त सीरा वि युगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजं।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ॥३॥

२. स्वर्ग—

१०३ जो दान करता है, वह देवोंके पास जाता है, नाक (स्वर्ग) की पीठपर अधिष्ठान करता है। उसके लिये सिन्धु आप (जल देविया) घृत प्रदान करती है, यह दक्षिणा उसको सदा तृप्त करती है ॥५॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२५

१०४ जहा निरन्तर ज्योति है। जिस लोकमें स्वर्ग अवस्थित है। हे पवमान सोम, उस अक्षुण्ण अमर लोकमें मुझे ले चलो। हे सोम, इन्द्रके लिये क्षरित होओ ॥७॥ (१४।२८।७)

जहा आनन्द और मोद और मुद-प्रमुद अवस्थित है, कामकी कामनायें जहा प्राप्त होती है, वहा मुझे अमर बनाओ ॥११॥ (४।२९।११)

—कश्यप मारीचि, ९।११३

अध्याय १६

ज्ञान-विज्ञान

६१ कृषि

१ पुरानी उषायें और सुदर शरदोंमें उनने वृत्रको मारा और सिन्धुओंको मुक्त किया। इन्द्रने घेरी गयी धाराओंको पृथिवीपर बहनेके लिए फाटा और मुक्त किया ॥८॥

—वामदेव, ४।१९

१ हल, फाल—

२. सीरा (हल) को जोतो, जूएको तानो यहा सुसार खेतमें बीज बोओ। हमारी वाणियोंके साथ खेती हरी-भरी हो। फल समयपर तय्यार हुआ जाये ॥३॥

सूण्य· युजन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक्। धीरा देवेषु सुम्नया ॥४॥
निराहावान् कृणोतन सवरत्रा दधातन।

सिंचामहा अवतमुद्रिण वय सुषेकमनुपक्षित ॥५॥
इष्कृताहावमवत सुवरत्र सुषेचन। उद्रिण सिंचे अक्षित ॥६॥

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह ,रथमित् कृणुध्व।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥
—१०।१०१

२. कुआ—

३ या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा या स्वयजा।
समुद्रार्था या शुचय पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥
—७।४९

४ माकिर्नशेन्माकी रिषन्माकी सशारि केवटे। अथारिष्टाभिरागहि ॥७॥
—६।५४

५ प्र ते नाव न समने वचस्युव ब्रह्मणा यामि सवनेषु दाधृषि।
कुविन्नो अस्य वचसो निबोधिषदिन्द्रमुत्स न वसुन सिचामहे ॥७॥
—२।१६

३. कुल्या—

६ आपो न सिन्धुमभि यत् समक्षरन्त्सोमास इन्द्र कुल्या इव ह्रद।
वर्धन्ति विप्रा महो अस्य सादने यव न वृष्टिर्दिव्येन दानुना ॥७॥
—१०।४३

देवोंमें सुखके लिये धीर कवि लोग हल जोड़ते हैं, जूआ तानते हैं ॥४॥

मोट बनाओ, रस्सा रक्खो। सुन्दर सिंचाईवाले, अक्षय जलवाले महाकुएके जलको हम सींचेंगे ॥५॥

अन्नकारक मोंट, (चरसा) सुन्दर रस्सा, सुन्दर सेचनवाले अक्षय जल-युक्त अवत (कूआ) से मैं सींचता हूं ॥६॥

अश्वोंको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले कवच-कोशवाले मनुष्य-प्याव कूयेंसे सींचो ॥७॥

—युध सौम-पुत्र, १०।११

२. कुआ—

३. जो आप (जल) आकाशीय हैं अथवा खोदी जाकर बहती हैं, अथवा जो स्वय उत्पन्न हैं। जो शुचि पवित्र समुद्रके लिये (जाती) हैं, (वह) आप देविया यहा हमारी रक्षा करें ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।४९

४ (गौ-अश्व) नष्ट न हो, उन्हें (कोई) न मारे। वह कूए-गढ़ेमें न गिरें। तुम अरिष्टो (सुरक्षातो) के साथ आओ ॥७॥

—भरद्वाज, ६।५४

५. युद्धमें ललकारते नाव जैसे इन्द्रके पास सवनोंमें बैठ हो ब्रह्म (मन्त्र) मैं लाता हूं। हमारे इस वचनको अवश्य वह समझेगा, हम घनी उल्म (चश्मे) की तरह इन्द्रको सींचेंगे ॥७॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१६

३. कूप (नहर)—

६ सिन्धुमें जैसे नदिया, हृदमें जैसे कुल्यायें, वैसे इन्द्रके पास जब सोम अग्नि हाल हो (यज्ञ-)सदनमें विप्र इनके वेदारो वैसे ही बढ़ाते हैं, जैसे वृष्टि (जलसे) दिव्य धामसे जोड़ो ॥७॥

—कुत्स आगिरस १०।४१

७ महान्त कोशमुदचा निषिंच स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात्।
घृतेन द्यावा पृथिवी न्युधि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥
—५।८३

§२ वास्तु

८ अत्यासो न ये मरुत स्वचो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्या।
ते हर्म्येष्ठा शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रकीळिन पयोधा ॥१६॥
—७।५६

९ अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यन्त्रासाथे वरुणेळा स्वन्त।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्त्रस्थूण बिभृथ सह द्वौ ॥६॥
—५।६२

§३ काल

१. मास—

१०. वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावत। वेदा य उपजायते ॥८॥
—१।२५

२. ऋतु—

११ स पूर्व्यो महाना वेन ऋतुभिरानजे।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१॥
—८।५२

१२ न य जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनू स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥
—६।२४

७. (हे पर्जन्य), महान् कोश (मेघ) को ऊपर उठाओ, नीचे दो। ऊधी हुई कूलें आगेको बहें। द्यौ-पृथिवीको जलसे भिगो दो, गायोंके लिये सुन्दर प्याव होवे ॥८॥

—भौम आग्नेय, ५।८३

§२ गृह

८ जो मरुत् घोड़ोंकी तरह सुन्दर गतिवाले हैं, यज्ञ (मेला) दर्शीकी तरह मनुष्य (अपनेको) सवारते हैं। वे हममें स्थित शिशुओंकी तरह शुभ्र, खिलाड़ी बछड़ोंकी तरह जलधर हैं ॥१६॥

—वसिष्ठ, ७।५६

९. सुकृत (यज्ञ) में अ-रक्तपाणि, भक्तपाल हे वरुण, स्तुतिसे सुन्दर हृदयवाले जिसकी रक्षा करते हो। न क्षुद्र होने (हे मित्र-वरुण) राजाओ, हजार खम्भेवाले क्षत्र (राज्य) को तुम दोनो मिल कर धारण करते हो ॥६॥

—श्रुतविद् आग्नेय, ५।६२

§३ काल

१. मास—

१० यतधारी वरुण, प्रजावाले बारह मास जानता है, जो अधिक (मास) उत्पन्न होता है, (उसे भी) जानता है ॥८॥

—शुन शेप अजीगर्त-पुत्र, १।२५

२. ऋतु—

११. यह प्रिय (इन्द्र) प्रथम (पूजनीय) महानोंकी क्षमताके साथ सम्बद्ध है। पिता मनुने जिनके द्वारा देवोंमें (प्रिय) स्तुतियां तैयार की ॥१॥

—प्रगाथ, कण्व-पुत्र, ८।५०

१२ जिन्हें न शरद, न मास बूढ़ा करते हैं, न इन्द्रको दिन दुर्बल बनाते हैं। वृत्र (बादल) का यह तनु स्तोमों और उक्थों द्वारा प्रशंसित हो बढ़े ॥३॥

—भरद्वाज, ६।३८

१३ सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिप ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमा. सुवीरा ॥१०॥
—६।२४

१४. यत् पुरुपेण हविपा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तो अस्यासीदाज्य ग्रीष्म इध्म शरद्धवि ॥६॥
—१०।९०

१५. शत् जीव शरदो वर्धमान शत हेमन्तान् छतमु वसन्तान् ।
शतमिन्द्राग्नी सविता वृहस्पति शतायुपा हविषेम पुनर्दु ॥४॥
—१०।१६१

१६. अभि द्विजन्मा त्रिवृदन्नमृज्यते सवत्सरे वावृधे जग्धमी पुन ।
अन्यस्यासा जिह्वया जेन्यो वृपान्यन्येन वनिनो मृष्टवारण ॥२॥
—१।१४०

ऋतुओ के अनुसार चिडियो का वोलना । (देखो १८।९)

३ नक्षत्र—

१७ सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥
—१०।८५

§ ४ तोल-माप

१ तोल—

१८ सहस्र व्यतीना युक्तानामिन्द्रमीमहे शत गोमस्य खार्य ॥१७॥
—४।३२

१३. हे इन्द्र, रक्षाके लिये तुम स्तोताके पास आओ। यहा उसे शत्रुओंसे बचाओ। घर और अरण्यमें शत्रुओंसे उसकी रक्षा करो। हम सुन्दर वीर सन्तानोवाले हो सौ हिमो (वर्षों) तक आनन्दसे रहें ॥१०॥ (१५।८३)

—भरद्वाज, ६।२४

१४. जब पुरुषरूपी हविद्वारा देवोंने यज्ञ रचा, तो उसका घी वसत था, ईंधन ग्रीष्म और शरद हवि थी ॥६॥

—नारायण, १०।९०

१५ बढ़ते हुए सौ शरद जियो, सौ हेमन्त और सौ वसत (जियो)। इन्द्र-अग्नि, सविता, बृहस्पति हवि द्वारा इसे फिर शताय प्रदान करें ॥५॥

—यक्ष्मनाशन, १०।१६१

१६. दो (अरणियोंसे) जन्मनेवाला (अग्नि) त्रिविध अन्नो (सोम, घृत, पुरोडाश) को खाता है, फिर खाया हुआ सवत्सर (साल) भरमें (नया) बढता है। अन्यके मुख (श्रुवा) और जिह्वा (दावानल) द्वारा वह परात्परमी सबको दूर करता है (मत्त हाथी) वृक्षोंको (जलाता) है ॥२॥

—दीर्घतमा उचथ्य-पुत्र, १।१४०

३. नक्षत्र—

१७ सवितानें जिसे प्रदान किया, (वह) सूर्याकी बरातके आगे-आगे गई। मघा नक्षत्रोमें (विवाह भोज के) बैल मारे गये, दोनों फाल्गुनी (पूर्वा, उत्तरा) में वह ब्याही गई ॥१३॥

—सूर्या, १०।८५

§ ४ भार और नाप

१. भार—

१८ हम इन्द्रसे जोतनेके हजार घोडे मागते हैं, और सौ गोमती गायें[1] ७६॥१७॥

—गामदेव, ८।३२

---

१. एक तोरी बराबर ३।

१९ प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित् कृणुध्व।
द्रोणाहावमवतमश्चक्रमसत्रकोश सिंचता नृपाण ॥७॥
—१०।१०१

२ माप—

२० सहस्रशीर्षा पुरुष सहस्राक्ष सहस्रपात्।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशागुल ॥१॥
—१०।९०

२१ सदृशीरद्य सदृशीरिदु श्वो दीर्घं सचते वरुणस्य धाम।
अनवघास्त्रिशत योजनान्येकैका ऋतु परियति सद्य ॥८॥
—१।१२३

२२ धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित् ता वियोजना।
नेदीयसो वृषाकपेऽस्तमेहि गृहा ॥२०॥
—१०।८६

§५ संख्या

१ एक, अर्ध, उभे—

२३ भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि।
प्र रिरिचे दिव इन्द्र पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥
—६।३०

२ द्वाविंशति—

२४ द्वयां अग्ने रथिनो विंशति गा वधूमतो मघवा मह्य सम्राट्।
अन्यावर्तो चायमानो ददाति दूणाशेय दक्षिणा पार्यदाना ॥८॥
—६।२७

१९ अश्वोंको तृप्त करो, हितको जीतो, रथको स्वस्ति-वाहक बनाओ। काठकी मोटवाले, पत्थरकी मनवाले, कवच कोशवाले मनुष्य-प्यास कूपसे सींचो ॥७॥ (१६।२०७)

—युध नोम-पुत्र, १०।१०१

२. माप—

२० सहस्र-सिर, सहस्र-नेत्र, सहस्र-पाद वह पुरुष भूमिको चारों ओर लपेट कर दस अंगुल अधिक बढ कर अवस्थित है ॥१॥

—नारायण, १०।९०

२१ (उषायें) आज वैसी, कल भी वैसी ही, वरुणके दीर्घ धामको मानती हैं। वह दोषहीनायें एक-एक तीस योजन (जाती) तुरन्त कर्तव्यको पूरा करती हैं ॥८॥

—कक्षीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।१२३

२२ जो धन्व (मरु) और छेदनीय (वन) है, कितने वे योजन है ? हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीकके घरोंमें तुम (अपने) घर जाओ ॥२०॥

—इन्द्राणी, १०।८६

१. एक, अर्ध, उभय—

२३. पराक्रमके लिये वह और भी बढा, वह जरा-रहित एक धन प्रदान करता है। (महिमामें) इन्द्र द्यौ-पृथिवीसे बढकर है। उभय (दोनों) द्यौ-पृथिवी इनके अर्धके बराबर है ॥१॥

—भरद्वाज, ६।३०

२. दो, बीस—

२४ हे अग्नि, धनवान् पार्थवोंके सम्राट् नहुषान-पुत्र अन्यावर्तोंने मुझे वधुओं-सहित दो रथके घोडे और बीस गायें प्रदान कीं। उनकी दक्षिणा (औरोंसे) दुर्लभ है ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२७

३. एक, द्वौ—

२५. त्वमेकस्य वृत्रहन्नविता द्वयोरसि।
उतेदृशे यथा वय ॥५॥
—६।४५

४. प्रथम—

२६ दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथाना भवति प्रजानन्।
सविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरगिरोभि ॥५॥
—७।४४

५. त्रि, चतुर—

२७. प्रातारथो नवो योजि सस्निश्चतुर्युगस्त्रिकश सप्तरश्मि ।
दशारित्रो मनुष्य स्वर्षा स इष्टिभिर्मतिभी रह्यो भूत् ॥१॥
—२।१८

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८. सास्मा अर प्रथम स द्वितीयमुतो तृतीय मनुष स होता।
अन्यस्या गर्भमन्य ऊजनन्त सो अन्येभि सचते जेन्यो वृषा ॥२॥
—२।१८

७ त्रि, चत्वार, दश—

२९. चत्वार ईं विभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भ चरमे धापयन्ते।
त्रिधावत परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४॥
—५।४७

३. एक, दो—

२५. हे वृत्रहन्ता, तुम एकके, दोके रक्षक हो, और ऐसोंके भी जैसे कि हम ॥५॥

—शयु, बृहस्पति-पुत्र, ६।४५

४. प्रथम—

२६ रथका घोडा दधिक्रा[1] जानते हुए वह उषा, सूर्य, आदित्यो, वसुओ, अगिराओंके साथ मेल कर रथोंके आगे होता है ॥४॥

—वसिष्ठ, ७।४४

५. तीन, चार, सात, नौ, दस—

२७ प्रात को चार धुरो, तीन कशा, सात लगामोवाले नये रथको जोडा। दस पतवारोवाला मनुष्योका हितकर वह लालसाओ (यज्ञो) और स्तुतियो द्वारा वेगवान् हुआ ॥१॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।८१

६. प्रथम, द्वितीय, तृतीय—

२८ वह (इद्र) प्रथम, वह द्वितीय और तृतीय (वार) इसके लिये तैयार हुआ। वह मनुष्योका होता (पुकारनेवाला) हुआ। दूसरे (ऋत्विक्) दूसरेके गर्भको उपजाते है। वह विजेता पराक्रमी अन्योंमे मिलता है ॥२॥

—गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।१८

७. तीन, चार, दस—

२९ सोम कामना करते चार (ऋत्विक् सूर्यको) धारण करते है। दस गर्भ (शिशु) को चलनेके लिये प्रेरित करते है। तीन धातुओंकी (लोकोंकी) वाली इस (सूर्य) की गौवें (किरणें), तुरन्त दौडे जल तक विचरती है ॥४॥

—प्रतिरथ, ५।४७

---

[1] दिवोदासका युद्धदौड-विजेता घोडा।

८ पच

३० य पच चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥२॥
—७।१९

३१ इन्द्रियाणि शतक्रतो या ते जनेषु पचसु । इन्द्र तानि त आवृणे ॥९॥
—३।३७

९. षट्, षष्ठि, शत—

३२ नि गव्यवो नवो ब्रह्मयवश्च षष्टि शता सुषुषु षट्सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥
—७।१८

१० सप्त, द्वा, चतु :—

३३ सोमारुद्रा धारयेथामसूर्यं प्र वामिष्टयोरमश्नुवन्तु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना श नो भूत द्विपदे श चतुष्पदे ॥१॥
—६।७४

११ अष्ट, त्रि, सप्त—

३४ अष्टौ व्यख्यत् ककुभ पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून् ।
हिरण्याक्ष सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ॥८॥
—१।३५

८. पांच—

३०. जो कवि, गृहस्वामी, युवा (अग्नि) पांचो जनोंके पास घर-घरमें बैठा ॥२॥

—वसिष्ठ, ७।१५

३१. हे शतक्रतु इन्द्र, पाचो जनोमें[1] जो तुम्हारी इन्द्रिया (शक्तिया) है, उन्हें हम तुम्हारी मानते है ॥९॥

—विश्वामित्र, ३।३७

९. छ, साठ, सौ, हजार—

३२. गौ लूटने के इच्छुक साठ सौ हजार और छ्यासठ अनु और द्रुह्यु (वीर, मरकर) सो गये। (भक्तोंके लिये) यह सब इन्द्रके पराक्रमके काम है ॥१४॥ (१०।१७।१४)

—वसिष्ठ, ७।१८

१०. सात, दो, चार—

३३ हे सोम-रुद्र, तुम असुर-बल धारण करो। (हमारी) कामनायें शीघ्र तुम्हें प्राप्त होवें। घर-घरमें (अपने) सातो रत्नोंको रखने तुम (दोनो) हमारे दोपायोंके कल्याणकारी चौपायोंके कल्याणकारी होओ ॥१॥

—भरद्वाज, ६।७४

११. आठ, तीन, सात—

३४ उसने पृथिवीकी आठो दिशायें तीनो मरुस्थल और सातो नदिया प्रकाशित की। सुनहली आभावाला सविता देव दानियो (यजमान)के लिए उत्तम रत्न लिये आये ॥८॥ (१।१)

—हिरण्यस्तूप आगिरस, १।३५

---

[1] आर्योंके पुरातन पाच कबीले—पुरु, द्रुह्यु, अनु, तुर्वश और यदु।

१८ अष्टावश, द्वा, चतु, षट्—

४१ आ द्वाभ्य हरिभ्यामिन्द्र याह्या चतुर्भिराषड्भिर्हूयमान.।
आष्टाभिर्दशभिः सोमपेयमय सुमख मा मृधस्क ॥४॥

—२।१८

१९ विंशति त्रिंशत्, शत—

४२ आ विंशत्या त्रिंशत्या याह्यर्वाङा चत्वारिंशता हरिभिर्युजान ।
आ पचाशता सुरथेभिरिन्द्रा षष्ट्या सप्तया सोमपेय ॥५॥

आशीत्या नवत्या याह्यर्वाङाशतेन हरिभिरुह्यमान ।
अय हि ते शुनहोत्रेषु सोम इन्द्र त्वया परिषिक्तो मदाय ॥६॥

—२।१८

२० सहस्र, अयुत—

४३. चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥१८॥

—८।२१

अध्याय १७
आर्य नारी

१. अदिति—

१. भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त।
अदितेर्दक्षो अजायत दक्षादुदिति. परि ॥४॥

१८. अठारह, दो, चार, छ—

४१ हे इन्द्र, पुकारे जाते तुम दो, घोडोंके साथ , चार, छ, आठ, दसके साथ सोमपानमें आओ। हे सुवीर, यह छना (सोम) तैयार है, इसे बुरा न कहना ॥४॥

—गृत्समद, २।१८

१९. बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी, नब्बे, सौ—

४२ हे इन्द्र, बीस, तीस, चालीस, घोडो जोते पास आओ। पचास, साठ, सत्तर, सुरथोंके साथ सोमपेयमें आओ ॥५॥

अस्सी, नब्बे, सौ घोडो द्वारा वहन किये जाते पास आओ। हे इन्द्र शुनहोत्रोंमें तुम्हारे लिए यह सोम (तैयार) है। तुम्हारे द्वारा पिया गया (यह) मदके लिए है ॥६॥

—गृत्समद, २।१९

२० हजार, दस हजार—

४३ चित्र ही राजा है, दूसरे राजक (छोटे राजा) है, जो कि सरस्वतीके पास रहते है। जैसे पर्जन्य वृष्टि द्वारा व्याप्त होता, वैसे चित्र हजार और दस हजार देता (व्याप्त) है ॥१८॥

—सौमरि कण्व-पुत्र, ८।२१

अध्याय १७

आर्य नारी

ऋग्वेदमें वास्तविक नारियां घोषा, लोपामुद्रा, विश्वला, विश्ववारा, सूर्यादेवी ही है, बाकी काल्पनिक नारियां है पर काल्पनिकोंसे भी आर्य नारियोंके बारेमें कितनी ही बातें मालूम होती है।

१. अदिति—

१ उत्तानपाद (ऊपर पैरवाले) मूल वृक्ष से भूमि उत्पन्न हुई, भूमिसे दिशाएँ हुई। अदितिसे दक्ष उत्पन्न हुआ, और दक्षसे फिरसे अदिति ॥७॥

अदिर्हि तियजनिष्ट दक्ष या दुहिता तव।
ता देवा अन्वजायन्त भद्रा अमृतबन्धवः ॥५॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जातास्तन्वस्परि।
देवा उप प्रैत् परा सप्तभि मार्ताण्डमास्यत् ॥८॥

—१०।७२

२ इन्द्र-माता—

२ इखयन्तीरपस्युव इन्द्र जातमुपासते। भेजानास सुवीर्यं ॥१॥

त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजस। त्व वृषन्वृषेदसि ॥२॥

त्वमिन्द्र सजोषसमर्कं बिभर्षि बाह्वो। वज्र शिशान ओजसा ॥४॥

—१०।१५३

३ इन्द्राणी—

३ वि हि सोतोरसृक्षत नेन्द्र देवममसत।
यत्रामदद् वृषाकपिरर्य. पुष्टेषु मत्सखा, विश्वस्मादिन्द्र उत्तर ॥१॥

परा हीन्द्र धावसि वृषाकपेरति व्यथि।
नो अह प्र विन्दस्यन्यत्र सोमपीतये० ॥२॥

किमय त्वा वृषाकपिश्चकार हरितो मृग।
यस्मा इरस्यसीदु न्वर्यो वा पुष्टिमद्वसु० ॥३॥

यमिम त्व वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्० ॥४॥

प्रिया तष्टानि मे कपिर्व्यक्ता व्यदूदुपत्।
शिरो'न्वस्य राविष न सुग दुष्कृते भुव० ॥५॥

किं सुवाहो स्वगुरे पृथुष्टो पृथुजाघने।
किं शूरपत्नि नस्त्वमभ्यमीषि वृषाकपि० ॥८॥

अवीरामिव मामय शरारुरभिमन्यते।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा० ॥९॥

हे दक्ष, अदितिने (तुम्हें) पैदा किया, जो कि तुम्हारी दुहिता है। उस अदितिके पीछे भद्र अमृत-बन्धु देवता पैदा हुए ॥५॥
अदितिके आठ पुत्र, जो शरीरसे पैदा हुए। मातके साथ वह पर देवोंके पास गई, आठवें मार्तण्डको छोड दिया ॥८॥

—बृहस्पति लोकनामा-पुत्र, १०।७२

२. इन्द्र-माता—

२ कर्मशील (इन्द्र-माताएँ) इन्द्रके जन्मके समय (उनके) शूरवीर्यको ग्रहण करती पास आई ॥१॥
हे इन्द्र, तुम सहस् (विक्रम), ओजके बलसे उत्पन्न हुए। हे पराक्रमी, तुम बली हो ॥२॥
हे इन्द्र, ओजसे तुम अपनी दोनों बाहोंमें तीक्ष्ण करने वज्रको सूर्यके साथ धारण करते हो ॥४॥

—इन्द्र-माता, १०।५३

३ इन्द्राणी—

३. (लोगोंने वहा) सोम छानना छोड दिया। वह इन्द्रको देव नहीं मानते। जहाँ (मद-) तृप्तोंमें मेरा सखा अर्य (स्वामी) वृषाकपि (अग्नि) है। इन्द्र सबसे उत्तम है ॥१॥
(इन्द्राणी)—"हे इन्द्र, तुम व्याकुल हो वृषाकपिके पास दौडते हो, अन्यत्र सोमपान नहीं पाते ॥२॥
"क्या है, जो इस पीले (हरे) मृग वृषाकपिने तुम्हें बना दिया, जिसके लिए अर्य (स्वामी) तुम पुष्टिकारक धन देते हो ॥३॥
"हे इन्द्र, जिस इस प्रिय वृषाकपिकी तुम रक्षा करते हो, उसके कानमें वराह-कामी कुत्ता काटे ॥४॥
"मेरे लिए तैयार प्रिय वस्तुको (वृषा-)कपिने दूषित कर दिया, इसके निस्तो फाड खूँगी वृषाकपिको सुख न होवे ॥५॥
(इन्द्र)—"सुबाहू, सुअंगुरी, दीर्घांगी, पृथुजघना हे शचीकी, तुम क्यों हमारे वृषाकपिपर क्रुद्ध हो ॥८॥
(इन्द्राणी)—"यह दुष्ट वृषाकपि मुझे जरन्पुत्रा (माता)जी सा मानता है। परन्तु मैं वीरपुत्रा इन्द्र-सखी हूँ, मेरे सखा मरुत् हैं ॥९॥

सहोत्र स्म पुरा नारी समन वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणीन्द्रपत्नि महीयते० ॥१०॥

इन्द्राणीमासु नारिपु सुभगामहमश्रव।
नह्यस्या अपर चन जरसा मरते पतिर० ॥११॥

नाहमिन्द्राणि रारण सख्युर्वृषाकपेर्ऋते।
यस्येदमप्य हविः प्रिय देवेषु गच्छति० ॥१२॥

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षण प्रिय काचित्कर हविर्० ॥१३॥

उक्षणो हि मे पचदश साक पचन्ति पचदश।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे० ॥१४॥

धन्व च यत् कृन्तत्र च कति स्वित्ता वि योजना।
नेदीयसो वृषाकपेस्तमेहि गृहा उत० ॥२०॥ (१६।२२)
—१०।८६

४ उर्वशी—

४ पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणो हृदयान्येता ॥१५॥
—१०।९५

५ अन्तरिक्षप्रा रजसो विमानीमुपशिक्षाम्युर्वशीं वसिष्ठ।
उप त्वा राति सुकृतस्य तिष्ठान्निवर्तस्व हृदय तप्यते मे ॥१७॥
—१०।९५

"पहले हवन या युद्धके समय नारिया वहा जाती। ऋतके विधाता, वीरपुत्रा इन्द्र-पत्नीकी पूजा होती है॥१०॥

(इन्द्र)—"इन नारियोमें इन्द्राणीको मैंने सौभाग्यवती सुना है। दूसरोकी तरह इसका पति जरा (बुढापे) से नही मरेगा॥११॥

"हे इन्द्राणी, अपने मित्र वृषाकपि (अग्नि) के बिना मै सुखी नही हो सकता, जिसके द्वारा यह मिलनेवाला प्रिय हवि देवताओके पास जाता है॥१२॥

(इन्द्राणी)—"हे धनवती सुपुत्रा सुवधुका वृषाकपि-पत्नी, इन्द्र तेरे बैलोकी प्रिय हविको भख जायेगा॥१३॥

"मेरे लिए (एक) बीमके साथ पन्द्रह (३५) बैलोको पकाते है, और मै खाता मोटा होता हूँ। मेरी दोनो कुक्षियोको (भक्तजन) पूर्ण करते है॥१४॥

"जो धन्व (मरुत्) और छेदनीय (वन) है, वह कितने योजन तक है। हे वृषाकपि (अग्नि), सबसे नजदीकके घरोमें तुम (अपने) घर जाओ॥२०॥ (१६।२२)

—इन्द्राणी, १०।८६

४. उर्वशी—

४. नही हे पुरूरवा, तू मत मर, मत गिर, न अशिव भेड़िये तुझे खायें। स्त्रियोकी मित्रता (स्थायी) नही होती, उनके ये हृदय भेड़ियो (चरखो) के होते है॥१५॥

—उर्वशी, १०।९५

५. (उसका) महानतम प्रेमी आकाशको पूरनेवाली लोकोको नापनेवाली उर्वशीकी मै प्रार्थना करता हूँ, मेरे पास मेरे सुहृदका मन पहुँचे। लौट आ, मेरा हृदय संतप्त हो रहा है॥७॥ (७।७।१७)

—उर्वशी, १०।९५

५ घोषा कक्षीवान्-पुत्री—

६ पुराणा वा वीर्या प्रवा जने'थो हासर्युभिषजा मयोभुवा ।
ता वा नु नव्याववसे करामहे य नासत्या श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

युव रथेन विमदाय शुन्ध्युव न्यूहथु पुरुमित्रस्य योषणा ।
युव हव वध्रिमत्या अगच्छत युव सुपुति चक्रथु. पुरन्धये ॥७॥

युव श्वेतंपेदवे' श्विनाश्वनवभिर्वाजिनेवती च वाजिन ।
चर्कृत्य ददथुर्द्रवियत्सख भग न नृभ्यो हव्य मयोभुव ॥१०॥

ता वर्तिर्याति जयुपा वि पर्वतमपिन्वत शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युव शचीभिर्ग्रसिताममुचत ॥१३॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥
—१०।३९

७. यो वा परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता ।
शश्वत्तमासस्तमु वामिद वय पितुर्न नाम सुहव हवामहे ॥१॥

एत वा स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथ ।
न्यमृक्षाम योषणा न मर्ये नित्य न सूनु तनय दधाना ॥१४॥
—१०।३९

८. युवा ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वा नरा ।
भूत मे अहन उत भूतमक्तवे श्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

युव कण्वो ष्ठ पर्यश्विना रथ विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथ ।
युवाहं मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृत न योषणा ॥६॥

५. घोषा (कक्षीवान्-पुत्री)—

६. तुम दोनोंकी प्राचीन वीरताको मैं लोगोंके पास कहती हूँ, कि तुम दोनों सुखद चिकित्सक हो, इसलिए नवीन सहायताके लिए तुम्हारी स्तुति करती हूँ, जिसमें कि हे नासत्यो, यह यजु श्रद्धा करे ॥५॥

तुम विमदके व्याहनेके लिए पुरुमित्रकी कन्या शुन्ध्युको लाये। तुम वध्रिमतीकी पुकारपर आये। तुमने पुरन्धि (गर्भिणी वध्रिमती) का प्रसव सुखमय किया ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने पेदुके लिए वेगोंमें वेगवान् निश्चानवें घोड़ोंसे गाय भागकी तरह मनुष्य-सुखद हवि दिया, भगाते वाज एक श्वेत अश्व जैसे नगाको ॥१०॥

हे अश्विनो, तुम स्थूल पर्वत-विजेता (हमारे) घर आओ और शयु के लिए धेनु (दुधार गाय) बनाओ। वृक (भेड़िये) के मुखके भीतर गयी गई बछेरको तुमने युक्तिसे छुड़ाया था ॥१३॥

हे अश्विनो, जैसे भृगु लोग रथको गढ़ते हैं, वैसे तुम्हारे लिए इस स्तोम (गान) को मैंने बनाया। दामादको देनेके लिए जैसे कन्याको सजाते, जैसे पुत्र-पौत्रको शिक्षा धारण करते हैं, वैसे हमने किया ॥१४॥

—घोषा, १०।३९

७. हे अश्विनो, सर्वभूषयंटक जो तुम्हारा सुनिर्मित रथ है, जिसे हविवाले (यजमान) प्रतिदिन, प्रतिरात्रि और प्रतिउषा पुकारते हैं। तुम्हारे पिताने सुन्दर पुकारे जानेवाले नामसे तुम्हारे (नाम) का हम सब आह्वान करते हैं ॥६॥

८. हे अश्वद्वय, मैं अत्यन्त सजधजवाली घोषा तुम दोनों नेकाओंके पास आकर पूछती हूँ, "किसने मेरे पास हो या सकते हो अश्व-युक्त रथयुक्त रथी (पति) के उत्तमसे (घरमें) सहायता करो ॥५॥

हे अश्विनो, तुम दोनों रथि हो। [illegible] के [illegible] पुरुष [illegible] के पास, हो तुम सोमपानके [illegible] हो। [illegible] [illegible] [illegible]

युव ह भुज्यु युवमश्विना वश युव शिजारमुशनामुपा रथु ।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरह्मवसा सुम्नमाचके ॥७॥

युव ह कृश युवमश्विना शयु युव विधन्त विववामुरुष्यथ ।
युव सनिभ्य स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथं सप्तास्य ॥८॥
—१०।४०

९ न तस्य विद्म तदुपु प्र वोचत युवा ह यद्युवत्या क्षेति योनिषु ।
प्रियोस्त्रियस्य वृषभस्य रेतिनो गृह गमेमाश्विना तदुश्मसि ॥११॥
—१०।४०

१०. समानमु त्य पुरुहूतमुक्थ्य रथ त्रिचक्र सवना गनिग्मत ।
परिज्मान विदथ्य सुवृक्तिभिर्वय व्युष्टा उपसो हवामहे ॥१॥

प्रातर्युज नासत्याधितिष्ठथः प्रातर्यावाण मधुवाहन रथ ।
विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञ होतृमन्तमश्विना ॥२॥

अध्वर्यु वा मधुपाणि सुहस्त्यमग्निध वा धृतदक्ष दमूनस ।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथो त आयात मधुपेयमश्विना ॥३॥
—१०।४१

११. युव नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्व ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पति जूर्यन्त्या अश्विनावदत्त ॥७॥
—१।११७

६ जुह्—

१२ ते वदन् प्रथमा ब्रह्मकिल्बिषे फूपार. सलिलो मातरिश्वा ।
वीळुहरास्तप उग्रो मयोभूरापो देवी प्रथमजा ऋतेन ॥१॥

हे अश्विनो, तुमने भुज्युको, तुमने वशको, तुमने शिंजारको और उशनाको उबारा था। जो दाता है, वह तुम्हारे सख्यित्वको पाता है, मैं तुम्हारी सहायताके साथ सुख चाहती हूँ ॥७॥

हे अश्विनो, तुमने वृशको, तुमने शयुको, तुमने मेधक (और) विश्वाको बचाया। हे अश्विनो, दाताओंके लिए तुम मेघके कठोरने सप्तमुख वज्र (मेघ) को खोलते हो ॥८॥

९ वह बात हम नहीं जानते, उसे तुम बतला दो, कैसे सुता और सुनती गृहोंमें रहते हैं। मैं स्त्री-प्रिय सुपुष्ट पराक्रमी तरुणके गृहमें जाऊँ, हे अश्विनो, (मेरी) उस कामनाको पूरी करो ॥११॥

—घोषा, १०।४०

१०. तीन चक्कोंवाला, बहुतों द्वारा पुकारा जाता, स्तुत्य, भूपर्यटक, यजीय दोनोंके सम्मिलित रथको उषाकालमें उठकर हम सुन्दर ऋचाओंसे प्रार्थना करते हैं ॥१॥

हे नासत्य (न-असत्य) अश्विद्वय, प्रातः जोड़े गये, प्रातः चलनेवाले (उस) मधुवाहन रथपर चढ़ो, जिसके द्वारा यज्ञ करनेवाली प्रजाओंके पास जाते हो, हे नेताद्वय अश्विनो, गरीबोंके होता-युक्त यज्ञमें भी ॥२॥

हे अश्विद्वय, मधु-यागि घृतदक्ष (दृढ़-शक्ति), गृहच्छिद्र, सुहस्त ऋत्विक्के पास या जब विप्रके सवनों (यज्ञों) में जाओ, तो मधुपान में भी पहुँचो ॥३॥

—सुहस्त घोषा-पुत्र, १०।४१

११. हे दोनों नेताओ, तुम कृष्ण-पुत्र स्नोता विश्वकके लिए (तनूपुत्र) विष्णापुत्रको लाये। तुमने पिता के घर बैठी द्वारपर सुनती घोषाको पति प्रदान किया ॥७॥

—ऋशीवान् दीर्घतमा-पुत्र, १।११७

६ अहं—

१२. उन प्रथमजों (पूर्वजों)—गर्भ, वायु, अनन्त जल, प्रज्वलित उग्र अग्नि, सुन्दर फल-उत्पन्न आप-देवियोंने ब्राह्मणपर विरुद्ध पापके बारेमें कहा ॥१॥

सोमो राजा प्रथमो ब्रह्मजाया पुन प्रायच्छदहृणीयमान ।
अन्वर्तिता वरुणो मित्र आसीदग्निर्होता हस्तगृह्या निनाय ॥२॥

हस्तेनैव ग्राह्य आधिरस्या ब्रह्मजायेयमिति चेदवोचन् ।
न दूताय प्रह्ये तस्य एषा तथा राष्ट्र गुपित क्षत्रियस्य ॥३॥

देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदु ।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ॥४॥

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विष स देवाना भवत्येकमग ।
तेन जायामन्वविन्दद् बृहस्पति सोमेन नीता जुहव न देवा ॥५॥

पुनर्वै देवा अददु पुनर्मनुष्या उत ।
राजान सत्य कृण्वाना ब्रह्मजाया पुनर्ददु ॥६॥

—१०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ आविरभून्महि माघोनमेषा विश्व जीव तमसो निरमोचि ।
महि ज्योति पितृभिर्दत्तमागादुरु पन्या दक्षिणाया अदर्शि ॥१॥

उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुर्ये अश्वदा सह ते सूर्येण ।
हिरण्यदा अमृतत्व भजन्ते वासोदा सोम प्र तिरन्त आयु ॥२॥

दैवी पूर्तिर्दक्षिणा देवयज्या न कवारिम्यो नहि ते पृणन्ति ।
अथा नर प्रयतदक्षिणासो वद्यभिया वहव पृणन्ति ॥३॥

दक्षिणावान् प्रथमो हूत एति दक्षिणावान् ग्रामणीरग्रमेति ।
तमेव ऋषि तमु ब्रह्माणमग्निजन्य सामगामुक्थशास ।

सोमराजाने प्रथम आकृष्ट हो ब्रह्मपत्नीको फिर से (बृहस्पतिको) प्रदान किया। मित्र और वरुण उनके अनुगामी हुए। होता अग्नि हाथ पकड़कर उसे ले आया ॥२॥

"इसकी देहको हाथसे ही ग्रहण करना चाहिए, यह ब्रह्म-जाया है," यह सबने कहा। भेजे दूतके लिए यह नहीं हुई, जैसे क्षत्रिय का राष्ट्र रक्षित ॥३॥ —(११।३)

पुराने देवों और तपस्यामें बैठे उन सात ऋषियोंने इनके बारेमें कहा —ब्राह्मणकी भीमा पत्नीको ले भागना। (यह) परम व्योममें दुर्व्यवस्था स्थापित करती है ॥४॥

बिना पत्नीके ब्रह्मचारी (रह) विचरता वह देवताओंका वर होता है। सोम द्वारा लाई गई जुहू (पात्र) को जैसे देवोंने, वैसे ही (अपनी) पत्नी (जुहू) को बृहस्पतिने प्राप्त किया ॥५॥

देवोंने फिर उसे प्रदान किया, और फिर मनुष्योंने (प्रदान किया)। राजाओंने सच्चा करते ब्रह्मपत्नीको फिर प्रदान किया ॥६॥

—जुहू, १०।१०९

७. दक्षिणा—

१३ इन (मनुष्यों) में मघवा (धनवान्) सूर्यका महान् तेज आविर्भूत हुआ, उसने सारे जीवोंको अन्धकारसे निर्मुक्त किया। पितरों द्वारा जो गई वही ज्योति आई। दक्षिणाका विस्तृत पथ दिखाई पड़ा ॥१॥

दक्षिणावाले (दानी) ऊँचे दो लोकमें स्थान पाते हैं। जो अन्न दाता है, (वह) सूर्यके साथ (रहते हैं)। सोना देनेवाले अमरताको पाते हैं। हे सोम, वस्त्र देनेवाले पास जो आयुको बढ़ाते हैं ॥२॥

देवोंकी पूजावाली दक्षिणा दिव्य मूर्ति है। मनुष्योंको वे (देव) नहीं तृप्त करते। और जो बहुतेरे नर दक्षिणामें तत्पर होकर तृप्ति करते हैं ॥३॥

दक्षिणावान् (दानी) पहले निमन्त्रित होते हैं। दक्षिणावान् आगे श्रेष्ठ होता है। जिसने पहले (पहल) दक्षिणा दी, उसीको मैं जनोंका नृपति मानता हूँ ॥५॥

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो य प्रथमो दक्षिणया रराध ॥६॥
दक्षिणाश्व दक्षिणा गा ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्य।

दक्षिणान्न वनुते यो न आत्मा दक्षिणा वर्म कृणुते विजानन् ॥७॥

न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुर्न रिष्यन्ति न व्यथन्ते ह भोजाः।
इद यद्विश्व भुवन स्वश्चैतत् सर्वं दक्षिणैभ्यो ददाति ॥८॥

भोजा जिग्यु सुरभि योनिमग्रे भोजा जिग्युर्वध्व या सुवासा'।
भोजा जिग्युरन्त' पेय सुराया भोजा जिग्युर्ये अहूता प्रयन्ति ॥९॥
—१०।१०७

८. निवावरी, सिकता—

१४ अमिक्रन्दन् कलश वाज्यर्षति पतिर्दिव शतधारो विचक्षण ।
हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति मर्मृजानो'विभि सिन्धुभिर्वृषा ॥११॥

अय मतवान्छकुनो यथा हितो व्ये ससार पवमान ऊर्मिणा।
तव क्रत्वा रोदसी अन्तरा कवे शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥१३॥

द्वापि वसानो यजतो दिविस्पृशमन्तरिक्षप्रा भुवनेष्वर्पित ।
स्वर्जज्ञानो नभसाम्यक्रमीत् प्रत्नमस्य पितरमाविवासति ॥१४॥
—९।८६

उसीको ऋषि, उसीको ब्रह्मा, उसीको यज्ञ-कर्ता, सामगायक, उक्थ (स्तुति) बोलनेवाला कहते हैं। वह शुक्र (अग्नि) के तीनों शरीरोंको जानता है, जिसने पहले दक्षिणासे आराधना की ॥६॥

दक्षिणा अश्वको, दक्षिणा गायको देती है, दक्षिणा चन्द्र (चांदी) और सोना है, जो उसे देती है। दक्षिणा अन्नको देती है, जो कि हमारा आत्मा (शरीर) है। (यह) जानकर (आदमी) दक्षिणाको कवच बनाता है ॥७॥

भोज (भोजनदाता) न मरते, न नष्ट होते, न क्लेश पाते, न भोज व्यथित होते हैं। यह जो सारे भुवन और यह स्वर्ग है, उसको उन्हें दक्षिणा देती है ॥८॥

भोज (सबसे) पहले ही सुरभि विमान पाते हैं, भोज सुवस्त्र वह पाते हैं, भोज आन्तरिक पेय सुराको पाते हैं। जो बिना बुलाये आक्रमण करते हैं, उन्हें भोज जीतते हैं ॥९॥

—दक्षिणा, १०।१०७

८. निषादरी, सिकता—

१४ पोषति, विचक्षण, शतधार सोम शब्द करता कलशमें आता है। (वह) सुवर्ण-वर्ण परात्रमी सिन्धुओं और मेषोंके (लोमों)से मांजा जाता मित्रके घरोंमें बैठता है ॥११॥

यह मेषलोममें छाना जाता तरंगित बेपर्वाह सोम शकुन की भांति चलता है। हे ऋषि इन्द्र, तुम्हारे कर्मसे द्यौ और पृथिवीसे बीच शुचि सोम स्तुति द्वारा पूत होता है ॥१३॥

द्यौ-पृथ्वी अन्तरिक्ष-पूरक द्रापि-पहने, भुवनोंमें उत्पन्न राजनीय स्वर्ग-ज्ञाता (सोम) मेष द्वारा आ, अपने पुराने पिता (इन्द्र) की सेवा करता है ॥१४॥

—निषादरी, ९।८६

९. यमी वैवस्वती—

१५. ओचित् सखाय सख्या ववृत्या तिर पुरू चिदर्णव जगन्वान्।
पितुर्नपातमा दधीत वेधा अधिक्षमि प्रतर दीध्यान ॥१॥

न ते सखा सख्य वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद्विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवो धर्तार उर्विया परि ख्यन् ॥२॥

उशन्ति धा ते अमृतास एतदेकस्य चित्यजस मर्त्यस्य।
नि ते मनो मनसि धीय्यस्मे जन्यु पतिस्तन्वमा विविश्या ॥३॥

न यत् पुरा चकृमा कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृत रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नो नाभि परम जामि तन्नौ ॥४॥

यमस्य मा यम्य काम आगन्त्समाने योना सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्व रिरिच्या वि चिद् वृहेव रथ्येव चक्रा ॥७॥

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामय कृणवन्नजामि।
उप बर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पति मत् ॥१०॥

किं भ्रातासद्यदनाथ भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
काममूता वह्वेतद्रपामि तन्वा मे तन्व स पिपृग्धि ॥११॥

न वा उ ते तन्वा तन्व सपपृच्या पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत् प्रमुद कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥१२॥

वनो वतासि यम नैव ते मनो हृदय चाविदाम।
अन्या किल त्वा कक्ष्येव युक्त परिष्वजाते लिबुजेव वृक्ष ॥१३॥

९. यमी विवस्वान्-पुत्री—

१५. (यमी)—विस्तृत समुद्रके आओ, सख्यके लिए (मैं) सखा चुनना चाहती हूँ। विधाताने विशेष ध्यान कर पृथिवीपर पितायी सन्तान रक्खी ॥१॥

(यम)—"तेरा सखा (मैं) इस सख्य (प्रेम) को नहीं चाहता, क्योंकि तू सहोदरा होनेसे इसके अयोग्य है। विस्तृत द्यौके धारक, सहसके पुत्र, असुर-वीर चारों ओर देख रहे हैं ॥२॥

(यमी)—"वे अमर लोग यह एक मर्त्य (मर्द) की सन्तान तुझसे चाहते हैं। मेरे मन में तू अपने मन को धारण कर, पत्नीका पति हो कर मेरे शरीर में प्रवेश कर ॥३॥

(यम)—"जिसे हमने पहले कभी नहीं किया, सत्यवादी होते कैसे हम झूठा बोलेंगे। जलके गर्भ और जलकी योषा (स्त्री) वह हमारा परम बन्धु, वह हमारा बन्धुत्व है। ॥४॥

(यमी)—"यमके प्रति मुझ यमीकी कामना एक गर्भमें साथ सोने के लिये हो आई है। मैं जायाकी तरह पतिके लिये शरीर खोलती हूँ। (आओ) मिलने रथके चक्रकी नरह (हम) मिलें ॥५॥

(यम)—आगे वह युग अवश्य आयेंगे, जब भगिनियां अभगिनी बनेंगी। (किसी) दूसरे वृषभ (सहस्रसुत) का सखिया अपने बाहुको बनाओ। हे सुभगे, मुझसे अन्यको पति चाहो ॥१०॥

(यमी)—(यह) "क्या भाई (है), यदि (उसके) होने (बहिन) अनाथ होवे? क्या बहिन जो नाश को पावे? कामवश हो मैं यह झूठ बोल रही हूँ, (अपने) शरीर से मेरे शरीर को आलिङ्गन कर ॥११॥

(यम)—(अपने) शरीरसे तेरे शरीरको मैं नहीं स्पर्श करता, जो बहिनको अभिगमनकारे (लोग) पापी कहते हैं। सुखी बिछौने पर प्रमोद प्राप्त कर, हे सुभगे, तेरा भाई यह नहीं चाहता ॥१२॥

(यमी)—अपनेको हैं अपनेको मन, मैं तेरे (लोहार) मन, हृदय नहीं पा सकी। जैसे वृक्षोंको लता वैसे कटिबन्धको तरुणी (स्त्री) तुझे आलिङ्गन करेगी ॥१३॥

अन्यमू षु त्व यम्यन्य उ त्वा परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षं।
तस्य वा त्व मन इच्छा स वा तवाघा कृणुष्व सविद सुभद्रा ॥१४॥
—१०।१०

१६ सोम एकेभ्य पवते घृतमेक उपासते।
येभ्यो मधु प्रधावति ताँश्चिदेवापि गच्छतात् ॥१॥

तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययु ।
तपो ये चक्रिरे महस्ताश्चिदेवापि गच्छतात् ॥२॥

ये युध्यन्ते प्रधनेषु शूरासो ये तनूत्यज ।
ये वा सहस्रदक्षिणास्ताश्चिदेवापि गच्छतात् ॥३॥
—१०।१५४

१० रात्रि—

१७ रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभि । विश्वा अधि श्रियो धित ॥१॥
निरु स्वसारमस्कृतोषस देव्यायती । अपेदु हासते तम ॥३॥

नि ग्रामासो अविक्षत नि पद्वन्तो नि पक्षिण ।
नि श्येनासश्चिदर्थिन ॥५॥

उप मा पेपिशत्तम कृष्ण यक्तमस्थित। उप ऋणेव यातय ॥७॥
—१०।१२७

११ लोपामुद्रा—

१८. पूर्वीरहं शरद शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्ती।
मिनाति श्रिय जरिमा तनूनामप्यूनु पत्नीर्वृषणो जगम्यु ॥१॥

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साक देवेभिरवदन्नृतानि ।
ते चिदवासुर्नह्यन्तमापु समूनु पत्नी० ॥२॥

(यम)—हे यमी, दूसरेका आलिंगन कर, दूसरा तुझे वृक्षको लताकी तरह आलिंगन करे। उनके मनको तू चाहे और वह तेरे साथ मंगलमय संबंध करे॥१४॥

—यमी, १०।१०

१६ किन्हीं (पितरों) के लिये सोम छाना जाता है, कोई घृतका सेवन करते हैं। जिनके लिये मधु बहता है, हे उनके पास ही वह जाये॥१॥
तपस्याके कारण जो दुर्धर्ष हैं, तपस्यासे जो स्वर्ग गये, जिन्होंने महान् तपस्या की, उनके पास ही वह जाये॥२॥
जो युद्धोंमें, लड़ते जो शूर शरीर छोड़ते हैं, और जो सहस्र दक्षिणा देनेवाले हैं, उनके पास ही वह जाये॥३॥

—यमी, १०।१५४

१०. रात्रि—

१७ रात्रि देवीने आते हुए नेत्रोंसे बहुत देखा। उसने सारी शोभाको धारण किया॥१॥
देवीने आते हुए (अपनी) बहिन उषाको प्रतिस्थापित किया और (उसने) तमको हटाया॥२॥
ग्राम (घरों) में घुस गये, बटोही और पक्षी, (शिकार) चाहने वाले बाज भी चुप हैं॥५॥
वह मेरे पास आई, (यहाँ) काला अन्धकार स्पष्ट अवस्थित है। हे उषा, ऋणकी तरह (उसे) हटा॥८॥

—रात्रि १०।१२७

११. लोपामुद्रा—

१८. (लोपामुद्रा)—"पहिले वर्षों दिन-रात, बुढ़ापा डालनेवाली उषाओंको मैं सहती रही। बुढ़ापा शरीर-सौन्दर्यको भी नष्ट कर देता है। पति पत्नी के पास (पहुँचे) जाये॥१॥
"जो पुराने सत्यवान थे, देवोंके पास सत्य बोलते थे, उन्हें काल पर अस्त नहीं पाता। फिर०"॥२॥

न मृषा श्रान्त यदवन्ति देवा विश्वा इत्स्पृधो अभ्यश्नवाव।
जयावेदग्र शतनीथमाजि यत् सम्यचा मिथुनावभ्यजाव ॥३॥

नदस्य मारुधत काम आगन्नित आ जातो अमुत कुतश्चित्।
लोपामुद्रा वृषण नीरिणाति धीरमधीरा धमति श्वसन्ते ॥४॥

—१।१७९

१२ वसुक्र-पत्नी—

१९ विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वशुरो नाजगाम।
जक्षीयाद् धाना उत सोम पपीयात् स्वाशित पुनरस्त जगायात् ॥१॥

—१०।२८

१३ वाक्—

२० अह रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वेदेवै ।
अह मित्रावरुणोभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥१॥

अहमेव स्वयमिद वदामि जुष्ट देवेभिरुत मानुषेभि ।
य कामये तन्तमुग्र कृणोमि त ब्रह्माण तमृषि त सुमेधा ॥५॥

—१०।१२५

१४ विवृहा—

२१ अक्षीभ्या ते नासिकाभ्या कर्णाभ्या छुबुकादधि।
यक्ष्म शीर्षण्य मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१॥

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्य कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्म दोषण्यमसाभ्या बाहुभ्या वि वृहामि ते ॥२॥

—१०।१६३

(अगन्म्य)—हम व्यर्थ नहीं थके, जो कि देव लोग (हमारी) रक्षा करते हैं। हम सारे भोगोंको पा रहे हैं। यहां (हम) सैकड़ों पायें, यदि दोनों ठीकसे प्रयास करें ॥३॥

कामको मैंने रोका है, पर यहां-वहां करनेसे वह उत्पन्न होता है। लोपामुद्रा पतिका संगम करती है। उनास होती वह अधीर धीर का नुवन करती है ॥४॥

—लोपामुद्रा, १।१७९

१२. वसुक्र-पत्नी—

१९. दूसरे सारे मित्र आये, (पर) मेरा ससुर यहां नहीं आया, कि वह भुना दाना खाता, और सोम पीता, अच्छी तरह खाकर पुनः (अपने) घर जाता ॥१॥

—वसुक्र-पत्नी, १०।२८

१३. वाक्—

२० मैं रुद्रों, वसुओंके साथ, मैं आदित्यों और सारे देवोंके साथ विचरण करती हूं। मैं मित्र और वरुण दोनोंको धारण करती हूं। मैं इन्द्र-अग्नि और दोनों अश्विनोंको (धारण करती हूं) ॥१॥

मैं स्वयं ही देवताओं और मनुष्योंको पास कर यह कहती हूं जिसे मैं चाहती हूं, उसे उग्र, उसे ब्रह्मा, उसे ऋषि उसे सुमेधा बनाती हूं ॥५॥

—वाक् १०।१२५

१४. विभूहा—

२१ तेरी दोनों आंखोंसे, दोनों नासिकाओं, दोनों कानोंसे, इन्द्रियोंसे उत्पन्न, मस्तिष्कसे, जिह्वासे, शीर्षस्थानसे तेरे वर्चस् (तेज) को मैं हर लेता हूं ॥१॥ (१२।१।१)

तेरी पीठसे, पसलियोंसे, इन्द्रियोंसे उत्पन्न, दोनों जांघों, दोनों बाहुओं, हाथोंसे तेरे वर्चस्को मैं हर लेता हूं ॥२॥ (१२।१।२)

—विभूहा, १०।१२३

१५ विश्पला—

२२ अभूदिद वयुनमोषु भूपता रथो वृषण्वान्मदता मनीषिण ।
धिय जिन्वा धिष्ण्या विश्पल॰ वसू दिवो नपाता सुकृते शुचिव्रता ॥१॥
—१।१८२

१६ विश्ववारा—

२३ समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत् प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया विभाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवा ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
स जास्पत्य सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभितिष्ठा महासि ॥३॥
—५।२८

१७ शची पौलोमी—

२४ उदसौ सूर्यो अगादुदय मामको भग ।
अह तद्विद्वला पतिमभ्यसाक्षि विषासहि ॥१॥

अह केतुरह मूर्धा'हमुग्रा विवाचनी ।
ममेदनु क्रतु पति सेहानाया उपाचरेत् ॥२॥

मम पुत्रा शत्रुहणो'थो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सजया पत्यौ मे श्लोक उत्तम ॥४॥
—१०।१५९

१८. शश्वती—

२५. अन्वस्य स्युर ददृशे पुरस्तादनस्य ऊरुरवरम्वमाण ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजन विभर्षि ॥३४॥
—८।१

१५. विश्पला—

२२. यह काम था। हे मनीषियो, खुश होओ, (अश्विनोंका) घोड़ोंवाला रथ आया। वह हृदयहारी, कमनीय, शुचिव्रत, योंकी सतान, सुकर्मा विश्पलाके हितू है ॥१॥

—विश्पला, १।११८२

१६. विश्ववारा—

२३ प्रज्वलित अग्नि द्यौ लोकमें किरणोंको फैलाता है, उषाके सामने विस्तृत शोभा देता है। हवि और नमस्कारके साथ देवोंको पूजती विश्ववारा (सब वरोंको लानेवाली) सुवा दिशाकी ओर जाती है ॥१॥

हे अग्नि, महान् सौभाग्यके लिये (शत्रुओंको) नाश करो। तुम्हारे प्रकाश उत्तम हो, दाम्पत्य (सम्बन्ध) को तुम सुनियमित करो। शत्रुता करनेवालोंके तेजको नष्ट करो ॥३॥

—विश्ववारा, ५।२८

१७. शची पुलोमा-पुत्री—

२४. वह सूर्य उगा, (मानो) यह मेरा भाग्य उगा। उसे जानते मुझ विजयिनीने पतिको (अपने) वशमें कर लिया ॥१॥

मैं केतु (ध्वज) हू, मैं मस्तक हू। मैं उग्र पत्नी हू, मुझ दबंगको इन्द्रके अनुसार पति चले ॥२॥

मेरे पुत्र शत्रुहन्ता है, और मेरी दुहिता रानी है। मैं जयंता (जीतने-वाली) हू। पतिके पास मेरा उत्तम प्रचार (प्रसार) है ॥३॥

—शची, पुलोमा-पुत्री, १०।१५९

१८. शश्वती—

२५ फिर अग्नि-सहित विस्तृत [illegible] सामने शश्वती नारीने देखकर कहा 'हे नार (नर) वरित्र भोग भोगा करते हैं' ॥३८॥

—शश्वती, ८।१

१९. शिखंडिनी काश्यपी—

२६ स नो मदाना पत इन्दो देवप्सरा असि।
सखेव सख्ये गातुवित्तमो भव ॥५॥

सनेमि कृण्यस्मदा रक्षस क चिदत्रिण।
अपादेव द्वयुमहो युयोधि न ॥६॥

—९।१४०

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धयाग्नि समिध्यते श्रद्धया हूयते हवि।
श्रद्धा भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१॥

प्रिय श्रद्धे ददत प्रिय श्रद्धे दिदासत।
प्रिय भोजेषु यज्वस्विद म उदित कृधि ॥२॥

यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे।
एव भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदित कृधि ॥३॥

—१०।१५१

२१. सरमा—देखो (६।१९)

२२ सार्पराज्ञी—

२८ मयोभूर्वातो अभि वातूत्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ता।
पीवस्वतीर्जीवधन्या पिवन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१॥

या देवेषु तन्वमैरयन्त यासा सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
ता अस्मभ्य पयसा पिन्वमाना प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३॥

—१०।१६९

२३ सिकता—देखो निवावरी १७।८

२४ सुदेवी—

२९ याभि पत्नीर्विमदाय न्यूहथुराघ वा याभिररुणीरशिक्षत।
याभि सुदास ऊहथु सुदेव्य ताभिरप्सु ऊतिभिरश्विना गत ॥१९॥

—१।११२

परिशिष्ट १ ऋचायें

१९ शिरंठिनी काश्यपी—

२६ वह हमारे मर्दोंके पति हैं सोम, तुम देव-भोजन हो। सखाको सखाकी तरह (तुम हमारे लिये) अत्यन्त हित-ज्ञ होओ ॥५॥

२०. श्रद्धा कामायनी—

२७ श्रद्धासे अग्नि प्रज्वलित होता है, श्रद्धासे हवि होम की जाती है। एश्वर्यके शिखर पर रहनेवाली श्रद्धाको मैं वचनसे जतलाती हूं ॥१॥ हे श्रद्धे, देनेवालेका प्रिय करो। हे श्रद्धे, देनेकी इच्छावालेका प्रिय करो। भोज देनेवालो (भोजो) का प्रिय करो। यज्ञ करनेवालोंमें मेरे इस कथनको (पूरा) करो ॥२॥ जैसे देवताओंने, उग्र अनुरोधसे (शत्रुताकी) श्रद्धा की, ऐसे ही भोजो और यजकर्त्ताओंमें हमारे वचनको करो ॥३॥ —श्रद्धा, १०।१५१

१ गरमा—देखो ६।१६

१२ सार्पराज्ञी—

२८ सुगमय वायु गायोंपर बहे, वह बलदायक वनस्पतियोंको लायें, मोटा करनेवाले, आयु बढ़ानेवाले (जल) को पीयें। हे रुद्र, पैरोंवाली (गायों) के लिये भोजन सुखमय बनाओ ॥१॥ जो गौयें अपने शरीरको देवोंके लिये देती हैं, जिनके सारे रूपोंको सोम जानता है, सन्तानवाली हों, हमें दूधसे पूर्ण करती उन (गायों) को हे रुद्र, (हमारे) गोष्ठमें रखो ॥२॥ —सार्पराज्ञी १०।१६०

२३ सिकता—देखो निवावरी १७।८

२४ सुदेवी—

२९ हे अश्विनद्वय, जिन सारावाली नाव जिसके लिये तुम दोनों नाव जिसको लाओ सारे प्रजा की, जिससे सुदासको लिये सुदेवीको तुम सारे, उन सारावाली नाव सारे आओ ॥६॥ —कुल आश्विन, १।११८

२५ सूर्या—

३० सत्येनोत्तभिता भूमि सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रिति ॥१॥

सोमेनादित्या बलिन सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामपस्थे सोम आहित ॥२॥

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाययैति परिष्कृत ॥६॥

चित्तिरा उपबर्हण चक्षुरा अभ्यजनं।
द्यौर्भूमि कोश आसीद्यदयात् सूर्या पतिं ॥७॥

स्तोमा आसन् प्रतिधय कुरीर छन्द ओपश।
सूर्याया अश्विना वराग्निरासीत् पुरोगव ॥८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत् पत्ये शसन्ती मनसा सविता ददात् ॥९॥

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुता छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्ता यदयात् सूर्या गृह ॥१९॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहत।
अनो मनस्मय सूर्यारोहत् प्रयती पति ॥१२॥

सूर्याया वहतु प्रागात् सविता यमवासृजत्।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्यो पर्युह्यते ॥१३॥

सुकिंशुक शल्मलि विश्वरूप हिरण्यवर्ण सुवृत सुचक्र।
आरोह सूर्ये अमृतस्य लोक स्योन पत्ये वहतु कृणुष्व ॥२०॥

उदीर्ष्वात पतिवती ह्येषा विश्वावसु नमसा गीर्भिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृपद व्यक्ता स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि ॥२१॥

परिशिष्ट १ ऋचायें

५५. सूर्या—

३० सत्य द्वारा भूमि थामी गई, सूर्य द्वारा द्यौ थामा गया। ऋत (सत्य) द्वारा देव आदित्य द्यौमें स्थित है, द्यौमें सोम आश्रय प्राप्त है ॥१॥
सोमसे आदित्य बली है, सोममें पृथिवी महान् है। और इन नक्षत्रोंके पास सोम रक्खा गया है ॥२॥
रैभी (ऋचायें) अनुदेयी (वधूके साथ अनुदान को जानेवाली सखी) थी, नाराशंसी (ऋचायें) (वहूकी) दासी थी, सूर्याका वढिया वस्त्र गाथासे परिष्कृत था ॥६॥
जब सूर्या पतिके पास गई, तो चिन्तन तकिया था, चक्षु अंजन था। द्यौ-पृथिवी कोश थे ॥७॥
स्तोम चक्रोके अरे थे, कुरीर छन्द ओरश (सीसफूल) था। सूर्याके वर अश्विद्वय थे, अग्नि अगुआ था ॥८॥
सोम व्याह-रज्जुक था, दोनो अश्विद्वय वर थे। जब पतिकी कामना करनेवाली सूर्याको सवितासे अश्विनोंको मनमें दिया ॥९॥
जब सूर्या (पतिके) घर गई, तो मन इनका घाट था, और द्यौ छत (ओहार) थी। दोनो शुक्र (ग्रहो) दो बैल थे ॥१०॥
जाती हुई तेरे चक्रोके धुरेमें वायु पटा था। पतिके पास जाती सूर्या मनोमय रथपर चढी ॥१२॥
सवितासे जिसे प्रदान किया, वह सूर्याकी बगलके आगे-आगे चला। सभी नक्षत्रोमें बैल मारे गये, अर्जुनी-(फाल्गुनी) पूर्वा-उनका में वह ब्याही गई ॥१३॥ (१६।१७)
हे सूर्ये, नाना रूपों सुनहले, सुआच्छादित, विश्वा-नेमको सुन्दर चक्रवाले (रथपर) चढ। जाकर पतिको सुखमय अमृत लोक जानेके लिये बना ॥२०॥
दिवावसु (सायं वसुओं) को नमस्कारपूर्वक वाणीसे मैं प्रार्थना करता हूं—तुम यहांसे उठो। यह पत्नियां हैं। तुम जिसके पास बैठो इसके रोगियार बच्चोंकी कामना करो, यह पुराना भाग है। उसके पतिको दूसरे ॥२१॥

सुमगलीरिय वधूरिमा समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्वायाथास्त वि परेतन ॥२३॥

इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुत।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे ॥४२॥

इमा त्वमिन्द्र मीढ्व सुपुत्रा सुभगा कृणु।
दशास्या पुत्रानाधेहि पतिमेकादश कृधि ॥४५॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वा भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

—१०।८५

अध्याय १८

भाषा और काव्य

§१. भाषा

१ भरद्वाज—

१ त्व ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता।
त्व मी वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीळ्य सन्।
त त्वा नर प्रथम देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनुग्मन् ॥२॥

—६।१

२ रक्षोहा—

२. ब्रह्मणाग्नि सविदानो रक्षोहा वावतामित।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१॥

यह सुमंगली वधू है, आकर इसे तुम देखो। इसको सौभाग्य प्रदान कर अपने-अपने घरोंको जाओ ॥३३॥
दोनों (पति-पत्नी) यहीं रहें, न बिछुड़ें, सारी आयुको प्राप्त करें। पुत्र और नातियोंके साथ खेलते अपने घरमें प्रमुदित रहें ॥४२॥
हे सिंचन-समर्थ इन्द्र, इस (वधू) को सुपुत्रा सुभगा बनाओ। इसमें दस पुत्रोंको धारण करो, (और) पतिको ग्यारहवां बनाओ ॥४५॥
हे वधू, तू ससुरपर सम्राज्ञी हो, सासपर सम्राज्ञी हो। ननदपर सम्राज्ञी हो, देवरोंपर सम्राज्ञी हो ॥४६॥

—सूर्या, १०।८५

अध्याय १८

भाषा और कविता

§ १ भाषा

१. भरद्वाज—

१ हे अग्नि, तुम इस बुद्धिके प्रथम मननकर्ता, अद्भुत होता हो। हे पराक्रमी, तुम (हमारे भीतर) दुर्मति सारे बल फेंक दो, (जिससे) सारे दुर्मनोंको हम पराजित करें ॥१॥
स्तुति-योग्य होता, पूजनीय हो तुम पूज्यस्थानमें अग्नि जैसे विराजो। महाधनकी इच्छा करते तुम्हें प्रधान देव मानते (नर) तुम्हारा अनुगमन करते हैं ॥२॥

—भरद्वाज, ६।१

२. रक्षोहा—

२ राक्षसहन्ता (अग्नि) (हमारे) अन्न (ऋचा, स्तुति) के साथ रह हो, यज्ञमें तुम्हारे गर्भमें आ जाय, वेदिस्थानमें दुर्मति (रोग) के उसे छुड़ाये ॥१॥

यस्ते गर्भममीवादुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्ट ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२॥

—१०।१६२

§२. छन्द

३. कासीत् प्रमा प्रतिमा किं निदानमाज्य किमासीत् परिधि क आसीत्।
छन्द किमासीत् प्रउग किमुक्थं यद्देवा देवमयजन्त विश्वे ॥३॥

अग्नेर्गायत्र्यभवत् सयुग्वोष्णिहया सविता स वभूव।
अनुष्टुभा सोम उक्थैर्महस्वान् बृहस्पतेर्बृहती वाचमावत् ॥४॥

विराणिमत्रावरुणयोरभिश्रीरिन्द्रस्य त्रिष्टुबिह भागो अह्न।
विश्वान् देवान्जगत्या विवेश तेन चाकल्पृ ऋषयो मनुष्या ॥५॥

—१०।१३०

३. रचना

१. वाणी—

४. इन्द्र वाणीरनुत्तमन्युमेव सखा राजान दधिरे सहध्यै।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥१२॥

—७।३१

२ सूक्त—

५. का ते अस्त्यरङ् कृति सूक्त. कदा नून ते मघवन् दाशेम।
विश्वा मतीरा ततने त्वा याधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३॥

—७।२९

जो तेरे गर्भमें रोग, योनिस्थानमें दुर्णामा (उपद्रव) है, ब्रह्म (ऋचा) के साथ अग्नि उसे अ-मांसभक्षी बना नष्ट कर दे ॥२॥

—रक्षोहा ब्रह्म-सूक्त, १०।१६२

§ २ छन्द

३ जब सारे देवोंने देव (प्रजापति) का यजन (भजन) किया, तब प्रमा (सीमा)-प्रतिमा क्या थी ? क्या निदान (कारण), क्या घी था, परिधि (घेरा) क्या थी ? छन्द क्या था ? उक्थ (गान) क्या था ॥१॥

अग्निकी सहकारी गायत्री हुई, उष्णिक्के साथ सविता एक हुआ। सोम अनुष्टुप्से, उक्थों द्वारा तेजस्वी (सूर्य), बृहतीने बृहस्पतिके वाक्यको अवलम्ब दिया ॥४॥

विराट् मित्र-वरुणका अवलम्ब हुआ, इन्द्र और दिनके भागका यज्ञ त्रिष्टुप् (आश्रय) हुआ। सारे देवोंमें जगतीने प्रवेश किया। उनसे ऋषियों और मनुष्योंने यज्ञ किया ॥५॥

—यज्ञ प्रजापति-सूक्त, १०।१३०

§ ३. रचना

१. वाणी—

४ वाणीने अप्रतिहत-ओज, इन्द्रको दबानेके लिये सहारे वाला यज्ञ स्थापित किया। इन्द्र (अध्वपति इन्द्र) के लिये भक्तोंको बढ़ाओ ॥१२॥

—खिल, ७।३१।

२. सूक्त—

५. हे मघवन्, जब हम सूक्तों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं तब तुम्हारी क्या तुष्टि होती है ? तुम्हारे लिये सारी प्रजायें हम स्तोता हैं। हे इन्द्र, मेरी स्तुतियोंको सुनो ॥३॥

—खिल, ७।२९।

६ प्र सा वाचि सुष्टुतिर्मघोनामिद सूक्त मरुतो जुषत।
आराच्चिद् द्वेषो वृषणो युयोत यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥६॥
—७।५८

३ श्लोक—

७ मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततन । गाय गायत्रमुक्थ्य ॥१४॥
—१।३८

४ साम—

८ उप नो देवा अवसा गमन्त्वगिरसा साममि स्तूयमाना ॥२॥
—१।१०७

९ प्रदक्षिणि दभिगृणन्ति कारवो वयो वदन्त ऋतुथा शकुन्तय ।
उभे वाचौ वदती सामगा इव गायत्र च त्रष्टुभ चानुराजति ॥१॥
—२।४३

१० प्रस्तोपदुप गासिषच्छ्रवत् साम गीयमान । अभि राधसा जुगुरत् ॥५॥
—८।७०

५ स्तोम—

११ अश्रव हि भूरिदावत्तरा वा वि जामातुरुत वा घा स्यालात् ।
अथासोमस्य प्रयती युवभ्यामिन्द्राग्नी स्तोम जनयामि नव्य ॥२॥
—१।१०९

§४ काव्य

उपमा —

१२. ग्रावाणेव तदिदर्य जरेये गृध्रेव वृक्ष निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणा वे विदथ उक्थशासा दूतेव ह्व्या जन्या पुरुत्रा ॥१॥

६. हे मरुतो, महानोंका जो यह सूक्त है (इसे) स्वीकार करो। हे कामनावर्षी, शत्रुओंको दूर हटाओ, तुम स्वस्तिपूर्वक सदा हमारी रक्षा करो ॥६॥ —वसिष्ठ, ७।५८

३. श्लोक—

७ मुखमें श्लोक बनाओ, मेघकी तरह (उसे) फैलाओ, गायत्र गान गाओ ॥१४॥ —कण्व घौर-पुत्र, १।३८

४ साम—

८ सामों द्वारा स्तुति किये जाते देव सहायताके साथ हमारे पास आयें ॥२॥ —कुत्स आंगिरस, १।१०७

९ जैसे ऋतुओंमें पक्षी बोलते हैं, वैसे वाहिनी और कवि स्तुति करते हैं। गायत्र और वैष्टुप्को सामगायक, दोनों वाणियोंको बोलता वैसे अनुरंजन करता है ॥१॥ —गृत्समद शुनहोत्र-पुत्र, २।४३

० स्तवन हो, गान हो, इन्द्र, गीयमान सामको सुने। वह धनसे हमारे ऊपर कृपा करे ॥५॥ —कुशिकी कण्व-पुत्र, ८।७०

५. स्तोम—

११. हे इन्द्राग्नि, सुना है तुम दामाद और सालेसे भी ज्यादा देनेवा हो। इसलिए सोमके प्रदानके समय तुम्हारे लिये मैं नवीन स्तो रचता हूं ॥२॥ —कुत्स आंगिरस, १।१

§४ काव्य

उपमा—

१२ (अग्निदेव) इसके लिये (सोमके) सिन्धुओंकी तरह स्तुति धाराओंको बहा दो, बछड़ेकी तरह निश्चिन्त बूढ़ेको प्राप्त बछड़ेकी तरह यज्ञमें उनको (गौर) गायोंके हो, स्तुत्य प्रदानके नायक होओ ॥१॥

प्रातर्यावाण रथ्येव वीरा'जेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वा शुभमाने दपतीव ऋतु विदा जनेषु ॥२॥

शृगेव न प्रथमा गन्तमर्वाक् शफाविव जर्भुराणा तरोभि ।
चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्रावाचा यात रथ्येव चक्रा ॥३॥

नावेव न पारयत युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूना खृगलेव विस्रस पातमस्मान् ॥४॥

वातेवाजुर्या नद्येव रीतिक्षी इव चक्षुपा यातमवाक्।
हस्ताविव तन्वे शभविष्ठा पादेव नो नयत वस्यो अच्छ ॥५॥

ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यत जीवसे न ।
नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमस्मे ॥६॥

हस्तेव शक्तिमभिसन्ददी न क्षामेव न समजत रजासि ।
इमा गिरो अश्विना युष्मयन्ती क्षोत्रेणेव स्वधिति सशिशीत ॥७॥

एतानि वामश्विनो वर्धनानि ब्रह्म स्तोम गृत्समदासो अक्रन्।
तानि नरा जुजुषाणोपयात बृहद्वदेम विदथे सुवीरा ॥८॥

—२।३९

१३ कि देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान्।
अशीळन् क्रीळन् हरिरत्तवे दन् विपर्वशश्चकर्त गामिवासि ॥६॥

—१०।७९

हे वीरो, प्रात जानेवाले रथियोंकी तरह तुम दोनों हो, दो जुड़वा बकरोंकी तरह, दो नुदन्तियोंकी तरह शरीरसे शोभा-युक्त चतुर दम्पतीकी तरह जनोंके पास आओ ॥२॥

हे प्रधान (अश्विद्वय), सींगकी तरह, दो सूगेकी तरह, हर प्रात हमारे पास आओ। हे शक्तिशाली, चक्रवाककी तरह या दो रथियोंकी तरह हमारे पास आओ ॥३॥

नावोंकी तरह हमें तुम पार कर दो, रथकी नाभि, चक्र, अराकी तरह (हमें पार कर दो)। कुत्तोंकी तरह शरीरको हानिसे बचाओ, दो वैनाग्नियोंकी तरह हमें क्षतिसे बचाओ ॥४॥

तुम वायुकी तरह न जीर्ण होनेवाले, नदीकी तरह शीघ्रगामी, दो नेत्रोंकी तरह दर्शक हो, तुम हमारे पास आओ। दोनों हाथोंकी तरह तुम शरीरके सुखदाता, पैरोंकी तरह हमें श्रेष्ठ पथके लिये ले चलो ॥५॥

मुखमें ओष्ठोंकी तरह मधुर वचन बोलो, दो स्तनोंकी तरह जीनेके लिये हमें दूध पिलाओ। दो नासिकाओंकी तरह हमारे शरीरके रक्षक, दो कानोंकी तरह हमारे सुन्दर श्रोता बनो ॥६॥

दो हाथोंकी तरह हमें शक्ति प्रदान करो। भौंहोंकी तरह पलकोंको मिलाओ। हे अश्विद्वय, ये पलिया तुम्हें चाहती हैं, (इन्हें) घानकी तरह तेज करो ॥७॥

हे अश्विद्वय, गृत्समदोंने तुम्हारे लिये ये मन्त्र और स्तोम बनाये। हे नरो, उत्तम मेधा करते (हमारे) पास आओ। हम सोमके इस सभामें (तुम्हारी) प्रशंसा करें ॥८॥

—ऋग्वेद २।३९

१३. हे अग्नि, इस देवोंके निमित्त तुमने कब किस [illegible] मैं तुमसे पूछता हूँ। सोनेके न सोनेके मुकुटके, देवताके तुल्य [illegible] पलवार जैसे [illegible] ॥६॥

—अग्नि सूक्त-ऋग्वेद, १०।१५,

१४ त्वेपस्ते धूम ऋण्वति दिविषन्छुक्र आतत ।
सूरो न हि द्युता त्व कृपा पावक रोचसे ॥६॥

अधा हि विक्ष्वीड्योसि प्रियो नो अतिथिः।
रण्व पुरीव जूर्य सूनुर्न श्रययाय्य ॥७॥

—६।२

१५ तिग्म चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमान परशुर्न जिह्वा द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यन् छिशीत तेजोयसो न धा।

नि गावो गोष्ठे असदन्नि मृगासो अविक्षत ।
नि केतवो जनाना न्यदृष्टा अलिप्सत ॥४॥

—१।१९१ अगस्त्य

घृणा न यो ध्रजसापत्मना यन्ना रोदसी वसुना द सुपत्नी ॥७॥

घायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभि शुष्मै ।
शर्धो वा यो मरुता ततक्ष ऋभुर्न त्वेपो रभसानो अद्यौत् ॥८॥

—६।३

§५ कवि

१ वसिष्ठ—

१६ व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमगिरस्तमा पथ्या अजीग ॥१॥

एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उपसो अमृतास आगु ।
जनयन्तो देव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थु ॥३॥

एषा स्या युजाना पराकात् पच क्षिती परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनाना दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

१४ (हे अग्नि,) तुम्हारा दीप्तिमान् उज्वल धूम द्यौलोकमें विस्तृत फैला है। हे पावक, कृपालु हो (अपनी) द्युतिसे तुम सूर्यकी तरह प्रकाशते हो ॥६॥

घरोंमें तुम हमारे पूज्य प्रिय अतिथि हो। गर्भमें वृद्ध जैसे प्रजन्य, सूनुकी तरह रक्षा-इच्छुक हो ॥७॥

—भरद्वाज, ६।२

१५ तीक्ष्ण इसका आकार है, महान् शरीर है, अन्धकी तरह मुहसे तृण-काष्ट खाता है, कुठारकी तरह जिह्वाको छोलता है, फलछीकी तरह काष्टको जलाते भगाता है ॥४॥

रात्रिका संक्षिप्त और सुन्दर वर्णन देखिये—

गायें गोष्ठमें बैठ गईं। मृग अपने स्थानोंमें प्रवेश कर गये। आदमियों-की आंखें बुझ गईं। अदृष्ट चीजोंने मुझे लिप्त कर दिया ॥८॥

—अगस्त्य, १।१९१

जो बिजलीकी तरह धारण जाती किरणों, और अपने बलों द्वारा प्रकाशित होता है। मल्लोंके वाग्मिल्लोरी तरह जो गया, सूनुकी तरह दीप्तिमान् (वह अग्नि) वेगसे प्रकाशता है ॥८॥

—भरद्वाज, ६।२

§ ५ कवि

१. वसिष्ठ—

१६ द्यौषुकी उषा चमकी, (वह) सत्यसे अपनी महिमा आविष्कार करती आई। अग्नि द्वेषी तमको दूर किया, श्रेष्ठतम अग्निसे पथको जाया ॥१॥

उषाकी वह वे विचित्र दर्शनीय अमृत किरणें आईं (और) सिद्ध प्रवोंको उत्तम करती अन्धियारे भगती उठी ॥३॥

वह यह द्यौषी दुहिता, भुवनकी संधिता, उषा दृश्य (रूप) होती, जनोंके कामोंको उत्पन्न करती, तुरन्त सबको स्वीकार करने और पहुंचती है ॥४॥

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूना।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५॥

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्त ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्न विधते जनाय ॥६॥

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रै ।
रुजद्दृह्ळानि ददुस्रियाणा प्रति गाव उपस वावशन्त ॥७॥

नू गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत् पुरुभोजो अस्मे।
मा नो वर्हि पुरुषता निदे कर्यूय पात स्वस्तिभि सदा न ॥८॥
—७।७५

२. विश्वामित्र—

१७ उषो वाजेन वाजिनि प्रचेता स्तोम जुषस्व गृणतो मघोनि।
पुराणी देवि युवति पुरन्धिरनुव्रत चरसि विश्ववारे ॥१॥

उषो देव्यमर्त्या विभाहि चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आ त्वा वहन्तु सुयमासो अश्वा हिरण्यवर्णां पृथुपाजसो ये ॥२॥

उप प्रतीची भुवनानि विश्वोर्ध्वा तिष्ठस्यमृतस्य केतु ।
समानमर्थं चरणीयमाना चक्रमिव नव्यस्याववृत्स्व ॥३॥
—३।६१

३. वामदेव—

१८. इदमु त्यत् पुरुतम पुरस्ताज्ज्योतिस्तमसो वयुनावदस्यात्।
नून दिवो दुहितरो विभातीर्गातुं कृणवन्नुषसो जनाया ॥१॥

घोड़ियोंवाली विचित्र प्रभा-युक्त सूर्य-पत्नी वसुओं और धनपर शासन करती है। (जरा-)जीर्ण करती, ऋषियोंसे प्रशंसित, ऋत्विजों द्वारा स्तुति की जाती धनों उषा प्रकाशित होती है ॥५॥

प्रकाशमान उषाको वहन करते विचित्र लाल अश्व दिखाई दे रहे हैं नाना रूपोंवाली (वह) शुभ्रा रथमें जाती (सेवक) उनके लिये रत्न देती है ॥६॥

वह सत्या सत्योंके साथ, महती महानोंके साथ देवी देवोंके साथ, पूज्या पूजनीयोंके साथ, दृढ़ (दुर्गों) को भेदन करती, गौओंको (चारा) देती है। गायें उषाके लिये हुंकारती हैं ॥७॥

हे उषा, हमें तुम गो-युक्त, वीरों-युक्त रत्न दो, अश्व-युक्त बहुत भोग दो। हमारे कुलको पुरुषोंकी निंदासे बचाओ। (देवताओं), तुम सदा स्वस्तिके साथ हमारी रक्षा करो ॥८॥

—वसिष्ठ, ७।७५

विश्वामित्र—

हे शक्तिसे शक्तिमती, ज्ञानवाली, मघोनी उषा, स्तुतिकर्ताके स्तोम (स्तुति) को ग्रहण करो। प्राचीन युक्ती, वह बलिष्ठा, सबके लिये वरणीया है देवि, (तुम) प्रकाश अनुगमन करती हो। ॥१॥

हे उषा, अमर देवि, सुनहले रथवाली, (तुम) मनुष्योंकी प्रीति करती हो। सुरांवाले तुम्हें सुशिक्षित बहुत कशावाले अश्व वहन करें ॥२॥

हे उषा, तुम सारे भुवनोंके लिये अमृतकी रक्षा भी प्रकाशित करो। हे सनीता, एक ने अनेक विचरण करती करती सदा तुम पुनः-पुनः घूमा ॥३॥

—विश्वामित्र, ३।६१

वामदेव—

[illegible] प्रकाशित हो रही है ॥१॥

अस्थुरु चित्रा उपस पुरस्तान्मिता इव स्वरवो'ध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वारोच्छन्तीरव्रन्छुचय पावका ॥२॥

उच्छन्तीरद्य चितयन्त भोजान्रावोदेयायोषसो मघोनी ।
अचित्रे अन्त पणय. ससन्त्वबुध्यमानास्तमसो विमध्ये ॥३॥

यूय हि देवीर्ऋतयुग्भिरश्वै परिप्रयाथ भुवनानि सद्य ।
प्रबोधयन्तीरुषस ससन्त द्विपाच्चतुष्पाच्चरथाय जीव ॥५॥

क्व स्विदासा कतमा पुराणी यया विधाना विदधुर्ऋभूणा।
शुभ यच्छुभ्रा उपसश्चरन्ति न विज्ञायन्ते सदृशीरजुर्या ॥६॥

—४।५१

१९. प्रतिष्या सूनरी जनी व्युच्छन्ती परि स्वसु । दिवो अदर्शि दुहिता ॥१॥

अश्वेव चित्रारुषी माता गवामृतावरी। सखाभूदश्विनोरुषा ॥२॥

उत सखास्यश्विनोरुत माता गवामसि। उतोषो वस्व ईशिषे ॥३॥

यावयद् द्वेषसन्त्वा चिकित्वित् सूनृतावरि। प्रति स्तोमैरभूत्महि ॥४॥

प्रति भद्रा अदृक्षत गवा सर्गा न रश्मय । ओषा अप्रा उरु ज्रय ॥५॥

आपप्रुषी दिवावरि व्यावर्ज्योतिषा तम । उषो अनु स्वधामव ॥६॥

—४।५२

२०. देखो ७।६

२१ विधु दद्राण समने बहूना युवान सन्त पलितो जगार।
देवस्य पश्य काव्य महित्वा' द्या ममार स ह्य समान ॥५॥

—१०।५५

यज्ञोंमें सटे यूपोंकी तरह मित पूर्वमें विचित्र उषायें उगी। बाधक अंधकारके द्वारको खोलती वह दीप्त पवित्र प्रकाशित होती है ॥२॥
तमनाशिका, मघोनी (धनवती) उषायें धन देनेके लिये भोजोंको चेताती हैं। पणि लोग अन्धकारके मध्यमें जागे बिना बेहोश सोये रहें ॥३॥
हे उषा देवियो, सोये दोपाये-चौपाये जीवोंको जगाती सत्यके जुडे अश्वोंके साथ तुरन्त भुवनोंके चारो ओर जाती हो ॥५॥
जिसने ऋभुओंके विधान बनाये, वह कौन उनमें पुरानी है ? (जब) शुभ्र उषायें विचरण करती हैं, तो वह अजरा एकनमान (होनेसे) पहचानी नहीं जाती ॥६॥

—वामदेव, ४।५१

१९ वह प्रशंसित हर्षदा सुनायिका, अन्धकारनाशिनी, चौडी दुहिता अपनी बहिन (रात्रि) को हटाती दिखाई पडी ॥१॥
घोडी सी विचित्र लाल, गायोंकी माता, तेजस्वी उषा अग्निवर्णी सजी हुई ॥२॥
हे उषा, तू अग्निवर्णी सजी है, या गायों (किरणों) की माता, या तुम धनकी अधीश्वरी हो ॥३॥
द्वेषोंको हटाती सी, तेरे बारेमें सोचते, हे हर्षिणी, हम स्तोमों (स्तुतियों) से तुझे मिलनेके लिये जगते हैं ॥४॥
गायोंके झुंड सी (उषाएँ) भद्र किरणें दिखाई दीं। उषाने अपने विस्तृत तेजसे (दिशाओं) भर दिया ॥५॥
हे विभावरि (प्रकाशवती), (अपनी) ज्योतिर्मय अश्वों तुमने तमको दूर किया। हे उषा, अपनी प्रकृतिसे स्थल सजे ॥६॥

—वामदेव, ४।५२

२०. देखो ७।६

२१ बहुत पसार वाली सप्तमाता सदा हँसे दोनों उषा दिखा। देखे सप्तपदी वालकी देखो जो कल उदित थी वह आज गत हो गया ॥५॥

—वामदेव, १।५५

४ भौम—

२१. अच्छा वद तवस गीर्भिराभि स्तुहि पर्जन्य नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भं ॥१॥

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्व बिभाय भुवन महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्य स्तनयन् हन्ति दुष्कृत ॥२॥

रथीव कशयाश्वा अभिक्षिपन्नाविर्दूतान् कृणुते वर्ष्या अह ।
दूरात्सिहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्य कृणुते वर्ष्य नभ ॥३॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्व ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत पर्जन्य पृथिवी रेतसावति ॥४॥

यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपा स न पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

दिवो नो वृष्टि मरुतो ररीध्व प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धारा ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुर पिता न ॥६॥

अभिक्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परिदीया रथेन ।
दृति सु कर्ष विषित न्यच समा भवन्तूद्वतो निपादा ॥७॥

महान्त कोशमुदचा निषिञ्च स्यदता कुल्या विषिता पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावा पृथिवी व्युन्धि सुप्रपाण भवत्वघ्न्याभ्य ॥८॥

—५।८३

'४. भौम—

२१ हे इन वाणियोंसे बलकी प्रशंसा करो, नमस्कारपूर्वक पर्जन्यकी स्तुति करो। दानशील गरजता वृषभ (पर्जन्य) औषधियोंमें वीर्य धारण करता है॥१॥

वह वृक्षोंको नष्ट करता, मानो राक्षसोंको नष्ट करता है, महावधसे सारे भुवनको डराता है। वृष्टिवाले उनसे निरुपाय भी भागते हैं क्योंकि पर्जन्य शब्द करते दुष्टोंको मारते हैं॥२॥

रथीकी तरह चाबुकसे घोटोंको हाकता, (वृष्टि-) दूतोंको बढ़ाता, जब पर्जन्य नभको वर्षा-युक्त करता है, तो दूरसे निकली गर्जना उठती है॥३॥

वायु जोरसे बहते हैं, बिजलियां गिरती हैं, औषधियां उगती हैं, आकाश भर जाता है। सारे प्राणियोंके लिये पृथिवी समर्थ होती है, जबकि पर्जन्य पृथिवीको (अपने) वीर्यसे सहायता करता है।।४॥

जिसके व्रत (कर्म) से पृथिवी नम्र होती है, जिसके व्रतसे सुरोंसहित पोषित होते हैं, जिसके व्रत से औषधियां नाना रूपकी पैदा होती हैं, वह पर्जन्य हमें महाशक्ति प्रदान करे॥५॥

हे मरुतो, धौसे हमें वृष्टि प्रदान करो। वर्षा करनेवाले अज (मेघ) की धाराओंको बरसाओ। हे पर्जन्य, इस कटाहके पास पास आओ। हमारा पिता असुर जलसे सेचन करे॥६॥

आवाज करो, गरजो, गर्भ धारण करो, जलवाले रथसे परिक्रमा करो। चमड़े (मशक) को सींचो, बांधको मुक्त करो (जिससे) ऊबड़-खाबड़ प्रदेश समतल होवें॥७॥

महाशोक (मेघ) का ऊपर उठा सींचो, बन्धन-मुक्त कुल्याएं (नदियां) आगे बहें। उसके जो और पृथिवीको सिक्त करो, सो तेरे लिये सुन्दर स्वाद हो॥८॥

—भौम, सावेद, ५।८३

परिशिष्ट २

नाम-सूची[1]

अगस्त्य—५।१२ (वसिष्ठ), ५।६ (के लिये विश्पलाको), ५।६२-६६, ६।१६ (लाल घोडे जोडना)

अगिरा—५।७५ (प्रथम सुकृति), ७।११ (पूर्वज)

अघा—१७।३० (१३) (मघा)

अज—१०।२१ (यमुनाके पास सुदासके करद), ५।१५

अतिथिग्व (देखो दिवोदास भी)—२।७, १३, ५।५० (कुत्स और आयु साथी)

अत्रि—५।४८, ९।१ (दध्यड, अगिरा, प्रियमेध, कण्व, मनु पूर्वज), ९।१० (और गविष्ठिर, कण्व, त्रसदस्यु, वसिष्ठ साथ)

अथर्वा—५।७४ (मनु, दध्यङ्के साथ), ५।७५ (प्रथम यज्ञकर्ता)

अध्रिगु—२।१७, १२।१५ (के रक्षक अश्विद्वय)

अनु (जन)—१।५, २।११, २।१३, २।१४, २।१५, १०।१७।१४ (सुदासके शत्रु अनु और द्रुह्यके ६० हजार ६०६६ आदमी परुष्णीपर मरे), १०।१७ (सुदासके शत्रु, परतु दम राजाओमें नही, जिन्होने कि परुष्णीपर अधिकार किया था)

अपाला—३।८ (सूर्यत्वक् हुई)

अभ्यावर्ती—९।१६ (चायमान पार्थवो के सम्राट्ने वधुओ-सहित दो रथवाहन वीस गायें भरद्वाजको दी), ९।३५

अयास्य—६।१९ (अगिरस्, नवग्व)

अरुणी—१०।२३, १७।२९ (को विमदके लिये अश्विनी लाये)

अर्घदेव—९।३०।८, ९ (त्रसदस्यु)

अर्वावत्—१४।२१ (पूर्ववाले देशमें सोम छानना)

अलिन—२।१८, १०।१४ (दस राजाओमें २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ७ पक्थ, ८ भलान, ९ विपाणी, १० शिव)

अशुष—५।४९ (कुत्स-शत्रु दस्यु, शुष्ण, व्यस, पिप्रु, नमुचिके साथ), ५।५२, ६।२ (शुष्णके साथ वध), ८।२२ (श्वस्न, शुष्ण, व्यस, पिप्रु, रुधिका का मारा जाना), ८।२२ (शुष्ण, कुयवका कुत्सके लिये मारा जाना)

---

१. अङ्क अध्याय, अनुच्छेद के हैं

अश्विनौ (चुनाव)—१।१०, ५।४१
आंगिरस—६।१९।८ (अयास्य, नवग्व भी), ६।१९।१० (घोर भी)
आनव (अनुलोग)—२।१२, २।१६ (द्रोघवाक्), १०।१७।१३ (सुदास-शत्रुके स्थानको त्रित्सुओंको दिया, देखो अनु भी)
आपया—१।९ (सरस्वती नदी)
आयु—५।५० (कुल-अतिथिग्वका साथी), ५।८० (प्रियमेधोंमें, मेधातिथिकी ऋचामें), ५।८१।१६ (प्रियमेधोंमें), ९।१४, १७ (कुल अतिथिग्वका साथी)
आर्जीक—३।१९ (में सोम), १४।२१ (में सोम छानना, शायद ऋचीक-देश), १४।१९ (से सोम आये)
आर्जीकीया—१।१०
आर्जुनेय—(देखो कुल)
आर्य—२।१८, ९।५७ (और दास अग्निको इन्द्रने मारा), १४।१८ (सोमपान सबको आर्य बनाता)
इन्द्र—६।१७।२ (विप्रवान्, वज्रभृत्) ६।५७।१८ (मायावान्), ३।३२।३ (नृषिष), ३।४५।१४ (सप्तरश्मि अश्वोंवाला), ४।१५।१४ (आयुध-धारी), १५।३५।१ (वायुसे स्वागत), १०।३।१४ (पराये साठोंको खाता) १०।९३।८ (सुन-हली बाँधी-सुहोवाला)
उदवज—(जरा वर्षों और शवर मारे गये)
उर्वशी—५।१८ (वसिष्ठ), ७।३३।१० (पुरूरवाका प्रत्यक्ष गान करती), ७।३३७ (से पुरूरवाकी प्रार्थना), १७।८ (स्त्रियोंका नव्य भेड़ियोंका हृदय), १७।५ (के लौटनेके लिये पुरूरवाकी प्रार्थना)
उशना—२।८, ५।७५ (काव्य, गोतमके सूक्तमें), १७।८।७ (को अस्त्रिद्वय-उवाच)
ऋजिश्वा—८।१२ (के लिये पिप्रु मृगय, शुशुवानको मारा, ५० हजार कृष्णोंको नष्ट किया, पुरोंको ध्वस्त किया), ८।४० (वैदथी, पिप्रु-मृगय-हन्ता), ८।४३ (औशिजने पिप्रुके व्रजको नष्ट किया), ८।४४ (वैदथीके लिये पिप्रुको मारा, गोन्वीतिके सोमोंसे बढ़ाया पाकर) ८।४५ (के लिये दस्यु-हत्यामें पिप्रुको नष्ट किया), ८।४६ (ऋजिश्वा द्वारा वनके सौ पुरोंको नष्ट किया) ८।४७ (ऋजिश्वा ने कृष्ण-गर्भोंको मारा), ८।४८ (ऋजिश्वा ने सारी असुर पिप्रुसे गइ नष्ट किये), ८।४९ (वैदथीके लिये पिप्रु, मृगय, शुशुवान् तथा ५० हजार कृष्ण मारे), ८।५३ (औशिज ऋजिश्वाने पिप्रुके घर नष्ट किये), ८।४५ (को रक्षा दस्यु-हत्यामें पिप्रुको मार कर की), ८।४६-८७, ९।३८ (का वनके सौ पुरोंको नष्ट करना)
ऋक्षा—५।८।१२
ऋक्षाश्व—५।५८ (को दिवोदास जाया दिया)
ऋज्रवय—९।८।१२ (सोमोंसे पाक हुआ सप्त कवियों से), ९।८।१४ (सोमोंके द्वारा सप्त कवियों द्वारा

हजार घोडे दिये)
एतश—२।५, ५।८१ (को मारा)
औचथ्य (दीर्घतमा)—५।६७, ५।६८
कक्षीवान्—५।५७-६१, ५।६१ (ने असुरकी सौ गायें पाई), ५।६१।२-४ (को दशरथने १० वधुर्ये-दासिया और ६० हजार गायें दी), ५।६१।४ (ने घोडे पाये)
कण्व—२।६ (तुर्वश यदुके), ५।७८ (मेधातिथिके सूक्तमें), ५।८० (कण्वोकी तरह भृगु लोग), ५।८१।१६ (भृगु लोग, सूर्य भी) ७।२, ८।३, ९।१ (और दध्यङ्, अगिरा, प्रियमेध, मनु, पूर्वज),
करज—८।३९ (और पर्णयको महान वृत्रहत्यामें मारा), ८।४ (पर्णयको अतिथिग्वके लिये मारा), अ र ९।३८ (०), ९।३९ (और पर्णय-को वृत्रहत्या=शवरयुद्धमें मारा)।
कवष—२।१३ (श्रुत, वृद्ध), ३।१७, १०।१७ (सुदास-शत्रु, द्रुह्युओका नेता वृद्ध श्रुत कवष परुष्णीमें डूबा), ९।१३ (दाता त्रसदस्यु)
कवि—२।१८ (चायमान), (देखो चायमान भी)
कशु चैद्य—९।३५।२ (ब्रह्मातिथिका दाता)
काण्व—५।८१ (मेधातिथिके सूक्तमें)
काव्य—५।७५ (उशना गोतमके सूक्तमें)
कीकट—४।५ (देश)
कीनाश—५।४५ (कृषि देवता)
कुत्स (ऋषि)—५।८५
कुत्स—२।८, ५।४९ (-विरोधी, शुष्ण अशुष कुयव) ५।५० (आयु, अतिथिग्वका साथी), ५।८१ आर्जुनेयने शुष्णकी चर्ष णी=पुरको नष्ट किया), ८।३३-३७, ४१ (दस्युओको मारा), ८।८५-८७, ९।११ (भारथीके लिये इन्द्रने शुष्णको मारा), ९।१२ (कुत्सके साथ रथ चला), ९।१३।९ (कुत्सकी रक्षाकी, श्रुत-र्यकी), ९।१३ (आर्जुनेय और तुर्वीति तथा दभीतिकी रक्षा की, ध्वसन्ति, पुरुषन्तिकी रक्षा की), ९।१४ (कुत्स, आयु, अतिथिग्व की रक्षा की, हजारो पुरु और तुर्वयाणको नष्ट किया), ९।४३ (के लिये शुष्णको मारा), १७।८ (जैसे कुत्स विशोको पाता)
कुभा—१।१०, १।१३
कुभार—५।३९ (सोमक), ५।३९।७-९ (साहदेव्य)
कुयव—५।४९ (के विरोधी दास), ५।८६ (शुष्ण, पिप्रु, वृत्र, शवर भी), ५।८७ (कुयवकी दो स्त्रिया, क्षीरसे स्नात), ८।२१ (और शुष्ण, पिप्रु, वृत्रको मारा), ८।३० (और दास शुष्णको आर्जु-नेय कुत्सके लिये मारा), ८।३९ (की दो पत्निया शिफाके किनारे क्षीर, स्नात)
कुरुश्रवण त्रासदस्यव—९।३५ (सम्राट् दाता सौभरिके, राजा कुरुश्रवण त्रासदस्यव मन्निष्ठ) ९।३५
कुशिका—४।२६ (अग्नि परिचारक युग-युगम), ५।२६ (विप्र, अग्नि

की सेवा की), ५।२६, ५।२६।११ (सुदासके अश्वके लिये), ५।२९ (कुशिकोंके साथ विश्वामित्रने सिन्धु पार किया।
कुशिक—१०।२५ (कुशिकोंके साथ इन्द्रने सुदासको नदी पार कराया), १०।२६ (कुशिकोंने युग-युग वैश्वानर अग्निकी सेवा की), १०।२७ (कुशिक एक एक घरमें अग्निकी सेवा करते हैं), १०।२९ (कुशिकों, सुदासके घोड़े को धनके लिये छोड़ो, राजा शम्बको मारे, पूर्व-पश्चिम-उत्तर पृथियोंमें यजन करे), १५।९२
कुशिकास.—५।२६ (कुशिकस्य सूनु) —५।२९ (०)
कृत्व—१४।२१ (कृत्वोंमें सोमका छानना)
कृष—५।८१।१२ (रथम, व्यावाक, स्वर्णरके साथ), ९।३ (और रथ, रथम, व्यावाकको इन्द्रने रक्षा किया)
कृष्ण—३।१२ (दस्यु)
कृष्णत्वक्—१।१८, ८।२ (रथ, अश्व)
कृष्णयोनि—१।१७ (रथ), ३।१३ (रथ), ५।५१, ८।१ (दासीर)
कृष्णिय—५।६० (अग्निवंशीके कृष्णा-पाय), १२।१०, १७।११ (विश्व-के लिये, अग्निरूप विशाओंको मारे)
कृष्ण—१७।८ (८) (को अग्निरूपसे बताया)
कौरयाण (देखो पायव्यामा)
कौत्तितर (देखो शबर)
क्रुम—१।१०, १।१३ (कुर्रम)
क्षिति, पंच—५।६६
गर्ग—९।१ (दाता प्रस्तोक)
गंगा—१।१०
गंधारी—५।६१ (की भेड़ोंका ऊन)
गय—८।५३, ९।३९ (ने अतिथिग्व बृहत्तुरको धन, अन्न दिलवाया)
गृत्समदास —५।४७-५६, १८।१२ (गृत्समदोंने ब्रह्म स्तोम बनाये)
गैरिक्षित—९।३१ (अनदम्यके दस घोड़े)
गोमती—१।१० (गोमल)
गोतम—५।३३ (पिता, वामदेवके), ५।७७ (रहूगीवान् के सूक्तमें), ५।७३-७ (गृहपति)
घोषा—५।६० (पिताके घर बैठी पतिके लिये भगती), ११।२० (राजाकी दुहिता), १२।१० (पिताके घरमें अश्वतीने पति पाया), १७।६-११ (मैं भी)
चायमान—२।१८ (ऋषि), १०।१४ (ऋषि पत्नी के साथ पृथिवीपर गिर कर मरनेके लिये सो गया, सुहात्मा प्रतिदेवी), (देखो अथर्वा-वंशी)
चित्र—१।६।४१ (सप्तरश्मि सूर्य)
चुमुरि—५।५३ (दस्यु, पुनिके साथ इन्द्रोतिर्दा सप्तु), ८।१२ (को पुनि, शिंशु नगर सुदासको साथ)
च्यवान—१३।१० (ने नौजवान अश्विनों नवा बनाया)
जना—१४।२१ (अच्छे जनों—सु-सुरा-सुधु-सप्तु पुर—में सार साथ)

तुर्वयाण—९।१७ (और सुश्रवस्को कुत्स, अतिथिग्व, आयु तरुण महाराजके लिये नष्ट किया)
तुर्वण—२।१२ (जन)
तुर्वश—१।५, २।४, २।६-८, २।१०-१३, २।१५, ५।६४ (और याद्व साथी जन), ८।११ (और यदुको पश्चिमसे लाये), ९।३६ (को अतिथिग्वके लिये परास्त किया), ९।३७ (और यदुको दिवोदासके लिये नीचा करना), १०।१४ (दस राजाओंमें यक्षु, मत्स्य, भृगु, द्रुह्यु, पक्थ, भलान, विपाणी, शिव)
तौति—२।५ (यदु), ८।११ (नव-वास्त्व वृहद्रथ, दस्युको दवाते अग्नि), ९।१३ (और दभीति, कुत्स, ध्वसन्ति, पुरुषन्तिकी रक्षा की)
तृष्टामा—१।१०
तृत्सु—२।२, २।१२, २।१८, ५।१२ (विश्), ५।१५ (यमुना पकडी), ५।२३ (सफेद जूडाधारी), १०।१ (वसिष्ठके पुरोहित होनेसे पहले ये भरत, अभंक थे, जिनकी प्रजा वसिष्ठके पुरोहित होनेपर वढी, त्रित्सु भरत भी), १०।२ (त्रित्सु इन्द्र द्वारा नीचे वनाये जलको पार हुए, दुर्मित्रोने मुदासके लिये सारा भोजन छोड दिया), १०।१४ (त्रित्सुओके लिये आर्यकी गायें दी, परुष्णीको दुश्मनोने पकडा), १०।१५ (श्वित्यच=सफेद और कपर्दी त्रित्सु), १०।१७ (त्रित्सु-ओके लिये अहनोके गय=गृह और मृध्रवाच पुरुके गायको जीता, गौ लुटेरे ६ हजार और ६०६६ मर कर सो गये), १०।२०।४ (त्रित्सुओकी रक्षा की), १०।२०।६ (त्रित्सुओके साथ दस राजाओ द्वारा वाधित सुदासकी रक्षा इन्द्र-वरुणने की), १०।२१ (त्रित्सु और जमुना इन्द्रके पास आये, यहा भेदको नष्ट किया, अज, शिगु और यक्षु सिरपर वलि लेकर आये)
त्रसदस्यु—३।१८ (पौरुकुत्स्य अर्य, सत्पति, पचास वधू-दाता), ९।२९ (पुरु पौरुकुत्सि त्रसदस्युकी वृत्र-हत्या=शवरयुद्धमें रक्षा की), ९।३० (दौगहमें सात ऋषियोंने त्रसदस्युसे यज्ञ कराया), ९।३०।९१ (पुरुकुत्सानीने वृत्रहा अर्वदेव राजा त्रसदस्युको पाया), ९।३१ (पौरुकुत्स्य गैरिक्षित त्रसदस्युके दस घोडे मुझे वहन करें), ९।३२ (पुरुओंमे दस्युओके लिये अभिभव प्रदान किया), ९।३३ (पौरुकुत्स्य अर्य, सत्पति, मघिष्ट त्रसदस्युने सुवास्तुके तटपर ५० वधुए, २१० श्याव सोभरिको दी), ९।४१ (की रक्षा पूर्भिद्या=शवर-युद्धमें किया)
त्रसदस्यु-पुत्र—(देखो कुरुश्रवण)
त्रासदस्यव—९।३ (देखो कुरुश्रवण भी)
त्रिपस्त्य—७।१२
त्वष्टा—२।१४
त्वाष्ट्र—८।६ (विश्वरूपको मारना)
दधिक्रा—१७।२६ (दिवोदासका घोडा)

परिशिष्ट २. नाम-सूची

चि—५।७६ (की अस्थियोंसे इन्द्रने ९९ वृत्रोंको मारा) (देखो दध्यङ् भी)

ध्यङ्—५।७४ (अथर्वा और मनुके नाम), ९।१ (प्रियमेध, कण्व, अत्रि, मनु भी पूर्वज)

दभीति—५।५३ (के शत्रु दस्यु चुमुरि और धुनि) ८।१८ (के लिये ३० हजार दासोंको मुक्त किया), ९।१३ (और तुर्वीति, कुत्स, ध्वसति, पुरुषतिकी रक्षा की)

दशरथ—५।६१ (की ४० हजार लाल गायें ले जाते)

राजा—५।२३, १०।१३ (दस राजाओं द्वारा बाधित सुदास और पित्रु), १०।१३।७ (अयज्वा दस राजा युद्धक्षेत्रमें जमे), १०।१४ (ये दस राजा थे—१ तुर्वश, २ यदु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव, जिन्होंने परुष्णीको पकडा)

दस्यु—३।५ (वृध), ३।१२ (अनास), ३।१७ (विश), ६।६ (पणि), ७।५ (के लिये मनुको लोक दिया), ८।६।१९ (को नाश करने), ८।७ (अकर्मा, अमन्यु, अन्यव्रत, अमायु), ८।११ (को तुर्वीतिने दिये बाया, धनीको मारो), ८।९ (को मार कर आर्योंने पुरोंको नष्ट करना), ८।१३ (दस्युने स्तोताको दिये), ८।१४

दाशराज्ञ—५।१७ (सुदास, वसिष्ठ) ५।२३ (दस राजा), १०।३ (में सुदासकी रक्षा वसिष्ठोंके साथ इन्द्रने की), १०।१३ (में दस राजाओं द्वारा बाधित सुदास और पित्रु, दस राजा अयज्यु युद्धके लिये एकत्रित), १०।१४ (में शत्रु १ तुर्वश, २ यदु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव थे जिनमें आर्योंकी गायें पित्रुओंको मिली शत्रुओंने परुष्णीको पकडा, कवि चायमान गिर कर लेट गया), १०।१५ (में सुदासकी रक्षा इन्द्र-वरुणने की, पित्वत्न, कामी, पित्रु लूटे), १०।१६ (में सुदासके लिये नदियोंने मार्ग और सुपाग बनाया, सिन्धुको मार्ग), १०।१७ (दोनों सेनाओंके २१ जनोंको गिराया, अनु द्रुह्यु पानीमें डुबाया, अनु द्रुह्यु को मार्ग, में पित्रुओंके लिये अनुके स्थानको जीता, मृध्रवाच पुरुका हराया, में ६० हजार और ६०६० गाय-बछेरु अनु और द्रुह्य राजाके लिये गो गये), १०।१८ (भेदको मार्ग), १०।२० (गो चुराने वालोंको पशु, परन्तु दूसरी ओर गये, गाय गो जाये शत्रु मारे और सुदासकी रक्षा की), १०।२०।२-३ (जिन मुखों अग्नीने राजा परुष्णी जाने हैं, जिन मुखमें कोई पीठ दिए नहीं होती, उस मुख देवोंसाथ मुझे अन्न होवे, जो अन्न पर स्वयं ही निर्भर है, दोनोंके पर आश्रित मुझमें

है), १०।२०।४ (वहा भेदको मार कर सुदासकी इन्द्रावरुणने रक्षा की), १०।२०।८ (दाशराज्ञमें चारो ओरसे घिरे सुदासकी इन्द्रा-वरुणने सहायता की, जिसमें गोरे कपर्दी त्रित्सु लड रहे थे), १०।२०। ९ (कोई शत्रुओको मारता, कोई सदा व्रतोंकी रक्षा करता),— (देखो दश राजा भी)

दासाः—३।१४ (सौ), ३।१६ (नीच वर्ण), ५।६९ (का सिर काटना), ५।४२।१५ (वर्ची), ५।४२ (कोलितर शवर), ८।७ (दस्यु, अन्यव्रत), ८।१५-१७ (अधर वर्ण, नमुचिको मनुके लिये मारना), ८।१४ (ने स्त्रियोको आयुध बनाया, उसकी अवला सेना), ९।५७ (और आर्य दोनो, अमित्रोको इन्द्रने मारा)

दासी—३।१५, १७ (=दासीय, विश्), ५।१० (दासीय मात पुरियोको पुरुकुत्सके लिये तोडी), ९।२५ (दासीय सात शारदी पुरोको नष्ट किया)

दासोर—१।१७ (=दासोकी), ३। १३, ५।५१ (=कृष्णयोनि)

दिवोदास—१।१६, ५।७, ५।३५ (-अतिथिग्वके लिये सौवी पुरी रक्खी), ५।४९ (९९ पुर ध्वस), ५।५८ (और भरद्वाज), ९।५ दिवोदास ऋणञ्चुतको सरस्वतीने वध्र्यश्वको दिया), ९।९ (अति-थिग्वसे शम्बरका धन भरद्वाजने पाया), ९।३६ (=अतिथिग्व), ९।३७ (के लिये तुर्वश और याद्वको हानि पहुचाया), ९।३८ (के लिये शवर, तुर्वश, यदुको पराजित करना), ९।३९ (अति-थिग्वके लिये करज, पर्णयको मारना), ९।४० (अतिथिग्व वृत्वतुरके लिये गुगुओको करद बनाना, वृत्रहत्यामें पर्णय और करजको मारना), ९।४१ (दिवो-दासके लिये, भरद्वाजके लिये अश्विनोका आना), ९।४२ (अतिथिग्व दिवोदासकी शवर हत्यामें रक्षा करना, पुर तोडनेमें त्रसदस्युकी रक्षा करना), ९।४३ (दिवोदासके लिये युवा भुज्युको उबारना), ९।४४ (अथितिग्वके लिये अमर्मका सिर काटना, कुत्सके लिये शुष्णको मारना), ९।४५ (पुरु दिवोदासके लिये ९० पुरोका तोडना, अतिथिग्वके लिये शम्बर को गिरिसे नीचे गिराना), ९।४६ (दिवोदास, भरद्वाजके लिये धन देना), ९।४७ (दिवोदासके लिये भारत अग्निका आना), ९।४८ (दिवोदासके लिये शवरको मारना), ९।४८ (दिवोदास अतिथिग्वकी रक्षा करते शंवरकी ९९ पुरियोको नष्ट करना, सौवीको प्रवेश लायक बनाना), १४।१७ (के लिये सोमसे मस्त इन्द्रने शवरकी ९९ पुरिया नष्ट की, तुर्वश-यदुको पराजित किया)

दीर्घतमा—६७-७२ (औचथ्य)

दृषद्वती—१।९

देवक—८।५३ (मान्यमानको इन्द्रने मारा, शवरको नष्ट किया), ९।१५ (मान्यमान और शवरको मारा)
देववात—९।२०।२ (और देवश्रवा भारत)
देवश्रवा—९।२०।२ (भारत देवश्रवा और देवदास), ९।२०।३ (जनोंको वशमें करनेवाला), ९।२०।५ (की वृषद्वती, आपया, सरस्वतीमें धनकी प्रार्थना)
दैववात—२।९ (वृचीवत) (देखो नृजय भी)
दौर्गह—९।३० (वध्यमानमें हमारे पितर सात ऋषियोंने प्रमदस्युसे यज्ञ कराया)
द्रुह्य—१।५, २।११, १२, २।१३ (के ६६ हजार ६६ मरे), १०।१४ (दस राजाओंमें २ तुर्वश, ३ यदु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ पक्थ, ७ मलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव), १०।१७ (वृद्ध श्रुत कक्षपको पानीमें डुबाया, फिर द्रुह्युको वज्र-बाहुने मार भगाया), १०।१७।१४ (गाय-लुटेरे द्रुह्यु और अनुके ६० सौ और ६०६६ आदमी मर कर सो गये)
धुनि—५।५३ (दस्यु और नमुचि सभीतिके साथ), ८।१९ (और नमुचि पिप्रु, शुष्ण, शवरको मारा)
ध्वसन्ति—९।१३ (पुरुषन्ति, कुत्स, सुश्रीति, और सभीतिको रक्षा की)
नमुचि—५।५२ (और शम्बर, शुष्ण, अशुष, व्यन, पिप्रु, रुधिराके के साथ), ८।१५ (दासको मनुके लिये मारा), ८।१६,१७ (दास नमुचिका सिर काटा), ८।२२ (को मारा)
नर्य (तुर्वश)—२।५ (तुर्वश), ८।८५ (और कुत्स, श्रुतर्य भी), ९।१२ (और कुत्स, श्रुतर्यकी रक्षा की)
नवग्व—६।१९।८ (अंगिरस अयास्य)
नववास्त्व—८।११ (नववास्तुवाला बृहद्रथ तुर्वीति)
नहुष—७।८ (की बलिहृत विश्), ७।९ (विशपति), ७।१० (नहुष-पुत्र ययाति)
नैचाशाख—४।५ (कौरव देशमें)
पक्थ—२।१७, १८ १०।१४ (दस राजाओंमें २ तुर्वश, ३ यदु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव), १२।१५ (की रक्षा अश्विनोंने की)
पणि—१।२ (जिनकी निधि गुहा-हित), ५।७५ (के अन्नभोजी, भोजन), ५।७८ (की गायें हरना), ६।१, २ (कृत्य), ५।३ (पणियोंको मारो) ६।४५ (मृध्रवाचः हरय, उस अमनु), ६।६ (देवोंको न मानने वाले), ६।७ (की गायोंको हरना) ६।८ (की निधि गुहा-गाहित), ६।९ (नमस्ते न करें) ६।१० (को मारो), ६।११ (का भोजन दूर), ५।१२ (का पुत्र

है), ६।१३ (से गायोको लाओ), ५।१४ (के धनको जीतना), ५।१५ (पर आक्रमण), ५।१६ (में वृर्व गगाकी कक्षकी तरह विस्तृत स्थानमें), ६।१७ (पणिसे सरमाकी माग), ५।१९ (की निधि पहाडोकी चोटीपर सुगोप), ९।१५ (को सरस्वतीने खाया), १४।१० (की गायें सोम छानता)

परावत—१४।२१ (पश्चिमवाले देशमें सोमका छानना)

पराशर—(शतायु वसिष्ठ)–८।५

परुष्णी—१।४, ६,१०, २।१८, ५। ३८, १०।१४ (को दस राजाओने पकडा, कवि चायमान धरतीपर गिर पडा, नदियोको) १०।१६ (सुदासके लिये इन्द्रने गाध और सुपारा किया), १०।१७ (श्रुत (कवपको पानीमें डुवाया), १० १७।१४ (अनु और द्रुह्युके ६० सौ और ६०६६ आदमी मर कर सो गये)

पर्णय—८।४६ (और करजको अतिथिग्वके लिये मारा), ९।३९ (और करजको वृत्रहत्या=शवरयुद्धमें मारा)

पर्शु—१०।२० (यह और पृथु सुदासके शत्रु होकर आक्रमण करने पूर्व गये,)

पस्त्य—१४।२१ (पस्त्योके वीच सोमका छानना)

पाकस्थामा—५।८१।२१, २२ (कौरयाण, मेधातिथिका समकालीन), ५।८१।२३, २४ (ने मेधातिथिको दस लाल घोडेको अभ्यजन, वास आदि दिये), ९।१९।२ (ने काण्व मेध्यातिथिको लाल रथ दिया), ९।१९।१४ (भोजने मेध्यातिथि को वस्त्र,अभ्यजनऔर रोहित रथ दिया)

पार्थव—९।६ (के सम्राट् अभ्यावर्ती चायमानने भरद्वाजको गाय और दासिया दी),

पिप्रु—५।४० (ऋजिश्वाके लिये इसे और ५० हजार कृष्णोको मारा), ५।५२ (और स्वश्न, शुष्ण, अशुप, व्यस, नमुचि, रुधिक्र.को मारा), ५।८६ (और शुष्ण, कुयव, वृत्र, शवरको मारा), ८।१२ (और मृगवको ऋजिश्वा वैदधीके लिये मारा), ८।१९ (चुमुरि, धुनि, शवर, शुष्णको इन्द्रने मारा), ८।२२ (और नमुचि, रुधिका, शुष्ण, अशुप, व्यस (स्वश्नको मारा), ८।४२ पिप्रु, मृगय, शुशुवान् और ५० हजार कृष्णोको ऋजिश्वाके लिये मारा), ८।४५ (पिप्रुके नगरोको दस्यु-हत्यामें ऋजिश्वाके लिये नष्ट किया), ८।४८ (मायी असुर पिप्रुके गढ ऋजिश्वाके लिये नष्ट किये)

पुर—२।२ (सात), २।५, ५।३५ (निन्नानवे), ५।१० (दासोकी सात शारदी पुर), ५।३६ (सौ आयसी), ५।३७ (सौ दिवोदासके लिये तोडी), ५।५० (शवरकी सौ पुरिया), ५।४० (पिप्रुकी)

पुरन्धि—१७।६ (के लिये वध्रिमतीके साथ अश्विद्वय आये)

पुरु—(देखो पुरु जन) ९।२६ (पौरु कुत्सि)
प्रवदस्यु), २।१९ (सरस्वती तट)
पुरु—१।५, २।१, २।२ (मृध्रवाक्), २।११, ५।७ (दिवोदास), ५।१०, ५।१३, ९।२६ (स्तुति करते हैं), ९।२७ (सुदासके लिये धन,) ९।२९ (पौरुकुत्सि त्रसदस्युको वृत्रहत्या में रक्षा की), ९।४४ (दिवोदासके लिए ९० पुरोको नष्ट किया), १०।१७।१३ (मृध्रवाक् पुरु सुदास-शत्रु), १०।२२ (को युद्धमे पराजित किया), १५।७१ (जन सरस्वतीके दोनो तटपर बसते) (पूरु दिवोदास देखो)।
पुरुकुत्स—५।१० (दासोकी सात शारदी पुरे), ९।२५ (पुरुके लिये दासोकी सात शारदी पुराको नष्ट किया), ८।२६, २७ (युवा पुरु-कुत्सके लिये मृध्रवाचोंकी सात शारदी पुरोको नष्ट किया), ९।२७ (सुदास पुरुके लिये धन) ९।२८ (पुरुकुत्स पत्निगुकी रक्षा की)
पुरुकुत्स-पुत्र (पौरुकुत्सि, देखो त्रसद-स्यु)
पुरुकुत्सानी—९।३० (पुरुकुत्स-पत्नी, त्रसदस्यु-माताने वृत्रहा अर्णवेय राजा त्रसदस्युका इन्द्र-बलसे पाया)
पुरुणीथ—९।८ (शातवनेय जन-राजामे)
पुरुमित्र—१।१६ (को पराजयका अतिक्रम गये)
पुरुषन्ति—(ध्वसन्ति, कुल्या, तुर्वीति और दभीतिकी रक्षा की), ९।१३
पुरूरवा—७।६ (मृदुत शीर्ण), ७।७ (का उर्वशी द्वारा प्रत्याख्यान), १७।४ (स्त्रियोंकी मित्रता भेडियेका हृदय)
पूर्—५।११ (आयती)
पूर्णा—५।३८ (परशी)
पूर्भिद्या—९।४१ (शम्बरहत्या वृत्रहत्या)
पृथु—१०।२० (दाशराज्ञ युद्धमे यह और पर्शु गये, पूर्वको गायें लूटने-आक्रमण करने)
पृदिनगु—९।२८ (पुरुकुत्स)
पेदु—१७।६ (के लिए अश्वि श्वेत अश्वको नौ वाजो और नब्बे वाजियो के साथ लाये)।
पेरु (और नुमीळ्हको नाशने दल बनाये थे)—९।७
पैजवन—१०।९९ (सुदास पैजवनका शेत अजर क्षेत्र)।
पौर—५।८१।१२ (की इन्द्रने रक्षा की), ९।२।(०)।
पौरुकुत्स्य—३।१८ (त्रसदस्यु पौरुकुत्स वधूशता)।
प्रस्वण्य—५।८१।६ ५।९०-९३ ९।० (दासा एकसाका भोजन)।
प्रस्तोक—९।९ (ने अन्नादको दल बोध और दल साथी लिये)।
प्रियमेध—५।८० (आप प्रगा-तिर्विद ऋषि) ५।८१।१६, ९।१ (और कण्व, अत्रि, भृगु गोत्र, नव, पूर्वज)।
प्लायोगि—५।८१

अल्यूथ—८।२३ (दाससे सौ पाये)।
अह्य—९।३ (ऋचाये)।
अरत—१।७ (जन), २।१, १०।१ (पहिले अर्भक अजन थे, जिन तृत्सुओको वसिष्ठने बढाया), ५।१२-१३, ५।२८।११, १२, १०।२२ (की अग्नि सूर्यकी तरह प्रकाशमान) १०।२४ (की रक्षा विश्वामित्रकी वाणी करती है), १०।३० (भरतके पुत्र यज्ञार्थ अश्व छोडते हैं)।
भरद्वाज—१।१०, १।१६, ५।७, ५।५८ (और दिवोदास), ८।६२ (को दिवोदासने धन दिया), ९।८ (के सूक्तमें पुरुणीय शातवनेय), ९।२४ (ने महिराघ सृजय-पुत्रसे यज्ञ कराया), ९।४० (और दिवोदासके लिए अश्विद्वय आये), ९।४५ (और दिवोदासके लिए धन देवे), ९। (दाता पूरय, सुमीलह, पेरुक, शाड, अम्यवर्ती)।
भलान—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ७ पक्थ, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव)
भारत—५।३२, ९।२०।२ (भारत जन के देवश्रवा, देववात), ९।४६ (भरतो की अग्नि)।
भाव्य—५।६१ (सिन्धुके तटपर वसते)
भुज्यु—५।५९ (को समुद्रमें सौ पतवारोवाली नावमें पार किया), ९।५२ (तरुणकी रक्षा की), ९।५८ (की अश्विनोने सौ पतवारकी नाव से रक्षा की), १७।८।७ (को अश्विनोने उवारा)।
भृगु—२।१३, ५।८१।९, ५।८१।१६ (और कण्वा सूर्या), १०।१४ (दस राजाओमें २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव), १७।६।१४ (भृगु जैसे रथ गढते)।
भेद—५।१५, ५।१७ (को मारा), १०।१८ (सुदासके दुश्मन, जिसको इन्द्रने मारा), १०।२०।४ (भेदको मार कर इन्द्र-वरुणने सुदासकी रक्षा की), १०।२१ (यमुनाके पास सुदास-शत्रु हारा)।
मगन्द—४।५
मघवा—२।१२
मत्स्य—२।१३, १०।१४ (दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ भृगु, ५ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ७ अलान, ८ अलिन, ९ विपाणी, १० शिव)।
मघाता—७।१२ (अग्निका अर्चक)
मघुच्छन्वा—८८, ८९
मनु—१।१८, ५।५१, ५।७४ (-पिता अथर्वा और दध्यगके साथ), ७।१ (विशिशिप्र विजेता), ७।३ (हमारे पिता), ७।४, ७।५ (ने दस्युके लिए करभीक किया), ७।६ (सुकृतको द्यौमें रक्खा), ७।१० (विवस्वान् के), ८।२ (के लिए कृष्णत्वचोको मारा), ८।४६ (के लिए इन्द्रने वृत्र को मारा), १४।२५ (के लिए सोम पूना गया), १६।११ (हमारे पिता)
मरुद्वृधा—१।१० (नदी)
महिराघ—९।२४ (साञ्जयने भरद्वाजोमे यज्ञ कराया)।

मान्यमान—(देखो देवक)।
मामतेय—५।३४ (अन्ध)।
मृगय—५।४० (और पिप्रुको एव शुशुवान तथा ५० हजार कृष्णोको ऋजिश्वाके लिए मारा) ८।१२
मेध्यातिथि—५।८१।३०, ५।७९-८१ (काण्व), ९।१६ (दाता पाक-स्थामा)।
मेहत्नु—१।१० (नदी)
मैत्रावरुण—५।१८ (वसिष्ठ)।
मौजवत—१।११९ (सोम), १४।३३ (मुजवान्में पैदा होनेवाला सोम)।
यक्षु—३।१३, ५।१५, १०।१४ (दस राजाओंमें २ तुर्वश, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रुह्य, ६ पक्थ, ७ भलान, ८ अलिन, ९ विषाणी, १० शिव), १०।२१ (सिरपर बलि लेकर आये) १०।२१ (सुदासके करद)।
यदु—१५, २।४-६, २।८, २।१०, २।११, ५।६४ (और तुर्वश), ८।११ (और तुर्वशको पश्चिममें लाये), ९।३७ (और तुर्वश को दिवोदासके लिए नीचा किया, देखो याद्व भी)।
यमदग्नि—५।२५ (और विश्वामित्र), १४।२१ (की सोमस्तुति)।
यमुना—१।१०, ५।१५, ५।८३ (में पाकीने स्थावाश्वको ७।७००० दिया), १०।२१ (ने इन्द्रको सन्तुष्ट किया, यहाँ भेडको हराया, यहाँ अज, शिग्रु और यक्षु सिरपर बलि लेकर आये)।
ययाति—७।१० (नहुष्य), ७।११ (की तरह)।
याद्व—२।७, ५।८१।३१ (पशु), ९।३६ (और तुर्वशको अतिथिन्वके लिए परास्त करना, देखो यदु भी)।
रसा—१।१०, १।१४
रहूगणा (अग्निके लिए मीठे वचन बोले)—५।७३
राहतव्य—२।७ (सुदास)।
रुधिका—५।५२ (स्वश्न, शुष्ण, अशुष, व्यम, पिप्रु, नमुचिके साथ), ८।२२ (स्वश्न, शुष्ण, अशुष, व्यन, पिप्रुको मारा)।
रुम—९।३ (रुशम, श्यावक, कृपको इन्द्रने खुश किया)।
रुशम—५।८१।२ (और श्यावक, स्वण, कृप), ९।२ (और श्यावक, कृप तथा स्वर्णर को इन्द्रने रक्षा की), ९।३ (रुम, श्यावक, कृपको इन्द्रने प्रसन्न किया), ९।१८।१२ (ने चार हजार गायें दी), ९।१८।१४ (का राजा कृष्णचय)।
लोपामुद्रा—५।६२ (अगस्त्यको प्यार करती), १७।१८ (अपना पीना चूमती)।
वधु—५।८१ (ने पत्नीको मारा), ७।१ (वसिष्ठ)।
वंगृद—८।४६ (के सौ पुत्रोंको ऋजिश्वा द्वारा नष्ट कराया), ९।३८ (के सौ पुत्रोंका ऋजिश्वाने नष्ट किया)।
वणिग्—७।१ (उनने उस पर ?)।
वध्रियाश्व (सुदास)—७।१८
वध्रिमती—१।११७।२८ (के पति पुत्रोंके लिए अश्विन् आये)।
वध्र्यश्व—५।४ (का पुत्र पञ्चहन), ९।४।११, १२ (की अग्नि स्तुति)

९।५ (वध्रयश्वको दिवोदास दिया सरस्वतीने), ९।५
वभ्रु—२।१७, १२।१५ (पत्नि-विरहत की रक्षा अश्विनोने की), ९। (दाता ऋणचय)।
वर्चो—५।४२।१५ (के सौ हजार मृत), ५।५०।(०) (असुर के सौ हजार वीरोको मारा, शवरके ९९ पुरोको नष्ट किया), ८।४९ (के सौ हजार मारे, शवरके सौ पुरोको नष्ट किया), ८।५० (दास वर्चीके सौ हजार मारे), ८।५१
वत्रि—१३।१० (को च्यवानसे द्रापिकी तरह छुडाया)।
वश—१७।८।७ (को अश्विद्वयने पार किया)।
वसिष्ठा—३।६ (वसिष्ठा), ५।१२, १४, ५।१८ (अर्वशीजात मैत्रा-वरुण), ५।१९, ५।३२ (और अगस्त्य), ५।८५ (कुत्सके सूक्तमें), ७।७।१७ (=वसनेवाला), ८५।१ (शतायु पराशर), ११।२३
वसुक्र-पत्नी—१७।१९ (स्वसुर नही आया कि घाना खाता, सोम पीता)
वामदेव—३३-४६
वितस्ता—१।१०
विपाश् (शुतुद्रि)—५।२८ (और शु-तुद्रि), ५।४२·
विभीदक—१।१९
विमद—१०।२३ (के लिए अश्विन अरुणीको लाये), १२।५ (के लिए धन लाये), १७।६ (के लिए शुष्यु को अश्वी लाये)
विशिशिप्र—७।१ (का विजेता मनु)।
विश्—५।१२ (प्रजा, तृत्सुओकी)
विश्पला—५।५८ (को आयसी जघा दी), ५।६० (अगस्त्य-सूक्तमें), ५।६३, १७।२२ (शुचिव्रता)।
विश्वक—५।६० (के लिए विष्णापुको दिया), १७।११ (कृष्णियके लिए विष्णापू)।
विश्वरूप—८।६ (त्वाष्ट्रको मारना)।
विश्ववारा—१७।२३ (ऋषिका) (विश्ववारा नमस्कारसे पूजा करती प्राचीसे आती है)।
विश्वामित्र—५।२४-३२(७), ५।२५ (और यमदग्नि), ५।२६।९ (सुदा-सार्थ सिन्धुस्तम्भन), ५।२९ (ने कुशिकोके साथ सुदासको पार कराया), ५।३२ (का ब्रह्म भारत जनकी रक्षा करता), १०।२४ (का यह ब्रह्म=मन्त्र, भारत जनकी रक्षा करता है), १०।२५ (महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धुको स्तम्भित किया, कुशिकोके साथ इन्द्रने पार किया)।
विषाणी—२।१८,१०।१४(दस राजाओ में २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्यु, ६ पक्थ, ८ भलान, ९ अलिन, १० शिव)।
विष्णु—८।३ (जन्तु, दस्यु)।
विष्णापू—५।६० (को कृष्णिय विश्वक के लिए), ११।१० (को कृष्णिय विश्वकके लिए), १७।११
विष्वक्—१२।१० (कृष्णियके लिए विष्णापुको दिया)।
वीतहव्य (देखो सुदास)।
वृचीवान्—२।९ (दैववात), ९।२२ (से सृजयके लिए तुर्वशको दूर किया)

वृत्रतुर—१।३१, (को मारा)।
वृत्रहत्या—१।३१(सम्बन्धित), १५। १७
वृद्ध—(देखो बकरा)।
वृषु—६।१८ (पणियोंमें उच्च स्थानपर स्थित, सम्पन्न दाता)।
वृषशिप्र—८।२० (शत्रुका मारा)
वृसय—५।३८ (का पुत्र), ६।८(०)
वृहद्गद्रि—१।१५ (निर्माता)।
वृहद्रथ—९।२१ (नवयास्त्र तुर्वीति)
वृहस्पति—६।१९।११
वैकर्ण—१०।१७ (दोनों वैकर्णोंने २१ जनोंको पराजित किया)।
वैदथिन—५।८० (देखो त्रसदस्यु)।
व्यश्व—२।५
व्यस—५।५२ (स्वप्न, शाप, अशुभ, मित्र, नमुचि, शिम्बोंके साथ), ८।२२(०)।
शची (पौलोमी)—१७।२८ (इस सूर्य उषा या मेरा भाग्य में तेजु सर्या, उषा हूँ, पति मेरा अनुगमन करता है, मेरे पुत्र शत्रुहन् हैं, मैं सजया)।
शचीवान्—५।३८ (उग्र, नृशंस)।
शतदुर—८।८
शम्बु—१७।९ (से लिए सेनको अभिप्रेरित करवाया), १७।८।९ (को अभिप्रेरित करवाया)।
शम्बरहत्या—१।८१ (से दिवोदासकी रक्षा करना), १३० (शम्बरहत्या-वृत्रहत्या, शम्बर)।
शम्बर—१।१९ (का सौ पुर), २।३ (निम्ने उग्र), ५।९ (की पुरियां नष्ट की) ५।२५ (की निन्यानवे पुरियां), ५।५० (के सौ पुरोंका नाश), ५।५५ (शम्बरकी शक्ति को ४०वीं शरदमें पार उतारा), ५।८२।१८ (कोलितर-पुरुषि-पुरु दास पर्वत पर), ८।१९ (नमुचि, पनि, पिप्रु शम्बरको उड़ने मारा), ८।२१ (के पुरोंको नष्ट किया शम्बु, पिप्रु, कुयव, वृत्रको मारा), ८।५० (९९ पुरोंको नष्ट किया सौ पत्थर की पुरोंका नष्ट किया), ८।५४ (शम्बरको मारा), ८।५५ (उग्र कौत्सि वृहद्रथका उग्र शम्बर को मारा), ८।५६ (शम्बरके पुरोंका नष्ट किया, वनुमन पर्वतमें पुरे) ८।५७ (पर्वतमें रहने शम्बरकी ८० वीं शरदमें पार पहुंचा), ८।५८ (दास शम्बरका गिरिके गौरव मारकर दिवोदासकी रक्षा की), ८।५९ (शम्बरकी ९९ वह पुरोंको नष्ट किया, अनुर वर्चीश दास शम्बर को मारा), ८।६० (शम्बरकी ९९ पुरियोंको नष्ट किया, दिवोदास अतिथि ग्वके लिए, सौवें नगरी) ८।६१ (सौ ९० पुरियां पर दिवो-दासके लिए नष्टकिया अतिथिग्वके लिए लिखि शम्बरकी सौवें लिखना) ८।६२ (इस शम्बरकी सौ पुरियोंका नष्ट किया दिवोदासके लिए), ८।६३ (को पर्वतों साथ पुरुषा मारा), ८।६२।१२ (शम्बर का को दिवोदास आदेश दास, ८।६२ (का पुत्र का पुत्र का भरद्वाजके दिवोदास पुत्रे। ८।८१ (का निम्ने लिखना) [illegible]

मारा दिवोदासार्य), ९।४८ (की ९९ पुरिया नष्ट की सौवी रख, दिवोदास अतिथिग्वकी रक्षा)।
शर्यणावत—१।२०,३।१९ (का सोम), ५।७६ (के पर्वतोमें अश्वके सिरको), १४।२१ (में सोमका सवन), १४।२९ (में सोमको इन्द्रने पिया)।
शाकी—५।८३ (लोगोने यमुना तटपर सात-सात एक-एक सौ गायें-घोडे दिये)।
शाड—९।७ (हिरण्यिन्ने सुमीळ्हको दस वशायें दी), ९।८ (=पुरुणीथ)
शातवनेय—(देखो पुरुणीत)।
शिग्रु—५।१५, १०।२१ (यमुनाके पास सुदासके करद)।
शिजार—१७।८(७) (को अश्विद्वयने पार किया)।
शिफा—५।८७ (के प्रवणपर कुयवकी दोनो स्त्रिया क्षीर द्वारा स्नात)
शिम्यु—१०।१६ (सुदास प्रतिद्वन्द्वी शिम्युको मारते)।
शिव—२।१८, १०।१४ (दस राजाओ =जनोमें, २ तुर्वश, ३ यक्षु, ४ मत्स्य, ५ भृगु, ६ द्रुह्य, ७ पक्थ, ८ भलान, ९ अलिन, १० विपाणी)।
शिश्नदेव—५।१६, ८।३, ४ (कृष्ण-=योनि, दस्यु)।
शुतुद्रि—१।१०, २।२८ (और विपाश)
शुष्यु—१७।६ (पुरुमित्र-पुत्र, विमद-पत्नी)।
शुष्ण—५।४९ (कुत्स के शत्रु अशुष, व्यस, पिप्रु, नमुचि, रुधिक्राके साथ), ५।८१।२८ (के चरिष्णु पुर कुत्सके लिए नष्ट), ५।८६ (और पिप्रु, कुयव, शवर), ६।२ (और अशुष), ८।१९ (चुमुरि, धुनि, पिप्रु, शवर को मारा), ८।२१ (पिप्रु, कुयवको मारा, शवरके पुर नष्ट किये), ८।२४ (अशुष, स्वश्न, व्यस, पिप्रु-शत्रु, रुधिक्राको मारा), ८।२२ (शुष्णके अडोको नष्ट किया), ८।२५ (शुष्णकी चरिष्णु पुरको मारा), ८।२७ (मायी शुष्णको इन्द्रने मायासे हराया), ८।२८ (मायी शुष्णको मारा), ८।३० (और कुयवको आर्जुनेय कुत्सके लिए मारा), ८।३३ (शुष्णको कुत्सके लिए मारा, अतिथिग्वकी भलाई करते), ८।३४ (युवा कुत्स के लिए शुष्णको मारा), ८।३५ (शुष्णहत्या=शुष्णयुद्ध, इन्द्रने दस्युहत्याको जीतते शवर को अतिथिग्वके लिए मारा), ८।३७ (शुष्ण, अशुष, कुयव, हजार दस्युओ को कुत्सके लिए मारा), ८।४१ (शुष्णको कुत्सके द्वारा मारा)।
शूशुवान्—८।१२ (और पिप्रु, मृगय ५० हजार कृष्णोको ऋजिश्वाके लिए मारा), ८।१२ (के पुरोको नष्ट किया)।
श्याव—३।१८ (भरद्वाजका दाता), ५।८१।१२ (रुशम, कृप, स्वर्णरके साथ), ६।३ (रुम, रुशम और कृपको इन्द्रने निहाल किया)
श्रद्धा, कामायनी—१७।२७ (श्रद्धामे अग्नि जगता है, हवि हवन की जाती है, देवोने उग्र असुरोमें श्रद्धा की)

श्रुत—२।१३ (देखो कवष)
श्रुतर्य—५।८५ (कुत्स भी), ६।१३ (और कुत्स, नयको रक्षा की)
श्वेत्या—१।१० (नदी)
सप्त आप. (देवी) —१।११, ५।६३ (देवी)
सप्तसिन्धु—१।१
सप्तस्वसा—१।८, ५।८ (सरस्वती)
समुद्र—१।१४, १।२२, ५।२८
सरयू—१।१२, १।१३
सरस्वती—१।८ (सप्तस्वसा नाम बहिनें), १।६, १।१०, १२, ८।१७, ५।८ (सप्तस्वसा) ५।६ (तट-ध्वंसिका, गिरि-सानु-नाशिका)
सवर्ण—६। . (दासा दस्यवस्यु)
साप्तर्नय (देखो महिनाम)
सार्परराज्ञी—१७।२८ (ऊर्जस्वती औषधि, गोष्ठमें दूध भरा-पूरा)
सावर्णि—११।१ (देखो मनु भी)
साहदेव्य—५।२९।९ (कुमार सोमक), ५।३१।७, ८ (कुमार)
सिन्धु—१।१०-१२, १।१७, ५।१७, ५।२६ (-अर्णव-स्वनन), ५।२८, ५।२९ (अर्णव), ५।९० (नौर्य), ५।९३ (को पार किया)
सुदास—२।७ (राजन्य), २।१८ (पैजिवान), ५।२३ (के शत्रु दस राजा), ५।२६ (-राजाका अश्वमेध यज्ञको रोकना) ५।२७ (सिन्धु-स्वनन), ५।२९ (को विश्वामित्रने सिन्धु पार कराया), ५।८४ (के लिये राजाओंकी प्रार्थना), ५।९१ (के लिये समुद्र और दासे परेण धन), ७।२७ (=पूरके लिये धन दान, पुरुकुत्सके लिये सात पुरोंका ध्वंस), ७।३१ (-वीतहव्यकी, पौरुकुत्स प्रत-बन्धुकी, पृथहत्यामें लग गई), १०।२ के (लिये तुर्वितोंका सात भोजन छोड़ जाना, तिरुओंका नीची नदिया पार करना), १०।३ (दाशराज्ञमें सुदासकी रक्षा वसिष्ठोंके ब्रह्म द्वारा करना, तिरुओंका पार होना, भरतका साथ जाना), १०।५ (दैवोदासि नामी सुदासके बालमित्र एवं पैजवन-सुदासका दान, सुदास पैजवन), १०।६ (पिता दिवोदासकी तरह पैजवन सुदासकी रक्षा करना), १०।७ (वीतहव्य सुदासकी रक्षा करना), १०।८ (वीतहव्य सुदास के लिये भोजन देना), १०।१० (सुदासके लिये सौ हजार घोड़े और दान होना), १०।११ (सुदासका स्वर्ग गोमान प्रजमें गया), १०।१२ (सुदासकी रक्षाकी, दास और आर्य शत्रुओंसे मांग), १०।१३ (इस संग्राम ब्राह्म वासिष्ठ सुदासकी विश्वामित्रके साथ रक्षा की। इस संग्राममें सुदासने सप्त सिन्धु), १०।१४ (सुदास ब्राह्मण विश्वामित्र और सुदासके संग्राम १०।१५ (सुदास को दाशराज्ञमें इन्द्र-मरुत्वान् नाम की, के लिये तृत्सुओंने स्तव और स्तोम किया, विश्वामित्र गाथा), १०।१७ (दिव दिवोदासकी तरह पैजवनकी सप्तसिन्धु रक्षा करता है),

१०।२० (भेदको मार कर सुदास की इन्द्रावरुणने रक्षा की), सुदास त्रित्सु के दाशराज्ञ में) शत्रु), १०।१४ (दस राजा= जन १ तुर्वश, २ यक्षु, ३ मत्स्य, ४ भृगु, ५ द्रह्यु, ६ पक्थ, ७ मलानस, ८ अलिन्, ९ विषाणी, १० शिव। और भी ११ कवि चायमान), १०।१६ (१२ शिम्यु,), १०।१७ (१३ दोनो वैकणोके २१, १४ श्रुत कवप वृद्ध, द्रुह्यु, १५ आनव=अनु), १०। १८ (१६ भेद), १०।२० (१७। पृथु, १८ पशुं), १०।२१ (१९ अज, २० तित्रु, बलि लानेवाले), १०।२३ (के लिये सुदेवी अश्विन् लाये), १०।२९ (सुदासके घोडेको धनके लिये छोडो, हे कुशिको), १०।२५ (को कुशिकोके साथ इन्द्रने नदी पार कराया, महान् ऋषि विश्वामित्रने सिन्धु अर्णवको स्तभित किया), १०।२९ (का अश्वमेध) घोडा धनकेलिये छोडा गया, कुशिकोको तैयार होनेको विश्वामित्रने कहा, राजाने पृथिवी पर पूर्व-पश्चिम-उत्तरमें शत्रुओको मारा), १३।१४ (के लिये शिप्री इन्द्र ने सहस्रो धन दिया), (सुदास के मित्र—वसिष्ठ और विश्वामित्र तथा उनकी सतान। त्रित्सुओके अतिरिक्त और कोई प्रधान व्यक्ति या जन सुदासका सहायक नही था)

सुदेवी—१०।२३, १७।२९ (को सुदासके लिये अश्विन् लाये)

सुध्यु—१७।६ (को विमदके लिये रथ द्वारा अश्विद्वय लाये)

सुमीळ्ह—९।७ (को शाडने दस वशायें दी)।

सुवास्तु—३।१८ (त्रसदस्यु दाता), ९।२३ (के तटपर त्रसदस्युने सोभरिको ५० वधुर्ये=दासिया, २१० काली गायें दी)

सुश्रवा—९।१६ (राजाके पास गये, ६६०९९ मारे), ९।१७ (और तुर्वयाणकी इन्द्रने रक्षा की, कुत्स, अतिथिग्व, आयुको युवा महाराज के लिये नष्ट किया)

सुषोमा—१।१० (नदी)

सूर्या—५।८१, १३।२५ (व्याह), १७।३० (१) (सूर्य द्वारा भूमि और द्यौ थामे, ऋत द्वारा आदित्य स्थित, द्यौमें सोम अवस्थित), १७।३० (२) (सोम द्वारा आदित्य वली, पृथिवी वडी है), १७।३० (८) (सूर्यके आभूषण प्रतिधि, ओपश), १७।३० (१०) सूर्याका शकट, दो वैल), १७।३० (४६) (ससुर, सास, ननद, देवरपर साम्राज्ञी होओ)

सृजय—२।९, ९।२१ (दैववात), ९।२२ (तुर्वशको दूर किया, वृचीवान्से), ९।२२

सेना—८।१४ (अवला दासकी)

सौभरि—९।३३ (को त्रसदस्युने सुवास्तु तीरपर ५० वधुर्ये और ३×७० गायें दी), ९।३४ (को सम्राट् त्रासदस्युसे धन मिला)

सोमक—५।३९।९ (कुमार साहदेव्य)

सौश्रवस—५।१ (सुश्रवा-पुत्र)
स्रवन्ती—१।११ (नदी)
स्रोत्या—१।११ (नद्यें सोते)
स्वर्णर—५।८१।१२ (ग्राम, ग्रावन, कुशके साथ)
स्वधन—५।५२ (और शुष्ण, अशुष, पिप्रु, नमुचि, रोहिता), ८।२२ (और शुष्ण, अशुष, व्यन, पिप्रु, रोहिता साथ गये)
हिमवन्त—१।१८

परिशिष्ट ३

शब्द-सूची[1]

अक्ष (=ज्आ)—१४।३३ (मौंजवत सोमकी तरह आकर्षक विभीदक पाशा है) १४।३३।२ (केवल इसके लिये जायाको मैंने छोडा), १४।३३।३ (कितवका भोग नही रहता), १४।३३।४ (अक्ष वालेकी जायाको दूसरे ले जाते हैं)

अक्षा—४।१

अघा (=मघा नक्षत्र)—१६।१७ (सूर्य-सम्बन्धी)

अघ्न्या—४।२०, (अहतव्या धेनु)

अगुल (=माप)—१६।२० (दस अगुल)

अतिथि—२।१, ५।१३ (दिव्य), ११।१३ (जनोका अग्नि), १८।१४ (प्रिय-)

अत्क—९।५७ (सुधित=तीक्ष्ण द्वारा वनकी तरह) १३।१२, १३ (सुरभि अत्क पहिने इन्द्र)

अधिवस्त्रा—१३।८ (चादरवाली वधू की तरह)

अध्वर्यव—५।५०, ५२

अनस् (गाडी, विपाश्या सुसपिष्ट)—५।२८, ५।४२ (विपाशाके पास पिस गया)

अनास—३।१२ (छोटी नाकवाले, दस्यु)

अनुदेयी—१७।३० (३) (दहेजमें दी जानेवाली दासी)

अनुष्टुब्—८।३ (छन्द)

अपूप—४।१२, १५।९३।७ (इन्द्र अपूप खाओ)

अपूपवान्—४।११, ४।१२, १५।१३ (रोटीवाली हवि)

अमीवचातन—१२।११ (रोग हटाने वाला भिषग्)

अरण—५।२७ (नदी, सुदासके लिये गाध की)

अरण्य—४।१०, १६, १७ २४, ५।३, ५।६, १५।८३

अर्य—५।१६ (पूजा)

अर्जुनी—१६।१७ (पूर्वा-फाल्गुणी, उत्तरा-फाल्गुणी नक्षत्र)

अर्भक—५।१२, १५।१ (=शिशु)

अर्वतो मास—४।२ (घोडे का०)

अर्वन्त—४।१२, १६, ५।७१ (का मास भोजन), १५।१ (०)

अर्हन्त (सुदानव)—५।८२ सु-दानी)

अवरबमाण—१७।२५ (=अवलबमान)

अव्यवार—१४।२८ (भेडके वाल, ऊनी वस्त्र)

अव्रत—१।१८ (=अधर्मी)

---

१ इस पुस्तक के अध्याय, अनुच्छेद के यहां अक दिये है।

अशनि—५।६६ (बिजली)
अश्मा—५।५ (=पत्थर, दृढ़)
अश्व—४।९ (=परिभूषण, मान ठीक करना), ५।२६ (=मेघ), १४। (दौड़)
अश्व-मास—४।२ (वाजी अश्व), ५।११ (० अर्वन् अश्व)
अश्ववान्—५।७५ (भोजन, अश्व मांस भोजन)
अश्वमेध—(देखो सुशर्म)
अष्ट्रा—४।२१ (कृषि-उपकरण), ५। ५६ (०)
असृग्रकोश—१६।२ (हृत्-सम्बन्धी)
असि—१८।१३ (जैसे गायको पोर-पोर काटनी)
आखेट—१४। (पक्षी, बैल, सूअर, हरिण, हाथी, सिंह)
आतुर—२।१७, १२।४ (रोगीके लिये भेषज)
आयुध—१४।१५ (हथियार)
आरा—९।५८ (पार टिप्पणी)
आशिर—४।४ धेनुसे दोहन), ४।५ (दोहन), ४।५ (सोम-मिश्रित)
आशिर। गव्य—४।६ (गायसे दुग्धका आशिर), १५।९२ (इन्द्र, गव्याशिर पियो)
आशिर। दधि—४।७
आशिर। मधु—४।६, १५।९२ (जौ से सत्तू और दूध से मिश्रित सोम)
इन्द्र—५।५६ (सोम सेवन-सम्बन्धमें इनका नाम और कर्तव्य)
इन्द्र—३।९ (सुशिप्र, मघवन्, सुनासृ)
इन्द्रिय—४।२ (इन्द्रत्व)
इषु—९।४९ (=बाण, इषुहस्त)
इषुधि—६।१० (तरकश)
इषुमान्—९।५४ (सुधन्वा, निषंगी स्वायुध)
इळा—१।९ (अन्न), ५।८४ (सुदासके लिये)
ईशान—११।१६ (इन्द्र जगत और स्वामरका ईशान)
उषस्—५।४८, १६।१२ (द्वारा प्रशंसित), १८।३ (छन्द), १८।७ (गान, उद्गीथ)
उक्थ्य—३।३ (उक्थशाला), ४।११, १२ ५।५७, १४।२ (सबसे गायन साम =गाना)
उत्ता (मान-पत्नी)—४।९ (मान-पत्नीवर्तन), ९।५३ (का फेंक फेंकना)
उत्स—१६।५ (कुआ या निर्झर)
उपधि—१८।१२ (रस, मुख, नाभि, प्रतिधि)
उपमा—१८।१२ (इव), १८।१४, १५ (न इव)
उर्वारुक—१५।८५ (फल, शायद बेर)
उलूखल—४।१५
उषा—१८।१७ (पुरानी युवति, पुत्री), १८।१६, १८।१९ (सोमी दुहिता), १८।१६ (अन्य अभिलाषी कविता), १८।१७ (अन्य विवाह-लिप्सी कविता) १८।१८ (अन्य वासनेच्छी कविता)
ऊर्णम्र—१८।३ (छन्द)
ऊष्मा—४।९
ऋषीक—(देखो आशिर्वेद)

ऋत—३।१९ (=सत्य)
ऋतुया—१८।९ (ऋतुके अनुसार)
ऋषि—६।१९।११ (विप्र) १७।२०
ऋष्टि—९।५४ (हथियार), १३।२२ (कवचका भूषण), ९।५४ (छुरा, तलवार)
ओपश—१३।२५ (सूर्याका), १७।३०।८ (सीसफूल)
औषधि—१२।६।१२ (पोर-पोर अग-अगमें औषधि घुसे), १२।११ (औषधियोका जया होना देखो भेषज भी)
कक्ष्या—१७।१५ (३ कमरबन्द),
कपर्दा—३।६ (दक्षिण-वसिष्ठोकी), ५।२३ (तृत्सु).
कपर्दी—५।२३ (तृत्सु), १०।१५ (जूडाधारी तृत्सु), १३।२६ (कपर्दी रथीतम), १३।२७ (दाहिने कपर्दो), १३।२८ (चार कपर्दोवाली युवति)
करभीक—७।५ (मनु)
करभ—४।१२ (=सत्तू), ४।१३, ५।६५, १५।९३।७ (इन्द्रके लिये)
करभी—४।११, ४।१२, १५।९३ (सत्तूवाली हवि)
कर्करी—१४ (ऋ २।४३।३ ततुवाद्य)
कर्णशोभन—१३।१६ (कानका भूषण)
कलश—५।४६, ५।५६, १४।९ (में सोम), १४।२३ (०), १४।१८ (में सोम रस), १७।१४ (में द्यौ-पति शतधार वाजी=सोम)
कवच—९।५० वर्म)
कवि—१६।२ (हल जोतते)
कशा—११। (ऋ० १।१५७।४ चाबुक)
कशोजुव—९।४१ (अतिथिग्व दिवो-दासकी रक्षा करना)
कारु (=कवि)—६।१८, ५।२८, ७।५, १८।९
काव्य—१८।२१ (देवके काव्यको देख)
कितव—१४।३३ (जुआरीको भोग नही रहता, कितव सभामें फूल कर जाता है, उसकी माता सतप्त होती है)
कीनाश—५।४५ (कृषि-देवता)
कुमारक—१५।१ (=छोरा)
कुरीर—१३।२५ (एक भूषण), १७।३०।८ (छन्द)
कुलप—११।२८ (कुलपति जैसे व्राज-पतिको वैसे तुम्हारे पास निधियो के साथ सेवा करते है, कुलप व्राज-पतिके नीचे थे)
कुलिश—९।५२ (कुठार, वज्र)
कुल्या—४।२०, १६।६ (ह्रदमें जाने वाली कुल्या), १६।७ (कुल्या वहें), १८।२३।८
कुशर—५।६५ (शर, दर्भ, सूर्यकि साथ)
कूपार—१७।१२ (सलिल)
कृषि—१४।३३ (जूआ मत खेलो, खेती करो, गायें हैं, जाया है)
कृषीवल—४।१६ (अ—), ४।१०
केवट—१६।४ (कुआ)
कोश—१७।३० (७) (घन)
क्षेत्र—४।१७ (सरस्वतीके) ५।६

गर्तिश्रिम—१६।२ (खोदा जल)
गादि—१३।२१ (पैर और हाथके कटे), १३।२२, (कन्धोंपर गादि), १३।२३ (पैरोंमें गादि) १३।१४ (हाथमें गादिवाले शिशुकी तरह)
गारि (तोल)—१६।१८ (गोमती की गारिया)
गर्ग—३।१९
गर्गरा—१५।३४।९ (दुन्दुभि)
गर्दभ—३।१३
गवाशिर—४।६
गव्यत्वक्—१४२।८ (गायके चमड़ेपर सोमका पिसा जाना, वैसा गोत्वक् भी)
गायत्र—५।८१, १४।२ (उत्तम गायत्रके गाओ), १४।१६ (सामने सोमका गान), १७।२०।६, १८।७ (गायत्र उद्गर, गायत्र साम)
गायत्री—१८।३ (छन्द)
गाया—१४।२७ (पुरानी गाथा सोम के लिये)
गायन—१४।७ (पवमान सूक्त सोमके लिये नये गाओ), १४।२४ (गायत्र उद्गाता गाता)
गुह—५।५८ (पा० टि०)
गो—८।१९ (मेघ वृष्टि)
गो—९।(गोपन)
गोत्वक्—१४।२६ (गायके समान सोमका गान करना)
गोमान्—५।३५ (गायोंवाला मोक्ष)
गोर्धन—४।३०
ग्राम—१७।१७
ग्रामणी—११।१ (मनु सावर्णि)
ग्रावा—८।१५, ६।१३ (पत्थर)
ग्रीष्म—१६।१४ (ऋतु)
ग्राहि—१२।७ (भूत लगाना रोग)
घृत—४।४
घन्द्रवान्—५।२६ (गाना, भोग)
चमस—१४।३ (सोम पीनेका प्याला)
चमू—४।१३ (सैनिक चमू), ५।४७, ५।५६ (में सोम), १४।३, २३ (सोमका घड़ा, दो चमुओं में सोम सोम), १५।९७ (में सोम)
चरु—४।९
चर्मन्—३।२१।११ (ढाल)
चषाल—८।१६ (पात्र)
छन्द—१३।२५ १८।३ (छन्द, उनके ७—१ गायत्री, २ उष्णिक्, ३ अनुष्टुप्, ४ बृहती, ५ पंक्ति, ६ त्रिष्टुप् ७ जगती)
छुछुक—१७।२१ (सिर दुखना)
जगती—१८।३ (छन्द)
जन—३।१६ (सर्वोत्तम)
जन—१६।३ (सर्वत्रिम खोदा हुआ तालाब जल)
जातवेद—१।२१ (अग्नि)
जामि—१४।२० (बहिन)
जार—१४।१४ (जारका पैर कभी सती स्त्री पर)
जूर्य—१४।१४ (पुराना रथ)
जूर्वती—५।९० (पुरानी गौ)
ज्या—१।२० (धनुष) १।२१ (धनुष)

तनय—५।३० (सूनु-)
तप—१७।१६ (तपसे अजेय और स्वर्ग गये)
तरेम ता तरेम—५।२ (हम तरें)
तितउ—४।१४ (छलनी)
तुविग्रीव—३।९,३।१० (पुष्ट-गर्दन,इन्द्र)
तोक-तनय—५।१ (=तनय), १५।२ (पुत्र-पौत्र), १५।८० (०)
त्रिधातु—१२।१३ (त्रिधातु शर्म= तीन प्रकारका सुख)
त्रिष्टुब्—१८।३ (छन्द)
त्रैष्टुब्—१८।९- (त्रिष्टुब् छन्दमें गाया जानेवाला साम)
त्वचा—५।८१।३२ (सुनहली)
त्वष्टा—४।५
दक्षिणा (=दान)—१७।३ (१।९) (दक्षिणाका विशाल पथ। सोना देनेवाले अमृतत्वको पाते, वस्त्र देनेवाले दीर्घायु प्राप्त होते। दक्षिणा दैवी पूर्ति है। दक्षिणा-वाला पहले बुलाया जाता। वह ग्रामणी होता। उसे जनोका नृपति मानते। उसे ऋषि, ब्रह्मा, साम-गायक और उक्थपाठी कहते। दक्षिणा अश्व-गाय-चादी-हिरण्य-अन्न देती)
दंड—५।१२
दध्याशिर—४।७, १४।१० (दधि-मिश्रित सोम)
दर्भ—५।६५ (=कुश, शर, कुशर, सैर्य, मौंजके साथ)
दासता—१७।२५
दासी—१७।३० (६)—(अनुनेयी= दहेजमें दी जानेवाली दासी)
दुदुभि—ऋ ६।४७।३१ (वाद्य)
दुर्ग—६।१२
देव (=देवता)—१५।१ (देवता न शिशु न कुमार), १५।२ (रुद्र, वसु, मरुत्, आप, नासत्य, सरस्वती, विष्णु, ऋभुक्षा, पर्जन्य), १५।३ (द्योस्पिता, पृथिवी माता), १५।४ (उषस, सिंधव, पर्वत, इन्द्र, पर्जन्य), १५।५ (इद्राग्नी), इन्द्रावरुण, इन्द्रासोम, इन्द्रापूषण, भग, पुरधि, अर्यमा, धाता, धर्ता, रोदसी, अग्नि, मित्रावरुण, अत-रिक्ष, ओषधी, जिष्णु, आदित्य, वरुण, त्वष्टा, सोम, ब्रह्म, ग्रावा, यज्ञ, वेदि, सूर्य, प्रदिशा, पूषा, वायु, क्षेत्रपति, विश्वेदेवा, ऋभव, पितर, अज, अहिर्बुध्न्य, समुद्र, अपान्नपात्, पेरु, पृश्न), १५।६ (मित्रावरुण, अश्वि, ब्रह्म-णस्पति, सोम)
द्रवि—१८।१५ (दर्वि, दविली)
द्रापि—१३।९ (पिशग द्रापि धारण करता), १३।१० (द्रापिकी तरह छुडाना), १३।११ (सुनहली द्रापिको धारण किये वरुण)
द्रोघवाच—५।४ (अ-) ५।२१ (झूठा)
द्रोण—१४।४ (सोम रखनेका बर्तन) १६।२, १६।१९ (भार, नाप), १८।१४।८ (में स्थित)
धनुष—९।५० (धनु, धन्वा)
धन्व—३।१, १६।२२, १७।३।२० (मरुभूमि)
धन्वा। सु—९।५४ (सुधन्वा, इषु-मान्, निषगी)

परिशिष्ट ३ शब्द-सूची

तनु-शिल्प—३।२१ (पा० टि०)
धाना—४।११, १२ (भुना जौका दाना), १५।१३।५ (माध्यन्दिन सवनमें धाना), १५।१३।६ (तृतीय सवनमें धाना), १५।१३।१ ७ (उन्हके लिये), १७।१९ (मनु नहीं आया कि धाना खाता सोम पीना)
नक्षत्र—१६।१७ (अघा - मघा, दोनो अर्जुनी पूर्वा-फाल्गुणी उत्तरा फाल्गुणी)
नवी—५।२८ (स्तुति)
नप्ता—१५।१० (= नाती)
नळा—५।८।१३३ (नरकट)
नाभि—१८।१२ (चक्रकी नाभि)
नाराशसी—१७।३० (६) (ऋचा)
नाय—३।२१ (पा० टि० शिल्प) ५।७० (अन्तिम पनवार), ९।५८ (नौ पनवारकी), १६।५
नासत्य—१।५७ (अश्विनय)
निषग—९।४९ (तरकस), ९।५८
निषगी—९।५४ (तूणीरधारी, तूणीवा, इषुमान्, स्यानुष)
निष्क—५।६१ (नौ निष्क स्वर्ण-यानने पाये, स्वर्णहार)
निष्कग्रीव—१३।१८ (गलेमें सोनेका निष्कहार पहना), १३।१० (मुक्तिक सुवर्ण निष्क पहने पाण्ड्य सम्राजगण)
पृत्य—१२।५ (नव कन्या जिनके लिये धन लाया), १४।१
नृपति—११।१८ (इन्द्र सूक्ति)
नृषाण—१६।२ (स्वार)
योनवो—१७।३०।६ ( )
पक्व वृक्ष—१४।२६ (पाव पक्व)
पर्वक्षिति—५।१६
पति—१७।३०(४५) (इन स्त्रीमें न्यारहवा पतियों बनाओ)
पतिद्विष—५।१०२
पति राजा—११।१० (शाम्बन प्रजाओंका पति राजा हुआ)
परशु—९।५३ (द्वारा शिष्यन काटना), १८।१५
परिच्छिन्न—५।१२ (चिरके भग्न)।
पर्जन्य—१८।२२ (पर्जन्य भौम आग्नेयनी कविता)।
पवित्र—१४।९, १० (नाम स्वनका पात्र)।
पशु—४।४ (ग्राम्य, गाय, घोडा, भेड, बकरी, गधा, ऊट)।
पारिषद्—३।२
पितर—१८।१५।२५ (पुत्र पितरोंने सोमने पान किया)।
पितृषद्—१७।३० (२१) (पितरोंके पास में रहती)।
पिशागरूप—३।२१ (आभूषण)।
पुत्र—१७।३०।१५ (इन स्त्रीसे पुत्र धारण करो)।
पुरदर—३।१३ (पुरोंका इन्द्र)।
पुरधि—१८।१३ (गिरिपुर)।
पुरोगव—१३।२० (सोनेमें दी गई अग्रे-अग्रे चलनेवाली गाय का नाम)
पुरोडाश—३।१३ (पुरोडाश), ९।३ ९, १५।१०।१-२ १७।३०-१८।१५ (हवि)
पुरोहित—(प्रधान-मन्त्री) १३।२९, (मन्त्रों सूनि पुरोहित हुआ), १३।३० (पुरोहित-प्रधान मन्त्री हुआ)।

पूर्णावती—३।१४
पूषन्—४।१२, ४।१३ (करभप्रिय)।
पृथुबुध्न—४।१५ (मोटा शीर्ष)।
पेश—१३।२८ (सुपेशा चतुष्कपर्दा युवती, पेश=सज्जा)।
प्रतिधि—१३।२५ (वधूका आभूषण), १७।३०।८ (चक्केका धुरा)।
प्रधि—१८।१२ (रथका धुरा, उपधि, नाभि, युग भी)।
प्रपाण—४।२० (प्याव)
फल—४।२४ (स्वादु), ४।२२ (सुफल)
फाल—४।२३, ५।४५ (कृषिका)
वधू—१३।८ (दुलहन, अधिवस्त्रा=चादरसे ढकी), १४।३२ (सुवासा), १७।३७।३३ (सुमगली)।
वधूयु—१५।९३ (दुलहा), १७।३०।९ (०)
वलि—५।१५ (=कर), १५।९७=(हवि, अश्व, साड, बैल, वशा, मेषकी)
वलिहृत्—७।८ (=करद) प्रजा
ब्रह्म—५।३२, १२।३ (=ऋचा, मन्त्र), १८।१२ (=ऋचा)
ब्रह्मचारी—१७।१२ (देवोंका एक अग होता)
ब्रह्मजाया—१७।१२।५ (वृहस्पति की पत्नी जुहू), १७।१२।२, ३, ६
ब्रह्मा—३।१०, १७।२० (प्रधान ऋत्विक्)
ब्राजपति—११।२८ (की सेवा निधियो द्वारा कुलप करते, अनेक कुलोका मिलकर ब्राज होता, जिसपर अधिकारी ब्राजपति था)।
ब्राह्मण—३।२०
भिषग्—१२।११ (राक्षसोका नाशक वीमारी हटानेवाला), १२।१२ (अश्विद्वय दैव्य भिपज)
भिषजौ—१७।६ (अश्विद्वय)
भूषण—(देखो अत्क, कर्णशोभन—हिरण्य-कर्ण, मणिग्रीव, निष्कग्रीव, सुनिष्क खादि, रुक्म, ऋष्टि, शिप्र, ओपश)
भेषज—१२।१३ (तीन प्रकारके दिव्य, पार्थिव और जलके), १२।१४ (आतुरका भेपज)
भोज—१४।३२ (भोजनदाता, भोज, सुरभि स्थानको, सुवस्त्रा वधूको, आतरिक पेय सुराको प्राप्त करते हैं), १७।१३।८, ९ (भोज मरते दुख पाते नही, भोज सुरभि स्थान, सुवस्त्रा वहू, अच्छी सुरा पाते)
भोजन—५।७५ (अश्ववान्, गोमान्)
मघ—१८।१६ (=धन, चित्रामघा, मघोनी)
मघवा—२।७, ५।३१ (=धनवान् इन्द्र)
मणिग्रीव—१३।१७ (कण्ठमें मणि=मनका धारण करना)
मन्त्र—३।२१
मदिर—४।३० (मधु)
मधु—४।२६ (सारघ)
मधुर—४।३० (मदिर)
मर्त्य—४।२९, ७।१५ (३) (मनुष्य)
माया—८।१८ (के द्वारा दभीतिके लिए ३० हजार दास सुला दिये)
मायी—८।६ (दानव)
मास—१६।१० (वारह), १६।१२ (मास, शरद)
मास-पचनी—४।९ (हाडी)

मित्रावरुण—५।२२
मुष्टिहत्या—५।८२,१२।४ (मुष्टियुद्ध, मुष्टि द्वारा लड़ाई), १५।२ (मुष्टियुद्ध)
मृण्मय—१०।१२ (घर)
मृत्युबन्धु—७।७।१८
मृद्भवाक्—६।६ (ऊठे, पणि)
मेष—४।१ (पकाना), ५।५८ (नौ), १५।९९ (मोटा भेड़ पकाया)
मोघ—५।२०, ५।२१
मौंज—५।६५ (शर, कुशर, दर्भ, मूँजके साथ)
मौंजवत—१४।३३ (के मौंजका भक्ष्य)
यक्ष—१५।३३ (मेला)
यक्ष्म—१२।६।११, १२, १२।९ (सिर, भुजा, कन्धे, आत, गुदा, हृदय, स्नायु, गर्दा, जघे, एड़ी, पैर, जाघके यक्ष्म) (देखो राजयक्ष्मा भी), १७।२१ (सिर, मस्तक, जिह्वा, ग्रीवाका रोग)
यज्ञ—४।१६ (- पात्र)
यव—४।१९ (जौ), १६।६ (वृष्टि जौकी बढ़ाती)
यवाशिर—४।६ (जाउर, दो की खीर)
यातु—५।१६ (जादू), ८।३
यातुधान—५।२० (जादूगर)
यामि—१७।१५।१० (उसे सबसे यामि कहि यामि का राम करती)
युग—१६।२ (जाड़ा) १८।१२ (जवा, जुवाड़)
युध—५।१६ (लड़ाई)
युप—४।९ (यज्ञ)
योजन—१६।२१, १७।३।२० (नाप)
योषा—५।२८, ५।४६ (मुखड़ावाली स्त्री), १४।१३ (सिलावाली योषा की तरह परिकृत स्त्री)
रक्षस्—१७।२६ (राक्षस)
रक्षोहा—१०।११ (राक्षस भगानेवाले वैद्य), १८।२ (अग्नि)
रत्न—५।२६
रथ—१४।८ (दौड़)
रथीतम—१३।२६ (सबसे रथी)
रशना—३।२१, (पाँ टि रस्सी)
राजदुहिता—११।२० (घोषा)
राजन्य—३।२० (क्षत्रिय)
राजपुत्र—११।२० (की तरह)
राजयक्ष्मा—१२।३
राजा—५।६१, ११।८ (जिस राजाका उपनयन होती है), ११।५ (राजा की तरह), ११।६ (राजाका राजा की तरह), ११।७ (क्या राजाओंका राजा इन्द्र) ११।८ (इन्द्र सारे भुवनका राजा), ११।९ (इन्द्र द्यावा और पृथिवीका राजा) ११।१० (जिस के बल मुताबिक राजा) ११।११ (इन्द्र सबों के राजा), ११।२५ (परमेष्ठी परब्रह्म भी राजा), १७।१।१६ (- के समान)
राजाभिषेक—११।१२
राधि—१७।१८ (सिद्धि)
रात्रीसूनि—१८।१५ (दिनका सन्तान)
रायस्पोष—१।१२ (धनधान्य वृद्धि), ११।३ (धनधान्य की वृद्धि करनेवाला), १७।१।२ (धनधान्य वृद्धि)

रुक्म—१३।२१, २२ (छातीपरका सुवर्णाभूषण)
रैभी—१७।३०।(३) (ऋचा)
रोग—१२।८ (हृद्‌रोग)
रोमशा—५।६१ (गधारी भेड जैसी)
लक्ष्मी—४।१४
लागल—४।२१, ५।४३ (हल)
लिबुज—१७।१५(१३) (लता)
वज्र—९।५६ (को हाथमें धारण करना)
वतो वत—१७।१५।१३ (छि छि)
वधूमान्—५।६१ (दस रथ कक्षीवान्‌को मिले)
वन—४।१८ (हिम में)
वपोदर—३।९ (इन्द्र)
वप्ता—१३।२९ (श्मश्रुका वप्ता, हजाम)
वरत्रा—४।२१ (वरही, रस्सी), ५।४३
वरुण—११।२ (उग्र, सहस्र-चक्षा नदियोके जलको वतलाते), १५।८६ (पाश छोडा)
वर्म—९।५० (कवच, वर्मी), ९।५०।२
वसंत—१६।१४ (=ऋतु)
वस्त्र—१३।५ (श्वेत-अर्जुन पहने, देखो अधिवस्त्र भी), १४।१५ (को सोम देता)
वाजी—४।२ (=घोडा, पका), ५।२१ (पका सोधा), ५।२७ (वलि दिया नही मरता, देवोके पास जाता), १५।१०० (पक्व वाजी)
वाणी—१८।४
वाद्य—१५।३५ (वाद्य)
वाशी—९।५४ (वसूला), ९।५५ (आयसी), ९।५४ (छुरा)
वासस्—१७।३०।६ (=वस्त्र, सुवासा, शुक्रवासा, दुर्वासा भी)
वाह—५।४३ (वाहन)।
विदथ—११।(ऋ २।१३।१३,) सभा, यज्ञ)
विद्युत्—५।२२
विप्र—३।३
विभीदक—१४।३१ (सुरा विभीदक है), १४।३३ (भेलेकी लकडीका पासा)
विराट्—१८।३ (छन्द)
विश्—४।४(=प्रजा, जनता), ११।४ (राजाका उपस्थान करती), ११।१२ (सारी विश् चाहती, तू राष्ट्रभ्रष्ट नही, च्युत नही हो। इन्द्रने करद वनाया विश्‌को)
वीरासू—५।३
वृक—२।७, ५।३
वृक्ष(पक्व)—१४।२६(=पक्व फल)
वृत्रतुर—९।३०(=शत्रुहन्ता), ९।३०।९ (=वृत्रहा), ९।३९(=शत्रुनाशक)
वृत्रहा—३।१२, ३।१३ (इन्द्र), ४।१२ (शूर, विद्वान्), ९।४६ (=शत्रु-नाशक)
वृषभ—४।२ (पकाता), ४।३ (यजन), १५।९८ (=साड मैंने पकाया)
वृहती—१८।३ (छन्द)
वैश्य—३।२०
शर—५।६५
शरद—१५।८४(=वर्ष, सौ), १६।१, १६।१२, १६।१४ (ऋतु), १६।१४ (सौ)
शव—१५।१०२, (पा टि दफनाना)
शास—११।१५ (इन्द्र दिक्-शास है)

शिक्षा—१२।१ (देना), १२।२ (शिक्षमाण=मागते हुए)
शिप्र—१३।१४ (शिप्री इन्द्र), १३।१५ (अथ शिप्र और मुनिपक), १३।२२ (निरपर फैला मुनहला)
शिशुमार—५।५८ (अश्विनोंके साथ)
शुक्रवासा—१३।४ (युवती सी उषा)
शुचिव्रत—३।१
शूद्र—३।२०
शूर—१७।१६ (युद्धमें शरीर छोड़नेवाले स्वर्ग जाते)
श्मश्रु—१३।२९ (मूछ-दाढ़ी बनानेवाला, हजाम)
श्वा—४२१ (कुत्ता)
श्वित्यञ्च—३।६ (सफेद, गोरा), ५।२३ (तन्तु), १०।३, १०।१५ (गोरे तन्तु)
श्रव—१५।८० (यश, कीर्ती, स्तुति)
श्लोक—१४।२ (मुखमें पर्जन्यकी गर्जन), १५।२४ (=यश), १८।३ (=सुना)
श्वसु—८।१४ (=सोना)
श्वश्रू—१६।२३-४३
श्वपत्नी (=सौत)—१५।१०१ (सगी-बाधा)
सप्तत्वसा—१५।८४ (पीछेके सातों सूर्योंकी बहन सप्तमी)
सभा—११।२६ (जुएकी सभा), ११।२८ (सभ्य चित्र), ११।२३ (मैं सभा जाता) ११।२४ (मैं सभाएँ जाती)
सभेय—११।२२ (सभ्य चित्र)
समिति—३।२१, ११।२० (समितिमें राजाओंका संग), ११।२६ (समितियोंमें जाने राजाकी तरह), ११।२८ (तुम्हारी समिति समान हो)
समुद्र—२।४, ५।५९ ६४, ९१, १६।३
सम्राज्ञी—१७।३० (४६) (सास-ससुर-ननद-देवरपर साम्राज्ञी होओ)
सम्राट्—११।१३ (जनोंका सम्राट् अग्नि), ११।१४ (सम्राट् स्तुति करते हैं)
सवन (सोम छाननेके समय)—१५।९१ (प्रातःसाव, माध्यन्दिन-सवन, तृतीय-सवन), १५।१३ (माध्यन्दिन-सवन)
सवत्सर—१६।१६
सवरूथा—१६।२ (=पूर्णाहुती सम्मी)
सहस्रदान—५।१२
सहस्रस्थूण—१६।१, (हजार खम्भे-वाले घरको राजा बनाता है)
साम—(सामवेदमें सब ऋचाएँ साम गायत्र गायत्री छन्दमें गाया जाता है, उसके चार प्रकृत, साधु है। इसके चार उद्गाता भी साथ उसमें मिलते हैं), १८।८ (सामा द्वारा स्तुति), १८।१० (गाता)
सामग—१८।८, (साम गानेवाले गायक और प्रकृतको गाते)
सारथ—४।२६ (रथ)
सालावृक—३।३।२ (भेड़िया, या कुत्ता ? निन्दाके लिए)
साव (=सवन)—१५।९३ प्रातः सवन
सिह—१०।२।१८
सीता—४।२२ ४।४।५, ७(कृषिः
सीरा—२।४ (=सभा) ३।६।१(=सीता), १६।१ २ (=सीता और कृषि)
सुदानु—५।८२ (=सुन्दर)

सुनार—३।२१ (पा टि शिल्प)
सुभर—३।११ (आर्य)
सुरभि—४।१६, ४।१० (सुगध, सोधा)
सुरा—१४।३० (पीनेपर दुमर्द हो लडते हैं), १४।३१ (होश उडानेवाली), १४।३२ (भोज-दाता, आतरिक पेय सुराको पाते हैं)
सुवरत्रा—१६।२ (सुन्दर जोता, और सुन्दर सोचना भी)
सुवासा—१३।१ (युवा), १३।२, ३ (सुवासा जाया, अभिलाषिणी)
सूक्त—१८।५, १८।६ (ऋचासमूह)
सूना—४।९ (पशु काटनेका काठ)
सूनु-तनय—५।३०, १७।७ (पूत-नाती)
सूर—१८।१४ (=सूर्य)
सूरि—२।५, ५।३ (राजकुमार, वीर)
सूर्यत्वक्—३।७, ८ (अपाला)
सृणी—१६।२ (फसल)
सेनानी—८।३१ (सेनापति)
सैर्य—५।७५ (शर, कुशर, दर्भ, मौंजके साथ)
सोम—१४।२३ (भेडके ऊनी कपडेमें सोमका छाना जाना, दो चमुओमें डालना, कलशोमें रखना), १४।२४ (सोम शूरोका समूह, सारे वीरोवाला, जेता, धनोका देनेवाला, तीक्ष्ण-, आयुध, क्षिप्रधन्वा, युद्धमें हरानेवाला है), १४।१५ (वनोके लिए स्वधिति सोम पवित्रको पार होता है, पुराने पितरके कामोको सोमने बनाया, मनुके लिए वह अमित्र नाशक हुआ), १४।२६ (पके वृक्षकी तरह आनन्द के लिए, ६० हजार धनोको दिया), १४।२७ (पुरानी गाथासे उसकी प्रशसा की), १४।२८ (भेडके बालोसे गायके चमडेपर सोम छाना जाता), १४।२९ (शर्यणावतमें इन्द्रने सोम पिया, सोम आर्जीकसे आ विराजे, सोम अनाशमान (ऋत) लोकमें ले जाता, जो लोक कि ज्योतिष्मन्त है, वहाँ अमर करे, जहाँ कि आनन्द, मोद, मुद, प्रमुद है), १४।२३ (भाग)
सोमपीति—४।४ (सोमपानगोष्ठी)
सोमराजा—३।१९
स्कम्भ—५।४७ (स्तम्भ)
स्तोम—५।६१, ५।८१, १६, ९।३, १३।२५, १६,१२ (द्वारा प्रशसा), १७।३० (=ऋचा), १८।११ (नये सोम पैदा करता), १८।१७, १८ (ऋचा), १८।१९ (=भजन, गान)
स्थविर—१५।८० (स्थायी, बूढा, वृद्ध)
स्रोत्या—५।२८, ५।९३ (नदी)
स्रवन्ती—५।९३ (नौ)
स्वधिति—१४।१५ (कुठार बनोका)
स्वराट्—११।१७ (इन्द्र, स्वराट्)
स्वसा (=बहिन) — १७।१५।११, १२ (के साथ भ्राताका सम्बन्ध निषिद्ध)
हरिकेश—३।२, ३ (पीले बालोवाला)
हरिमाण—१२।१८ (पीलिया रोग)
हरिश्मशारु—३।२ (पीली दाढीवाला)
हरिश्मश्रु—३।१ (पीली दाढीवाला)
हरिशिप्र—३।५ (पीले मुकुटवाला)
हर्म्य—१६।८ (पर स्थित शिशु)
हव्य—५।११ (हवि)
हिम—४।१८ (मे वन)

हिम, शत-,—५।३, १५।८१, १५।८३, १६।१३ (सौ हिम-ऋतु वीर पुत्रों-सहित सानन्द रहे)
हिरण्यकर्ण—१३।१७ (कानमें सोना धारण करनेवाला)
हिरण्यकेश—३।४ (सुनहरे बालोंवाला)
हृद्रोग—१२।८
हेमन्त—१६।१५ (सौ हेमन्त-ऋतु)

परिशिष्ट ४

देवता-सूची

अग्नि (=देवता)—१५।११ (पुष्टि-कारक होता), १५।१२, १३ (सहस्र सूनु), १५।१३ (युवा अद्रोघवाक्), १५।१४ (व्रतपा, नाकस्पर्शी, विशो का राजा वैश्वानर, को पश्चिमसे लाये), १५।१५ (हव्यवाह विशपति), १५।१६ (वैश्वानर स्वर्विद = स्वर्ग-ज्ञाता, रथिर, कुशिक आह्वाता, कुशिको द्वारा युग-युगमें सेवित), १५।१७ (राजा, रुद्र, होता, सत्य-यज), १५।१९ (दृषद्वती आपया, सरस्वतीमें घनयुक्त), १५।२, १५।५, १५।६, १५।७-९, १८।१ (प्रथम, दर्शनीय, होता इळस्पद)

अग्नीषोम—५।७८ (अग्नि-सोम)

अज—१५।५ (एक पैरोवाला देवता)

अदिति—१५।२, १५।३ (आदित्य भी), १५।५ (आदित्य), १५।७ (आदित्य), १७।१ (अदितिसे दक्ष और दक्षसे अदिति जनमे)

अद्रि—५।५ (=देवता)

अपानपात्—१५।५ (=देवता)

अप्या—१५।५ (=पानीके देवता)

अप्सरस—५।१९

अमृत—४।२९, १७।१५।३ (देवता)

अमृतबन्धु—१७।१ (देवता)

अरण्यानी—१५।१९ (नही मारती, स्वादु फलदायक, विना किसानके बहुअन्नवाली, मृगोकी माता)

अर्यमा—१५।२ (सु-मगल), १५।८

अश्विनौ—२।१७, १५।५, ६, १७।७ (तुम दोनो के लिए मैंने स्तोम बनाया, जैसे भृगु रथको बनाते हैं), १७।८ (कवि कुत्सकी तरह विशो= प्रजाको पानेवाले, भुज्यु, वश, सिंजार उशनाके उपकारक, कृश, शयुके उपकारक), १७।१० (नासत्य सवेरे मधुवाहन रथपर चढते हैं), १७।११ (उन्होने कृण्णिय विश्वको विष्णापू दिया, पीहरमें बैठी झुराती घोषाको पति दिया) (देखो नासत्य भी)

असुर—१७।१५ (के वीर, महस्पुत्र द्यौके धर्ता)

अहिर्बुध्न्य—१५।५

आप (देवी)—१५।२० (सुखमय,शिव-तम रस, माता, देवी), १६।३ (आपो देवी)

इन्द्र—४।३१ (स्थूल-गर्दन), ६।१९।३ (जैसा), १५।५ (वसुओके साथ), १५।६, १५।७, १५।२२ (शिप्रवान्, वृषभ, गोत्रभिद्, वज्रभृत्), १५।२३ (त्राता, अविता, सुहव = अच्छी तरह पुकारा जानेवाला, शूर, शक्र,

इन्द्राग्नी—२।११ (इन्द्र और अग्नि) १५।५(०)
इन्द्रापूषन्—१५।५ (इन्द्र और पूषन्)
इन्द्रावरुण—५।२३, १५।५ (इन्द्र और वरुण)
इन्द्रासोम—१५।५ (इन्द्र और सोम)
इळा (=देवी)—५।३०, १५।२१ (योषा-सहित भारती और सरस्वती)
उषा—१५।४ (हमारी रक्षा करें), १५।५
ऋभु—१५।२ (ऋभुक्षा), १५।५ (ऋभव सुकृत, सुहस्त), १५।४१ (ऋभुओंका रत्न येय हुआ, सुभ्रुत, भली प्रकार छाने मधु सोम पियो, तृतीय सवनको रत्नध्येय करो), १५।४२ (अनश्व, विना लगामका त्रिचक्र रथ ऋभुओंका, पृथिवीके पोषक ऋभु), १८।१५ (चमकता)
क—१५।४३ (वह हिरण्यगर्भ भूतका एक पति पहले था, जिसकी छाया अमृत। जगत्का राजा दोपायो-चौपायो का ईश। जिसकी महिमा-वाले ये हिमवान्। जिसकी दिशायें। जिसमे द्यौ ऊची, पृथिवी दृढ, नाक=द्यौलोक थमा है, वह प्रजा-पति, सारे उत्पन्नोके चारो ओर है)
कीनाश—४।३२ (कृषिदेवता)
क्षेत्रपति—१५।५ (देव)
जिष्णु—१५।५ (देवता)
त्र्यम्बक—१५।८५(सुगधि, पुष्टिवर्धन)
दक्ष—१७।१ (दक्षकी माता और दुहिता अदिति)
देव—५।२४ (तेंतीस), १५।२, ८, ९, (देवसख्या), १५।१० (देवलोक), १७।१(अमृतवन्धु अदितिके आठपुत्र)
देवी आप—१।१२ (दिव्य जलदेवियाँ)
द्यौ—१५।३ (पिता)
द्यौ-पृथिवी—१५।५
धर्ता—१५।५
धाता—१५।५
धिषणा—१५।(ऋ १।१०९।४ धनकी देवी)
नाक—१५।१० (=स्वर्ग लोक)
नासत्य—१५।२, १७।६ (घोषाने भिषज् नासत्योसे प्रार्थना की। उन्होने विमदका सुध्युसे व्याह किया, पुरुमित्रको स्त्री लाये, पुरधिके लिए वध्रिमतीके साथ आये, पेदुके लिए श्वेत अश्व, नव अन्नों और नव्वे वाजियो=घोडोके साथ दिया। शँयुके लिए धेनु दिया, वृक=भेडियेके मुखसे वर्तिकाको छुडाया), (देखो अश्विनौ भी)
पर्जन्य—४।२३, ५।४५, १५।४,५, १५।४४ (द्यौ-पुत्र सिंचक पर्जन्यके लिए गाओ, वह गायो-घोडो-औष-धियोमें गर्भ-धारक)
पर्वत—१५।४, १५।५ (देवता)
पार्थिव—१५।५ (=पृथिवीके देवता)
पितर—१५।३ (द्यौ-पिता), १५।५ (पितर हमारे कल्याणकारक हों), १५।७८ (जहाँ हमारे पुराने पितर गये हैं। अगिरा पितरोके साथ हे यम, इस प्रस्तरपर बैठो), १५।७९ (उरे-परे-बीचवाले सोम्य, पुत्रोको पितर धन देवें, पूर्वज पितर, अग्निदग्ध, अनग्निदग्ध द्यौके बीच स्वधामे आनन्द करते)

मित्र के लिये पचजन नियम करते हैं)

मित्रावरुण—१५।५, १५।६ (मित्र और वरुण)

यम—(=देवता)—१५।७८(मातली काव्यो द्वारा वढता। यम पितरो के साथ इस प्रस्तर पर वैठे। वह राजा इस हविसे प्रसन्न हो। यम और वरुण दोनो राजा स्वधासे खुश होते है। यम के चार आख वाले पथिरक्षी दो कुत्ते। यमके दो उदुम्वल दूत लोगोके पास विचरते। यमके लिये सोम छानो, यम राजाके लिये मधुमत्तम हवि हवन करो), २५।१०२ (के पास पुराने पितर)।

रक्षस्—५।४७ (राक्षस)

रुद्र—१५।२ (रुद्रके सूनु वसु लोग), १५।५ (रुद्रावरुण, रुद्रोके साथ वरुण), १५।६, १५।७, १५।५८ (स्थिरधन्वा=क्षिप्रवाणवाला देव, अपराजित तीक्ष्ण-आयुध। उसकी छोडी विद्युत्, द्यौ और पृथिवीपर विचरती है। उसकी हजारो दवाइया है, वह हमारे स्तोकतनय-पुत्र-पौत्रो-, को हानि न पहुचाये), १५।५९ (रुद्र कपर्दी दोपायो चौपायो का कल्याण करे। इस ग्राम में सवको तुष्ट और निरोग करे। वह यज्ञसाधक और वकु कवि है। वह द्यौका वराह अरुप=अरुण कपर्दी है, उत्तम भेपजो को धारण करता है)

रोदसी—५।३२, १५।५ (द्यौ और पृथिवी)।

लोक, अमृत—१४।२९ (अनाशमान, कामचार-वाला, ज्योतिष्मान्, आनन्द-मुद-प्रमुदवाला)

वरुण—१५।२, १।५।७, १५६० (नदीपायज्ञ, राष्ट्रोका राजा), १५।६२, १५।६३

वरुणानी—१५।६१

वसु—१५।२ (देवगण अजेय), १५।३ (भाई) १५।४, १५।५, १५।७, १५।६० (नदीपायज्ञ, राष्ट्रोके राजा)।

वाक्—१७।२० (मै सारे देवो के साथ चलती हूँ, जिसे चाहू उसे ब्रह्मा, ऋषि वनाऊ)।

वात—१५।५ (वायु)

वायु—१५।२, १५।५, १५।७, १५।६६ (वायुके लिये सजे सोम, उसकी उक्थों से स्तुति करते)।

वास्तोष्पति—१५।६७ (=मकानोका देवता। वह रोगनाशक सभी रूपोमें प्रविष्ट सखा है, के सफेद सारमेय)

विश्वकर्मा—१५।६८ (हमारे पिता, ऋषि होता, विश्वकर्मा ने भूमिको जन्माया द्यौको वढाया। वह चारो ओर चक्षु-मुख-वाहु-पैरोवाला है, दोनो वाहुओ से धौंकता है, पखो से, उस एक देवने द्यौ और भूमि को जन्माया)

विश्वेदेवा—१५।५(=सारे देवता)

विष्णु—१५।५, १५।७, १५।६९ (उस देवने इस पृथिवीको तीन वार विच क्रम=लघन किया, वह वलियोमें वलिष्ट)

वृषाकपि—१७।३ (=अग्नि के प्रति इन्द्र के सौहार्द्र से इन्द्राणी रुष्ट)

वृत्रहा—५।५१ (=पुरन्दर, कुत्सयोनि दासीर-का नाम)।
वेदि—१५।५ (देवता)
शचीपति—५।८५ (वृत्रहा)
शुनासीर—४।३२, ५।४५ (कृषि-देवता)।
सरमा—६।१९ (देव=कुत्तियाकी पणियों से गाय)।
सरस्वती—५।६, १५।२, १५।४ (सिंधुओं-सहित फूटी), १५।५, १५।७० (आपगों पुरकी नाव-जैसी रक्षाकी तरह जाती। नदियोंमें शुचि। गिरियों से समुद्र तक जाती। धन चेनाती। नाहुष=मनुषी प्रजाके लिये घी-दूध दुहाती। वसिष्ठ उसकी स्तुति करते हैं), १५।७१, (सरस्वतीकी महिमा वसिष्ठ गाते हैं, उसके दोनों तटों पर पूरु बसते, सारस्वतोंके साथ सरस्वती, भारती, इळा तीनों देवियां इस यज्ञ में बैठें। सरस्वती दृषद्वती, आपया के तट पर धनयुक्त अग्नि प्रदीप्त हो) १५।७४ (उसने दाता वध्र्यश्वको दिवोदास प्रदान किया। पणिको खाया। ने अपनी ऊर्मियोंसे गिरियोंके सानुओंको तोड़ा। पारावत=पार-पारको लांघनेवाली, सात बहिन सरस्वती स्तोमनीय है। उसके क्षेत्र और अरमयो इस पार्थे)
सविता—१५।२, १५।४ (उषा सूर्य), १५।५ (सूर्य वसुओं), १५।७ (आदित्य) १५।३५ (सविता ने यरेण्य भर्ग का हम ध्यान करते हैं), १५।७६ (उसकी मुनक्षत्री दोनों बाहुयें हैं। वह दक्ष, सुदक्ष, हिरण्यजिह्व, हिरण्यपाणि, अयोहनु=वज्र ठुड्डीवाला, मद्रजिह्व है)
सहसोसूनु—५।४ (अग्नि), ७।४ (सहस्का पुत्र)
सिंधव—१५।४, १५।७० (सिंधु), १५।७४ (सरस्वतीकी सात बहिनों)
सोम—४।२७ (चमुओंमें), ४।२८ (मदिष्ठ, स्वादिष्ठ धारा), ४।२९ (पीनने अमर), ५।४७ (का चमस, द्रप्स), ५।७७ (गगनाधार पृष्टिवर्तन) ५।८९ (रो धारा स्वादिष्ठ, मदिष्ठ), १४।३ (चमुओंमें छाना, चमसोंमें पीना, चमुओंमें उन्हें सद्य मारी तरह रिसाते देना), १४३।१ (स्वादिष्ठ अक्षन्न स्वादु, मदिष्ठ-अक्षन्न नशा देनेवाला), १४।४ (द्रोणोंमें रहना), १४।५ (पवमान छाना जाना, आवान करना), १४।६ (को दस अंगुलियां मीजतीं, पीते विप्र वीर मन्त्रोंसे। कलशोंमें आज उन्हारे हुये), १४।७ (सोमके लिये गायें) १४।७।२ (सोमराजा) १४।८ (का सूर्यके वृषन का सोमोंको दिलाता है), १४।९ (का कलशोंमें दोहन पवित्रमें सोना जाना, उसका द्रोण सदमें रखना पाता है) १४।१० (रसोंसे भरे देव जानेवाले, रसे सोमोंको रस दिलानेवाले पवित्रको रस देते, अक्षितो रस दुहनेवाले स्वादिष्ठ) १४।१२ (पवित्रमें पीनेके लिये छाना हुआ सोम है), १४।१३

(पर्वतसे क्षरण करता), १४।१४ जारको जैसे कन्या वैसे सोमको दस अगुलिया स्पर्श करती हैं), १४।१५ (सोम गोजित्, अश्वजित्, विश्वजित्, रणजित्, प्रजायुक्त रत्न लानेवाला है), १४।१६ (गायसे सोमको गाओ), १४।१७ (सोम-के नशेमें इन्द्रने शवरके ९९ नगरोको दिवोदासके लिये नष्ट किया, और युदु-तुर्वशको परास्त किया, अमित्र वृत्रको मारा। दिन-प्रतिदिन अन्न-दाता, वह गौ और अश्व देनेवाला) १४।१८ (इन्द्र-विष्णुके लिये छाना सोम कलशमें क्षरित हुआ। वह भूरा है। इन्द्रको वढाता सवको आर्य वनाता वह शत्रुओको नष्ट करता है), १४।१९ (सोम सूर्यदेवकी तरह पत्थरोंसे निचोडा पवित्र होता कलशमें रसता), १४।२० (हरी=पीले वर्णका। तीव्र जिसका मद्यरस), १४।२१ (दूर और नज-दीक शर्यणावतमें छाना गया सोम। आर्जीकोमें, कृत्वोंमें, पस्त्योके वीच पचजनोमें छाना गया। जम-दग्नि द्वारा स्तुति किया जाता। हरा सोम गौके चमडेपर पवित्र हो रहा है), १५।५ (इन्द्रासोम, सोम) १५।६, १५।७, १५।७७ (स्वादु मधुमान्, तीव्र, रसवान्, मदिष्ठ। जिसे पी वृत्रहत्या में इन्द्रने मस्त हो शवरकी ९९ देहियोको नष्ट किया। पृथिवीकी श्रेष्ठता द्यौकी उच्चता-को उसने वनाया। वह पीयूष है। सोमने विस्तृत अतरिक्षको धारण किया), १७।१९ (ससुर नही आया कि धाना खाता, सोम पीता)

सोमराजा—१७।१२ (सोम)

स्वर्ग—१५।१०३ (नाकके पृष्ठपर देवोंके साथमें जाते), १५।१०४ (स्वरहित=सुखयुक्तलोक जहा निरन्तर ज्योति। जो अमृत-लोक)।